संस्कृत-निबन्ध-दर्शिका

श्री वामन शिवराम आप्टे द्वारा लिखित

The Students' Guide to Sanskrit Composition

का

हिन्दी-अनुवाद

अनुवादक

ओंकार नाथ मिश्र

एम० ए०, 'शास्त्री', 'साहित्यरत्न' (हिन्दी, पाली)

प्राध्यापक—राधारमण इण्टर कालेज, प्रयाग

प्रकाशक

रामनारायण लाल बेनीमाधव

[उत्तराधिकारी—रामनारायण लाल]

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद—२

प्रथम संस्करण] १९६१ [मूल्य ४)

पुस्तक में प्रयुक्त सांकेतिक शब्दों की सूची

१. उत्तर०—उत्तर रामचरितम्
२. किरात०—किरातार्जुनीयम्
३. कुमार०—कुमार सम्भव
४. चाणक्य०—चाणक्य नीति शतक
५. दशकु०—दशकुमार चरितम्
६. नागा०—नागानन्द
७. पाणिनि—से तात्पर्य है पाणिनि प्रणीत अष्टाध्यायी, प्रथम संख्या अध्याय सूचक, द्वितीय संख्या पाद सूचक और तृतीय संख्या सूत्र सूचक है।
८. भट्टि०—भट्टिकाव्य
९. महावीर०—महावीरचरित
१०. मालती०—मालती माधव
११. मालविका०—मालविकाग्निमित्र
१२. मुद्रा०—मुद्राराक्षस
१३. मृच्छ०—मृच्छकटिक
१४. याज्ञवल्क्य—याज्ञवल्क्यस्मृति
१५. रघु०—रघुवंश—प्रथम संख्या सर्ग सूचक, द्वितीय संख्या श्लोक सूचक।
१६. विक्रमो०—विक्रमोर्वशीयम्
१७. विद्धशाल०—विद्धशालभंजिका
१८. वेणी०—वेणी संहार
१९. शाकुन्तल०—अभिज्ञान शाकुन्तलम्, संख्या अंक सूचक।
२०. शिशु०—शिशुपाल वध
२१. सुभाषि०—सुभाषितरत्नाकर
२२. हर्ष०—हर्षचरित
२३. हितो०—हितोपदेश

दो शब्द

'संस्कृत-निबन्ध दर्शिका' अँग्रेजी और संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् श्री वामन शिवराम आप्टे की प्रसिद्ध पुस्तक 'The Students' Guide to Sanskrit Composition' का हिन्दी रूपान्तर-मात्र है। पहिले स्कूलों और कालेजों में संस्कृत की शिक्षा अँग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाती थी, इसीलिए श्री आप्टे जी ने इस ग्रन्थ का निर्माण अँग्रेजी में ही किया था। अब संस्कृत क्या सभी विषयों के अध्यापन में विश्वविद्यालय की शिक्षा तक हिन्दी माध्यम का ही प्रयोग हो रहा है और यह स्वाभाविक भी है। अँग्रेजी माध्यम से स्कूलों और कालेजों में संस्कृत की शिक्षा छात्रों एवं अध्यापकों दोनों के लिए कष्टसाध्य है। संस्कृत के श्लोकों की व्याख्या, टीका तथा अन्वय, संस्कृत वाक्य-संगठन, वाक्य-विश्लेषण, वाक्य-विस्तार, वाक्य-संकलन, रूपों और शब्दों के प्रयोग, प्रत्यय, काल और वृत्तियाँ तथा अव्यय पदों के प्रयोग और पत्र-लेखन प्रणाली पर यह एकमात्र ग्रन्थ है। इसीलिए इसके हिन्दी-अनुवाद की यह चेष्टा की गई है। विद्वान् लेखक ने अभ्यास के रूप में संस्कृत काव्यों के पर्याप्त उद्धरण दिये हैं। इन अभ्यासों के क्लिष्ट अंशों की व्याख्या टिप्पणी में दे दी गई है। अन्त में संस्कृत-निबन्धों में प्रयुक्त होने वाले मुहावरों और 'शब्द-कोष' के रूप में आवश्यक शब्दों का संकलन भी कर दिया गया है। छात्र इनसे सहायता लेकर संस्कृत-निबन्ध लिखने का अभ्यास बड़ी सरलता से कर सकते हैं।

आशा है, यह अनुवाद संस्कत-प्रेमियों के लिए अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा।

—अनुवादक

अनुक्रमणिका

भाग १

भाग २

भाग ३

व्याकरणात्मक रूपों और शब्दों का प्रयोग तथा अर्थ

पृष्ठ

भाग ४

विभाग १

विभाग २

विभाग ३

विभाग ४

संस्कृत निबन्ध-दर्शिका

भाग १

प्रस्तावना

१—अँग्रेजी वाक्य-रचना में शब्दों के क्रम तथा वाक्य में उनके उचित और शुद्धप्रयोग के नियमों का वर्णन किया जाता है, किन्तु संस्कृत तथा अन्य विभक्ति-प्रधान भाषाओं में 'वाक्य-रचना' का कोई निश्चित क्षेत्र और नियम नहीं है। विभक्ति-प्रधान भाषाओं में वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान सविभक्तिक पदों द्वारा स्वयं हो जाता है और यदि छात्र वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों के क्रम का ध्यान नहीं रखते तो उसके कारण किसी प्रकार की अशुद्धि नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ—अँग्रेजी का वाक्य 'Rāma saw Govinda' लीजिए। यदि 'Rama' और 'Govinda' शब्दों का क्रम बदल दिया जाय तो अर्थ में बहुत अधिक अन्तर पड़ जायेगा। वह एक बिलकुल भिन्न ही वाक्य हो जायेगा। इसके विपरीत यदि उसी अर्थ को व्यक्त करने वाले संस्कृत-वाक्य "रामो गोविन्दमपश्यत्" को लीजिए तो शब्दों के क्रम में परिवर्तन करने पर भी अर्थ में किसी भी प्रकार का अन्तर न पड़ेगा। 'रामो गोविन्दमपश्यत्', 'गोविन्दं रामोऽपश्यत्' 'अपश्यद्रामो गोविन्दम्' इत्यादि का एक ही अर्थ है। अतः संस्कृत-वाक्यों में, शब्दों का क्रम, कुछ अपवादों को छोड़ कर, कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। किन्तु

इसका तात्पर्य यह नहीं कि संस्कृत-वाक्य-रचना में पूर्ण स्वच्छन्दता का व्यवहार हो, वस्तुतः कुछ ऐसे स्थल हैं जहाँ शब्दों को एक विशेष-क्रम में रखना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। संस्कृत-व्याकरणों में शब्दों के लिङ्गादि की संगति और क्रम के विषय में बहुत कम नियम दिये गये हैं। सिद्धान्त-कौमुदी के 'कारक-प्रकरण' में संस्कृत-वाक्य-रचना का विवेचन ठीक से किया गया है, ऐसा समझना ठीक नहीं है। क्योंकि वहाँ संस्कृत-वाक्य रचना के केवल एक अंग के रूप में विभक्तियों द्वारा पदों के अन्वय (Government) का ठीक से विवेचन किया गया है। वाक्यों में शब्दों को अन्वित करते (मेल) में रखते समय उपसर्गों, परसर्गों और व्याकरण-सम्बन्धी रूपों के प्रयोग और उनके अर्थों पर भी ध्यान रखना चाहिए। अँग्रेजी व्याकरणों में व्याकरण के इस अंश पर शब्द-व्युत्पत्ति (Etymology) प्रकरण में विचार किया गया है, किन्तु संस्कृत व्याकरणों में शब्दों की व्युत्पत्ति (रचना) को समझाने के साथ-साथ, उन शब्दों के प्रयोग भी हैं। उदाहरणार्थ 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' (पाणिनि ३। २। १२४) सूत्र में 'शतृ' और 'शानच्' प्रत्ययान्त शब्दों के बनाने की विधि और उनके प्रयोग का स्थल भी बताया गया है। संस्कृत में वाक्य-रचना पर विचार करते समय लिङ्गादि की संगति और पदान्वय तथा व्याकरण-सिद्ध रूपों व पदों के प्रयोग और अर्थ पर मुख्यतः ध्यान देना चाहिए। अतएव इस ग्रन्थ में पाठों का क्रम इसी विचार से रक्खा गया है।

इसकी ओर पहिले ही संकेत किया जा चुका है कि संस्कृत में शब्दों के क्रम का कोई महत्त्व नहीं होता, परन्तु कुछ ऐसे स्थल हैं जहाँ इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में चौथे भाग में कुछ नियम दिये जायेंगे।

२—अँग्रेजी तथा अन्य भाषाओं की भाँति संस्कृत में भी तीन 'पुरुष' और तीन 'लिंग' होते हैं। संस्कृत में 'पुरुषों' का प्रयोग उससे भिन्न नहीं है,

परन्तु जहाँ तक संस्कृत में संज्ञाओं के लिंगों का सम्बन्ध है, उनका अन्तर स्पष्ट करने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं बनाये जा सकते। केवल उन स्थलों को छोड़कर—जहाँ पुरुष और स्त्री का स्पष्ट संकेत है और पुरुष तथा स्त्री का अन्तर प्राकृतिक है—संस्कृत में लिंग-निर्णय बिलकुल मनमाना है। जैसे—चटकः 'नर गौरैया', चटका 'मादा गौरैया'; हंसः, हंसी; अजः, अजा इत्यादि स्थलों में नियम का पालन किया गया है; किन्तु संस्कृत में लिंग की स्वेच्छाचारिता इसी से स्पष्ट है कि एक ही और उसी एक पदार्थ के लिए संस्कृत में तीन भिन्न-भिन्न लिंगों के तीन अलग-अलग शब्द पाये जाते हैं। 'पत्नी' के लिए संस्कृत में 'दार' (पुंल्लिंग) 'भार्या' (स्त्री लिंग) और 'कलत्र' (नपुंसक लिंग)—इन तीन शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'शरीर' के लिए 'काय' (पुंल्लिंग), 'तनु' (स्त्री०) और 'शरीर' (नपुं०) इत्यादि। अधिकांश रूप में लिंग का ज्ञान कोश द्वारा प्राप्त करना चाहिए।

संस्कृत, में हिन्दी अँग्रेजी और लैटिन के विपरीत दो के स्थान पर तीन वचन होते हैं। उनके प्रयोग की कुछ विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया जाता है—

३—संस्कृत में एक वचन, द्विवचन और बहुवचन ये तीन वचन होते हैं। 'एक वचन' से 'एक' अथवा 'एक व्यक्ति' का बोध होता है, परन्तु अँग्रेजी की भाँति संस्कृत में भी प्रायः एक वचन से 'सम्पूर्ण जाति' भर का बोध होता है। जैसे 'नरः'—(एक आदमी); 'सिंहः सर्वश्वापदेषु बलिष्ठः'—सिंह सब जंगली पशुओं से बलवान होता है।

विशेष—किसी वर्ग अथवा समुदाय विशेष का बोध कराने के लिए 'एक-वचन' अथवा 'बहुवचन' दोनों का प्रयोग किया जा सकता है। 'ब्राह्मणों का सम्मान होना चाहिए' को 'ब्राह्मणःपूज्यः अथवा ब्राह्मणाः पूज्याः' द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

४—द्विवचन से 'दो' का बोध होता है। 'अश्विनौ'—दो अश्विन्;

'दंपती'—युग्म (पति और पत्नी), परन्तु 'द्वय, द्वितय, युगल, युग, द्वन्द्व' इत्यादि युग्म या जोड़ा का अर्थ व्यक्त करने वाले शब्द सदा एकवचन में ही रहते हैं। जैसे—'बाहुद्वयम्'—भुजाओं का एक जोड़ा; 'सुकुमारचरण-युगलम्'—कोमल चरणों का एक जोड़ा। परन्तु जब कई युग्मों का बोध कराना होता है तो इन शब्दों का प्रयोग द्विवचन अथवा बहुवचन में भी होता है।

(अ) कभी कभी 'एकशेष द्वन्द्व समास' के रूप में प्रयुक्त 'द्विवचन' शब्द एक ही वर्ग के स्त्री और पुरुष दोनों का बोध कराता है; जैसे—"जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ" (रघु० १। १)— मैं संसार के माता-पिता पार्वती और परमेश्वर (शङ्कर) को प्रणाम करता हूँ।

५—अँग्रेजी (अथवा हिन्दी) में बहुवचन में प्रयुक्त होने वाले कुछ पदों का अनुवाद संस्कृत में केवल द्विवचन से ही होना चाहिए; जैसे—'उसने अपने हाथ और पैर धोये' का अनुवाद संस्कृत में "हस्तौ पादौ चाक्षालयत्" होगा; उसने अपनी आँखें मूँद लीं—'सा लोचने न्यमीलयत्'।

६—बहुवचन द्वारा दो से अधिक का बोध होता है और एकवचन की भाँति किसी एक वर्ग या समुदाय विशेष का भी बोधक हो सकता है। 'शकुन्ताः' पक्षियों अथवा पक्षियों का समूह। परन्तु संस्कृत में कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो स्वरूपतः बहुवचन होते हुए भी एकवचन का ही बोध कराते हैं, जैसे 'दाराः' (पत्नी), इसी प्रकार अप्, वर्षा, सिकता, अक्षता, असु, प्राण इत्यादि।

(अ) कभी कभी बहुवचन का प्रयोग सम्मान अथवा भक्ति सूचित करने के लिए होता है; जैसे—'इति शङ्कराचार्याः'—आदरणीय श्री शङ्करा-चार्य जी का ऐसा मत है।

(ब) यदि वक्ता उच्च व्यक्तित्व का है तो एक वचन के स्थान पर भी उत्तम पुरुष बहुवचन का प्रयोग होता है; जैसे—'वयमपि भवत्यौ सखीगतं किमपि पृच्छामः' (शाकुन्तल० १)—हम भी (अर्थात् मैं) आप दोनों से आपकी सखी के विषय में कुछ पूछते हैं। 'वयमपि स्वकर्मण्यभियुज्यामहे'

(मुद्रा० ३)—हम भी (अर्थात् मैं) अपने कर्त्तव्य में तत्पर हो रहे हैं। परन्तु यह नियम सर्वथा आवश्यक नहीं है; जैसे—'किंत्वरण्यसदो वयमनभ्यस्त-रथचर्याः' (उत्तर० ५)

७—संस्कृत में देशों के नाम का प्रयोग सदा बहुवचन में होता है, क्योंकि वे वहाँ के निवासियों के नाम पर ही बोधित किये गये होते हैं। जैसे—'अहं गतः कदाचित् कलिंगान्'—(दशकु० २।७)—मैं एक बार कलिंग देश (कलिंग लोगों के देश) गया।

विशेष—जब देशों के नाम के साथ 'देश', 'विषय' आदि शब्द लगे हों, तब एकवचन का ही प्रयोग होना चाहिए; जैसे—'मगधदेशे पाटलिपुत्रं नाम नगरम्'—मगध देश में पाटलिपुत्र नाम का नगर है।

८—व्यक्ति वाचक संज्ञाओं का बहुवचन, अँग्रेजी की ही भाँति संस्कृत में भी प्रायः वंश या परिवार का बोध कराता है, जैसे—'रघूणामन्वयं वक्ष्ये' (रघु० १।६)—मैं रघुओं के वंश (पीढ़ी) का वर्णन करूँगा। 'जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः' (उत्तर० १) जनक के वंशजों और रघु के वंशजों का सम्बन्ध किसको नहीं प्रिय है?

पाठ १

९—"जब दो सम्बद्ध शब्दों के एक ही लिंग, वचन, पुरुष और काल होते हैं तब वे एक दूसरे के अन्वयी (सम्बन्धी) (Concord) का बोध कराते हैं। किसी पुरुष के लिए हम 'वह' (पुंल्लिंग) 'सः' और स्त्री के लिए 'वह' (स्त्रीलिंग) सा का प्रयोग करेंगे, परन्तु जब बहुत पुरुषों और स्त्रियों के विषय में कहना होगा तब 'वे' (ते, ताः) का प्रयोग करेंगे।"—बेन

संस्कृत में तीन प्रकार के अन्वयों (सम्बन्धों) पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) कर्त्ता और क्रिया का अन्वय, (२) विशेष्य और विशेषण का अन्वय और (३) सम्बन्धी और सम्बंधवान् का अन्वय।

कर्त्ता और क्रिया का अन्वय

१०—जिसके विषय में कुछ कहा जाता है उसे वाक्यका 'कर्त्ता' या 'उद्देश्य' पद से अभिहित किया जाता है और उसे प्रथमा विभक्ति (कर्त्ता) में रक्खा जाता है। अँग्रेजी की भाँति क्रिया का वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार होता है। जैसे—'आसीद्राजा शूद्रको नाम' (कादम्बरी ५)—शूद्रक नाम का राजा था। 'साधयामो वयं' (शाकुन्तल० १) हम लोग जाते हैं (यह हम लोग चले)।

११—विधेय (उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाय) या तो प्रधान क्रियापद होगा जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों में है, या विशेष्य (संज्ञा) पद होगा अथवा अस् धातु से युक्त कोई अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से विशेषण पद होगा। ऐसी दशाओं में विशेष्य पद अपने स्वाभाविक लिंग में प्रयुक्त होगा और कारक में उद्देश्य अथवा कर्त्ता के अनुसार होगा; जैसे 'सा कुलपते-

रुच्छ्वसितमिव' (शाकुन्तल० ३)—वह बाला कुलपति का जीवन है। 'ककुदं वेदविदां' (मृच्छ० १)—जो वेदज्ञों में श्रेष्ठ हैं।

विशेष—विशेषण का अन्वय द्वितीय पाठ में दिया जायेगा।

(अ) ऐसी परिस्थितियों में क्रिया सदा कर्त्ता (उद्देश्य) के अनुसार होती है। जैसे—'तस्मात् सखा त्वमसि'—(उत्तर० ५)—अतः तुम मित्र हो'।

(ब) जब पात्र, आस्पद, स्थान, पद, प्रमाण, भाजन इत्यादि शब्दों का प्रयोग विधेय के रूप में होता है, तब ये सदा एक वचन और नपुंसकलिंग में होते हैं, चाहे कर्त्ता (उद्देश्य) किसी भी वचन या लिंग में हो और क्रिया-पद का प्रयोग कर्त्ता के अनुसार होता है, न कि विधेय-स्थानीय संज्ञा के अनुसार, वह चाहे जिस परिस्थिति में हो। जैसे 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु' (उत्तर० ४)—गुणवान् व्यक्तियों में गुण ही पूजा के कारण होते हैं। 'आर्यमिश्राः प्रमाणम्' (मालविकाग्नि० १)—आप ही प्रमाण हैं। 'सम्पदः पदमापदाम्' (हितो० १)—सम्पत्ति ही विपत्तियों का घर है। 'त्वमसि महसां भाजनं' (मालती० १)—आप तेज के आश्रय हैं। 'विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानां' (मालती० १)—मैं कई प्रकार से उसकी दृष्टि का लक्ष्य हुआ।

यहाँ पर, यद्यपि 'स्थानम्' और 'पात्रम्' शब्द वाक्य में कहीं भी रक्खे जा सकते हैं, परन्तु 'गुणाः पूजास्थानमस्ति' और 'अहं पात्रमभूत्' कहना अशुद्ध होगा।

१२—होना, बढ़ना, प्रतीत होना, दिखाई पड़ना आदि अपूर्ण विधेयक क्रियाओं का अर्थ स्पष्ट करने के लिए जिन संज्ञाओं अथवा विशेषणपदों का प्रयोग किया जाता है, वे प्रथमा विभक्ति में रक्खे जाते हैं। जैसे—'यदि सर्ग एष ते' (रघु० ३।५१)—यदि आपका यह विचार है। 'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य' (शिशुपाल०१।४६)—तीनों लोकों का अधिपति होने की इच्छा रखता हुआ। 'मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते' (शाकुन्तल०३)—यह काम-पीड़िता दिखलायी पड़ती है।

(अ) पुकारना, नाम रखना, बनाना, सोचना, चुनना, नियुक्त करना आदि अपूर्ण विधेयक सकर्मक क्रियाओं के कर्मवाच्य में भी यही नियम लागू होता है। जैसे—'कुक्कुरो व्याघ्रः कृतः' (हितो० ४)—कुत्ता व्याघ्र बना दिया गया। 'नायं मूर्खो मन्तव्यः' वह मूर्ख नहीं समझा जाना चाहिए, इत्यादि।

१३—जब 'और' द्वारा संयुक्त दो या दो से अधिक संज्ञापद कर्त्ता होते हैं तब क्रिया संयुक्त कर्त्ता पदों के वचन के अनुसार होती है। जैसे—'तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी' (रघु० १।५७)—राजा और रानी मागधी—दोनों ने उनके चरणों को पकड़ा।

(अ) जब संज्ञाएँ एक साथ नहीं ग्रहण की जातीं, बल्कि प्रत्येक अलग-अलग समझी जाती हैं अथवा वे सब एक साथ मिलकर एक विशेष-विचार व्यक्त करती हैं, तब क्रिया एकवचन में ही प्रयुक्त होती है। जैसे—'न मां त्रातुं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती।' (मालती० २)—मेरी रक्षा करने में न तो पिता जी समर्थ हैं न माता जी और न आप ही। 'पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते' (हितो० १)—योग्यता और सत्यवादिता का ज्ञान बातचीत से होता है।

(ब) कभी-कभी क्रिया सन्निकटतम कर्त्ता पद के अनुसार होती है और अवशिष्ट कर्त्ता पदों के साथ समझ ली जाती है। जैसे—'अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम्।' (पंचतंत्र १।४) दिन और रात्रि, दोनों संध्या और धर्म भी पुरुष के आचरण को जानता है।

लैटिन भाषा में भी इसी प्रकार होता है—(अ) 'Tempus necessitague Postulat' समय और आवश्यकता की माँग। 'Filia et unus e filiis captus est' एक लड़की को और लड़कों में से एक को जेल में डाल दिया गया।

१४—'अथवा' द्वारा संयुक्त एकवचन कर्त्ता पद के लिए एकवचन की क्रिया प्रयुक्त होती है। जैसे—'रामो गोविन्दः कृष्णो वा गच्छतु'—राम अथवा

गोविन्द अथवा कृष्ण जाय। 'शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्याऽसि जगतः' (उत्तर ०४)।

(अ) जब कर्त्ता पद कई विभिन्न वचन के होते हैं तब क्रिया निकटस्थ कर्त्ता पद के अनुसार होगी। जैसे—'ते वा अयं वा पारितोषिकं गृह्णातु' वे अथवा यह पारितोषिक ग्रहण करे।

१५—जब दो या दो से अधिक विभिन्न पुरुषों के कर्त्ता पद 'और' द्वारा संयुक्त हों तब क्रिया कर्त्ता पदों के संयुक्त वचन के अनुसार होती है और उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुष के योग में उत्तम पुरुष की क्रिया तथा मध्यम और अन्य पुरुष के योग में मध्यम पुरुष की क्रिया का प्रयोग होता है। जैसे—'त्वं चाहं च पचावः' (महाभाष्य)—तू और मैं पकाता हूँ। इसी प्रकार 'ते किंकरा अहं च श्वो ग्रामं प्रतिष्ठेमहि'—वे नौकर और मैं कल गाँव को प्रस्थान करूँगा। 'त्वं चैव सोमदत्तिश्च कर्णश्चैव.........तिष्ठत' (महाभारत ० ७।८७।१२)—तू और सोमदत्त का पुत्र और कर्ण रहें।

इसी प्रकार लैटिन में भी होता है। 'Si tu et Tullia lux nostra valetis, ego et suavissimus Cicero valemus.' यदि तू और मेरा प्रियतम Tullia अच्छे हैं तो उसी प्रकार मैं और मेरा प्रिय सिसरो भी।

१६—यदि 'अथवा' पद द्वारा संयुक्त दो या दो से अधिक विभिन्न पुरुप के कर्त्ता पद हों तो वचन और पुरुष में क्रिया निकटतम कर्त्ता पद के अनुरूप होती है। जैसे – उसने और तुम लोगों ने इस काम को किया—'स वा यूयं वैतत्कर्माकुरुत'। वे अथवा हम लोग इस कठिन कार्य को कर सकते हैं—'ते वा वयं वेदं दुष्करं कार्यं सम्पादयितुं शक्नुमः।'

१७—जब दो या दो से अधिक कर्त्तापद किसी संज्ञा अथवा सर्वनाम पद के स्थानापन्न (समानाधिकरण) होते हैं तब विधेय (क्रिया) संज्ञा अथवा सर्वनाम के अनुसार होता है। जैसे--'माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम्' (हितो० १)—माता, मित्र और पिता—ये तीनों स्वभाव से ही हितैषी होते हैं।

अभ्यास

१—उर्वशी सुकुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य। प्रत्यादेशो रूपगर्विताया: श्रियः। अलंकारः स्वर्गस्य। (विक्रमो० १)

२—सर्वत्रौदरिकस्याभ्यवहार्यमेव विषयः। (विक्रमो० ३)

३—हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या। क एतत्प्रत्येति सैवेयमिति। (उत्तर० ४)

४—सार्थवाहस्यार्थपतेर्विमर्दको बहिश्चराः प्राणाः। (दशकु० २।२)

५—ममापि दुर्योधनस्य शंकास्थानं पाण्डवाः। (वेणी० २)

६—त्वं चाहं च वृत्रहन्नुभौ संप्रयुज्यावहै। (महाभाष्य)

७—प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि—
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्॥ (वेणी० १)

८—त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं,
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे। (उत्तर० ३।२६)

९—बलवानपि निस्तेजाः कस्य नाभिभवास्पदम्।
निःशंकं दीयते लोकैः पश्य भस्मचये पदम्॥
(हितो० २)

१०—तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः। (उत्तर० १।१३)

११—इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत्। (रघु० ६।७१)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—अस्ति तावदेकदा प्रसंगतः कथित एव मया माधवाभिधानः कुमारो यस्त्वमिव मामकीनस्य मनसो द्वितीयं निबन्धनम्। (मालती ० ३)

२—एकस्मिञ्जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात्सूनुरभवम्। (कादम्बरी—२५)

३—देव, काचिच्चण्डालकन्यका शुकमादाय देवं विज्ञापयति । सकलभुवनतलसर्वरत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देवः । विहंगमश्चायमाश्चर्यभूतो निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुमिति । (कादम्बरी—८)

४—आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ।। (हितो० १)

५—रहस्यभेदो याच्ञा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता ।
क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम् ।। (हितो० १)

६—अदेयमासीत् त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे । (रघु० ३।१६)

७—निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च । (रघु० ६।२६)

८—व्यतिकरितदिगन्ताः श्वेतभानोर्यशोभिः
सुकृतविलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम् ।
अकलितमहिमानः केतनं मंगलानां
कथमपि भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः सम्भवन्ति ।। (मालती० २)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—वंग के राजा ने युद्ध में अपना जीवन त्याग दिया ।

२—जब उस स्त्री ने उस भयंकर दृश्य को देखा तो उसके हाथ-पाँव काँपने लगे ।

३—हे गोविन्द, तू ही मेरा जीवन, मेरा आनन्द, मेरे गर्व का हेतु और मेरी सारी दुनियाँ है ।

४—वे बिना किसी निजी अपराधके संन्देहके पात्र हुए ।

५—अच्छी अर्द्धांगिनियाँ समस्त धार्मिक कृत्यों का मूल कारण होती हैं ।

६—राजन् ! भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, आप, शक्तिशाली भोज, शकुनि, अश्वत्थामा और स्वयं मेरे द्वारा आपकी सेना का सङ्गठन है ।

७—जब वह अपने घोड़े से गिरा तब राम, गोपाल और हम दोनों उपस्थित थे।

८—तुम और कृष्ण इस कार्य को समाप्त करने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ? क्या यह बहुत कठिन है ?

९—आज्ञापालन, सचाई, निरभिमानता और अपने कर्त्तव्य पर डटे रहना—ये नौकर के गुण हैं।

१०—तुमने, राम ने और मैंने दण्डकवन में सुख-पूर्वक समय व्यतीत किया।

११—इस संसार में सम्पत्ति अनन्त दुःखों का कारण है।

१२—हरि का पुत्र परशुराम अपनी कक्षा का रत्न और अपने वंश का भूषण है।

१३—उस मनुष्य को अथवा इन लड़कों को यह फल ले लेने दो।

१४—हरी और मैं अथवा तुम और कृष्ण इस काम को कर सकते हो, न तो गोपाल और न उसके छोटे भाई इसे कर सकते हैं।

१५—तुम दोनों, पुष्यमित्र के तीनों नौकरों और दो अन्य व्यक्तियों को राज-सभा में जाना चाहिए।

———

पाठ २

विशेष्य और विशेषण का अन्वय

१८—अँग्रेजी भाषा में विशेषण का प्रयोग सभी लिंगों, वचनों और कारकों में विना किसी परिवर्तन के सदा समान रूप से होता है, जैसे a good man, good tables, I saw a good horse इत्यादि; परन्तु संस्कृत भाषा में सभी प्रकार के विशेषणों का लिंग, वचन और कारक उन्हीं विशेष्यों (संज्ञाओं) के अनुसार होता है जिनकी वे विशेषता प्रकट करते हैं, चाहे वे विशेषण कृत्प्रत्ययों द्वारा बने हों, चाहे सर्वनाम द्वारा बने हों अथवा साधारण हों। जैसे—'गच्छन्ती नारी, का तृप्तिः, तत् सुखम्, शोभनानि गृहाणि (सुन्दर गृह), शोभनेभ्यो गृहेभ्यः (सुन्दर घरों से), शोभनाभ्यो वापीभ्यः (सुन्दर बावड़ियों से), हरिं पश्यन् मुच्यते'—इत्यादि। संस्कृत में विशेषणों के रूप सदा कारक, लिंग और वचन के कारण विशेष्य (संज्ञा) की भाँति ही परिवर्तित होते रहते हैं।

विशेष—संख्या-वाचक विशेषणों में साधारण विशेषणों से भिन्नता रहती है। उनके प्रयोग के विशेष नियम हैं, जिनके लिए व्याकरण के ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं।

१९—समानाधिकरण अथवा बहुव्रीहि समास में विशेषण अपने मौलिक और अपरिवर्तित रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे—'कृष्णमृगः (काला मृग), रक्तनेत्रा (लाल नेत्र वाली), रूपवद्भार्या (रूपवती पत्नी), गृहीतधनुः (धनुष ग्रहण किये हुआ), 'अन्यसंक्रान्तहृदयो नरः' (दूसरी स्त्री में आसक्त पुरुष)।

(अ) इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं। जब स्त्रीलिंग विशेषण कोई नाम या संज्ञा हो अथवा पूर्ण बोधक संख्या-वाचक स्त्रीलिंग विशेषण समास का पूर्व भाग हो अथवा समास का पूर्वपद किसी जाति (वर्ग) विशेष का बोधक हो, तब स्त्रीलिंग सूचक प्रत्यय का लोप नहीं होता, अपने रूप में उसी प्रकार स्थिर रहता है; जैसे—'दत्ताभार्यः, पंचमी-भार्यः, शूद्राभार्यः, सुकेशीभार्यः, स्रौघ्नीभार्यः' इत्यादि। इसका विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए पाणिनीय के सूत्र ६।३।३४-४१ सूत्रों पर सिद्धान्त कौमुदी की वृत्ति बहुव्रीहि प्रकरण में देखिए।

२०—जब कृत्प्रत्ययों द्वारा सिद्ध विशेषण विधेय के रूप में प्रयुक्त होते हैं और विधेय के रूप में प्रयुक्त समानाधिकरणी संज्ञा उद्देश्य के बाद आये तब कृत्प्रत्ययों द्वारा सिद्ध विशेषण उद्देश्य के अनुसार होता है (११वाँ अनुच्छेद देखिए)। जैसे—'मालविका उपायनं प्रेषिता' (मालविका० १) —मालविका उपहार के रूप में भेजी गयी।

२१—जब एक ही विशेषण दो या दो से अधिक विशेष्यों की विशेषता प्रकट करता है तब विशेषण का वचन विशेष्यों के संयुक्त वचन के अनुसार होता है। जहाँ तक लिंग का सम्बन्ध है, जब विशेष्य पुंल्लिंग और स्त्रीलिंग है तब विशेषण पुंल्लिंग होगा, परन्तु यदि विशेष्यों में पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग तीनों हैं तो विशेषण नपुंसकलिंग में होगा। जैसे—'पक्षपातिनावनयोरहं देवी च' (मालविका० १)—मैं और देवी इन दोनों के पक्षपाती हैं। 'तस्मिन् सत्यं धृतिर्ज्ञानं तपः शौचं दमः शमः। ध्रुवाणि पुरुषव्याघ्रे लोकपालसमे नृपे' (महाभारत ३।५८।१०) —लोकपालों के समान और पुरुषों में श्रेष्ठ उस राजा में सत्य, धैर्य, ज्ञान, तप, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह और शान्ति दृढ़ता से (विद्यमान) हैं।

विशेष—यह नियम पाणिनीय सूत्र १।२।७२ 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्' में निहित सिद्धान्त पर आधारित है, जिस पर यह एक वार्तिक है—'त्यदादितः

शेषे पुंनपुंसकतो लिङ्गवचनानि'— 'सा च देवदत्तदश्च तौ; तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च तानि; तच्चदेवदत्तश्च ते'।

लैटिन भाषा में भी इसी प्रकार देखा जाता है—'Pater mihi et mater mortui sunt'—मेरे पिता और माता मर गये।

२२—संस्कृत में विशेषण प्रायः निकटतम विशेष्य के अनुसार होता है। जैसे—'यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च' (उत्तर० १)—जिसके पराक्रम से हम और तीनों लोक सुखी हैं। (भुवनानि कृतीनि)—वयं के निकट होने से 'कृतिनः' हुआ भुवनानि के समीप होने से कृतीनि हुआ। 'कामश्च जृंभितगुणो नवयौवनं च' (मालविका० १)—कामदेव ने अपनी शक्ति प्रदर्शित की और नवयौवन ने भी। यहाँ "लिंगविपरिणाम" के नियम को समझे रहना चाहिए। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विशेषण का लिंग प्रयुक्त दूसरे विशेष्य के अनुसार समझ लेना चाहिए।

सम्बन्धी और सम्बन्धवान् का अन्वय

२३—संस्कृत में सम्बन्धवाचक सर्वनाम और उसके सम्बन्धी के सम्बन्ध में कोई विशेष विलक्षणताएँ नहीं हैं। सम्बन्धवाचक सर्वनाम के लिंग, वचन और पुरुष उसके सम्बन्धी के अनुसार होते हैं और उसके कारक का निश्चय उसी के उपवाक्य के सम्बन्ध द्वारा होता है। संस्कृत में अन्य सर्वनामों की भाँति सम्बन्धवाचक सर्वनाम अकेला भी प्रयुक्त होता है अथवा विशेषण के रूप में भी आ सकता है। साधारणतया सम्बन्धवाचक सर्वनाम उस संज्ञा के पहिले ही प्रयुक्त होता है, जिसके साथ उपवाक्य में उसका सम्बन्ध रहता है। अथवा वह अकेला ही प्रयुक्त हो सकता है और उससे सम्बन्धित संज्ञा संकेतवाचक सर्वनाम के साथ प्रयुक्त हो सकती है। कभी-कभी सम्बन्धवाचक

से सम्बन्धित संज्ञा बिलकुल प्रकट ही नहीं होती। 'अन्तर्यो मृग्यते स स्थाणुर्वो निःश्रेयसायास्तु' (विक्रमो० १)-वे शंकर जो अन्तःकरण में खोजे जाते हैं तुम लोगों को दैवी सुख प्रदान करें। 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' (पञ्चतन्त्र १।६)—जिसके पास बुद्धि है उसके पास बल है (ज्ञान ही शक्ति है)। 'धिगस्मान् सर्वान्ये एकाकिना बटुना सह युध्यामहे'—हम सब को धिक्कार है जो अकेले ब्रह्मचारी बालक से युद्ध कर रहे हैं।

२४—जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम का विधेय कोई ऐसा विशेष्य पद होता है जिसका लिंग उसके सम्बन्धी के लिंग से भिन्न होता है, तब सम्बन्धवाचकसर्वनाम सामान्यतया विधेय के अनुसार होता है। जैसे—'शैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य' (रघु० ५।५४)—जो शीतलता है वह जल का प्राकृतिक धर्म (गुण) है। उसी प्रकार—'मातुस्तु यौतकं यत् स्यात् कुमारीभाग एव सः' (मनु ० ६।१३१)।

विशेष—इन उदाहरणों से ज्ञात होगा कि सम्बन्धवाचक सर्वनाम का लिंग उस विशेष्य (संज्ञा) के अनुसार होता है, जिसकी वह विशेषता बताता है। परन्तु पाणिनि ने "कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्" (अष्टाध्यायी १।४।३२) में 'स सम्प्रदानम्' का प्रयोग किया है, 'तत् सम्प्रदानम्' का नहीं।

२५—जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम सम्पूर्ण वाक्य का बोधक होता है, जिसे अँग्रेजी में 'that' द्वारा व्यक्त किया जाता है, तब सदा वह नपुंसकलिंग एकवचन में ही प्रयुक्त होता है। जैसे—'ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद्विजयन्ते द्विषतो यदस्य पक्ष्याः' (विक्रमो० १)—क्या वास्तव में यह इन्द्र का ही पराक्रम नहीं है कि उनके पक्ष के लोग अपने शत्रुओं को परास्त कर देते हैं? 'मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका। नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः' (मालविका ०१)—लेकिन मेरे नेत्रों की ज्योत्स्ना वह स्त्री मेरे दृष्टिपथ में आयी—यह मेरे सम्पूर्ण जीवन का एकमात्र सर्वश्रेष्ठ महोत्सव है।

ऐसे उदाहरणों में प्रधान उपवाक्य में संकेत-वाचक सर्वनाम का लिंग वही होता है जो सम्बन्धी विशेष्य (महोत्सवः) का, यत् नपुंसक लिंग है इसलिए वह भी नपुंसक लिंग हो ऐसा न होगा।

अभ्यास

१—तथैव देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यातः।
(उत्तर० २)

२—यदेते चन्द्रसरोरक्षकास्त्वया निःसारितास्तदनुचितं कृतम्। (हितो० ३)

३—यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः।
अकुलीनः कुलीनो वा स श्रियो भाजनं नरः॥
(पंचतंत्र १।८)

४—कृताः शरव्यं हरिणा तवासुराः
शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्॥ (शाकुन्तल० ६)

५—स सुहृद् व्यसने यः स्यात् स पुत्रो यस्तुभक्तिमान्।
स भृत्यो यो विधेयज्ञः सा भार्या यत्र निर्वृतिः॥
(पंचतंत्र १।१५)

६—पाण्डवाश्च महात्मानो द्रौपदी च यशस्विनी।
कृतोपवासाः कौरव्य प्रययुः प्राङ्मुखास्ततः॥
(महाभारत १७।१।२९)

७—धर्मः कामश्च दर्पश्च हर्षः क्रोधः सुखं वयः।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते न संशयः॥
(रामायण ६।६२।३७)

८—उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा
यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी
ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ॥ (रघु० ३।२३)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—धन्या सा याऽर्यपुत्रेण बहु मन्यते या चार्यपुत्रं विनोदयन्त्याशानिबन्धनं जाता जीवलोकस्य । (उत्तर० ३)

२—सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता ।
यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः ॥ (उत्तर० ३।१५)

३—न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः ।
नाहं न जनको नाग्निर्नानुवृत्तिर्न सन्ततिः ॥ (उत्तर०७।५)

४—यं ब्राह्मणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते ।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयुज्यते ॥ (उत्तर०१।२)

५—चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्द्धानो रणे हताः ॥ (उत्तर०२।१५)

६—रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी ।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥ (हितो०१)

७—मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः ।
पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम् ॥
ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला-
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ॥ (हितो०१)

८—यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः ॥ (हितो० १)

६—हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं,
व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ।
संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां,
यामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ॥ (भर्तृ० ३।१०)

१०—महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः ।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥ (रघु० १०।३२)

११—यस्मिन् सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे ।
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ॥ (महाभारत ६।६।२६)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—इस नगर में बहुत से सज्जन हैं, परन्तु कुछ दुःशील, दुष्ट और संकीर्ण विचारयुक्त व्यक्ति उनसे घृणा करते हैं ।

२—पाटलिपुत्र के राजा और उनकी रानी दोनों बहुत उदार हैं ।

३—मैंने कल तीन सुन्दर सरोवर, छः गहरे कूप और छप्पन विशाल बाग देखे ।

४—जो अपने दोषों को छिपाने के लिए झूठ बोलता है, वह दो अपराध करता है ।

५—जो तुम ऐसा कहना चाहते हो वह निश्चित ही आश्चर्यजनक है ।

६—मनुष्य को सर्वदा सदाचारी होना चाहिए—ऐसा नवीन और प्राचीन सभी दार्शनिकों का मत है ।

७—ये मीठे आम मेरे छोटे भाई द्वारा उपहार के रूप में भेजे गये हैं। (कृदन्त विशेषण का प्रयोग कीजिए)

८—दुष्ट व्यक्तियों का सदाचारियों के प्रति घृणा करना उनका जन्मजात स्वभाव है।

९—वे लोग जो प्रत्युत्पन्नमति हैं, कठिनाइयों को पार कर सकते हैं।

१०—इस घटना के कारण मैं उनकी स्पर्धा का प्रयोजन बना। (जन् धातु द्वारा सिद्ध विशेषण का प्रयोग कीजिए)

११—सहनशीलता, अध्यवसाय और ईमानदारी सदा स्तुत्य हैं, परन्तु अविवेक, आलस्य और अविश्वास हेय हैं।

———

भाग २

कारक

पाठ ३

कर्म कारक (द्वितीया)

अब हम वाक्यों में शब्दों के व्याकरणात्मक संगठन के द्वितीय सामान्य सिद्धान्त—'कारक'—का विवेचन करेंगे। 'कारक' शब्द की उस शक्ति को कहते हैं जो संज्ञा अथवा सर्वनाम पदों का वाक्य में संनियमन करती है। इस भाग के पाठों में इसी शक्ति का विस्तार पूर्वक वर्णन किया जायेगा।

वाक्य में संज्ञा और क्रिया के (सम्बन्ध) को 'कारक' कहते हैं। (वाक्य में) शब्दों का परस्पर सम्बन्ध होते हुये भी यदि इनका क्रिया के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं रहता तो उन्हें 'कारक' नहीं कहते। संस्कृत में छः कारक होते हैं—१कर्त्ता २-कर्म-३-करण-४-सम्प्रदान-५-अपादान और ६-अधिकरण। (हिन्दी में आठ कारक कहे जाते हैं—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, और सम्बोधन। इनमें से सम्बोधन वस्तुतः कर्त्ता कारक की परिस्थिति में रहता है, उसमें प्रथमा विभक्तियाँ ही लगती हैं, अतः उसे अलग कारक समझना ठीक नहीं। रही सम्बन्ध कारक की बात, उसे भी कारक इसलिए नहीं कहा जाता कि उसका सम्बन्ध क्रिया से नहीं रहता। क्रिया से जिन संज्ञापदों का सम्बन्ध रहता है, उन्हीं को कारक कहते हैं। इसीलिए 'सम्बन्ध' और 'सम्बोधन' को इस संस्कृत की सूची में स्थान नहीं दिया गया है)। प्रधानतया 'कर्त्ता' का भाव 'सहायक' से है, जिसका अर्थ होता है 'प्रतिनिधि'। (क्रिया के सम्पादन में 'कर्त्ता' प्रधान रूपसे प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि वह उसके

करने में प्रधान रूप से सहायक होता है। यद्यपि सहायक 'करण' कारक भी होता है परन्तु क्रिया के सम्पादन में प्रधानता 'कर्त्ता' की ही होती है।) अन्य भाषाओं की भाँति संस्कृत में भी प्रथमा विभक्ति केवल 'नाम' की ओर संकेत करती है, जिसका सम्बन्ध केवल 'अभिधान' मात्र से है। पाणिनि के सूत्र २।३।४६। (प्रातिपदिकार्थ-लिंग-परिमाण वचन मात्रे प्रथमा) के अनुसार प्रथमा का प्रयोग केवल किसी शब्द के मूलरूप (विभक्ति प्रत्यय रहित), लिंग, तौल और वचन को व्यक्त करने के लिए ही होता है। जैसे—नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानं, तटः, तटी, तटम्, द्रोणो व्रीहिः, एकः, द्वौ, बहवः आदि।

नोट—संस्कृत में बहुत से अव्ययपदों के योग में कारक पदों का प्रयोग होता है; ऐसी दशा में उन्हें उपपद विभक्ति कहते हैं। उपपद विभक्ति का तात्पर्य है अव्ययों द्वारा सम्बद्ध विभक्ति। उपपद विभक्तियाँ कारक विभक्तियों से भिन्न हैं। कारक विभक्ति से तात्पर्य है संज्ञा या सर्वनाम पदों का क्रिया से सीधा सम्बन्ध। उपपद विभक्ति का उदाहरण जैसे—नमो नृसिंहाय, मामन्तरा, ग्रामादुत्तरं इत्यादि। जहाँ दोनों विभक्तियाँ (उपपद और कारक) सम्भव हैं वहाँ उपपद विभक्ति की अपेक्षा कारक विभक्ति का ही प्रयोग होता है। (उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी)—उपपद विभक्ति की अपेक्षा कारक विभक्ति बलवती होती है।

२८—जिस किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के ऊपर क्रिया का फल आश्रित रहता है, वह उस क्रिया का कर्म कहलाता है। कर्मवाच्य के अतिरिक्त शेष सभी दशाओं में कर्म को द्वितीया विभक्ति में रखते हैं। जैसे—'स हरिमपश्यत्'—उसने हरि को देखा। 'ओदनं बभुक्षुर्विषं भुंक्ते' (सिद्धान्त कौमुदी)—भात खाने की इच्छा करता हुआ विष खाता है। यहाँ 'हरि' और 'विष' क्रमानुसार 'अपश्यत्' और 'भुंक्ते' क्रिया के कर्म हैं। परन्तु 'हरिः सेव्यते' में कर्म वाच्य की क्रिया 'सेव्यते' द्वारा क्रिया और कर्म का वही सम्बन्ध व्यक्त है जो 'हरि' और 'सेव' के बीच में है; इसीलिए 'हरि' को द्वितीया विभक्ति में रखने की आवश्यकता नहीं हुई। परन्तु 'हरिं सेवते' में 'सेवते' कर्म

वाच्य की क्रिया नहीं है, इसलिए संज्ञा पद 'हरि' को द्वितीया विभक्ति में रक्खा गया है।

२९—नाम रखना, चुनना, बनाना, नियुक्त करना, पुकारना, जानना, विचार करना इत्यादि और इनके अर्थों का बोध कराने वाली क्रियाओं के दो कर्म होते हैं, जिनमें से एक प्रधान कर्म होता है और दूसरा गौण। जैसे— 'त्वामामनन्ति प्रकृतिं' (कुमार० २।१३)—तुम्हें वे प्रकृति समझते हैं। 'कामपि गणिकां अवरोधमकरोत्' (दशकु० २।६)—किसी वेश्या को अपनी पत्नी बना लिया। 'जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं' (मेघदूत-६५)—मैं तुम्हें प्रधान व्यक्ति मानता हूँ।

३०—सभी गत्यर्थक धातुओं के योग में द्वितीया होती है। जैसे— 'गतोऽहं कामदेवायतनम्, (मालती० १)—मैं कामदेव के मन्दिर में गया। 'अहमपि महीमटन्' (दशकु० २-२)—मैं भी पृथ्वी पर घूमता हुआ। 'यमुना कच्छमवतीर्णः' (पंचतंत्र १।१)—यमुना के किनारे गया। इसी प्रकार 'विचचार दावं' (रघु० २।८)—जंगल में विचरण किया। परन्तु जहाँ वास्तविक गति का द्योतन न होकर केवल कल्पना के रूप में ही उसका आभास होता है, वहाँ गति की अभिव्यक्ति केवल अनेक मुहावरों द्वारा ही होती है। जैसे—'परंविषादमगच्छत्' (पंचतंत्र१।१) परम विषाद को प्राप्त हुआ। 'अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते' (वेणी०३)—क्या अश्वत्थामा तुम्हारी स्मृति में नहीं आया ? 'पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम' (कुमार १। २६)—वह सुमुखी पीछे से उमा नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी प्रकार 'नरपति-हितकर्त्ता द्वेष्यतां याति लोके' (पंचतंत्र १।२), 'न तृप्तिमाययौ' (रघु० ३।३)।

(अ) सामान्यतया सोपसर्ग अकर्मक धातुओं का प्रयोग अर्थ की दृष्टि से सकर्मक के रूप में होता है और तब उनके योग में द्वितीया होती है। जैसे—'वृत्' = होना; अनुवृत् = किसी के अनुसार कार्य करना अथवा अनु-

सरण करना। जैसे—'प्रभुच्चित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते' (शिशुपाल० १५।४१)—वास्तव में प्रजा अपने राजा की इच्छा का ही अनुसरण करती है। 'अचल तुंगशिखरमारुरोह' (कादम्बरी १२०)—पर्वत की ऊँची चोटी पर चढ़ गया। इसी प्रकार "यन्तागजस्याभ्यपतद् गजस्थम्' (रघु० ७।३७) 'नोत्पतति वा दिवम्' (कादम्बरी १३२) 'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति (उत्तर० १)।

३१—[1]'अधि' उपसर्ग पूर्वक 'शीङ्' (सोना), 'स्था' (खड़ा होना) और आस् (बैठना) धातुओं के योग में आधार वाचक शब्द में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—'चन्द्रापीडो मुक्ताशिलापट्टमधिशिश्ये' (कादम्बरी २०६)—चन्द्रापीड मुक्ताशिलापट्ट पर सो गया। 'अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ' (रघु०-६।७३)—इन्द्र के अर्धासन पर बैठता था। 'अध्यास्य पर्णशालां' (रघु०-१।६५)—पर्णशाला में बैठकर।

(अ)[2]'अभि' और 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'विश्' धातु के योग में आधार को कर्मकारक होता है। जैसे—'अभिनिविशते सन्मार्गम्' (सिद्धान्त कौमुदी)—वह सन्मार्ग का अनुसरण करता है। इसी प्रकार 'भयं तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनं।' (मुद्रा ० ५)

३२—[3] उप, अनु, अधि अथवा आ उपसर्गपूर्वक 'वस्' (निवास करना) धातु के योग में निवासस्थान को कर्म कारक होता है। जैसे—'उप-अनु-आ-अधि-वसति वैकुण्ठं हरिः' (सिद्धान्त कौमुदी)—हरि वैकुण्ठ में निवास करते हैं।

३३—[4]उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः और अध्यधि के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता हैं। जैसे :—'उभयतः कृष्णं गोपाः'

१—अधिशीङ्स्थासां कर्म (१।४।४६)

२—अभिनिविशश्च (१।४।४७)

३—उपान्वध्याङ्वसः (१।४।४८)

४—उभ सर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाम्रे डितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते—वार्तिक—(सिद्धान्त कौमुदी)

(सिद्धान्त कौमुदी)—कृष्ण के दोनों ओर गोप हैं। 'सर्वतः कृष्णम्'—कृष्ण के सब ओर। 'उपर्युपरि लोकं हरिः'—हरि ठीक संसार के ऊपर हैं। 'अधोऽधो लोकं'—ठीक संसार के नीचे। 'धिग्जाल्मान्'—(उत्तर० ५)—धूर्तों को धिक्कार है। 'न मे संशीतिरस्या दिव्यतां प्रति' (कादम्बरी १३२)—उस (स्त्री) की दिव्यता में मुझे कुछ भी संदेह नहीं है। इसी प्रकार 'बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्'—(महाभाष्य)। जब सन्निकटता नहीं सूचित होती तब षष्ठी का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे—'उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा'—(महाभाष्य)—सूर्य की भाँति अपनी कान्ति के कारण सबसे ऊपर।

(अ) कभी-कभी धिक के योग में प्रथमा विभक्ति अथवा सम्बोधन का प्रयोग होता है। जैसे—'धिङ् मूढ'—हे मूर्ख (तुम्हें) धिक्कार है। धिगियं दरिद्रता—(पंचतंत्र २)—इस दरिद्रता को धिक्कार है।

३४—[1] अभितः (चारों ओर), परितः (चारों ओर), समया (सन्निकट), निकषा (सन्निकट), हा (शोक या धिक्कार है या दुःख है), प्रति (ओर) के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—'परिजनो राजानमभितः स्थितः' (मालविका०१)—सेवक राजा के चारों ओर खड़े हो गये। 'रक्षांसि वेदीं परितो निरास्थत्' (भट्टि०१।१२)—वेदी के चारों ओर के राक्षसों को विनष्ट कर दिया। 'ग्रामं समया निकषा वा' (सिद्धान्त कौमुदी)—गाँव के पास। इसी प्रकार 'निकषा सौधभित्तिम्' (दशकु०), 'पयोधिं विलंघ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति' (शिशु० १।६८), 'हा कृष्णाभक्तम्' (शिशु०)—जो कृष्ण का भक्त नहीं है उसको धिक्कार है। कभी-कभी 'हा' के योग में सम्बोधन का भी प्रयोग होता है। जैसे—'हा भगवत्यरुन्धति' (उत्तर० १)—हाय भगवती अरुन्धती!

३५—[2] अन्तरेण (जिसका अर्थ—'विना', 'छोड़कर', 'सन्दर्भ से', 'विषय में'—होता है) के योग में कर्म कारक होता है। जैसे—'कोऽन्यस्त्वामन्तरेण

१—अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि (वार्तिक)

२—अन्तरान्तरेण युक्ते (२।३।४)

शक्तः प्रतिकर्त्तुं' (वेणी० ३)—तुमको छोड़कर दूसरा कौन प्रतिशोध के लिए समर्थ है ? 'भवन्तमन्तरेण कीदृशोऽस्या दृष्टिरागः, (शाकुन्तल० २)—आपके विषय में उसका दृष्टि-प्रेम कैसा है ?

(अ) इसी प्रकार अन्तरा (बीच में) भी; जैसे—'अंतरा त्वां च मां च कमण्डलुः' (महाभाष्य) । 'पांचालास्तव पश्चिमेन त इमे वामा गिरां भाजनास्त्वद्दृष्टेरतिथीभवन्तु यमुनां त्रिस्रोतसां चान्तरा' (बालरामायण १०) ।

३६—[1] समय-प्रसार तथा दूरी-प्रसार सूचक अत्यन्त संयोग में काल वाचक और मार्ग वाचक शब्दों के योग में द्वितीया होती है । जैसे—'न ववर्ष वर्षाणि द्वादश दशशताक्षः' (दशकु० २।६) सहस्राक्ष इन्द्र ने बारह वर्ष तक वर्षा नहीं की । 'क्रोशं कुटिला नदी' (सिद्धान्त कौमुदी)—कोस भर नदी टेढ़ी है । 'सभावैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता' (महाभारत २।१०।१) – हे राजन् ! विश्रवण की सभा सौ योजन विस्तृत है ।

३७—कभी-कभी अनु (पश्चात्, परिणाम-स्वरूप, किसी के द्वारा सूचित की जाती हुई, उसी मेल की, अथवा अनुकरण की हुई अर्थ में) के योग में द्वितीया होती है । जैसे—'जपमनु प्रावर्षत्' (सिद्धान्त कौमुदी)—जप के पश्चात् वर्षा हुई । 'सर्वं मामनु ते' (विक्रमो० ४)—तुम्हारी सब कुछ मेरे अनुरूप है ।

विशेष—पाणिनि ने अभि (पहिले, अतिनिकट, में), उप (निकट, घटिया), अति (बढ़िया) और अनु (बगल में, साथ-साथ, घटिया) को ऐसे उपसर्गों में परिगणित किया है, जिनका प्रयोग बिना क्रिया के योग के अर्थात् स्वतः होता है और इनके योग में द्वितीया आती है । (पाणिनि सूत्र १।४। ८४-८५,८६-८७,९० से ९५ को देखिए) जैसे—हरिमभिवर्तते, भक्तो हरिमभि, उप हरिं सुराः, अति देवान् कृष्णः, नदीमन्ववसिता सेना, अनु हरिं सुराः

१—कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे (२।३।५)

इत्यादि (सिद्धान्त कौमुदी)। ऐसे उपसर्ग, जिनका स्वतंत्र रूप में प्रयोग होता है और कभी-कभी संज्ञा के साथ संलग्न होते हैं, कर्मप्रवचनीय कहलाते हैं।

अभ्यास

१—धारिणीभूतधारिण्योर्भव भर्त्ता शरच्छतम्। (मालविका० १)

२—बिन्दूत्क्षेपान् पिपासुः परिपतति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रम्। (मालविका० २)

३—मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति। (शाकुन्तल० १)

४—एषा मे मनोरथप्रियतमा सुकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते। (शाकुन्तल० ३)

५—सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते। (शाकुन्तल० ३)

६—स राजर्षिरिमानि दिवसानि प्रजागरकृशो लक्ष्यते। (शाकुन्तल० ३)

७—धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम्। (शाकुन्तल० ६)

८—धिगिमां देहभृतामसारताम्। (रघु० ८।५१)

९—इष्टान्देशान्विचर जलद प्रावृषा संभृतश्रीः। (मेघदूत ११८)

१०—कृतकार्यमिदं दुर्गं वनं व्यालनिषेवितम्।
यदध्यास्ते महाराजो रामः शस्त्रभृतां वरः॥
(रामायण २।९८।१३)

११—धिक् प्रहसनम्। अयमृष्यश्रृङ्गाश्रमादरुन्धतीपुरस्कृतान् महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वसिष्ठः प्राप्तः। तत्किमेवं प्रलपसि। (उत्तर० ४)

१२—तत्र च निखिलधरणितलपर्यटनखिन्नस्य निजबलस्य विश्राम-हेतोः कतिपयान् दिवसानतिष्ठत्। (कादम्बरी ११९)

१३—अस्यां वेलायां किं नु खलु मामन्तरेण चिन्तयति वैशम्पायन इति चिन्तयन्नेव स निद्रां ययौ। (कादम्बरी १७८)

१४—अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिन्द्वतः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु।
(शाकुन्तल० ४)

१५—शक्रस्य दिव्य सभा—
विस्तीर्णा योजनशतं शतमध्यर्द्धमायता।
वैहायसी कामगमा पंचयोजनमुच्छ्रिता॥
(महाभारत २।७।३)

१६—रम्यां रघुपतिनिधिः स नवोपकार्यां।
बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास॥ (रघु० ५।६३)

१७—तस्यपुत्रो महातेजाः संप्रत्येष पुरीमिमाम्।
आवसत्परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः॥ (रामायण २।४७।७)

१८—क्रमेणसुप्तामनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत्।
(रघु० २।२४)

अभ्यास के लिये अतिरिक्त वाक्य

१—सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तदस्या देवीं वसुमतीमन्तरेण महदुपालम्भनं गतोऽस्मि। (शाकुन्तल० ५)

२—कथय कथमियन्तं कालंमवस्थिता मया विनाभवती। (विक्रमो० ४)

३—भाव प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लंकासमरसुहृदो महात्मानः प्लवंगराक्षसाः नानादिगंतागता ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च येषामाराधनायेयतो दिवसानुत्सव आसीत् (उत्तर० १)।

४—विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम्।
(कुमार० ५।८१)

५—धिग्विधातारमसदृशसंयोगकारिणम् (कादम्बरी० १२)।

६—आर्य, आर्य, प्रणिपत्य देवश्चन्द्रगुप्तो विज्ञापयति क्रियान्तरान्तरायमन्तरेणार्थं द्रष्टुमिच्छामीति (मुद्रा० ३)।

७—मन्दोप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः।
पंकच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः ॥ (मालविका० २)।

८—भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहम् (मेघदूत १०२)।

९—अथाधिशिश्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम् (रघु० ५।२८)।

१०—मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्यापरिवारशोभि।
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा (रघु० ६।१०) ॥

११—अभिन्यविक्षथास्त्वं मे यथैवाव्याहतं मनः।
तवाप्यध्यावसन्तं मां मा रौत्सीहृदयं तथा (भट्टि० ८।८०) ॥

१२—अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे।
आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः (पंचतंत्र १।४) ॥

१३—हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः। एतत् तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृतम् (उत्तर० १)।

१४—यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।
एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ॥ (उत्तर० ३)

१५—को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा
यं देशं श्रयते तदेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्।

यत् दंष्ट्रा नखलांगुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ।। (हितो० १)

१६—धिक् सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं
धिग्भूपतीन् विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।
केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः ।।
(वेणी० ३)

१७—जलानि सा तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम् ।
(रघु० १३ । ६१)

१८—प्रमदामनु संस्थितः शुचा नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात् ।
न चकार शरीरमग्निसात् सह देव्या न तु जीविताशया ।।
(रघु० ८ । ७२) ।

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१—पत्नी को सदा अपने पति की इच्छाओं का अनुगमन करना चाहिए ।

२—यह एक दूसरा व्यक्ति किसी दूसरे कार्य के विषय में हम लोगों की सेवा करने आ रहा है ।

३—जब उस लड़की से अत्यधिक अनुरोध किया गया, तब उसने तुम्हारी अशिष्टता से उस स्त्री को अवगत करा दिया ।

४—पुष्पपुर नगर के चारों ओर एक सुन्दर बाग है ।

५—हाय मेरा दुर्भाग्य ! सुना जाता है कि मेरा एकमात्र पुत्र भी मर गया ।

६—उसने तीन वर्ष पचहत्तर दिन तक न्याय का अध्ययन किया और अब वह उसमें निपुण हो गया ।

७—अवन्ती के चारों ओर दो मील तक रमणीक उद्यान दिखाई पड़ते हैं ।

८—क्या वह अभी तक चेतना में नहीं आई ? मेरा विश्वास है कि बिना उत्कृष्टतर उपचार के यह असम्भव है ।

९—मणिपुर के लोग मेरे पूर्व-साहसिक कार्यों के विषय में क्या सोचेंगे ?
१०—हम लोगों को यह उचित जान पड़ता है कि अब हम लोग अपने विवाद-ग्रस्त विषय की ओर पुनः ध्यान दें।
११—जो लोग बिना अपने किसी स्वार्थ के दूसरों को तंग करना चाहते हैं, उन्हें धिक्कार है।
१२—जो लोग अधर्म-पथ का अनुसरण करते हैं, उनके ऊपर विपत्ति पड़े।
१३—राम ने चित्रकूट पर्वत पर कुछ दिन निवास किया। (अधि + वस्)
१४—सेवक ने रानी से निवेदन किया कि महाराज क्रीड़ा-शैल पर बैठे हैं और आपको अविलम्ब बुलाया है (अधि + आस्)।
१५—जब वह फिर चेतना में आई तब उसने अपने मृत भाई के शव को जला दिया और उसके बाद सारी रात एक चटाई पर सोई रही। (अधि + शी)
१६—वह गाय अब पाताल में रहती है, जिसके द्वार बड़े-बड़े साँपों से रक्षित हैं।
१७—आम्रमंजरियों के बिना वसन्त सुहावना नहीं लगता।
१८—उस युवा साधु के प्रस्थान के पश्चात् आपने मुझसे क्या कहा, मुझे स्मरण नहीं।
१९—क्या तुम लोग यह कहते हो कि हमारे सम्राट् के अतिरिक्त कोई क्षत्रिय नहीं है ? धूर्तों, तुम सब को धिक्कार है। यह मैं तुम लोगों के झंडे को ले चला, यदि समर्थ हो तो बचाओ।



पाठ ४

द्विकर्मक धातुएँ

३८—संस्कृत में कुछ ऐसी क्रियाएँ हैं, जिनके प्रधान कर्म के अतिरिक्त एक और कर्म होता है, जिसे अकथित कर्म कहते हैं। जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात है कि 'अकथित कर्म' अर्थात् वह कर्म जो कथित न हो। जो अपादान, अधिकरण आदि कारकों द्वारा व्यक्त किया जाने योग्य हो, परन्तु बोलने वाला इन कारकों का प्रयोग नहीं चाहता। वह उसे कर्म कारक द्वारा व्यक्त करता है। इसीसे इस कर्म को वैकल्पिक कहते हैं। अकथित कर्म के रूप में प्रयुक्त होने वाली संज्ञा, यदि किसी अन्यकारक में व्यक्त न की जाने वाली हो तो द्विकर्मक धातुओं के योग में कर्म कारक में ही होती है। जैसे—"धेनुं दोग्धि पयः"—गाय से दूध दुहता है। 'व्रजमवरुणद्धि गाम्' —गाय को गोशाला में रोकता है। यहाँ पर 'धेनुं' और 'व्रज' अकथित अथवा वैकल्पिक कर्म हैं। यदि वक्ता इस कर्म को रखने की इच्छा नहीं रखता तो ये शब्द अपने स्वाभाविक कारक में रक्खे जायँगे। जैसे—'धेन्वाः (पंचमी) दोग्धि पयः', 'व्रजे अवरुणद्धि गाम्' (सप्तमी)।

३९.—द्विकर्म धातुओं का उल्लेख निम्नलिखित कारिका में किया गया है :—

'दुह्याच् पच् दण्ड् रुधिप्रच्छि चि ब्रू शासुजिमथमुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

दुह् (दुहना), याच् (माँगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना,) रुध् (रूँधना), प्रच्छ् (पूछना), चि (चुनना), ब्रू (बोलना),

शास् (शासन करना), जि (जीतना), मन्थ (मथना) मुष् (चुराना) और नी (लेजाना), हृ (हरण करना), कृष् (खींचना) वह (ढोना, ले जाना) तथा इन धातुओं की समानार्थक अन्य धातुओं के योग में सामान्य कर्म के अतिरिक्त अन्य संज्ञापद, जिनपर क्रिया का प्रभाव पड़ता है, कर्म कारक में रक्खे जाते हैं। जैसे—'गां दोग्धि पयः' (सिद्धान्त-कौमुदी)—गाय से दूध दुहता है। 'बलिं याचते वसुधां' (वही)—बलि से भूमि माँगता है। इसी प्रकार 'तण्डुलानोदनं पचति, गर्गान् शतं दण्डयति, व्रजमवरुणद्धि गाम्, माणवकं पन्थानं पृच्छति, वृक्षमवचिनोति फलानि, माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा, शतं जयति देवदत्तम्, सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति, देवदत्तं शतं मुष्णाति, ग्राममजां नयति-हरति-कर्षति-वहति वा'। अन्य समानार्थक धातुओं के उदाहरण—माणवकं धर्मं भाषते वक्ति वा, बलिं वसुधां भिक्षते, तां त्वां संवरणस्यार्थे वरयामि विभावसो (महाभारत १-१७१-२१)। ये अकथित कर्म के उदाहरण हैं, क्योंकि 'भाष्' अथवा 'वच्' और 'भिक्ष' अथवा 'वृ' धातुओं का वही अर्थ है जो उपर्युक्त कारिका में लिखित 'ब्रू' और 'याच्' धातुओं का है।

विशेष—चि, मुष्, पच्, मन्थ, रुध्, जि, कृष्, हृ और वह धातुओं का उल्लेख यद्यपि उपर्युक्त सूची में किया गया है, परन्तु संस्कृत में इनका प्रयोग द्विकर्मक धातुओं के रूप में बहुत कम किया गया है।

४०—उपर्युक्त धातुएँ तथा अन्य समानार्थक धातुएँ द्विकर्मक होती हैं। उन दोनों कर्मों में से एक कर्म तो प्रधान होता है और दूसरा गौण। प्रथम बारह धातुओं, 'दुह्' से लेकर 'मुष्' तक के योग में जो पयः, वसुधां, फलानि, सुधां इत्यादि संज्ञाएँ प्रयुक्त हैं, वे प्रधान कर्म कारक की परिस्थिति में हैं और गां, बलिं, वृक्षं, क्षीरनिधिं इत्यादि संज्ञाएँ गौण कर्म के रूप में हैं, क्योंकि ये संज्ञाएँ प्रयोक्ता की इच्छा के अनुसार अन्य कारकों की परिस्थिति में भी रक्खी जा सकती हैं। अन्तिम चार धातुओं के योग में, 'अजां' प्रधान कर्म है और 'ग्रामं' गौण। तात्पर्य यह कि क्रिया का पूर्ण अर्थ व्यक्त

करने के लिए अनिवार्य रूप से जिस संज्ञापद का प्रयोग द्वितीया विभक्ति में किया जाता है, उसे प्रधान कर्म कहते हैं और जो प्रयोक्ता की इच्छा के अनुसार द्वितीया में रक्खा जाता है, उसे गौण कर्म कहते हैं।

४१—[1]ऊपर की कारिका में लिखित 'दुह्' से लेकर 'मुष्' तक बारह धातुओं के गौण कर्म और शेष अन्तिम चार (नी, हृ, कृष् और वह्) धातुओं के प्रधान कर्म, 'कर्म-वाच्य' की परिस्थिति में प्रथमा विभक्ति में रक्खे जाते हैं और शेष कर्म उसी प्रकार रहते हैं, जिस प्रकार कर्त्तृवाच्य में। उदाहरणार्थ—

कर्त्तृवाच्य	कर्म-वाच्य
१. स धेनुं पयो दोग्धि	१. तेन धेनुः (कर्त्ता) पयः (कर्म) दुह्यते
२. देवाः समुद्रं सुधां ममंथुः	२. देवैः समुद्रः सुधां ममंथे।
३. सोऽजां ग्रामं नयति, हरति, कर्षति, वहति वा	३. तेन अजा ग्रामं नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा।

अभ्यास

१—आज्ञप्तास्मि देव्या धारिण्या अचिरप्रवृत्तोपदेशं चलितं नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यगणदासं प्रष्टुम्। (मालविका० १)

२—ह्यस्तत्र भवतीरावती देवी सुखं प्रष्टुमागता। (मालविका० ४)

३—महाश्वेता कादम्बरीमनामयं पप्रच्छ। (कादम्बरी १९२)

१—गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नी हृ कृष्वहाम्। लादयोमताः॥
—(सिद्धान्त कौमुदी)

४—हिमालयं सर्वशैला वत्सं परिकल्प्य
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च ।
पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् । (कुमार० १।२)

५—संकल्पितार्थे विकृतात्मशक्तिमाखण्डलः काममिदं बभाषे ।
(कुमार० ३।११)

६—सोऽहं तृष्णातुरैर्वृष्टिं विद्युत्वानिव चातकैः ।
अरिविप्रकृतैर्देवैः प्रसूतिं प्रति याचितः ।। (कुमार० ६।२७)

७—किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम् ।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा ।।
(रघु० ५ । ३३)

८—तमरण्यसमाश्रयोन्मुखं शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः ।
पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः ।।
(रघु० ८ । १२)

९—अथ ज्येष्ठां सुराः सर्वे देवकार्यचिकीर्षया ।
शैलेन्द्रं वरयामासुर्गंगां त्रिपथगां नदीम् ।।
(रामायण १ । ३५ । १६)

———

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—तमातिथ्यक्रियाशान्तरथ-क्षोभ-परिश्रमम् ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः ।। (रघु० १ । ५८)

२—तं क्रमेण जन्मभूमिं जातिं विद्यां कलत्रमपत्यानि विभवं वयःप्रमाणं प्रव्रज्याकारणं च स्वयमेव पप्रच्छ चन्द्रापीडः । (कादम्बरी २२८)

३—कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये ।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥ (रघु० ११ । १)

४—तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता २ । १)

५—भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य
मार्गे कथंचिदवतार्य तनूभवन्तीम् ।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गङ्गां शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम् । (मुद्रा० ३)

६—तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुम्
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ (मेघ० १०४)

७—सोऽपृच्छल्लक्ष्मणं सीतां याचमानः शिवं सुरान् ।
रामं यथास्थितं सर्वं भ्राता ब्रूते स्म विह्वलः ॥
संदृश्य शरणं शून्यं भिक्षमाणो वनं प्रियाम् ॥
प्राणान्दुहन्निवात्मानं शोकं चित्तमवारुधत् ।
गता स्यादवचिन्वाना कुसुमान्याश्रमद्रुमान् ।
आ यत्र तापसान् धर्मं सुतीक्ष्णः शास्ति तत्र सा ॥ (भट्टि० ६ । ८-१०)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—मैंने उससे दश प्रश्न पूछा परन्तु उसने उनमें से एक का भी उत्तर नहीं दिया ।

२—भिखारी ने एक धनी व्यक्ति से, जो बहुत ही उदार कहा जाता था, पचास रुपये माँगे ।

३—राजा ने अपराधी को तीन सौ साठ रुपये का दण्ड दिया।

४—गुरु इन छात्रों को न्याय और व्याकरण के सिद्धान्तों को सिखाता है।

५—मन्त्री द्वारा राजा से सेवक के अपराध को क्षमा करने की प्रार्थना की गई।

६—वह मुझसे कहता है कि गोपाल ने अपनी गायें दुह ली हैं।

७—महोदय, मेरे द्वारा आप से आपका नाम और वंश पूछा गया था न कि यह कि आपके पास कितना धन है।

८—क्षीर-सागर से चौदह रत्न मथे गये थे।

९—गड़ेरिया सभी भेड़ों को बाजार ले गया और उन्हें बेंच दिया।

१०—कल गायें मेरी सबसे छोटी लड़की द्वारा दुही गई थीं।

११—देवता लोग ब्रह्मा के पास गये और उनसे तारकासुर से अपने मुक्तिदाता की याचना की (वृ)।



पाठ ५

प्रेरणार्थक क्रियाएँ

४२—"किसी धातु का प्रेरणार्थक रूप यह प्रतिष्ठित करता है कि कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी दूसरे व्यक्ति या पदार्थ से उस धातु द्वारा सूचित कार्य को कराता है।"—(डा० कीलहॉर्न का व्याकरण, अनुच्छेद ४१६)। जैसे—'गम्' (जाना), गच्छति (जाता है), गमयति (जाने के लिए कहता है)। 'अश्' (खाना), अश्नाति (खाता है), आशयति (खिलवाता है)।

४३—धातु की सामान्य दशा में जो कर्त्ता पद होता है वह प्रेरणार्थक में करण कारक की परिस्थिति में रक्खा जाता है और कर्म अपरिवर्तित रहता है। जैसे—

क्रिया की सामान्य दशा	प्रेरणार्थक दशा
१—देवदत्त ओदनं पचति (देवदत्त भात पकाता है)	(स) देवदत्तेन ओदनं पाचयति। (वह देवदत्त से भात पकवाता है)
२—रामो भार्यां त्यजति (राम स्त्री को त्यागते हैं)	२—(स) रामेण भार्यां त्याजयति (वह राम से उनकी स्त्री को छुड़वाता है)

४४—[1] ऐसी गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक अथवा भक्षणार्थक तथा इसी अर्थ को व्यक्त करने वाली अन्य धातुओं में, जिनका कर्म कोई 'शब्द' या 'साहित्यिक विषय' हो और अकर्मक धातुओं में, जो सामान्य दशा में कर्त्ता पद

१—गतिबुद्धि प्रत्यवसानार्थ शब्द कर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ।
(१।४।५२)

होता है, वह प्रेरणार्थक दशा में कर्म हो जाता है और कर्म अपरिवर्तित रहता है। जैसे—

सामान्य दशा में	प्रेरणार्थक दशा में
१—[1]शत्रवः स्वर्गमगच्छन्	१—शत्रून् स्वर्गमगयत्
२—स्वे वेदार्थमविदुः	२—स्वान् वेदार्थमवेदयत्
३—देवा अमृतमाश्नन्	३—देवानमृतमाशयत्
४—विधिर्वेदमध्यैत	४—विधिं वेदमध्यापयत्
५—पृथ्वी सलिले आस्त	५—पृथ्वीं सलिले आसयत्

परन्तु 'गमयति रामो गोविन्दं' में यदि कोई अन्य व्यक्ति (विष्णुमित्र) राम को ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है तब उसे इस प्रकार कहेंगे—'विष्णुमित्रो रामेण गोविन्दं गमयति'—विष्णुमित्र राम को प्रेरित करता है कि वह गोविन्द को जाने के लिए कहे। यहाँ 'राम' कर्म में नहीं रक्खा गया क्योंकि यह प्रेरणार्थक क्रिया का कर्त्ता है, न कि सामान्य क्रिया का।

नोट—'गतिबुद्धि' इत्यादि सूत्र में 'शब्द कर्म' की व्याख्या करते हुए महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में इतना और जोड़ा है—'शब्द-कर्म' की दो प्रकार से व्याख्या की जा सकती है, प्रथम 'शब्दो येषां क्रिया' अथवा द्वितीय 'शब्दो येषां कर्म'। जब प्रथम व्याख्या ली जाती है तो ह्वयति (ह्वे), क्रन्दति (क्रन्द) और शब्दायते (शब्द से सिद्ध नामधातु) क्रियाएँ उक्त नियम से निकल जाती हैं; जैसे— ह्वयति देवदत्तः—ह्वाययति देवदत्तेन। क्रन्दति-शब्दायते देवदत्तः-क्रन्दयति-शब्दाययति देवदत्तेन। और 'श्रु', वि पूर्वक 'ज्ञा' तथा उप पूर्वक, लभ्' धातुएँ उक्त नियम में आ जायेंगी।

१—ये सभी उदाहरण निम्नलिखित श्लोक में एक साथ दिखाये गये हैं—

शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम्।
आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्री हरिर्गतिः॥
—(सिद्धान्त कौमुदी)

जैसे—'श्रृणोति-विजानाति-उपलभते-देवदत्तः - श्रावयति-विज्ञापयति-उपलम्भयति-देवदत्तम् ।' दूसरी व्याख्या के ग्रहण करने पर 'जल्प्', आपूर्वक 'भाष्' और वि पूर्वक 'लप्' धातुएँ अवश्य इस नियम के अन्तर्गत आ जायेंगी। जल्पति -- विलपति--आभाषते देवदत्तः -- जल्पयति-विलापयति -- आभाषयति--देवदत्तम् ।

४५—इस पूर्व नियम के कुछ अपवाद और प्रत्यपवाद हैं जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं :—

(अ) [1]'नी' (मार्ग प्रदर्शन करना) और 'वह्' (ढोना) धातुओं के प्रेरणार्थक रूप में 'कर्म' का प्रयोग न होकर 'करण' का प्रयोग होता है। जैसे—

भृत्यो भारं नयति वहति वा (नौकर बोझा ले जाता है)	भृत्येन भारं नाययति वाहयति वा (सिद्धान्त कौमुदी) (नौकर से बोझा ढोवाता है)

परन्तु जब 'वह्' धातु का प्रेरणार्थक कर्त्ता कोई ऐसा शब्द हो जिसका भाव 'वाहक' हो तो मूल नियम ही लागू होगा। जैसे—

१—वाहा रथं वहन्ति । (घोड़े रथ खींचते हैं) २—वहन्ति यवान् बलीवर्दाः ।	१—सूतो वाहान् रथं वाहयत (सिद्धान्त कौमुदी) (सारथी घोड़ों को रथ खींचने के लिए प्रेरित करता है) २—वाहयति यवान् बलीवर्दान् (महाभाष्य)

(ब)[2] 'अद्' और 'खाद्' धातुओं के प्रेरणार्थक रूप के कर्त्तापद 'करण' के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—

१—नीवह्योर्न (वार्तिक) । नियन्तृ कर्तृकस्य वहेरनिषेधः (वार्तिक)

२—आदिखाद्योर्न (वार्तिक) ।

बटुरन्नमत्ति खादति वा (बालक अन्न खाता है)	बटुनान्नमादयति खादयति वा (बालक से अन्न खिलवाता है)

(स)—[1]'भक्ष्' धातु का जब 'हिंसा' अर्थ नहीं होता तो उसके योग में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—भक्षयति पिंडीं देवदत्तः, भक्षयति पिंडीं देवदत्तेन। परन्तु भक्षयन्ति यवान्' बलीवर्दाः, भक्षयति बलीवर्दान् यवान् (महाभाष्य)।

(द) विशेष प्रकार के 'ज्ञान' या 'अनुभव' का बोध कराने वाली 'स्मृ' और 'घ्रा' धातु के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग नहीं होता। जैसे—'स्मरति-जिघ्रति-देवदत्तः, स्मारयति-घ्रापयति-देवदत्तेन।

परन्तु जब 'स्मृ' धातु का अर्थ 'किसी के विषय में सोचना' या 'पश्चात्ताप करना' होता है तो कभी-कभी उसके योग में द्वितीया का भी प्रयोग होता है। जैसे—'अपि चन्द्रगुप्तदोषा अतिक्रान्त पार्थिवगुणान् स्मारयन्ति प्रकृतीः (मुद्रा० १), (शिशु० ६।५६ भी देखिये)

(ई)[2] दृश्' धातु के प्रेरणार्थक रूप के योग में द्वितीया का प्रयोग होता है। जैसे—'भक्ता हरिं पश्यन्ति, दर्शयति भक्तान् हरिं (सिद्धान्त कौमुदी)।

विशेष—'संस्कृत' साहित्य में 'दृश्' धातु का प्रयोग कभी-कभी 'द्वितीया' के स्थान पर 'चतुर्थी' के योग में पाया जाता है। जैसे—'प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत् कृती'। (रघु० १२।६४)

(फ)[3] 'हृ' 'कृ' धातुओं के सामान्य रूप का कर्त्ता और 'अभिवद्' तथा 'दृश्' धातुओं के आत्मनेपद के रूप का कर्त्ता प्रेरणार्थक दशा में 'कर्म' अथवा 'करण' कारक की परिस्थिति में रक्खा जाता है। जैसे—

१—भक्षेरहिंसार्थस्य न (वार्तिक)।

२—दृशेश्च (वार्तिक)।

३—हृक्रोरन्यतरस्याम् (१।४।५३)।

भृत्यः कटं करोति हरति वा	भृत्यं भृत्येन वा कटं कारयति हारयति वा।
(सेवक चटाई बनाता या ले जाता है)	(सेवक से चटाई बनवाता या ढोवाता है) (सिद्धान्त कौमुदी) ।

इसी प्रकार 'अभिवादयते-दर्शयते-देवं-भक्तं भक्तेन वा'। (सिद्धान्त कौमुदी) (वह भक्त को कहता है कि वह देवता को प्रणाम करे अथवा देखे)

४६—अनुच्छेद ४४ में जिन अकर्मक धातुओं का उल्लेख हुआ है, उनमें ऐसी धातुएँ हैं जिनके 'काल' और 'स्थान' वाचक शब्दों के अतिरिक्त अन्य कर्म नहीं होते। उस अनुच्छेद में कथित अकर्मक धातुओं से ऐसी धातुओं का तात्पर्य नहीं है जो सकर्मक होती हुई भी वक्ता की इच्छा के अनुसार कभी-कभी अकर्मक के रूप में प्रयुक्त कर दी जाती हैं अथवा ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ बिल्कुल स्पष्ट रहता है। जैसे—'किंकरः पचति', यहाँ 'पचति' क्रिया यद्यपि सकर्मक है, परन्तु बिना कर्म के प्रयुक्त हुई है, क्योंकि सरलता से जाना जा सकता है (कि यहाँ कोई कर्म अवश्य है)। अतः 'किंकरेण पाचयति' ठीक है न कि 'किंकरं'। परन्तु 'मासमासयति देवदत्तम्' होगा।

४७—[1]प्रेरणार्थक क्रियाओं का कर्मवाच्य बनाने में, प्रेरणार्थक का प्रधान कर्म, जो सामान्य दशा में क्रिया का कर्त्ता रहता है, प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है और दूसरा (गौण) कर्म अपरिवर्तित रहता है। जैसे—

सामान्य दशा	प्रेरणार्थक कर्तृ-वाच्य	प्रेरणार्थक कर्म-वाच्य
१—रामो ग्रामं गच्छति	१—रामं ग्रामं गमयति	१—रामो ग्रामं गम्यते
(राम गाँव को जाता है)	(राम को गाँव जाने को कहता है)	(राम गाँव जाने के लिये प्रेरित किया जाता है)

१—बुद्धि भक्षार्थयोः शब्दकर्मणा च निजेच्छया।
प्रयोज्य कर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः ॥ (सिद्धान्त कौमुदी)

२—भृत्यः कटं करोति (सेवक चटाई बनाता है)	२—भृत्येन भृत्यं वा कटं कारयति (सेवक से चटाई बनवाता है)	२—भृत्यः कटं कार्यते (सेवक चटाई बनाने के लिए प्रेरित किया जाता है)
३—गोविन्दो मासमास्ते (गोविन्द एक मास बैठता है)	३—गोविंदं मासमासयति (गोविन्द को एक मास बैठाता है)	३—गोविन्दो मासमास्यते (गोविन्द एक मास बैठाया जाता है)

(अ) परन्तु बुद्ध्यर्थक, भक्षणार्थक और साहित्यिक-विषय-कर्मक धातुओं का कर्म-वाच्य बनाने में प्रधान कर्म कर्त्ता-कारक की दशा में रक्खा जाता है और गौण कर्म द्वितीया विभक्ति में अथवा इसका उल्टा अर्थात् प्रधान कर्म द्वितीया में और गौण-कर्म प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है। जैसे :— 'माणवकं धर्मं बोधयति' (माणवक (बालक) को धर्म का बोध कराता है)। 'माणवको धर्मं बोध्यते' अथवा 'माणवकं धर्मो बोध्यते'। (माणवक को उसका धर्म समझाया जाता है अथवा धर्म माणवक को समझाया जाता है)। 'बटुमोदनं भोजयति' (लड़के को भोजन कराता है), 'बटुरोदनं भोज्यते' अथवा 'बटुमोदनो भोज्यते। (सिद्धान्त कौमुदी)

४८—दशम अर्थात् चुरादिगण की धातुओं का प्रेरणार्थक रूप, सामान्य रूप की भाँति ही होता है। अर्थ का निर्णय प्रसंग द्वारा होना चाहिए। जैसे :—'रामो धनं चोरयति' (राम धन चुराता है), 'रामो गोविन्देन धनं चोरयति' (राम गोविन्द से धन चुरवाता है)। यहाँ दूसरे वाक्य में क्रिया प्रेरणार्थक है)।

४९—अनुच्छेद ४३ और ४४ में निर्दिष्ट नियम द्विकर्मक धातुओं में भी लगते हैं, अर्थात् गत्यर्थकादि धातुओं के योग में सामान्य क्रिया का कर्त्ता कर्म-कारक में रक्खा जाता है और अन्य धातुओं के योग में अनुच्छेद ४५ में निर्दिष्ट नियम के अनुसार सामान्य क्रिया का कर्त्ता 'करण-कारक' में

रक्खा जाता है। जैसे:—'वामनो बलिं वसुधां याचते,' (ईश्वरो) वामनेन बलिं वसुधां याचयति। ('ईश्वर' वामन द्वारा बलि से भूमि मँगवाता है)। 'गोपोऽजां नगरं हरति,'—'(स्वामी) गोपं गोपेन वा अजां नगरं हारयति,' (स्वामी) गोप द्वारा बकरी को नगर में पहुँचवाता है)।

अभ्यास

१—अभिमन्युतनयं परीक्षितमुदराढुपरतमेव निर्गतमुत्तराप्रलापोपजनितकृपो भगवान् वासुदेवो दुर्लभानसून् प्रापितवान्।

(कादम्बरी १७५)

२—अयं शिशुर्न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्। तदेहि गृहाणेममवतारय सलिलसमीपमित्यभिधाय तेनर्षिकुमारेण मां सरस्तीरमनाययत्। उपसृत्य च जलसमीपं स्वयं मामादाय मुक्तप्रयत्नमुत्तानितमुखमंगुल्या कतिचित्सलिलबिंदूनपाययत्।

(कादम्बरी ३८)

३—काम इदानीं सकामो भवतु येनासत्यसंधे जने सखी पदं कारिता।

(शाकुन्तल० ४)

४—महेन्द्रभवनं गच्छतोपाध्यायेन त्वमासनं प्रतिग्राहितः।

(विक्रमो० ३)

५—तौ कुशलवौ भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मवस्तुतः परिगृह्य पोषितौ परिरक्षितौ च। वृत्तचूडौ च त्रयीवर्जमितरा विद्याः सावधानेन परिपाठितौ। समनंतरं च गर्भादेकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्यापितौ।

(उत्तर० २)

६—नलिनिके, पायय कमलमधुरसं कलहंसान्। पल्लविके, भोजय मरिचाग्रपल्लवदलानि भवनहारीतान्। (कादम्बरी १८४)

७—आर्यो दापयतु मे वैशम्पायनानयनाय गमनाभ्यनुज्ञां तातेन। नान्यथा मे दोषशुद्धिर्भवति। (कादम्बरी २०२)

८—तौ दंपती स्वां प्रति राजधानीं
प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः। (रघु० २।७०)

९—ततो द्रोणोऽर्जुने भूयो रणशिक्षामशिक्षयत्।
(महाभारत १।१३०।२५)

१०—तौ दंपती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा
शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः। (रघु० ९।७८)

११—वाल्मीकिस्तौ कुशलवौ
सांगं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रांतशैशवौ
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम्। (रघु० १५।३३)

१२—स सेतुं बंधयामास प्लवगैर्लवणांभसि।
तेनोत्तीर्य पथा लंकां रोधयामास पिंगलैः।
द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः॥ (रघु० १२।७०)

अभ्यास लिए अतिरिक्त वाक्य

१—एवं क्रियते युष्मदादेशः। किंतु या यस्य युज्यते भूमिका तां तथैव भावेन सर्वे वर्गाः पाठिताः। (मालती० १)

२—स कार्तान्तिकस्तां विलोक्य स्निग्धदृष्टिराचष्ट। भद्रे, अस्ति कौशलं शालिप्रस्थेनानेन संपन्नमाहारमस्मानभ्यवहारयितुमिति।
(दशकुमार० २।६)

३—ततो मया पाटलिपुत्रं गत्वा श्रावितोऽमात्यसंदेशं वैतालिकः स्तनकलशः।
(मुद्रा० ४)

४—रजनीतिमिरावगुंठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः ।
वसतिं प्रिय कामिनां प्रियास्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः ॥
(कुमार० ४।११)

५—तामर्चिताभ्यः कुलदेवताभ्यः कुलप्रतिष्ठां प्रणमय्य माता ।
अकारयत् कारयितव्यदक्षा क्रमेण पादग्रहणं सतीनाम् ॥
(कुमार० ७।२७)

६—प्रियागुणसहस्राणामेकोन्मीलनपेशलः ।
य एव दुःस्मरः कालस्तमेव स्मारिता वयम् ॥ (उत्तर० ६)

७—शरैरुत्सवसंकेतान् स कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ॥ (रघु० ४।७८)

८—अथानाथाः प्रकृतयो मातृबंधुनिवासिनम् ।
मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः ॥ (रघु० १२।१२)

९—त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे ।
अदर्शयन् वक्तुमशक्नुवन्त्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥
(रघु० १३।२४)

१०—गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः ।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारये—
न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ॥ (किरात० १।३१)

११—यः पयो दोग्धि पाषाणं स रामाद्भूतिमाप्नुयात् ।
रावणं गमय प्रीतिं बोधयन्तं हिताहितम् ॥
प्रीतोऽहं भोजयिष्यामि भवतीं भुवनत्रयम् ।
किं विलापयसेऽत्यर्थं पार्श्वे शायय रावणम् ॥
आज्ञां कारय रक्षोभिर्मां प्रियाण्युपहारय ।
कः शक्रेण कृतं नेच्छेदधिमूर्धानमञ्जलिम् ॥ (भट्टि० ८।८२-८४)

१२—विद्यामथैनं विजयां जयां च रक्षोगणं क्षिप्नुमविक्षतात्मा ।
अध्यापयद्गाधिसुतो यथावन्निघातयिष्यन्युधि यातुधानान् ॥ (भट्टि० २।२१)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—हम लोगों ने उसको उसका कर्त्तव्य समझाया (विद्) और घर भेजवा दिया (प्र + स्था प्रेरणार्थक) ।

२—जब स्वतन्त्रता की भावना मन्त्री के अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जायगी तब वह राजा को भी स्वयं अपना प्राण छोड़ (त्यज्) देने के लिए प्रेरित करेगा ।

३—रण में अपने शत्रु का विनाश करके उसने अपने चारणों द्वारा अपने वीरोचित कृत्यों का यश गान करवाया (गै) ।

४—उसने अपने नौकरों द्वारा बाजार से ईंधन मँगवाया (नी अथवा हृ) ।

५—इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सम्राट् करद राजाओं से अपनी आज्ञाओं का पालन करवाता है ।

६—उन दासियों द्वारा माला तैयार कराने के लिए उन लोगों से कह दिया गया था ।

७—जब विद्यार्थी को किसी विषय का सिद्धान्त बता दिया जाता है तब उसे उसका अभ्यास करना सिखाया जाता है ।

८—अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो और उन्हें कर देने को वाध्य करो (दा) ।

९—उसने अपने पुत्र के विवाह के लिये अपने नौकरों से एक विशाल मण्डप बनवाया (कृ) ।

१०—उसने लड़के को उसकी इच्छा के विरुद्ध खिलाया (अद् अथवा खाद्) ।

११—मैंने अपने मान्य अतिथि को अपना पुस्तकालय दिखाया (दृश-प्रेरणार्थक)

१२—वह राम द्वारा यात्रियों से काशी का मार्ग पुछवाता है ।

१३—मालिक द्वारा भेड़ें नौकर से गाँव को पहुँचाई गईं ।

१४—सेवक को चाहिए कि वह अपनी सेवा-वृत्ति द्वारा मालिक को पारितोषिक देने के लिए प्रेरित करे ।

१५—मैंने उन लोगों को राजा के चारों ओर खड़ा कराया और उनसे उसको नमस्कार कराया (अभि + वद् प्रेरणार्थक) ।

पाठ ६

करण कारक (तृतीया विभक्ति)

५०—[1]संस्कृत में तृतीया विभक्ति का प्रयोग प्रधानतया दो रूप में होता है। किसी कार्य के कर्त्ता के रूप में या कार्य-सम्पादन के साधन के रूप में। जैसे—'ततो देव्या किमभिहितम्' (वेणी० १)—तब रानी द्वारा क्या कहा गया ? (यहाँ 'देव्या' पद 'अभिहितम्' क्रिया का कर्त्ता प्रतीत होता है) 'संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू' (वेणी० १)—क्या मैं गदा से दुर्योधन की जाँघों को चूर्ण नहीं कर डालूँगा ? (यहाँ 'गदया' पद साधन के रूप में प्रयुक्त है)। 'तामेव दिव्ययोषितं चक्षुषा पुनर्निरूपयामास' (कादम्बरी १३१)—उसी दिव्य स्त्री को अपनी आँख से पुनः देखा।

५१—इस कारक द्वारा करणत्व का बोध कई सम्बन्धों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :—

(अ) किसी कार्य के करने की विधि या कोई गुण जो किसी संज्ञा की विशेषता बतलाता हो। जैसे—'आत्मानुरूपां विधिनोपयेमे' (कुमार० १।१८)—उसने अपने योग्य पति को विधिपूर्वक वरा)। 'प्रकृत्या दर्शनीयः' (महाभाष्य) स्वभाव से ही दर्शनीय है। 'माठरोऽस्मि गोत्रेण' (महाभाष्य)—गोत्र से मैं माठर हूँ। 'विषमेण धावति' (महाभाष्य) विषम दौड़ता है। उसी प्रकार—द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति, साहस्रेण पशून् क्रीणाति, शतेन शतेन पाययति वत्सान् इत्यादि।

(ब) जिस मूल्य पर कोई वस्तु खरीदी जाती है। जैसे—'कियता मूल्येन क्रीतं पुस्तकम्'—कितने मूल्य में पुस्तक खरीदी गई ?

(स) गत्यर्थक धातुओं के योग में 'वाहन' करण कारक की परिस्थिति में होता है। जैसे—

१—कर्तृकरणयोस्तृतीया (२।३।१८)।

'आत्मनः पदं विमानेन विगाहमानः' (रघु० १३।१)—अपने स्थान (आकाश) में विमान द्वारा विचरण करते हुए।

(द) 'वह्' (ले जाना) अर्थ वाली अथवा 'न्यास' (रखना) अर्थ वाली धातुओं के योग में ढोने और रखने के साधन में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—'स श्वानं स्कन्धेनोवाह' (हितो० ४)—वह कुत्ते को कन्धे पर ले गया। 'भर्त्तुराज्ञां मूर्ध्ना आदाय' (कुमार० ३।२२)—पति की आज्ञा को सिर पर धारण करके।

(ई) शपथ बोधक शब्दों के योग में, जिसके द्वारा शपथ ली जाती है, वहाँ तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—'जीवितेनैव शपामि ते' (कादम्बरी २३३)—मैं अपने जीवन की शपथ खाकर तुमसे कहता हूँ।

(फ) किसी स्थान-विशेष तक जाने के लिए मार्ग अथवा दिशा रूपी साधन में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—"कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्मः' (विक्रमो० १)—वह धूर्त किस ओर से गया ?

५२—विशिष्टार्थ तथा सादृश्यार्थ सूचक धातुओं के योग में विशिष्टता सूचक गुणों अथवा सदृशता सूचक बातों में तृतीया होती है। जैसे :—'पूर्वान्महाभाग तयातिशेषे' (रघु० ५।१४) हे महाभाग, उस (गुण) के कारण तुम पूर्वजों से श्रेष्ठ हो। 'स्वरेण रामभद्रमनुहरति' (उत्तर० ४)—स्वर में राम के अनुसार है।

विशेष—कभी-कभी इसी अर्थ में 'अधिकरण' का प्रयोग होता है। जैसे :—'धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः' (रामायण १।१६)—उदारता में कुबेर के समान और सत्य-निष्ठा में दूसरे धर्म के समान।

(अ) पृथकत सूचक शब्दों के योग में साधारणतया तृतीया का प्रयोग होता है। जैसे—'अयमेकपदे तया वियोग उपनतः' (विक्रमो० ४)—यह वियोग उससे एकाएक प्राप्त हो गया। इसी प्रकार 'मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः' (मेघ० ११८)।

(ब) सदृशता बोधक अथवा समता बोधक शब्द भी तृतीया के साथ प्रयुक्त होते हैं। जैसे—'धनदेन समस्त्यागे'—त्याग में कुबेर के समान। 'अस्य मुखं सीताया मुखचन्द्रेण संवदति' (उत्तर० ४)—इसका मुख सीता जी के मुख-चन्द्र की अनुहार का है। (षष्ठी विभक्ति भी देखिये)

५३— [1]फल की प्राप्ति अथवा कार्य की सिद्धि में कालवाचक और मार्ग-वाचक शब्दों में तृतीया होती है। अर्थात् फल-प्राप्ति-द्योतक काल और मार्ग-वाचक शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—'द्वादश वर्षैर्व्याकरणं श्रूयते' (पंचतंत्र २)—बारह वर्ष में व्याकरण का अध्ययन पूरा होते सुना गया है। 'क्रोशेन पाठस्तेनाधीतः' (सिद्धान्त कौमुदी)—एक कोस में उसके द्वारा पाठ पढ़ लिया गया।

५४— [2]किसी वस्तु अथवा क्रिया के हेतु या प्रयोजन बोधक संज्ञा के योग में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'गुरौभक्त्या प्रीतास्मि ते' (रघु० २।६३)—तुम्हारी गुरु भक्ति से मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। 'अतिदवीयस्तया च तस्य प्रदेशस्य न किंचिद्ददर्श' (कादम्बरी १२६)—स्थान अधिक दूर होने के कारण वह कुछ न देख सका।

(अ) 'प्रयोजन' भी तृतीया विभक्ति में ही रहता है। जैसे—'अध्ययनेन वसति' (सिद्धान्त कौमुदी)—अध्ययन के लिए निवास करता है।

विशेष—संतुष्ट होना, प्रसन्न होना, आश्चर्यान्वित होना, लज्जित होना आदि अर्थों का बोध कराने वाली धातुओं के साथ प्रयुक्त तृतीया भी इसी नियम में है। जैसे—'कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति' (पंचतंत्र १।१)—नीच मनुष्य थोड़े में ही प्रसन्न हो जाता है। 'उभयोर्न तथा लोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये' (रघु० १५।६८)—दोनों की प्रवीणता से लोग इस प्रकार आश्चर्यान्वित नहीं हुये। 'अनेन प्रागल्भ्येन लज्जे' (कादम्बरी १६३)—मैं इस प्रगल्भता से लज्जित हूँ।

१—अपवर्गे तृतीया (२।३।६)—अपवर्गः फलप्राप्तिः।
२—हेतौ (२।३।२३)

५५—[1] शरीर के जिस अंग में विकार होता है, उस विकृत अंग में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'अक्ष्णा काणः' (सिद्धान्त कौमुदी) एक आँख से काना। इसी प्रकार 'पादेन खञ्जः, कर्णेन बधिरः' इत्यादि।

५६—[2] किसी विशेष स्थिति अथवा दशा को व्यक्त करने वाली उपाधि या विशेषण पद को तृतीया विभक्ति में रक्खा जाता है। जैसे—'जटाभिस्तापसः' (सिद्धान्त कौमुदी)—जटाओं से वह तपस्वी ज्ञात होता है।

५७—'पर्याप्त' अर्थ को व्यक्त करने वाले 'अलम्' तथा 'कृतं' शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे 'अलमतिविस्तरेण' (वेणी० १)—बहुत विस्तार की आवश्यकता नहीं। 'कृतमश्वेन' (उत्तर० ४)—हटाओ घोड़े को 'तस्मात्कृतं चरणपातविडम्बनाभिः' (पंचतंत्र ४ । १)

(अ) इस अर्थ में 'अलं' शब्द प्रायः 'क्त्वा' प्रत्ययान्त शब्दों के साथ प्रयुक्त होता है। जैसे—'अलं अन्यथा गृहीत्वा' (मालविका० १)—(आप) दूसरा (गलत) न समझें। ऐसे प्रयोगों में 'अलं' निषेधवाचक होता है।

५८—[3] सह, साकं, सार्धं, समं आदि 'साथ' अर्थ वाले शब्दों के योग में उन शब्दों में तृतीया होती है जो प्रधान कर्त्ता के साथ रहते हैं। जैसे—'त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु' (उत्तर० २)—मैं आपके साथ वनों में निवास करूँगी। 'अमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः' (उत्तर० ३)—हमारे जैसे लोगों के साथ देव नदी। 'आस्व साकं मया सौधे' (भट्टि ८ । ७६)—मेरे साथ प्रासाद में बैठो।

५९—किं, कार्यं, अर्थः प्रयोजनं, गुणः इत्यादि 'उपयोग' अथवा 'आवश्यकता' वाचक शब्दों के, तथा इसी अर्थ को व्यक्त करने वाली 'किम्' पूर्वक 'कृ' धातु के योग में, उस शब्द में तृतीया विभक्ति होती है जिसके द्वारा लाभ होता या आवश्यकता ज्ञात होती है और लाभ प्राप्त करने वाले तथा

१—येनाङ्ग विकारः (२ । ३ । २०) २—इत्थंभूत लक्षणे (२ । ३ ।२१) ३—सहयुक्तेऽप्रधाने (२ । ३ । १९)

जिसको आवश्यकता होती है, उसमें षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'देवपादानां सेवकैर्न प्रयोजनम्' (हितो० १)—आपको सेवकों की आवश्यकता नहीं है। 'तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम्' (पंचतंत्र १ । १)—धनिकों के कुछ कार्य तृण से भी पूरे हो जाते हैं। 'किं तया क्रियते धेन्वा' (पंचतंत्र १)—उस गाय से क्या करना है? 'किं तया दृष्ट्या' (शाकुन्तल २) उसको देखने से क्या लाभ? 'अप्राज्ञेन सानुरागेण भृत्येन को गुणः' (मुद्रा० १) अनुरागयुक्त किन्तु मूर्ख सेवक से क्या प्रयोजन?

विशेष—पाणिनि ने दो सूत्रों का और उल्लेख किया है—'दिवः कर्म च' (१ । ४ । ४३) अर्थात् 'दिव्' (खेलना) धातु के योग में द्वितीया अथवा तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'अक्षैरक्षान्वा दीव्यति'—वह जुआ खेलता है। 'संज्ञोऽन्यतरस्याम् कर्मणि' (२ । ३ । २२) 'पित्रा पितरं वा संजानीते'—वह अपने पिता के साथ शान्ति से रहता है।

अभ्यास

१—अलमलं बहु विकत्थ्य। राज्ञः समक्षमेवावयोरधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति। (मालविका० १)

२—देवेन देव्या च परिगृहीतोऽहममुना हरदत्तेन प्रधान-पुरुषसमक्षमयं न मे पादरजसा तुल्य इत्यधिक्षिप्तः। (मालविका० १)

३—शापितासि मम लवंगिकावलोकितयोर्जीवितेन यदि वाचा न कथयसि। (मालती० ८)

४—आगंतुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तांतः। (शाकुन्तल० ६)

५—भगवति तमसे अयं (करिकलभकः) तावदीदृशः संपन्नः। तौ पुनर्न जाने कुशलवावेतावता कालेन कीदृशाविव भवतः। (उत्तर० ३)

६—चंद्रापीडस्य सहपांशुक्रीडिततया सहसंवृद्धतया च सर्वविश्रंभ-स्थानं द्वितीयमिव हृदयं वैशम्पायनः परं मित्रमासीत् । (कादम्बरी७६)

७—अलमतियंत्रणया । कृतमतिप्रसादेन । भगवति, प्रसीद विमुच्य-तामयमत्यादर इति तामब्रवीत् । (कादम्बरी १३३)

८—उषसि चोत्थाय तस्य जरद्द्रविडधार्मिकस्येच्छया निसृष्टैर्धनविसरैः पूरयित्वा मनोरथमभिमतमभिरमणीयेषु प्रदेशेषु निवसन्नल्पैरे वाहोभिरुज्जयिनीमाजगाम । (कादम्बरी २२६)

९—अलमुपालभ्य । आर्य दैवेनेदमनुष्ठितं किमत्रार्यस्य । (मुद्रा० ३)

१०—अयि पंचालतनये, अलं विषादेन । किं बहुना । यत्करिष्ये तच्छ्रू-यताम् । अचिरेणैव कालेन सुयोधनशोणितशोणपाणिस्तव कचान् भीम उत्तंसयिष्यति । (वेणी० १)

११—स्वहृदयेनापि विदितवृत्तांतेनामुना जिह्रेमि । (कादम्बरी २३३)

१२—प्रवातशयने निषण्णा देवी परिजनहस्तगृहीतेन चरणेन परिव्रा-जिकया कथाभिर्विनोद्यमाना तिष्ठति । (मृच्छ० ४)

१३—मदनमपि गुणैर्विशेषयंती रतिरिव मूर्तिमती विभाति सेयम् । (मृच्छ० ४)

१४—शुद्धांतदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ॥ (शाकुन्तल० १)

१५—शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपांडुना ।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ॥ (रघु० ३।२)

१६—यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते । (श्रीमद्भगवद्गीता १०।३)

१७—किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा ।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान् ॥ (पंचतंत्र १)

अभ्यास के लिये अतिरिक्त वाक्य

१—अधुनाऽन्या गतिर्नास्ति। अकथ्यमाने च महाननर्थोपनिपातो जायते प्राणपरित्यागेनापि रक्षणीयाः सुहृदसव इति कथयामि।
(कादम्बरी १५२)

२—तेषु तेषु रम्यतरेषु स्थानेषु तया सह तानि तान्यपरिसमाप्तान्यपुनरुक्तानि न केवलं चंद्रमाः कादम्बर्या सह कादंबरी महाश्वेतया सह महाश्वेता तु पुंडरीकेण सह पुंडरीकोऽपि चंद्रमसा सह परस्पराबियोगेन सर्व एव सर्वकालंसर्वसुखान्यनुभवंतः परां कोटिमानंदस्याध्यगच्छन्। (कादम्बरी ३६६)

३—अवधूतप्रणिपाताः पश्चात्संतप्यमानमनसोऽपि।
निभृतैर्व्यपत्रपन्ते दयितानुनयैर्मनस्विन्यः॥ (विक्रमो० ३)

४—कष्टं जनः कुलधनैरनुरंजनीयस्तन्नो यदुक्तमशिवं न हि तत्क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि॥
(उत्तर० १)

५—अथ दुर्लंघ्यशासनतया भगवतो मनोभुवो मदजननतया च मधुमासस्यातिरमणीयतया च तस्य प्रदेशस्याविनयबहुलतया चाभिनवयौवनस्य चंचलप्रकृतितया चेंद्रियाणां दुर्निवारतया च विषयाभिलाषाणां तथा भवितव्यतया च तस्य तस्य वस्तुनः तमपि तरलतामनयदनंगः।
(कादम्बरी १४३)

६—विनाप्यर्थैर्वीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदं
समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः।
स्वभावादुद्भूतां गुणसमुदयावाप्तिविषयां
द्युतिं सैंहीं किं श्वा धृतकनकमालोऽपि लभते॥ (हितो० १)

७—अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।
न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य॥ (रघु० २।३४)

८—कुलेन कांत्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः ।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु कांचनेन ।। (रघु० ६।७६)

६—लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः ।।
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।।
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मंडनैः ।
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ।। (भर्तृ० २।५५) ।

१०—अयमार्यचाणक्यस्तिष्ठति—
यो नंदमौर्यनृपयोः परिभूय लोक-
मस्तोदयौ प्रतिदिशन्नविभिन्नकालम् ।
पर्यायपातितहिमोष्णमसर्वगामि
धाम्नातिशाययति धाम सहस्रधाम्नः ।। (मुद्रा० ३)

११—भूषणाद्युपचारेण प्रभुर्भवति न प्रभुः ।
परैरपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुरुच्यते ।। (मुद्रा० ३)

१२—आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां ज्ञानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ।।
(भर्तृ० २।४८)

१३—न तेन सज्जं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम् ।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ।।
(किरात० १।२१)

१४—समुद्र इव गांभीर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।
विष्णुना सदृशो वीर्ये क्षमया पृथिवीसमः ।। (रामा० १।१।१७-१८)

१५—स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेंदुनिभस्त्रिलोचनः ।
युवा कराक्रांतमहीभृदुच्चकैरसंशयं संप्रति तेजसा रविः ।।
(शिशु० १।७०)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—मनु द्वारा निर्दिष्ट नियमों के अनुसार राजा को अपनी प्रजा का पालन करना चाहिए।

२—सदाचार कहता है कि अपने मित्र के प्राणों की रक्षा अपने जीवन को संकट में डालकर भी करे।

३—यह मनुष्य लोभ का मूर्तिमान् स्वरूप है, वह धन-संचय में कभी संतुष्ट नहीं होगा।

४—क्या अपनी अज्ञानता पर तुम्हें लज्जा नहीं आती और क्या अपने विद्यारहित उच्चकुल का गर्व करते हो?

५—यह राजा वीरता, ज्ञान तथा अपनी प्रजा को संतुष्ट रखने की अभिलाषा में अन्य सभी से श्रेष्ठ है।

६—आपकी आज्ञा अन्य राजाओं द्वारा शिरोधार्य होती है, यह आपकी सम्प्रभुता का सबसे बड़ा चिह्न है।

७—उस मनुष्य ने बकरी के बच्चे को अपने कन्धे पर रख लिया और इस मार्ग से वध-स्थान को गया।

८—मैं अपने अभीष्ट देव की शपथ खा कर कहता हूँ कि इसके पूर्व मैंने कभी आपकी अँगूठी नहीं देखी है।

९—मैं समझता हूँ कि मेरे नौकर पन्द्रह दिन में लौट आयेंगे, क्योंकि वहाँ अधिक ठहरने का उनका क्या प्रयोजन?

१०—अपार श्रद्धा के साथ केवल एक बार भी ॐ कहने से पापी अपने सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

११—इस व्यक्ति के साथ घूमने से क्या लाभ? वह दाहिने पैर का लँगड़ा है और जल्दी-जल्दी नहीं चल सकता।

१२—इस विषय में संदेह करना व्यर्थ है, मेरी बहन के पति द्वारा यह सारी बात मान ली गई है।

१३—मूर्ख, तुम्हें धिक्कार है। यदि तुम इन पुस्तकों को नहीं पढ़ते तो इनके बोझ से क्या लाभ ?

१४—मुझको दोषी न ठहराइये, यह मेरे द्वारा नहीं किया गया।

१५—बालक, मत रोओ, जब तुम्हारी माँ यहाँ आयेगी तब उससे तुम्हें खिलवाऊँगा।

१६—अपने प्रिय के चिन्तन के कारण शकुन्तला ने दुर्वासा के आगमन को नहीं जाना।

१७—अरे अन्धे, तुझे इस दीपक से क्या लाभ ?

———

पाठ ७

संप्रदान कारक (चतुर्थी)

६०—जिसको कुछ दिया जाता है उसे संप्रदान कहते हैं। संप्रदान में चतुर्थी होती है। जैसे—'किं वस्तु विद्वन् गुरवे प्रदेयम्' (रघु० ५।१८) हे विद्वान्, गुरु जी को क्या देना है? जिस व्यक्ति या पदार्थ के लिए अथवा जिसके उद्देश्य से कार्य सम्पादित होता है, उसमें भी सम्प्रदान होता है। जैसे—'युद्धाय संनह्यते' (महाभाष्य)—युद्ध के लिए सन्नद्ध होता है। 'तां नन्दनाय प्रार्थयते' (मालती०)—वह उसको नन्दन के लिए माँगता है।

(अ)[1] यज् (यज्ञ करना) धातु के योग में, जिस व्यक्ति को 'यज्ञ' समर्पित किया जाता है, उसमें द्वितीया विभक्ति होती है और जिस पदार्थ या साधन द्वारा यज्ञ का विधान होता है, उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—'पशुना रुद्रं यजते' (सिद्धान्त कौमुदी)—वह रुद्र को एक पशु अर्पित करता है।

६१—[2] 'रुच्' और रुच्यर्थक धातुओं के योग में रुचि रखने वाले व्यक्ति में 'चतुर्थी' होती है। जैसे—'यत् प्रभविष्णवे रोचते' (शाकुन्तल०२)—जो श्रीमान् को रुचे। 'यज्ञदत्ताय स्वदतेऽपूपः' (काशिका)—यज्ञदत्त को अपूप (पूआ) अच्छा लगता है।

६२—[3] धृ धातु (ऋण लेना) के योग में ऋण देने वाले (धनी) और 'स्पृह्' (चाहना) धातु के योग में वांछित वस्तु में चतुर्थी होती है। जैसे—'वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे' (शाकुन्तल०१)—तू मेरे दो वृक्षों को सींचने की

---

(१) कर्मणः करण संज्ञा, सम्प्रदानस्य च कर्म संज्ञा (वार्तिक)

(२) रुच्यर्थानां प्रीयमाणः (१।४।३३)

(३) धारेरुत्तमर्णः। स्पृहेरीप्सितः (१।४।३५—३६)

ऋणी है। 'परिक्षीणो यवानां प्रसृतये स्पृहयति' (भर्तृ० ३।४५)—एक गरीब मनुष्य एक पसर (मुट्ठी) जौ चाहता है।

विशेष–'स्पृह' धातु से प्रत्यय लगाकर बने हुये शब्दों के योग में कभी-कभी 'चतुर्थी' का प्रयोग होता है। जैसे—'भोगेभ्य स्पृहयालवः' (भर्तृ० ३।६४)—भोगों के इच्छुक। 'कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम्' (वेणी० ३)। किन्तु सामान्यतया इस धातु से प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्दों के योग में 'सप्तमी' का प्रयोग होता है। जैसे—'स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी' (रघु० ३।५)।

६३—[1]क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य्, असूय् तथा एतदर्थ अन्य धातुओं के योग में, जिसके प्रति क्रोधादिक विकार उत्पन्न होता है, 'चतुर्थी' का प्रयोग होता है। जैसे—'हरये क्रुध्यति-द्रुह्यति-ईर्ष्यति-असूयति वा' (सिद्धान्त कौमुदी)—वह हरि के प्रति क्रोध-द्रोह, ईर्ष्या तथा घृणा करता है। परन्तु उपसर्ग युक्त क्रुध् और द्रुह् धातुओं के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—'मच्छरीरमभिद्रोग्धुं' (मुद्रा० १)—मेरे शरीर को दण्डित करने के लिए। 'नखलु तामभिक्रुद्धो गुरुः' (विक्रमो० ३) क्या उसके ऊपर गुरु जी रुष्ट नहीं हुए ?

६४—[2]'प्रति' और 'आ' उपसर्ग पूर्वक 'श्रु' धातु, जिसका अर्थ प्रतिज्ञा करना होता है, के योग में, जिस व्यक्ति से प्रतिज्ञा की जाती है, उसमें चतुर्थी का प्रयोग होता है। जैसे—'प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम्' (रघु० १५।४)—काकुत्स्थ ने उन लोगों से विघ्नों को दूर करने की प्रतिज्ञा की।

६५—[3] जिस उद्देश्य की सिद्धि के लिये कोई कार्य किया जाता है अथवा जिसके निर्माण के लिये किसी दूसरी वस्तु का अस्तित्व हो या प्रयोग हो, उसके योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—

---

(१) क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रतिकोपः। क्रुध् द्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म (१।४।३७-३८)

(२) प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता (१।४।४०)

(३) तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वार्तिक)

'काव्यं यशसे (काव्य प्रकाश)—काव्य यश के लिए होता है।
'यूपायदारु' (महाभाष्य)—यज्ञस्तम्भ बनाने के लिये लकड़ी।
'कुण्डलाय हिरण्यम्' (महाभाष्य)—कुण्डल बनाने के लिये स्वर्ण।
'अवहननाय उलूखलम्' (महाभाष्य)—कूटने के लिए ओखली।

(अ)[1] जब किसी वाक्य में तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का भाव गुप्त रहता है, तब तुमुन् प्रत्ययान्त धातु के कर्म में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'फलेभ्यो याति = फलान्याहर्तुं याति'—वह फलों के लिए अर्थात् फलों को ले आने के लिए जाता है। 'वनाय गां मुमोच = वनं गन्तुं गां मुमोच'—जंगल के लिए अर्थात् जंगल में जाने के लिए गाय को छोड़ा। यहाँ 'आहर्तुं' और 'गन्तुं' के कर्म क्रमशः 'फलं' और 'वनं' को चतुर्थी में रक्खा गया है।

(ब)[2] 'तुमुन्' प्रत्ययान्त किसी धातु से जो अर्थ व्यक्त होता है, वही अर्थ उस धातु से बनी हुई भाव वाचक संज्ञा को चतुर्थ्यन्त कर देने से प्राप्त होता है। जैसे—'यागाय याति'—यष्टुं याति—वह यज्ञ के लिए जाता है। समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्' (शाकुन्तल० १)। 'यतिष्ये वः सखी प्रत्यानयनाय' (विक्रमो० १)

६६—[3] 'क्लृप्' धातु (योग्य होना, रक्षा करना) तथा इसी प्रकार की समानार्थक जैसे संपद्, भू, जन आदि धातुओं के योग में जो फल प्राप्त होता है, उसमें चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे—'कल्पसे रक्षणाय' (शाकुन्तल० ५) (हम लोगों की) रक्षा करने में आप योग्य (समर्थ) हैं। 'मूत्राय कल्पते-जायते-संपद्यते यवागूः' (महाभाष्य) माँड़ मूत्र पैदा करता है। बिना 'भू' अथवा 'अस्' के भी प्रायः इस अर्थ में चतुर्थी का प्रयोग होता है। जैसे—'यतस्तौ स्वल्पदुःखाय' (पंचतंत्र १) क्योंकि वे दोनों बहुत कम दुःख देते हैं।

---

(१) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (२।३।१४)।
(२) तुमर्थाच्च भाववचनात् (२।३।१५)
(३) क्लृपि संपद्यमाने च (वार्तिक)

(अ)[1] भविष्य में अशुभ की सूचना देने वाली किसी गोचर वस्तु द्वारा जिस घटना की सूचना मिलती है उसके योग में चतुर्थी का प्रयोग होता है। जैसे—'वाताय कपिला विद्युत्' (महाभाष्य)—कपिला रंग की बिजली तूफान की सूचक है। 'मांसौदनाय व्याहरति मृगः' (महाभाष्य)—मृग की ध्वनि मांस-भोजन प्राप्त करने की सूचना देती है।

(ब) 'हित' और 'सुख' शब्द के साथ चतुर्थी का प्रयोग होता है। जैसे—'ब्राह्मणाय हितं सुखं' (सिद्धान्त कौमुदी)—ब्राह्मण के लिए हित और सुख। 'हितमामयाविने' (महाभाष्य) रोगी के लिए हित अथवा सुख।

विशेष—'अच्छा' अर्थ में 'हित' शब्द का प्रयोग सप्तमी और षष्ठी के साथ होता है।

६७—[2]नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, वषट् और अलं (पर्याप्त, योग्य) शब्दों के योग में चतुर्थी का प्रयोग होता है। जैसे—'नमो विश्वसृजे तुभ्यं' (रघु० १०।१६)—हे विश्वविधाता, आपको नमस्कार है। 'स्वस्ति भवते' (मालविका० २)—आपका कल्याण हो। 'अग्नये स्वाहा' (सिद्धान्त कौमुदी) अग्निदेव को यह भोजन। इसी प्रकार, 'पितृभ्यः स्वधा, इन्द्राय वषट्, दैत्योभ्यो हरिरलम्' (सिद्धान्त कौमुदी)—दैत्यों के लिए हरि पर्याप्त हैं। 'अलमेषा क्षुधितस्य (मे) तृप्त्यै' (रघु० २।३६)—यह मुझ भूखे की तृप्ति के लिए पर्याप्त है।

(अ) करने में समर्थ और पर्याप्त अर्थ वाले 'अलं' के भाव को व्यक्त करने वाले, प्रभु, शक्त, तथा 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'भू' धातु के योग में चतुर्थी का प्रयोग होता है। जैसे—'प्रभुर्मल्लोमल्लाय, शक्तो मल्लोमल्लाय, प्रभवति मल्लो मल्लाय' (महाभाष्य)—पहलवान पहलवान के लिए पर्याप्त है। 'विधिरपि न येभ्यः प्रभवति'—(भर्तृ० २।६४) जिनके ऊपर विधाता का भी वश नहीं है।

(१) उत्पातेन ज्ञापिते च (वार्तिक)

(२) नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलंवषड् योगाच्च (२।३।१६)

(ब) 'नमः' पूर्वक 'कृ' धातु के योग में सामान्यतया द्वितीया का प्रयोग होता है, परन्तु कभी-कभी चतुर्थी का भी। जैसे—'मुनित्रयं नमस्कृत्य' (सिद्धान्त कौमुदी)—तीनों मुनियों को नमस्कार करके। परन्तु 'नमस्कुर्मो नृसिंहाय' (सिद्धान्त कौमुदी)—नृसिंह को हम लोग नमस्कार करते हैं।

(स) 'प्रणिपत्' 'प्रणाम्' जैसी धातुओं, जिनका अर्थ 'प्रणाम करना' होता है, के योग में चतुर्थी अथवा द्वितीया का प्रयोग होता है। जैसे—'धातारं प्रणिपत्य' (कुमार० २।३)—विधाता को प्रणाम करके। 'तस्मै प्रणिपत्य नन्दी' (कुमार० ३।६०), 'आर्यं प्रणिपत्य' (मुद्राराक्षस १)। इसी प्रकार 'तां भक्ति प्रवणेन चेतसा प्रणनाम' (कादम्बरी २२८)। 'तां कुल देवताभ्यः प्रणमय्य' (कुमार० ७।२७)। 'प्रणम्य त्रिलोचनाय' (कादम्बरी १३१)।

नोट—इन धातुओं से निर्मित संज्ञा शब्दों का भी प्रयोग समय-समय पर प्राचीन संस्कृत-लेखकों ने चतुर्थी के साथ किया है। जैसे—'मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय चकार' (कुमार० ३।६२) 'अस्मै प्रणाममकरवम्' (कादम्बरी १४२)। 'तस्मै दण्डप्रणाममकरवम्' (दशकुमार० १।२)।

(द) 'आशीर्वादार्थक' और 'स्वागतार्थक', 'स्वागतम्' 'कुशलम्' शब्दों के योग में चतुर्थी का प्रयोग होता है। जैसेः—'देवदत्ताय कुशलम्' (महाभाष्य)। 'स्वागतं देव्यै' (मालविका० १)—देवी का स्वागत। कुशलं, भद्रं, सुखं आदि शब्दों के योग में षष्ठी का भी प्रयोग होता है। (पाठ १० देखिए)

६८—कथ्, ख्या, शंस् और चक्ष् (सभी का अर्थ 'कहना'), नि उपसर्ग पूर्वक 'विद्' धातु के प्रेरणार्थक, तथा इसी अर्थ की द्योतक अन्य धातुओं के योग में, जिससे कुछ कहा जाय उसमें चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'आर्ये कथयामि ते भूतार्थम्' (शाकुन्तल० १)—हे आर्ये, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। 'एहि इमां वनस्पतिसेवां काश्यपाय निवेदयावः' (शाकुन्तल० ४)—आओ, चलें वनस्पतियों (वृक्षों) की इस सेवा को काश्यप से हम लोग निवेदन करें। इसी प्रकार—'यस्मै ब्रह्मपरायणं जगौ' (उत्तर० ४)—जिससे वेद का गान किया। 'यस्मै मुनिर्ब्रह्म परं विवव्रे' (महावीर चरित २)।

६९—'भेजना' धातु का अर्थ बोध कराने वाली धातुओं के योग में 'व्यक्ति' में चतुर्थी किन्तु 'स्थान' में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः' (रघु० ५।३९)—रघु के पास भोज द्वारा एक दूत भेजा गया। 'माधवं पद्मावतीं प्रहिण्वता देवरातेन' (मालती० १)—माधव को पद्मावती के पास भेजने वाले देवरात द्वारा।

७०—[1] अनादर अर्थ में मन् (समझना, दिवादिगण) धातु के अप्राणि वाचक गौण कर्म में 'चतुर्थी' अथवा द्वितीया का प्रयोग होता है। जैसे—'न त्वां तृणाय तृणं वा मन्ये' (सिद्धान्त कौमुदी)—मैं तुम्हें तृण के बराबर भी नहीं समझता।

विशेष—जब 'निषेध' और 'अनादर' नहीं व्यक्त रहता, किन्तु तुलना की जाती है तब केवल द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'त्वां तृणं मन्ये' (महाभाष्य) तुमको तृण के समान समझता हूँ। परन्तु 'हरिमप्य-मंस्त तृणाय'। (शिशुपाल० १५ । ६१)

७१—[2] मार्गभिन्न गत्यर्थक धातुओं के कर्म में, जब उनसे चेष्टा का द्योतन होता है, द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'ग्रामं-ग्रामाय वा गच्छति'। परन्तु 'मनसा हरिं व्रजति'—मन से हरि के पास जाता है। (उनका ध्यान करता है)

विशेष—(१) 'राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः' (१ । ४ । ३९) अर्थात् 'राध्' (संतुष्ट करना, आराधना करना) और 'ईक्ष्' (किसी के कल्याण की इच्छा करना) धातुओं के योग में, उस व्यक्ति को, जिसके विषय में कुशल अथवा सुख सौभाग्य सूचक प्रश्न किए जाते हैं, चतुर्थी विभक्ति में रक्खा जाता है। जैसे—'कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्गः' अर्थात् 'पृष्टो गर्गः शुभाशुभं पर्यालोचयति'। (२) 'परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् (१ । ४ । ४४) अर्थात् जिस निश्चित वेतन पर कोई नौकर रक्खा जाता है, वह वेतन तृतीया अथवा

१—मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु (२।३।१७)

२—'गत्यर्थकर्मणि द्वितीया चतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि' (२ । ३ । १२)

चतुर्थी विभक्ति में रक्खा जाता है। जैसे—'शतेन शताय वा परिक्रीतोऽयं दासः'।

अभ्यास

१—नैतन्न्याय्यम्। सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय। (मालविका० १)

२—चपलोऽयं बटुः कदाचिदस्मत्प्रार्थनामंतःपुरेभ्यः कथयेत्। [शाकुन्तल० २]

३—अहमपि वैतानिकं शांत्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि। [शाकुन्तल० ३]

४—स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै। मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते। [शाकुन्तल० ७]

५—मूर्ख, नैष तव दोषः। साधोः शिक्षा गुणाय संपद्यते नासाधोः। [पंचतत्र १।१८]

६—प्रसीद भगवति वसुंधरे शरीरमसि संसारस्य। तत्किमसंविदानेव जामात्रे कुप्यसि। [उत्तर० ७]

७—मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भरा न प्रणमंति देवताभ्यो, न मानयंति मान्यानात्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयंति सचिवोपदेशाय, कुप्यंति हितवादिने। (कादम्बरी १०८)

८—प्रतिश्रुतं तेन तस्मै स्वसुरवंतिसुंदर्याः प्रदानम्। (दशकु० २।१)

९—चंद्रापीडः समुपसृत्य पूर्ववदेव तां महाश्वेताप्रणामपुरःसरं दर्शितविनयः प्रणनाम। (कादम्बरी २१९)

१०—प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम्।
अथैनं तुष्टुवुः स्तुत्यमवाङ्मनसगोचरम्॥ (रघु० १०।१५)

११—रविमावसते सतां क्रियायै सुधया तर्पयते सुरान् पितृंश्च ।
तमसां निशि मूर्च्छतां निहंत्रे हरचूडानिहितात्मने नमस्ते ॥
(विक्रमो० ३)

१२—उमा वधूर्भवान दाता याचितार इमे वयम् ।
वरः शंभुरलं ह्येष त्वत्कुलोद्भूतये विधिः ॥
(कुमार० ६ । ८२)

१३—चरतः किल दुश्चरं तपस्तृणबिंदोः परिशंकितः पुरा ।
प्रजिघाय समाधिभेदिनीं हरिरस्मै हरिणीं सुरांगनाम् ॥
[रघु० ८।७९]

१४—वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी ।
पीता भवति सस्याय दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥ (महाभाष्य)

१५—स्वस्त्यस्तु ते निर्गलितांबुगर्भम् ।
शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि ॥ [रघु० ५।१७]

१६—ताभ्यां तथागतमुपेत्य तमेकपुत्र-
मज्ञानतः स्वचरितं नृपतिः शशंस । [रघु० ९।७७]

१७—परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता ४।८)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—तदाकर्ण्य तामहं दंडवत्प्रणम्य तस्यै मदुदंतमखिलमाख्याय विस्मयविकसिताक्षं जनकमदर्शयम् । (दशकु० १ । ४)

२—सखि वासंति, दुःखायेदानीं रामस्य दर्शनं सुहृदाम् । तत्कियच्चिरं त्वां रोदयिष्यामि तदनुजानीहि मां गमनाय । (उत्तर० ६)

३—स्वयमेवोत्पद्यंत एवंविधाः कुलपांशवो निःस्नेहाः पशवो येषां क्षुद्राणां प्रज्ञा पराभिसंधानाय न ज्ञानाय । पराक्रमः प्राणिनामुपघाताय नोपकाराय धनपरित्यागः कामाय न धर्माय । किं बहुना सर्वमेव येषां दोषाय न गुणाय । (कादम्बरी २८८)

४—श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा निर्वपन्ति गृहमेधिनः । (उत्तर० ४)

५—दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम् ।
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् ।। (रघु० १ । २६)

६—नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेःकेवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ।। (कुमार० २ । ४)

७—स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः । (विक्रमो० १)

८—सर्वः कल्ये वयसि यतते लब्धुमर्थान्कुटुम्बी ।
पश्चात्पुत्रैरपहृतभरः कल्पते विश्रमाय ।। (विक्रमो० २)

९—यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम् ।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः ।। (विक्रमो० ३)

१०—शुद्धांतसंभोगनितांततुष्टे न नैषधे कार्यमिदं निगाद्यम् ।
अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगंधिः स्वदते तुषारा ।।
(नैषधीय० ३ । ९५)

११—किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्द्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुटचंद्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ।।
(कुमार० ५ । ४४)

१२—पुंसामसमर्थानामुपद्रवायात्मनो भवेत्कोपः ।
पिठरं क्वथतिमात्रं निजपार्श्वानेव दहतितराम् ।। (पंचतंत्र १।१४)

१३—पयःपानं भुजगानां केवलं विषवर्द्धनम् ।
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शांतये । (हितो० ३)

१४—प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे ।
अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी ।। (शिशु० १६।२५)

१५—संतानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा ।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुंक्ष्वेति तमादिदेश ॥ (रघु० २।६५)
१६—तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य ।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ॥ (रघु० २।६८)
१७—ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय ।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे ॥ (रघु० ५।१९)
१८—वसन् स तस्यां वसतौ रघूणां पुराणशोभामधिरोपितायाम् ।
न मैथिलेयः स्पृहयांबभूव भर्त्रे दिवो नाप्यलकेश्वराय ॥ (रघु० १६।४२)
१९—तस्य स्पृहयमाणोऽसौ बहुप्रियमभाषत ।
सानुनीतिश्च सीतायै नाक्रुध्यन्नाप्यसूयत ॥
संक्रुध्यसि मृषा किं त्वं दिदृक्षुः मां मृगेक्षणे ।
ईक्षितव्यं परस्त्रीभ्यः स्वधर्मो रक्षसामयम् ॥
रावणाय नमस्कुर्याः स्यात् सीते स्वस्ति ते ध्रुवम् ।
अन्यथा प्रातराशाय कुर्याम त्वामलं वयम् ॥ (भट्टि० ८।७५।७६।९८)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए:—

१—अरे नीच, क्या तू चाण्डाल के घर में नौकरी करना चाहता है ?
२— हे देवी, मुझे गलत न समझें और व्यर्थ में हमारे ऊपर क्रोध न करें ।
३—मैं धन की इच्छा (स्पृह) नहीं करता किन्तु अक्षय कीर्ति (चाहता हूँ) ।
४—लक्ष्मण को साथ ले चलने की प्रतिज्ञा करके अब आप उनसे ऐसा क्यों कहते हैं कि तुम वैसा करने में असमर्थ हो ।
५—समाचार सुनने पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उन लोगों ने अपना रहस्य भी उससे बता दिया (नि + विद्) ।
६—इन पवित्र व्यक्तियों का दर्शन-मात्र ही मेरी शुद्धि के लिए पर्याप्त है; अतः अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए मैं उनकी सेवा करूँगा ।

७—मैंने अपने भाई के द्वारा उनसे कहला दिया (आ + ख्या) कि मुझे आपके दर्शन से कोई मतलब नहीं !

८—हे वृद्धे, ऐसे दुःखद विचार और अधिक कष्ट ही पैदा करेंगे अतः कुछ समय तक धैर्य धारण करो ।

९—इस संसार में विषय-सुख का अनुभव केवल दुःख ही बढ़ाने वाला होता है ।

१०—मेरी प्रजा मुझसे घृणा करती है (असूय्) और मेरी हत्या का षड्यन्त्र करती है (द्रुह्) ।

११—सर्वप्रथम अपने गुरु को प्रणाम करो (प्रणम्) और तब अपना पाठ पढ़ना प्रारम्भ करो ।

१२—श्री त्रिनेत्र भगवान को प्रणाम है, जिन्होंने अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया ।

१३—जब किसी व्यक्ति को पुत्र उत्पन्न होता है तो वह अपने पितृ-ऋण से मुक्त हो जाता है ।

१४ शत्रु की सम्पूर्ण सेना को परास्त करने में तुम अकेले ही समर्थ (अलं) हो ।

१५—जब मनुष्य दुर्भाग्य-पीड़ित होता है तब एक छोटा-सा कारण भी उसे नष्ट करने में पर्याप्त होता है ।

१६—मैं विदेहराज के पास एक दूत भेजूँगा और इस समाचार से उन्हें अवगत कराऊँगा ।

———

पाठ ८

(पंचमी विभक्ति) अपादान

७२—पंचमी विभक्ति का मुख्य अर्थ 'अपादान' है। जहाँ से मानसिक अथवा प्रत्यक्ष रूपसे वियोग पाया जाता है, वह अपादान कारक की परिस्थिति में होता है और उसमें पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'ग्रामादायाति' -वह गाँव से आता है। अर्थात् जहाँ से वियोग अथवा अलगाव पाया जाता है वह 'ग्राम' है। अँग्रेजी के 'From' का भाव यहाँ रहता है।

७३—[१] बहुधा पंचम्यन्त संज्ञा किसी कार्य अथवा गोचरपदार्थ का कारण व्यक्त करती है और 'इसके कारण से' का भाव बताती है। जैसे—'सौहृदाद-पृथगाश्रयां' (उत्तर० १) सौहार्द्र के कारण अलग न रहने वाली को। किसी कार्य का कारण व्यक्त करने वाली स्त्रीलिंग-भिन्न संज्ञा को तृतीया या पंचमी में रक्खा जाता है। जैसे—'जाड्येन जाड्यात् वा बद्धः' (सिद्धान्त कौमुदी) वह अपनी मूर्खता के कारण बाँधा गया। 'बुद्धया मुक्तः' (सिद्धान्तकौमुदी) बुद्धिमत्ता के कारण छूट गया। "भक्तया गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीतास्मि ते' (रघु० २|६३)—गुरु के प्रति भक्ति तथा मेरे ऊपर अनुकम्पा के कारण मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ।

विशेष—कभी-कभी इस अर्थ में स्त्रीलिंग संज्ञा का भी प्रयोग पंचम्यन्त के रूप में होता है। जैसेः—'नास्ति घटोनुपलब्धेः' (सिद्धान्त कौमुदी)।

(अ) वादविवाद में उत्तर देने अथवा युक्ति का प्रतिपादन करने के लिए प्रायः सभी कार्य-कारण सम्बन्ध में पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'पर्वतो वह्निमान् धूमात्'—(तर्क संग्रह) पर्वत अग्नि से युक्त है क्योंकि

[१] विभाषा गुणेऽस्त्रियाम (२।३।२५)

वहाँ धुआँ है। 'नेश्वरो जगतः कारणमुपपद्यते। कुतः वैषम्यनैर्घृण्य प्रसंगात्' (शांकर भाष्य) (कोई प्रतिवादी कहता है) —ईश्वर जगत का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह पक्षपाती और निष्ठुर है।

७४—तुलनार्थकप्रत्यय (तरप् और ईयसुन्) जिन शब्दों के अन्त में हों तथा स्वयं तुलनार्थक शब्दों के योग में, जिससे तुलना की जाती है उस शब्द को पंचमी विभक्ति में रक्खा जाता है। जैसे—'सत्यादप्यनृतं श्रेयः' (वेणी० ३) —असत्य सत्य से भी बढ़कर है। 'मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः' (रघु० १४।५६) —चेतनावस्था मोहावस्था से भी अधिक कष्टदायक हुई। 'चैत्ररथादनूने वृन्दावने' (रघु० ६।५०)—चैत्ररथ से किसी भी प्रकार न घटकर ऐसे वृन्दावन में। 'अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते' (हितो० ४)—सत्य स्वयं सहस्रों अश्वमेध यज्ञों से बढ़कर है। 'श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते' (मनु०-३।२७१।)—श्राद्ध के लिए पूर्वाह्ण की अपेक्षा अपराह्ण अच्छा है।

७५—[1] वाक्य में जब पूर्वकालिक क्रिया ('ल्यप्' अथवा 'क्त्वा प्रत्ययान्त) लुप्त रहती है, तो उस क्रिया के 'कर्म' और 'अधिकरण' में पंचमी का प्रयोग होता है। जैसे :—'प्रासादात् प्रेक्षते' (सिद्धान्त कौमुदी)—प्रासादमारुह्य प्रेक्षते इत्यर्थः—प्रासाद से देखती है। इसीप्रकार 'श्वसुराज्जिह्रेति' (सिद्धान्त-कौमुदी)—श्वसुरं वीक्ष्य जिह्रेति इत्यर्थः।

आसनात् प्रेक्षते—आसने (अधिकरण) उपविश्य प्रेक्षते इत्यर्थः—आसन पर से देखता है (आसन पर बैठकर)।

(अ) [2] प्रश्न और उत्तर वाचक शब्दों में पंचमी का प्रयोग होता है। जैसे :—कुतो भवान्—पाटलिपुत्रात् (महाभाष्य)।

७६—[3] जुगुप्सा (घृणा), विराम (रुकना, विश्राम करना) और प्रमाद

(१) ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च (वार्तिक)

(२) प्रश्नाख्यानयोश्च

(३) जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वार्तिक)

(अनवधानता, भूल करना) तथा एतदर्थक शब्दों के योग में (जिससे घृणा हो, जिससे रुके अथवा जिसमें भूल करे उसमें) पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'पापाज्जुगुप्सते' (महाभाष्य)—पाप से घृणा करता है। 'वत्सैतस्माद्विरम' (उत्तर० १)—पुत्र, इससे दूर रहो। 'स्वाधिकारात्प्रमत्तः' (मेघदूत १)—अपने कर्त्तव्य से असावधान। इसी प्रकार—'प्राणाघातान्निवृत्तिः' (भर्तृ० २।२६)—हिंसा से विरत। 'धर्मान्मुह्यति' (महाभाष्य)।

विशेष—'असावधान' अर्थ में 'प्रमद्' धातु के योग में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः' (मनु० २।२१३) बुद्धिमान् लोग स्त्रियों के विषय में असावधानी नहीं करते।

७७—[1]जिससे कुछ सीखा जाय ऐसे अध्यापक को, जन्[2](जन्म लेना) धातु के कर्त्ता के मूल कारण को और 'भू'[3] धातु के कर्त्ता के उद्गम स्थान को पंचमी विभक्ति में रक्खा जाता है। जैसे—'उपाध्यायादधीते' (सिद्धान्त कौमुदी)—गुरु से अध्ययन करता है। इसी प्रकार, मया तीर्थादभिनयविद्या शिक्षिता' (मालविका० १)—मैंने अभिनय कला अध्यापक से सीखी। 'गोमयाद्वृश्चिको जायते' (महाभाष्य)—गोबर से बिच्छू पैदा होता है। 'प्राणाद्वायुरजायत' (ऋग्वेद १०।९०) प्राण से वायु उत्पन्न हुआ। 'हिमवतो गंगा प्रभवति' (महाभाष्य)—हिमालय से गंगा निकलती है। 'लोभात् क्रोधः प्रभवति' (हितो० १)—लोभ से क्रोध पैदा होता है।

विशेष—'पैदाहोना' अर्थ को व्यक्त करने वाली धातुओं के उत्पत्तिस्थान में सप्तमी का प्रयोग होता है। जैसे—'परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ' (मनु० ३।१७४)। 'जातोऽपि दास्यां शूद्रेण' (याज्ञवल्क्य स्मृति २।१३३)। 'शुकनासस्यापि रेणुकायां तनयो जातः' (कादम्बरी ७३)। 'सा तस्यामुपपादि' (कुमार० १।२२)।

---

(१) आख्यातोपयोगे (१।४।२९)
(२) जनिकर्त्तुः प्रकृतिः (१।४।३०)
(३) भुवः प्रभवः (१।४।३१)

७८—[1] 'भयार्थक' और 'त्राणार्थक' धातुओं के योग में जो 'भय' अथवा 'त्राण' का कारण होता है उसमें पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे :—'न भीतो मरणादस्मि' (मृच्छकटिक १०) मैं मृत्यु से नहीं डरता। 'कपेरत्रासिषुर्नादात्' (भट्टि० ६।११) कपि के नाद से डर गये। 'तीक्ष्णादुद्विजते' (मुद्रा० ३)—उग्रस्वभाव वाले से डरता है। 'भीमात् दुःशासनं त्रातुं' (वेणी० ३) भीम से दुःशासन की रक्षा करने के लिए। इसी प्रकार 'लोकापवादाद्भयं' (भर्तृ० २।६२)। 'तृणबिन्दोः परिशंकितः' (रघु० ८।७६)

(अ) जिससे कोई व्यक्ति दूर किया जाय अथवा रोका जाय वहाँ पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे –'पापान्निवारयति' (भर्तृ० १।७२)—पाप से बचाता है।

७९—[2] 'परा' उपसर्ग पूर्वक 'जि' धातु के योग में जो असह्यार्थक होता है, उसमें पंचमी का प्रयोग होता है। जैसे—'अध्ययनात्पराजयते' (महाभाष्य)—अध्ययन से हार मान रहा है अर्थात् असह्य है।

८०—[3]जिस 'स्थान' अथवा 'समय' से किसी दूसरे स्थान अथवा समय की दूरी नापी जाती है, उस स्थान अथवा समय में पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है। 'स्थान'[4] की दूरी प्रकट करने वाले शब्द में प्रथमा अथवा सप्तमी का प्रयोग होता है और समय[5] की दूरी प्रकट करने वाले शब्दों में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'कर्णपुरात् प्रयागः अष्टादशयोजनानि योजनेषु वा। 'वनाद् ग्रामो योजनं योजने वा'।—'कार्तिक्या आग्रहायणीमासे' (महाभाष्य)—अगहन-पूर्णिमा कार्तिक-पूर्णिमा से एक माह के अन्तराल पर है। इसी प्रकार 'समुद्रात्पुरी क्रोशौ अथवा क्रोशयोः'।

---

(१) भीत्रार्थानां भयहेतुः (१।४।२५) (२) पराजेरसोढः (१।४।२६)
(३) यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पंचमी (वार्तिक)
(४) तद्युक्तादध्वनः प्रथमा सप्तम्यौ (वार्तिक)
(५) कालात् सप्तमी च वक्तव्या (वार्तिक)।

८१—¹ 'भिन्न' अथवा 'अतिरिक्त' अर्थ बोधक 'अन्य' 'पर' 'इतर' शब्द; 'निकट' या 'दूर' बोधक 'आरात्' शब्द; 'बिना' अर्थ बोधक 'ऋते' शब्द; कालवाचक और दिशावाचक शब्द तथा 'आ' और 'आहि' में अन्त होने वाले शब्दों के योग में पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसेः—'कृष्णादन्यो भिन्न इतरो वा' (सिद्धान्त कौमुदी) कृष्ण से अन्य अथवा भिन्न। 'आरात् वनात्' (सिद्धान्त कौमुदी) वन से निकट अथवा दूर। 'विविक्ताद् ऋते ऽन्यच्छरणं नास्ति' (विक्रमो० २) एकान्त के बिना और कोई दूसरा आश्रय नहीं है। 'ग्रामात् पूर्व उत्तरो वा' गाँव से पूर्व अथवा उत्तर। 'चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः' (सिद्धान्त कौमुदी) फाल्गुन से चैत्र पहिले होता है। 'प्राक् प्रत्यग्वा ग्रामात्' (सिद्धान्त कौमुदी) गाँव से पूर्व या पश्चिम। 'दक्षिणा (आच्) दक्षिणाहि (आहि) वा ग्रामात्' (सिद्धान्त कौमुदी) गाँव के दक्षिण अथवा दक्षिण दिशा की ओर। 'प्राङ् नाभि वर्धनात्' (मनु० २। २६)—नाभि कटने के पूर्व।

८२—प्रभृति, आरभ्य, बहिः उर्ध्वं, परं, अनन्तरं के योग में पंचमी का प्रयोग होता है। जैसे :—'शैशवात्प्रभृति पोषितां' (उत्तर० १) शैशव काल से ही पालित। 'मालत्याः प्रथमावलोकदिवसादारभ्य' (मालती० ६) मालती के प्रथम अवलोकन दिन से ही। 'निवसन्नावसथे पुराद्बहिः' (रघु० ८।१४)—नगर के बाहर निवासस्थान में रहते हुये। 'पाणिपीडन विधेरनन्तरम्' (कुमार० ८।१) पाणिग्रहण संस्कार के पश्चात्। 'अस्मात्प रम्' (शाकुन्तल० ६) इसके बाद 'उर्ध्वं म्रिये मुहूर्तार्द्धि' (भट्टि० १८।३६) एक क्षण के बाद मर जाऊँगा।

विशेष—(अ) 'प्रभृति' और 'आरभ्य' शब्दों का प्रयोग इसी अर्थ में कालवाचक क्रियाविशेषण अव्ययों के योग में भी होता है। जैसे—'यतः प्रभृति', ततः प्रभृति' (शाकुन्तल० ३)। 'अद्य प्रभृति तवास्मि दासः' (कुमार० ५।८६)।

(१) अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहि युक्ते (२।३।२६)

(ब) 'अनन्तरं और 'परं' आदि का भाव कभी-कभी लुप्त रहता है। जैसे :—'बहोर्दृष्टं कालात्' (उत्तर० २)—बहुत समय के बाद देखा हुआ।

८३—[1] 'पृथक्' 'बिना' और 'नाना' शब्दों के योग में पंचमी, द्वितीया अथवा तृतीया किसी का भी प्रयोग हो सकता है। जैसे :—'रामाद्रामेण रामं वा विना पृथग् नाना वा' (सिद्धान्त कौमुदी)—राम के बिना। 'नाना नारिं निष्फला लोकयात्रा' (वोपदेव)।

८४—'तक' 'जहाँ तक सम्भव है' और 'से' अर्थ बोधक 'आ' के योग में पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे:—'आपरितोषाद्विदुषां' (शाकुन्तल०) विद्वानों के सन्तुष्ट होने तक। 'आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि' (शाकुन्तल० १)—प्रारम्भ से सुनना चाहता हूँ। 'आकैलासात्' (मेघदूत ११)—कैलास तक।

कभी-कभी अव्ययीभाव समास बनाने के लिये संज्ञा पदों के साथ 'आ' का प्रयोग होता है जैसे:—'आमेखलं संचरतां घनानां' (कुमार० १।५)—(हिमालय के) मध्य भाग तक भ्रमण करते हुये बादलों का।

८५—[2] व्यवधान होने पर जब कोई अपने को किसी से छिपाता है, तो जिससे छिपाता है उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे:—'मातुर्निलीयते कृष्णः' (सिद्धान्त कौमुदी) कृष्ण अपने को माता से छिपाते हैं।

८६—[3] 'प्रतिनिधि' अथवा 'किसी के बदले में' अर्थ बोधक 'प्रति' उपसर्ग के योग में जिसका प्रतिनिधि हो अथवा जिसके बदले में कोई पदार्थ दिया जाता है, उसे पञ्चमी विभक्ति में रक्खा जाता है। जैसे:—'प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति' (सिद्धान्त कौमुदी) प्रद्युम्न श्री कृष्ण के प्रतिनिधि हैं। 'तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्' (सिद्धान्त कौमुदी)—तिलके बदले में उर्द देता है।

---

(१) पृथग्विना नानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् (२।३।३२)

(२) अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति (१।४।२८)

(३) प्रतिनिधि प्रतिदाने च यस्मात् (२।३।११)

अभ्यास

१—अनुष्ठितनिर्देशोऽपि सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये। —(शाकुन्तल० ७)

२—अलमलमाक्रंदितेन। सूर्योपस्थानात् प्रतिनिवृत्तं पुरूरवसं मामुपेत्य कथ्यतां कुतो भवत्या परित्रातव्या इति। (विक्रमो० १)

३—रामः—एवमतत्। एते हि हृदयमर्मभिदः संसारभावा येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान् कामान् मनीषिणोऽरण्ये विश्राम्यंति। (उत्तर० १)

४—नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम्। (कादम्बरी ३५)

५—नैव जानासि तं देवमैक्ष्वाकं यदेवं वदसि। तद् विरम्यतामतिप्रसंगात्। (उत्तर० ५)

६—कृतातिथ्यया महाश्वेतया परिपृष्टो दिग्विजयादारभ्य किन्नरमिथुनानुसरणप्रसंगेनागमनमात्मनः सर्वमाचचक्षे। (कादम्बरी १३४)

७—वत्से मालति, जन्मनः प्रभृति वल्लभा ते लवंगिका। तत् किमुज्जिहान जीवितां वराकीं नानुकम्पसे। (मालती० १०)

८—चाणक्यः—वृषल वृषल अलमुत्तरोत्तरण। यद्यस्मत्तो वरीयान् राक्षसोऽवगम्यते तदिदं शस्त्रं तस्मै दीयताम्। (मुद्रा० ३)

९—तासां चतुर्दश कुलानि—एकं भगवतः कमलयोनेर्मनसः समुत्पन्नम्। अन्यद्वेदेभ्यः संभूतम्। अन्यदग्नेरुद्भूतम्। अन्यत् पवनात्प्रसूतम्। अन्यदमृतादुन्मथ्यमानादुत्थितम्। अन्यज्जलाज्जातम्। अन्यदर्ककिरणेभ्यो निर्गतम्। अन्यत्सौदामिनीतः प्रवृत्तम्। —(कादम्बरी १३६)

१०—मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या
स्वार्थात्सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव। (विक्रमो० ४)

११—निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम् ।
उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा निवारयंती महतो मुनिव्रतात् ॥
(कुमार० ५।३)

१२—प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम् ।
वर्द्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तदभावे सदप्यसत् ॥ (हितो० ३)

१३—त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवी-
मशिक्षतास्त्रं पितुरेव मंत्रवत् । (रघु० ३।३१)

१४—अनम्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिंधुरयादिव ।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम् ॥ (रघु० ४।३५)

१५—ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
सगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता
(२।६३)

१६—हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ (मनु० २।१२)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—जन्मकर्मतो मलिनतरजनं जनतो निस्त्रिंशतरलोकहृदयं लोकहृदयेभ्यो निर्घृणतरसर्वसव्यवहारमपुण्यकर्मैकापणं पक्वणमपश्यम् । (कादम्बरी ३५६)

२—सा कुसुमघटितशिलीमुखमनोहरान्मदनचापादिव प्रमदवनात्त्रस्यति जानकीव पीतरक्तेभ्यो रजनिचरेभ्यो इव चंपकाशोकेभ्यो बिभेति । (कादम्बरी २२५)

३—तं नृपं वसुरक्षितो नाम मंत्रिवृद्ध एकदाऽभाषत । तात, अत्रभवति सर्वैवात्मसंपदभिजनात्प्रभृत्यन्यूनैव लक्ष्यते । बुद्धिश्च निसर्गपट्वी तवेतरेभ्यः प्रतिविशिष्यते । (दशकु० २।८)

४—अहो दुराराध्या राजलक्ष्मीरात्मविद्भिरपि राजभिः—
तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान्न सन्तिष्ठते
मूर्खान् द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यंतविद्वत्स्वपि ॥
शूरेभ्योऽप्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकांतभीरूनहो ।
श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम् ॥ (मुद्रा० ३)

५—सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयात्वाच्च सर्वदा ॥ (हितो० १)

६—प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ (रघु० १।२४)

७—न नवः प्रभुराफलोदयात्स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः ।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरापरमात्मदर्शनात् ॥ (रघु० ८।२२)

८—रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमंति धीराः ॥
(भर्तृ० २।८०)

९—श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता ३।३५)

१०—लोभान्मोहाद्भयान्मैत्र्यात् कामात्क्रोधात्तथैव च ।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥ (मनु० ८।१८८)

११—वृक्षाद्वृक्षं परिक्रामन्रावणाद्बिभ्यतो भृशम् ।
शत्रोस्त्राणमपश्यन्तीमदृश्यो जनकात्मजाम् ॥
तां पराजयमानां स प्रीते रक्ष्यां दशाननात् ।
अन्तर्दधानां रक्षोभ्यो मलिनां ध्याममूर्धजाम् ॥ (अपश्यत्) (भट्टि ८।७०-७१)

१२—एतद्वोयं भृगुः शास्त्रं श्रावसिष्यत्यशेषतः ।
एतद्धि मत्तोधिजगे सर्वमेषोखिलं मुनिः ॥ (मनु० १।५९)

१३—एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते ॥ (मनु० २।८३)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—गृहिणी के बिना घर निर्जनता में जंगल से भी बढ़ कर है ।

२—इस वृक्ष की उत्तर दिशा की ओर (उत्तरं) जाओ और मैं तुरन्त तुम्हारा अनुसरण करता हूँ ।

३—जिस काम को करने की तुमने एक बार प्रतिज्ञा कर ली उसे मत रोको ।

४—मैं वाल्मीकि आश्रम से यहाँ पर इन ऋषियों से वेद पढ़ने के लिए आया हूँ ।

५—उस बालिका को आपत्ति से बचाने के लिए उसने बहुत कष्ट सहे ।

६—जो अपने मित्र के मन को पाप से बचाता है और उसे सत्कर्म में नियोजित करता है, वही सच्चा मित्र है ।

७—क्या तुम नहीं जानते कि दुष्टों के पद-चिह्नों पर चलने से तरह-तरह के कष्ट मिलते हैं ?

८—तुम्हारी यह अस्वस्थता कल के तुम्हारे कठिन श्रम के कारण उत्पन्न (जन्) हुई है । क्या अब तुम्हारी दशा में कुछ अच्छा परिवर्तन हुआ है ?

९—हिमालय-शृंखला तक (आ) विस्तीर्ण अपने राज्य को इस पराक्रमी राजा के अतिरिक्त कोई नहीं बचा सकता ।

१०—अपना अध्ययन प्रारम्भ करने के पूर्व वह अपने पास व्याकरण और कोश रख लेता है।

११—पाँच वर्ष पूर्व मैंने इसी सुन्दर आकर्षक वन को देखा था, परन्तु अब इसमें बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है।

१२—जिस दिन से मैंने उस स्त्री को देखा, उसी दिन से मेरा चित्त उद्विग्न हो गया और उसका निरन्तर चिन्तन करने के कारण मैं अपना भोजन तक ग्रहण करने को नहीं सोचता।

१३—कल सभाध्यक्ष के उत्कृष्ट भाषण के बाद (अनन्तरं) जो तुमने भाषण दिया, उसका समर्थन मैं नहीं करता।

१४—सीता जी राम को (षष्ठी) अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थीं।

१५—सच्चाई अन्य सभी गुणों से श्रेष्ठ है। इसके बिना कोई भी किसी का विश्वस्त नहीं हो सकता।

१६—भय से अंगों के सिकुड़ने के कारण उस नीच बधिक ने उस तोते के बच्चे को नहीं देखा।

१७—महर्षे, हम लोग आपसे इस तोते का वृत्तान्त प्रारम्भ से (आ) सुनना चाहते हैं।

१८—बम्बई पूना से १२० मील दूर है।

पाठ ९

सप्तमी (अधिकरण)

८७—[1]जिस स्थान पर कोई कार्य सम्पादित होता है उसे अधिकरण कहते हैं और उसे सप्तमी विभक्ति में रक्खा जाता है। जैसे :—'स्थाल्यामोदनं पचति,—बटलोई में भात पकाता है। 'आसने उपविशति'—आसन पर बैठता है।

(अ) जिस समय में कोई कार्य सम्पादित होता है वहाँ सप्तमी का प्रयोग होता है। जैसे :—'आषाढस्य प्रथमदिवसे' (मेघदूत २)—आषाढ़ के प्रथम दिन में। इसी प्रकार 'शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्' (रघु० १।८)।

८८—'पर' 'ऊपर' 'प्रति' और 'विषय में' का भाव व्यक्त करने के लिए सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'मयि मा भूरकरुणा' (मालती० ९) मेरे ऊपर निष्ठुर न बनिये। 'विषयेषु विनाशधर्मसु निःस्पृहोऽभवत्' (रघु० ८।१०) नाशवान् पदार्थों के प्रति उदासीन हो गया।

८९—[2] 'निर्धारण' अर्थात् किसी विशिष्टता के कारण किसी पदार्थ का उसके समुदाय से अलगाव (पृथकता) दिखलाना। जिस समुदाय-विशेष से पृथकता दिखाई जाती है, वहाँ सप्तमी और षष्ठी दोनों विभक्तियों का प्रयोग स्वेच्छा पर निर्भर है। जैसे :—'गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा' (सिद्धान्त कौमुदी) गायों में काली गाय अधिक दूध देती है। इसी प्रकार—'नृणां नृषु वा द्विजः श्रेष्ठः' (सिद्धान्त कौमुदी)।

---

(१) आधारोऽधिकरणम् (१।४।४५)। सप्तम्यधिकरणे च (२।३।३६)।

(२) यतश्च निर्धारणम् (२।३।४१)

९० — [1]समय अथवा मार्ग का अन्तर बोध कराने वाले शब्दों के योग में सप्तमी अथवा पंचमी का प्रयोग होता है। जैसे—'अस्मिन्दिने भुक्त्वाऽयं त्र्यहात् त्र्यहे वा भोक्ता' (सिद्धान्तकौमुदी)—आज भोजन करके वह तीन दिन के बाद पुनः भोजन करेगा। 'इहस्थोऽयं क्रोशात्क्रोशे वा लक्ष्यं विध्येत्' (सिद्धान्तकौमुदी)—यहाँ खड़ा होकर वह एक कोस की दूरी पर लक्ष्य को बेधेगा।

९१—शब्द कोषों में 'के अर्थ में' का भाव द्योतन के लिये सप्तमी का प्रयोग होता है। जैसे :—'बाणो बलिसुते शरे' (अमरकोश) 'बाण' शब्द 'बलि का पुत्र' और 'बाण' (तीर) के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

९२—[2] जिसके निमित्त या अभिप्राय से कार्य किया जाता है उस निमित्त द्योतक शब्द में सप्तमी का प्रयोग होता है। जैसे—'चर्मणि द्वीपिनं हन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुंजरम्। केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः' (महाभाष्य)—मनुष्य चमड़े के लिये व्याघ्र को, दान्तों के लिए हाथी को, बालों के लिए चमरी को और कस्तूरी के लिए कृष्ण-मृग को मारते हैं।

९३—कार्य करना, व्यवहार करना, बर्ताव करना, आचरण करना आदि भाव को व्यक्त करने वाले शब्दों के योग में सप्तमी का प्रयोग होता है। जैसे :—'आर्योऽस्मिन्विनयेन वर्तताम्' (उत्तर० ६)—आप इसके साथ विनम्रता का व्यवहार करें। 'कथं कार्यविनिमयेन व्यवहरति मय्यनात्मज्ञः' (मालविका० १) क्या वह मूर्ख मेरे साथ कार्यविनिमय का व्यवहार करता है? 'कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने' (शाकुन्तल० ४)—सपत्नियों के साथ प्रिय सखी का-सा बर्ताव करो।

९४—स्निह्, अभिलष्, अनुरञ्ज् आदि धातुयें स्नेह, आसक्ति, और सम्मान सूचक शब्दों के योग में, जिसके प्रति स्नेह, आसक्ति और सम्मान

(१) सप्तमीपंचम्यौ कारकमध्ये (२।३।७)

(२) निमित्तात्कर्मयोगे (वार्तिक)

सूचित किया जाता है, उसमें सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे :—'किं नु खलु बालेऽस्मिन् स्निह्यति मे मनः' (शाकुन्तल० ७) निश्चय रूप से मेरा मन इस बालक को क्यों प्यार करता है? 'न तापस कन्यकायां शकुन्तलायां ममाभिलाषः' (शाकुन्तल० २)—तपस्विकन्या शकुन्तला के प्रति हमारा प्रेम नहीं है। 'स्वयोषिति रतिः' (भर्तृ० २।६२) अपनी पत्नी में आसक्ति। 'दण्डनीत्यां नात्याद्दतोऽभूत्' (दशकुमार० २।८)—दण्डनीति के प्रति (उसका कोई अधिक आदर न था—'देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः' (मुद्रा० १) श्री चन्द्रगुप्त के प्रति प्रजा अत्यन्त अनुरक्त है। 'अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु' (शाकुन्तल० १) मैं इनके प्रति सगी बहिन का-सा प्रेम रखती हूँ।

विशेष—'अनुरञ्ज्' के आगे प्रत्यय लगाकर निष्पन्न शब्दों के योग में कभी-कभी द्वितीया का प्रयोग होता है। जैसे :—'एषा भवन्तं अनुरक्ता' (शाकुन्तल० ६) 'अपि वृषलमनुरक्ताः प्रकृतयः' (मुद्रा० १)। ऐसे प्रसंगों में 'अनु' को बिलकुल अलग़ मानना चाहिए और 'कर्मप्रवचनीय' समझना चाहिए। कर्मप्रवचनीय के साथ द्वितीया का प्रयोग होगा ही। (देखिए अनुच्छेद ३७)

९५—जब कारण बोधक शब्द का प्रयोग होता है तब सम्पादित कार्य में सप्तमी का प्रयोग होता है। जैसे—'दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम्' (भर्तृ० २।८४)—भाग्य ही मनुष्यों की उन्नति और अवनति का कारण है।

९६—'युज्' धातु तथा 'युज्' धातु से प्रत्यय लगे हुये शब्दों के योग में सप्तमी का प्रयोग होता है। जैसे—'असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपो य इमामाश्रमधर्मे नियुंक्ते' (शाकुन्तल० १) परमपूज्य काश्यप जी विवेकी नहीं हैं, जिन्होंने इसको (शकुन्तला को) आश्रम के कार्यों में लगा रक्खा है।

(अ)—'योग्यता' अथवा 'उपयुक्तता' आदि अर्थ बोधक शब्दों के योग में योग्य अथवा उपयुक्त व्यक्ति बोधक संज्ञापदों में सप्तमी का प्रयोग होता है।

जैसे :—'युक्तरूपमिदं त्वयि' (शाकुन्तल० २)—यह तुम्हारे लिए योग्य है। 'त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं तस्मिन् युज्यते' (हितो० ३)—त्रैलोक्य का राज्य उसके लिए उपयुक्त है। 'अथवोपपन्नमेतदृषिकल्पेऽस्मिन् राजनि' (शाकुन्तल० २)—अथवा ऋषितुल्य इस राजा के लिए यह सब प्रकार से उचित है। 'ते गुणाः परस्मिन् ब्रह्मण्युपपद्यन्ते' (शांकरभाष्य)—वे गुण परब्रह्म के लिए उपयुक्त हैं।

विशेष—इसी अर्थ में कभी-कभी षष्ठी का भी प्रयोग हो जाता है। जैसे 'उपपन्नमिदं विशेषणं वायोः' (विक्रमो० २) यह विशेषता वायु के लिए उपयुक्त है।

९७—वास्तव में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग 'स्थान' का बोध कराने के लिए होता है; परन्तु कहीं-कहीं जिसको कोई पदार्थ सौंपा जाता है या दिया जाता है, उसमें भी सप्तमी का प्रयोग होता है। जैसे—'शुकनास नाम्नि मन्त्रिणि राज्यभारमारोप्य यौवनसुखमनुबभूव' (कादम्बरी ५७) शुकनास नामक मंत्री के ऊपर राज्य का भार सौंपकर उसने यौवन-सुख का अनुभव (उपभोग) किया। 'वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे' (उत्तर० २)—गुरु जिस प्रकार बुद्धिमान् व्यक्ति को विद्या देता है उसी प्रकार मूर्ख को भी। इसी प्रकार 'योग्य सचिवे न्यस्तः समस्तो भरः'। (रत्नावली १।१०)

नोट—'वि' उपसर्ग पूर्वक 'तृ'—धातु के योग में चतुर्थी का भी प्रयोग होता है। जैसे—'मह्यम् ते व्यतरन्' (दशकुमार० १।१) उसे मुझको दे दिया। इसी प्रकार 'मारीचस्ते दर्शनं वितरति' (शाकुन्तल० ७)।

(अ) 'ग्रहणार्थक' तथा 'प्रहारार्थक' धातुओं के योग में, जो ग्रहण किया जाय अथवा जिसके ऊपर प्रहार किया जाय, सप्तमी का प्रयोग होता है। जैसे—'आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि' (शाकुन्तल० १)—आपके शस्त्र पीड़ितों की रक्षा के लिए हैं न कि निर्दोषों पर प्रहार करने के लिए। 'केशेषु गृहीत्वा'—बालों को पकड़ कर।

९८—'फेंकना' अथवा 'झपटना' अर्थ को व्यक्त करने वाली क्षिप्, मुच् और अस् धातुओं के योग में, जिस पर फेंका जाता है या झपटा जाता है,

उसमें सप्तमी का प्रयोग होता है। जैसे—'मृगेषु शरान् मुमुक्षोः' (रघु० ६।५८) हरिणों पर बाणों का प्रहार करने का इच्छुक। 'न बाणः सन्निपात्योऽस्मिन् मृगशरीरे' (शाकुन्तल० १)—इस मृग-शरीर पर बाण नहीं छोड़ना चाहिए।

(अ) 'विश्वास' 'दृढ़निश्चय' अर्थ का बोध कराने वाले शब्दों के योग में प्रायः, जिस पर विश्वास किया जाता है, सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी'—कुमारी पुरुष पर कब विश्वास करती है? (अर्थात् नहीं करती)।

विशेष—'श्रद्धा' के योग में द्वितीया का प्रयोग होता है। जैसे—'कः श्रद्धास्यति भूतार्थम्' (मृच्छ० ३)—सच बात का कौन विश्वास करेगा?

९९—[1] 'अधीतिन्' (पढ़ चुका) 'गृहीतिन्' (ग्रहण किया हुआ) के योग में इन धातुओं का कर्म सप्तमी में प्रयुक्त होता है। जैसे—'अधीती चतुर्ष्वाम्नायेषु' (दशकुमार० २।५) चारों वेदों का अध्ययन करने वाला। 'गृहीती षट्स्वंगेषु' (दशकुमार० २।५) छहों अंगों को ग्रहण करने वाला।

[2] 'साधु' और 'असाधु' शब्दों के योग में जिनके प्रति 'साधुता' अथवा असाधुता प्रदर्शित की जाती है, उन्हें सप्तमी विभक्ति में रखते हैं। जैसे—'मातरि साधुरसाधुर्वा' (सिद्धान्तकौमुदी)—माता के प्रति सद् अथवा असद् व्यवहारकर्त्ता।

१००—'कार्य में व्यस्त', 'लवलीन', 'तत्पर' आदि के अर्थ को व्यक्त करने वाले 'व्यापृत', 'आसक्त,' 'व्यग्र', 'तत्पर' आदि शब्दों और 'चतुर' अर्थ-द्योतक कुशल, निपुण, शौण्ड, पटु, प्रवीण, पण्डित आदि शब्दों तथा 'कपटी' अर्थ-द्योतक 'धूर्त' और 'कितव' आदि शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'गृहकर्मणि व्यापृता व्यग्रा वा'

१—क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् (वार्तिक)

२—साध्वसाधुप्रयोगे च (वार्तिक)

(पंचतंत्र २)—अपने गृह कार्य में व्यस्त। 'रामोऽक्षद्यूते निपुणः प्रवीणो वा' (सिद्धान्तकौमुदी)—राम द्यूतक्रीड़ा में निपुण है।

(अ)—[1] 'अत्यन्त इच्छुक' अर्थ-द्योतक 'प्रसित' तथा 'उत्सुक' शब्दों के योग में सप्तमी अथवा तृतीया का प्रयोग होता है। जैसे—'निद्रायां निद्रया वा उत्सुकः' (सिद्धान्तकौमुदी) निद्रा के लिए अत्यन्त इच्छुक। 'मनोनियोगक्रिययोत्सुकं मे' (रघु० ५।११)

नोट—'अपराध करना' अर्थ-द्योतक 'अप' उपसर्ग पूर्वक 'राध्' धातु के कर्म में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है और कभी-कभी षष्ठी का भी। जैसे :—'कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला' (शाकुन्तल० ४)—किसी पूज्य व्यक्ति के प्रति शकुन्तला ने अपराध किया है। इसी प्रकार 'अपराद्धोऽस्मि तत्रभवतः कण्वस्य' (शाकुन्तल० ७)।

अभ्यास

१—प्रथितयशसां भास-कवि-सौमिल्लकविमिश्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः। (मालविका०)

२—यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः सोऽहमविघ्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः। (शाकुन्तल० १)

३—दृढं त्वयि बद्धभावोर्वशी। न सेतोगतमनुरागं शिथिलयति। (विक्रमो०)

४—एष देवो रघुपतिस्तिष्ठति। स च स्निह्यत्यावयोरुत्कण्ठते च युष्मत्सन्निकर्षस्य। (उत्तर० ६)

---

(१)—प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च (२।३।४४)

५—दुर्जनत्वं च भवतो वाक्यादेव विज्ञातं यदनयोर्भूपालयोर्विग्रहे भवद्वचनमेव निदानम् । (हितो० ३)

६—एष धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वाकृष्यासिपत्रेण व्यापाद्यते (वेणी० ३)

७—न जानामि केनापि कारणेनापहस्तितसकलसखीजनं त्वयि विश्वसिति मे हृदयम् । (कादम्बरी २३३)

८—उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः सः साधुः सद्भिरुच्यते ॥ (हितो० २)

९—न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मनि ।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यावन्मित्रे स्वभावजे ॥ (हितो० १)

१०—क्षमा शत्रौ च मित्रे च यतीनामेव भूषणम् ।
अपराधिषु सत्वेषु नृपाणां सैव दूषणम् ॥ (हितो० २)

११—वाञ्छा सज्जनसंगमे गुणिगणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम् ।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले-
ष्वेते येषु वसंति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्योः नमः ॥
(भर्तृ० २।६२)

१२—संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता ।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे ॥ (रघु० १।३४)

१३—भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ (मनु० १।९६)

———

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—अवैमि ते सारमतः खलु त्वां कार्ये गुरुण्यात्मसमं नियोक्ष्ये ।
व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः ॥
(कुमार० ३।१३)

२—अशुद्धप्रकृतौ राज्ञि जनता नानुरज्यते । (पंचतंत्र १।११)

३—जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमंगलम् ।
तस्मिन्नकरुणे पापे वृथा वः करुणा मयि ॥ (उत्तर० ६)

४—निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चंद्रश्चांडालवेश्मनः ॥ (हितो० १)

५—इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितांतरूक्षाभिनिवेशमीशम् ।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धमासीदनुमोदितुं वा
(रघु० १४।४३)

६—परकर्मापहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु ।
आवृणोदात्मनो रंध्रं रंध्रेषु प्रहरन् रिपून् ॥ (रघु० १७।६१)

७—भगवति कमलालये भृशमगुणज्ञासि ।
आनंदहेतुमपि देवमपास्य नन्दं
रक्तासि किं कथय वैरिणि मौर्यपुत्रे (मुद्रा० २)

८—साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वम्
चित्रार्पितां मुहुरिमां बहु मन्यमानः ।
स्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य
जातः सखे प्रणयवान्मृगतृष्णिकायाम् ॥ (शाकुन्तल० ६)

९—पोतो दुस्तरवारिराशितरणे दीपोंऽधकारागमे
निर्वाते व्यजनं मदांधकरिणां दर्पोपशांत्यै सृणिः ।
इत्थं तद्भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपायचिंता कृता
मन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धातापि भग्नोद्यमः ॥ (हितो० २)

१०—चिरेणानुगुणं प्रोक्ता प्रतिपत्तिपराङ्मुखी ।
न मासे प्रतिपत्तासे मां चेन्मतासि मैथिलि ॥ (भट्टि० ८।६५)

११—एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः । (मेघदूत ११५)

१२—एवमाप्तवचनात्स पौरुषं काकपक्षकधरेऽपि राघवे ।
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि ॥ (११।४२)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—इस राजा की प्रजा सम्पूर्णतया इसमें अनुरक्त (अनु + रञ्ज) है ।

२—जो आश्रयहीन व्यक्तियों के प्रति दया दिखाता है और जो देवताओं के लिए यज्ञ करता है, दोनों गुण में समान हैं ।

३—मेरा पति मुझे प्यार नहीं करता (स्निह्), जो मैं उससे कहती हूँ उसमें विश्वास नहीं करता और मुझे अयोग्य कार्यों में नियोजित करता है । हे सखी, क्या तुम मुझे बताओगी कि ऐसी परिस्थिति में मुझे क्या करना चाहिए ?

४—इस सांसारिक जीवन के सुख-दुःख के प्रति ऋषि लोग निःस्पृह होते हैं ।

५—इस बालक की शिक्षा के विषय में कुछ भी चिन्ता न कीजिए ।

६—उसने अपने कुटुम्ब का भार अपने बड़े पुत्र को सौंप दिया और अपने सभी मित्रों और सम्बन्धियों से बिदा होकर उसने वनवास का आश्रय लिया ।

७—वह बाल पकड़ कर नीचे गिरा दिया गया और तब दर्शकों ने उसके ऊपर पत्थर फेंके ।

८—उस अन्यमनस्क स्त्री ने उस पर एक दृष्टि भी न डाली जो कुछ उसके सन्निकट हो रहा था।

९—यह समाचार सब जगह फैल गया है, क्या यह आपके कर्णगोचर नहीं हुआ कि राजा का प्रेम सागरिका पर हो गया है?

१०—राम के चौदह वर्ष वनवास में कैकेयी मूल कारण थी।

११—वह द्यूतक्रीड़ा में दक्ष लोगों के साथ सदा जुआ खेलने में अपना समय व्यतीत करता है।

१२—इस बाग में सभी वृक्षों से यह वृक्ष ऊँचा है।

१३—सभी व्यक्तियों में वही व्यक्ति अधिक प्रशंसनीय है जो परोपकार में लगा रहता है।

१४—भारतीय कवियों में 'कालिदास' और 'भवभूति' अधिक प्रसिद्ध हैं।

१५—मर्यादा में जो उसके समान नहीं हैं उनको राक्षस अपना परिवार नहीं सौंपेगा।

पाठ १०

षष्ठी विभक्ति

१०१—जैसा कि पाठ ३ में उल्लेख किया गया है कि षष्ठी को कारकत्व नहीं प्राप्त है। वास्तव में षष्ठी विभक्ति एक वाक्य में प्रयुक्त एक संज्ञा-पद से दूसरे संज्ञा-पद का सम्बन्ध सूचित करती है। इस पाठ में षष्ठी विभक्ति के सम्बन्ध में दिये हुये नियमों का केवल एक ही अर्थ है अर्थात् 'सम्बन्ध'। यहाँ तक कि जहाँ षष्ठी विभक्ति के साथ क्रियापद का प्रयोग मिलता है, वहाँ भी केवल यही समझना चाहिए कि 'सम्बन्ध' के अर्थ में ही इसका प्रयोग हुआ है। परन्तु कई प्रसंगों में इस विभक्ति का, संस्कृत के प्राचीन लेखकों ने अन्य कारकों के सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए शिथिल प्रयोग किया है। जैसे—'तं च व्यसृजद्भरतस्य' (उत्तर० ४) उसको भरत के पास भेजा। (यहाँ 'भरतस्य' का प्रयोग 'भरताय' के स्थान पर हुआ है)। 'जयसेनायास्तावत्संवेद्य गच्छ' (मालविका० ४) (जयसेनायै के स्थान पर जयसेनायाः) 'स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्यः' (हितो० १) (स्त्रिषु होना चाहिए)। ऐसे वाक्य-विधानों में समझना चाहिए कि साधारण नियम का उल्लंघन किया गया है, अतः उनका अनुकरण कभी नहीं करना चाहिए।

१०२- प्रायः षष्ठी विभक्ति वाक्य में किसी संज्ञा-पद या सर्वनाम-पद का किसी ऐसे शब्द का आश्रय व्यक्त करती है जो प्रायः विशेष्य या विशेषण होता है, परन्तु कभी-कभी वह शब्द क्रिया-पद भी होता है।

(अ) अँग्रेजी के 'of' अथवा हिन्दी के 'का' का भाव व्यक्त करने के लिए षष्ठी का प्रयोग होता है। परन्तु षष्ठी विभक्ति के स्थान पर कई स्थलों पर समास का प्रयोग होता है। जैसे :—'दशरथस्य पुत्रः' अथवा 'दशरथ-पुत्रः' दशरथ का पुत्र।

विशेष—यह ध्यान में रखना चाहिए कि अँग्रेजी में 'of' द्वारा तथा हिन्दी में 'का' के द्वारा जितने सम्बन्ध व्यक्त किए जाते हैं, उन सभी सम्बन्धों को संस्कृत में 'षष्ठी विभक्ति' द्वारा नहीं व्यक्त किया जा सकता। उदाहरणार्थ—विशेषण का अर्थ अथवा समानाधिकरण का अर्थ व्यक्त करने के लिए जैसे—'स्वर्ण का पात्र' का अनुवाद संस्कृत में समास द्वारा 'हेमपात्रम्' होगा अथवा संज्ञापद 'हेम' के साथ प्रत्यय लगाकर 'हैमं पात्रम्' होगा, परन्तु 'हेम्नः पात्रम्' अनुवाद अशुद्ध है। 'मिट्टी का पात्र' का अनुवाद 'मृद्भाण्डम्' अथवा 'मृण्मयं भाण्डम्' होगा नकि 'मृदः भाण्डम्'। 'बहुत मूल्य का मोती'—'महार्घं मुक्ताफलम्'। 'शक्तिशाली मनुष्य'—'सबलो नरः' न कि 'बलस्य नरः'। इसी प्रकार 'वैशाख के महीने में'—'वैशाखे मासे' अथवा 'वैशाखमासे', नकि 'वैशाखस्य मासे'। 'बम्बई का नगर'—'मुम्बापुरी' अथवा मुम्बा नाम पुरी।

१०३—षष्ठी विभक्ति द्वारा 'रखने वाला' या 'स्वामी' का द्योतन होता है। जो वस्तु रक्खी जाती है अथवा जिस पदार्थ पर अधिकार होता है, उसमें प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा' (पंचतंत्र १)—जिसके स्वयं बुद्धि नहीं है। 'इमे नो गृहाः' (मृच्छ० १)—ये हमारे घर हैं। 'स्खलनं मनुष्याणां धर्मः'—भूल करना मनुष्य का स्वभाव है।

विशेष—प्रायः इस अर्थ का बोध प्रत्ययसिद्ध शब्दों द्वारा होता है। "'पैतृकं रिक्थम्'—पूर्वजों की सम्पत्ति। इसी प्रकार 'अस्मदीयं गृहं' इत्यादि।

१०४—जिन वस्तुओं के समुदाय या समूह का बोध कराने के लिए किसी एक अंशमात्र का ग्रहण किया जाता है, उन विशेष्यों अथवा विशेष्यों की भाँति प्रयुक्त शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है; ऐसी 'षष्ठी' को 'अंश वाचक षष्ठी' कहते हैं। जैसे—'जलस्य बिन्दुः'—पानी की बूँद। 'अयुतं शरदां ययौ' (रघु० १०।१)—दश हजार वर्ष बीत गये। इसी प्रकार-'गवां शतसहस्राणि' (सहस्रों गायें)।

(अ) 'अंश वाचक षष्ठी' का प्रयोग पूर्ण संख्या वाचक विशेषणों तथा संख्या वाचक सर्वनामों और विशेषणों के योग में भी होता है। जैसे—'त्वमेव कल्याणि तयोस्तृतीया' (रघु० ६।३६) हे कल्याणी, तुम्हीं उनकी तीसरी हो। 'गृह्यतामनयोरन्यतरा' (मालविका० ५)—उन दोनों में से एक को ग्रहण कीजिए। 'तासामन्यतमा' (मालती० १)—उनमें से एक।

(ब) इसी प्रकार 'अंशवाचक षष्ठी' का प्रयोग 'तमप्' और 'ईष्ठन्' प्रत्ययान्त विशेषणों तथा इसी प्रकार का अर्थ बोध कराने वाले शब्दों के योग में भी होता है। जैसे—'द्विजानां ब्राह्मणः श्रेष्ठः' द्विजों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है। 'धौरेयः साहसिकानामग्रणी विदग्धानां' (कादम्बरी ५) साहसिकों तथा काव्यरसिकों में श्रेष्ठ।

विशेष—अनुच्छेद ८६ में षष्ठी के प्रयोग पर विचार किया जा चुका है।

(स) कभी-कभी 'में' अथवा 'में से' के अर्थ में 'मध्ये' के योग में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'एतेषां मध्ये केचिदरेः कोष-दण्डाभ्यामर्थिनः' (मुद्रा० ५)—इनमें से कुछ लोग शत्रु का कोष और सेना के इच्छुक हैं।

१०५—जब किसी घटना के व्यतीत होने में किसी निश्चित समय के समाप्त होने की बात कही जाती है तब उस घटना को व्यक्त करने वाले शब्द के योग में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य' (मुद्रा० ६) पिता जी को मरे हुए आज दश महीने हो गये। 'कतिपये संवत्सरास्तस्य तपस्तप्यमानस्य' (उत्तर० ४)—उसको तपस्या करते हुये कई वर्ष बीत गये।

१०६—'प्रिय' अथवा इसका उलटा 'अप्रिय' अर्थ-द्योतक शब्दों के योग में (जिसको प्रिय अथवा अप्रिय लगे उसमें) षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीत्' (उत्तर० ६) सीता जी राम को स्वभाव से ही प्रिय थीं। 'कायः कस्य न वल्लभः' (पंचतंत्र २) शरीर किसको नहीं प्रिय है?

(अ) 'अन्तर' के अर्थ को व्यक्त करने वाले 'विशेषः' 'अन्तरं' शब्दों के योग में भी इस विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'एतावानेवायुष्मतः शतक्रतोश्च विशेषः' (शाकुन्तल० ७)—इतना ही आप और इन्द्र में अन्तर है। 'अत्रभवतो मम च समुद्रपल्वलयोरिवान्तरं' (मालविका० १)। समुद्र और क्षुद्रजलाशय की ही भाँति आप और मुझ में अन्तर है।

१०७—[1] कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों के योग में, उनके कर्त्ता में षष्ठी अथवा तृतीया का प्रयोग होता है। जैसे—'नास्ति असाध्यं नाम मनोभुवः' (कादम्बरी १५७)—कामदेव के लिए कुछ असाध्य नहीं है। इसी तरह, 'न वयमनुग्राह्याः प्रायो देवतानाम्' (कादम्बरी ६१)। 'न वञ्चनीयाः प्रभवोनुजीविभिः' (किरात० १।४)। राक्षसेन्द्रस्य संरक्ष्यं मया लव्यमिदं वनम्' भट्टि० ८।१२९)—राक्षसेन्द्र द्वारा रक्षित यह वन मेरे द्वारा काट डाला जायगा।

१०८—[2] हेतु शब्द के योग में 'कारण' या 'प्रयोजन' वाचक शब्द और 'हेतु' शब्द दोनों में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्' (रघु० २।४७)—थोड़े के लिए बहुत को त्यागने की इच्छा रखने वाला। 'विस्मृतं कस्य हेतोः' (मुद्रा० १)—किस हेतु यह भुलाया गया?

विशेष—पतञ्जलि कहते हैं कि कारण वाचक शब्द निमित्त, कारण, हेतु आदि के योग में किसी भी विभक्ति और वचन के सर्वनाम का प्रयोग हो सकता है। परन्तु जिस विभक्ति और वचन में सर्वनाम रहेगा उसी विभक्ति और वचन में निमित्त, कारण, हेतु आदि शब्द भी रहेंगे। किन्तु बाद के संस्कृत कवियों, लेखकों के प्रयोगों से इसकी पुष्टि नहीं होती। 'केन-निमित्तेन-कारणेन-हेतुना तथा कस्मात् निमित्तात्-हेतोः' आदि प्रयोग 'कारण' अर्थ में मिलते हैं। इसी अर्थ में 'को हेतुः वससि या कं हेतुं वससि' आदि का प्रयोग

---

(१) कृत्यानां कर्त्तरि वा (२।३।७१)। तव्यत्, तव्य, अनीयर, यत्, ण्यत्, क्यप् और केलिमर् ये कृत्य प्रत्यय हैं।

(२) षष्ठी हेतु प्रयोगे (२।३।२६) सर्वनाम्नस्तृतीया च (२।३।२७)

हम नहीं करते। 'कस्मै हेतवे वससि' का भी प्रयोग नहीं होता; इसका अर्थ तो होता है कि 'किस प्रयोजन से रहते हो?' प्रत्युत 'किं निमित्तं-प्रयोजनं-कारणं-अर्थं' आदि का साधारण प्रयोग देखा जाता है। अतः पतञ्जलि का मत विरले स्थलों पर ही मान्य होना चाहिए।

१०९—[1] ति, तृ, अ, अन् आदि 'कृत्' प्रत्यय लगाकर धातुओं से निष्पन्न संज्ञाओं के प्रयोग में उनके कर्त्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति का प्रयाग होता है। जैसे—'क्रियामिमां कालिदासस्य' (विक्रमो० १) कालिदास की इस क्रिया (रचना) को। 'भर्त्तुः प्रणाशात्' (रघु० १४।१)—पति की मृत्यु से। 'शास्त्राणां परिचयः' (कादम्बरी १८) शास्त्रों का बोध। 'आहर्त्ता क्रतूनां (कादम्बरी ५)—यज्ञों का करने वाला। 'दुःखायेदानीं रामस्य सुहृदां दर्शनम्' (उत्तर० ३)—इस समय मित्रों का दर्शन राम के लिए दुःख ही के लिए है।

विशेष—द्विकर्मक धातुओं के योग में गौण कर्म में षष्ठी अथवा द्वितीया विभक्ति का प्रयाग होता है। जैसे—'नेता अश्वस्य स्रुघ्नं स्रुघ्नस्य वा' (महाभाष्य) स्रुघ्न के निकट घोड़ा ले जाने वाला। परन्तु ऐसा प्रयोग विरल है। साधारण रूप से षष्ठी का प्रयोग प्रधान और गौण दोनों कर्मों में होता है। जैसे—'गवां दुग्धस्य दोहनम्' 'सागरस्य अमृतस्य मन्थनं'। ऐसे प्रयोगों में प्रथम षष्ठी अर्थात् 'गवां' और 'सागरस्य' का भाव 'पंचमी' के अर्थ में है।

११०[2]—जब किसी वाक्य में कृत् प्रत्ययों द्वारा सिद्ध संज्ञापदों से व्यक्त क्रिया के कर्त्ता और कर्म दोनों का प्रयोग होता है तब कर्त्ता में न होकर केवल कर्म में ही षष्ठी का प्रयोग होता है। जैसे—'आश्चर्यं गवां दोहोऽगोपेन' (सिद्धान्त कौमुदी)—ग्वाला के बिना गाय का दुहा जाना आश्चर्य है।

(क)[3] कुछ वैयाकरणों के मत से यदि कृत् प्रत्यय निष्पन्न शब्द स्त्रीलिंग

---

१. कर्तृकर्मणोः कृति (२।३।६५) २. उभयप्राप्तौ कर्मणि (२।३।६६)। ३. शेषे विभाषा (वार्तिक), स्त्री प्रत्ययोरकाकारयोर्नायं नियमः। (वार्तिक)। स्त्री प्रत्यय इत्येके, केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति (सिद्धान्त कौमुदी)।

हो अथवा कुछ के मत से किसी लिंग का हो और एक वाक्य में कर्त्ता और कर्म दोनों का एक साथ प्रयोग हो तो कर्त्ता पद को तृतीया या षष्ठी विभक्ति में रखते हैं। जैसे—'विचित्रा जगतः कृतिर्हरेर्हरिणा वा' (सिद्धान्त कौमुदी)—हरि की यह संसार-रचना विचित्र है। 'शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा' (सिद्धान्त कौमुदी)। इसी प्रकार 'शोभना खलु पाणिनेः पाणिनिना वा सूत्रस्य कृतिः' (महाभाष्य)।

१११[1]—आशीर्वाद के अर्थ में 'आयुष्यम्', 'मद्रम्', भद्रम्', 'कुशलम्', 'सुखं', 'अर्थः' और 'हितम्' और एतदर्थ शब्दों के योग में चतुर्थी अथवा षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसेः—'कृष्णस्य-कृष्णाय कुशलं-हितं-भद्रं' (सिद्धान्त कौमुदी)—कृष्ण को कुशल, हित अथवा कल्याण प्राप्त हो।

११२[2]—तस् (अतसुच्) प्रत्ययान्त दिशा वाचक शब्दों के योग में तथा तस् प्रत्ययान्त शब्दों के समान अर्थ वाले 'उपरि', 'अधः', 'पुरः', 'पश्चात्', अग्रे', 'पुरस्तात्' आदि शब्दों के योग में, जिसको संकेत करके दिशा का निर्देश हो, उस शब्द में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'ग्रामस्य दक्षिणतः उत्तरतः' (सिद्धान्त कौमुदी) गाँव के दक्षिण या उत्तर। 'गतमुपरि घनानाम्' (शाकुन्तल० ७)—बादलों के ऊपर गया। 'तरूणामधः' (शाकुन्तल० १)—वृक्षों के नीचे। 'तिष्ठन् भाति पितुः पुरोभुवि-यथा' (नागानन्द १)—जैसे भूमि पर पिता के सामने खड़ा शोभित हो। 'यः पुरस्तात् यतीनाम्' (मालविका० १)—जो ऋषियों में सर्वोपरि है।

नोट—'उपरि' प्रायः समास में जोड़ दिया जाता है। जैसे—प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रम्' (उत्तर० ५)। 'चाणक्योपरि प्रद्वेषपक्षपातः' (मुद्रा० ३)।

---

१ चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः (२।३।७३)।
२ षष्ठ्यतसर्थ प्रत्ययेन (२।३।३०)।

(अ)[1] 'एनप्' प्रत्ययान्त दिशा वाचक 'दक्षिणेन' 'उत्तरेण' इत्यादि शब्दों के योग में, उस स्थान वाचक शब्द में, जिसके द्वारा दिशा का संकेत होता है, द्वितीया अथवा षष्ठी का प्रयोग होता है। जैसे:—'दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु' (महाभारत ६।८।२) (भीष्मपर्वणि) श्वेत के दक्षिण में और निषध के उत्तर में। 'दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम्' (शाकुन्तल० १) वृक्षवाटिका के दक्षिण में। 'धनपतिगृहानुत्तरेण' (मेघदूत ७८) कुबेर के घर से उत्तर।

(ब)[2] दूरार्थवाचक और निकटार्थवाचक 'दूर' और 'अन्तिक' आदि शब्दों के योग में षष्ठी अथवा पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे :—'ग्रामस्य ग्रामात् वा वनं दूरं-निकटं-समीपं' इत्यादि (सिद्धान्त कौमुदी)—जंगल गाँव से निकट या दूर है।

विशेष—ऊपर लिखे गये शब्दों के योग में अधिकतर षष्ठी विभक्ति का ही प्रयोग देखा जाता है। जैसे—'तस्याश्रमपदस्य नातिदूरे' (कादम्बरी २२) 'अतः समीपे परिणेतुरिष्यते' (शाकुन्तल० ५)। 'प्रयामि तस्याः सकाशम्' (कादम्बरी १५८)

११३—[3] ईश, प्रभु या समर्थ अर्थ में 'प्र + भू', दया अथवा अनुकम्पा अर्थ में 'दया', चिन्ता अर्थ में 'स्मृ' और अधि पूर्वक 'इ' धातुओं तथा एतदर्थक अन्य धातुओं के योग में इन क्रियाओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'ननु प्रभवत्यार्यः शिष्यजनस्य' (मालविका० १)—निश्चय ही आप अपने शिष्यों के ऊपर प्रभाव रखते हैं। 'प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः' (मालती० ४)। 'यदि प्रभविष्यामि आत्मनः' (शाकुन्तल० १)। 'नायं गात्राणामीष्टे' (कादम्बरी ३१२) वह अपने अंगों को अपने वश में नहीं रख सकता। 'रामस्य दयमानोऽसावध्येति तव लक्ष्मणः' (भट्टि० ८।११९)—'राम के ऊपर दयार्द्र लक्ष्मण तुम्हारा स्मरण करते हैं।

१—एनपा द्वितीया (२।३।३१) २—दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् (२।३।३४) ३—अधीगर्थदयेशां कर्मणि (२।३।५२)

'स्मर्तुं दिशंति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः' (किरात० ५।२८)—अप्सराओं को स्वर्ग का स्मरण नहीं करने देते। 'अस्मार्षीज्जलनिधिमंथनस्य शौरिः' (शिशुपालवध ८।६४)—श्री कृष्ण ने समुद्र-मंथन का स्मरण किया।

विशेष—(अ)—'योग्य' अर्थ में प्र पूर्वक 'भू' धातु का प्रयोग 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द के साथ होता है। (पाठ १६ देखिए)। 'पर्याप्त' अर्थ में 'प्र + भू' के योग में चतुर्थी का प्रयोग होता है। (देखिए अनुच्छेद ६७ (अ)

(ब)—'स्मरण करना' इस सामान्य अर्थ में 'स्मृ' धातु के कर्म में द्वितीया का ही प्रयोग होता है। जैसे—'स्मरसि तान्यहानि स्मरसि गोदावरीं वा' (उत्तर० १) ऐसे स्थलों पर कर्म का स्पष्ट प्रयोग किया जाना अभीष्ट है (यदा कर्म विवक्षितं भवति तदा षष्ठी न भवति—महाभाष्य)

(स)—'सचेत', 'सज्ञान', 'सावधान' इन अर्थों के सूचक विशेषणों तथा इनके प्रतिलोमार्थ सूचक विशेषणों के योग में कर्म में षष्ठी विभक्ति आती है। जैसे—'अनभिज्ञो गुणानां यः स भृत्यैर्नानुगम्यते' (पंचतंत्र १।१) जो गुणों का ज्ञाता नहीं है, भृत्य उसका अनुसरण नहीं करते। इसीप्रकार—'अनभ्यन्तरे आवां मदनगतस्य वृत्तान्तस्य' (शाकुन्तल० ३)। कभी-कभी सप्तमी का भी प्रयोग होता है। जैसे—'यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञः' (उत्तर० ४) 'तत्राप्यभिज्ञोजनः' (उत्तर० ५)।

११४—[1] 'अनेक बार' अर्थ को व्यक्त करनेवाले शब्दों जैसे द्विः, त्रिः अथवा संख्यावाचक क्रियाविशेषण जैसे अष्टकृत्वः, शतकृत्वः आदि अव्यय पदों के योग में कालवाचक शब्द में सप्तमी के भाव में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—द्विरह्नोभोजनम्' (सिद्धान्तकौमुदी)—दिन में दो बार भोजन। 'शतकृत्वस्तवैकस्याः स्मरत्यह्नो रघूत्तमः' (भट्टि० ८।१२२) रघुवंशियों में श्रेष्ठ (श्रीराम चन्द्र जी) केवल तुम्हारा ही दिन में सौ बार स्मरण करते हैं।

---

(१) कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे (२।३।६४)

११५—[1]जब 'क्त' प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग वर्तमान काल के रूप में होता है तब उनका प्रयोग षष्ठ्यन्त पदों के योग में होता है। जैसे—'अहमेव मतो महीपतेः' (रघु० ८।८)—राजा द्वारा मान्य मैं ही हूँ। 'विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम्' (रघु० १०।३६)—मैं जानता हूँ कि उसके द्वारा तीनों लोक परितप्त (दुःखी) हो रहे हैं। 'राज्ञो पूजितः' (सिद्धान्तकौमुदी)—राजाओं द्वारा पूजित है।

(अ) परन्तु जब 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द से भूतकाल विवक्षित रहता है तब उसके योग में केवल तृतीया का प्रयोग होता है। जैसे—'न खलु विदितास्ते चाणक्यहतकेन' (मुद्रा० २)—क्या वे नीच चाणक्य द्वारा नहीं ज्ञात हो गये?

(ब) जब 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द, भाववाचक नपुंसकलिंग संज्ञा शब्दों की भाँति प्रयुक्त होते हैं तब उनके योग में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'मयूरस्य नृत्तम्' (महाभाष्य)—मयूर का नृत्य। 'कोकिलस्य व्याहृतम्', 'नटस्य भुक्तम्', 'छात्रस्य हसितम्' (महाभाष्य)।

११६—'लिए', 'के लिए' के अर्थ में प्रयुक्त 'कृते' और 'उपस्थिति में' 'सामने' के अर्थ में प्रयुक्त 'समक्ष' के योग में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'अमीषां प्राणानां कृते' (भर्तृ० ३।३६)—इन प्राणों के लिए। 'राज्ञः समक्षमेव' (मालविका० १)—राजा के सामने ही।

नोट—'कृते' शब्द प्रायः दूसरे शब्दों के साथ समास के रूप में हो जाता है। जैसे—'काव्यम् अर्थ कृते' (काव्य प्रकाश १)।

११७[2]—तुल्यार्थ या समानार्थ वाचक तुल्य, सदृश, सम, संकाश आदि शब्दों के योग में जिससे किसी की तुलना की जाती है, उस शब्द को षष्ठी

---

(१) क्तस्य च वर्तमाने (२।३।६७)

(२) तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम् (२।३।७२)।

अथवा तृतीया में रखते हैं। जैसे—कृष्णस्य तुल्यः सदृशः इत्यादि (सिद्धान्त कौमुदी)। (तृतीया विभक्ति के प्रयोग के लिए अनुच्छेद ५२ (ब) देखिए)।

विशेष—पाणिनि का कथन है कि 'तुला' और 'उपमा' शब्दों का प्रयोग तृतीया के साथ नहीं हो सकता है। परन्तु यह लेखन कला में अच्छे प्रयोगों के विरुद्ध है। जैसे—'तुलां यदारोहति दंतवाससा' (कुमार० ५।३४)। 'नभसा तुलां समारुरोह' (रघु० ८।१५)। 'स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना' (शिशुपालवध १।४)। मल्लिनाथ ने इन प्रयोगों को पाणिनि के सूत्रों से सिद्ध करने की चेष्टा की है, परन्तु उनका यह प्रयास उचित नहीं है।

(अ) 'योग्य', 'अनुरूप' अर्थ वाचक विशेषणों के योग में सामान्यतया षष्ठी विभक्ति का ही प्रयोग होता है। जैसे—'सखे पुंडरीक, नैतदनुरूपं भवतः' (कादम्बरी १४६)—मित्र पुंडरीक, यह तुम्हारे योग्य नहीं है। 'सदृशमेवैतत्स्नेहस्यानवलेपस्य' (शाकुन्तल ६)—यह गर्व रहित प्रेम के अनुरूप ही है। (अनुच्छेद ६६ (अ) का भी अवलोकन कीजिए)।

११८—जब 'स्वभाव' या 'प्रकृति' व्यक्त करना होता है तब 'तृ' प्रत्ययान्त संज्ञा पदों के योग में द्वितीया का प्रयोग होता है न कि षष्ठी का। जैसे 'पितरमाराधयिता भव' (विक्रमो० ५)—सदा अपने पिता को प्रसन्न रक्खो 'सम्भावयिता बुधान्, न्यग्भावयिता शत्रून्' (दशकु० २।८) विद्वानों का सत्कार करना और शत्रुओं का तिरस्कार करना जिसका स्वभाव है। परन्तु 'जगतो निर्माता' और 'घटस्य कर्त्ता' (अपवाद हैं)।

(अ) 'अनुकरण करना' या 'समान होना' अर्थ में 'अनु + कृ' धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—'ततोऽनुकुर्यात् तस्याः स्मितस्य' (कुमार० १।४४) सम्भव है तब उसकी मुस्कराहट के समान हो जाय। 'श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्' (कादम्बरी १०)—श्यामता में भगवान हरि का अनुकरण करती हुई। 'सर्वाभिरन्याभिः कलाभिरनुचकार तं वैशाम्पायनः' (कादम्बरी ७६) वैशम्पायन ने अन्य सभी कलाओं में

उसका अनुकरण किया। इसी प्रकार 'शैलाधिपस्यानुचकार लक्ष्मीम्' (भट्टि० २।८)।

११९[1]—'व्यापार करना' 'जुआ खेलना' अर्थ-बोधक 'व्यवहृ' और 'पण्' धातुओं के योग में कर्म-षष्ठी का प्रयोग होता है। जैसे—शतस्य व्यवहरणं पणनं' (सिद्धान्तकौमुदी)—सैकड़ों का लेन-देन करना या दाँव पर लगा देना। इसीप्रकार 'प्राणानामपणिष्टासौ' (भट्टि ८।१२१)। परन्तु द्वितीया का साधारणतया अधिक प्रयोग होता है। जैसे—'पणस्व कृष्णां पाञ्चालीम्' (महाभारत २।६५।३२)।

(अ)[2] जब इसी अर्थ में 'दिव' धातु का प्रयोग होता है तब उसके कर्म में भी षष्ठी का प्रयोग होता है। जैसे—'शतस्य दीव्यति' (सिद्धान्त कौमुदी)।

(३) परन्तु उपसर्ग पूर्वक 'दिव्' धातु के योग में द्वितीया या षष्ठी किसी का प्रयोग हो सकता है। जैसे—'शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति' (सिद्धान्त कौमुदी

—

अभ्यास

१—तस्याः पंडितकौशिक्या सहितायाः समक्षमेव न्याय्यो व्यवहारः। (मालविका० १)

२—श्वापदानुसरणैर्मम गात्राणामनीशोस्मि संवृत्तः। (शाकुन्तल० २)

३—कथं मामेकाकिनीं त्यक्त्वार्यपुत्रो गतः। भवतु कोपिष्यामि यदि तं प्रेक्षमाणात्मनः प्रभविष्यामि। (उत्तर० १)

४—अयि, भागीरथीप्रसादाद्वनदेवतानामप्यदृश्यासि संवृत्ता। (उत्तर०३)

---

(१) व्यवहृपणोः समर्थयोः (२।३।५७)। (२) दिवस्तदर्थस्य (२।३।५८)। (३) विभाषोपसर्गे (२।३।५६)।

५—हा देवि, स्मरसि वा तस्य प्रदेशस्य तत्समयविश्रंभातिशयप्रसंगसाक्षिणः। (उत्तर० ६)

६—एवमवस्थिते यदत्रावसरप्राप्तमीदृशस्य चानुरागस्य सदृशमस्मदागमनस्य चानुरूपमात्मनि समुचितं तत्र प्रभवति देवीत्यभिधाय मन्मुखासक्तदृष्टिः कपिंजलस्तूष्णीमासीत्। (कादम्बरी १५८)

७—धिङ् मां दुष्कृतकारिणीं यस्याः कृते तवेयमीदृशी दशा वर्तते। (कादम्बरी १६७)

८—हा दयित माधव, परलोकगतोपि स्मर्तव्यो युष्माभिरयं जनः। न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति। (मालती० ५)

९—कापि महती वेला वर्तते तवादृष्टस्य। तदनया सहैवागच्छ। (कादम्बरी २४१)

१०—अहं हि संमतो राज्ञो य एवं मन्यते कुधीः।
बलीवर्दः स विज्ञेयो विषाणपरिवर्जितः॥ (पंचतंत्र १।१०)

११—शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यंतमन्तरम्।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पांतस्थायिनो गुणाः॥ (हितो० १)

१२—अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदर्थम्। (भर्तृ० ३।३०)

१३—समरशिरसि चंचत्पंचचूडश्चमूना-
मुपरि शरतुषारं कोप्ययं वीरपोतः (किरति)। (उत्तर० ५)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—स राजा मनसि धर्मेण, कोपे यमेन, प्रतापे वह्निना, मुखे शशिना, प्रज्ञायां सुरगुरुणा, तेजसि सवित्रा च वसता, सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य। (कादम्बरी ६)

२—नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना भगवता परिभूतकलिकालविलसितेन धर्मेण न स्मर्यते कृतयुगस्य। (कादम्बरी ४४)

३—उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं, घनोदयः प्राक् तदनंतरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः॥ (शाकुन्तल ०७)

४—शंबूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः।
शीर्षच्छेद्यः स ते राम तं हत्वा जीवय द्विजम्॥ (उत्तर ०१)

५—अपीप्सितं क्षत्रकुलांगनानां
न वीरसूशब्दमकामयेताम्। (रघु० १४।४)

६—वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य॥ (रघु ०१४।६१)

७—देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः।
प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति। (उत्तर ०३)

८—अयं मैथिल्यभिज्ञानं काकुत्स्थस्यांगुलीयकः।
भवत्याः स्मरतात्यर्थमर्पितः सादरं मम॥ (भट्टि० ८। ११८)

९—पुरःप्रवेशमाश्चर्यं बुद्ध्वा शाखामृगेण सा।
चूडामणिमभिज्ञानं ददौ रामस्य संमतम्॥
रामस्य शयितं भुक्तं जल्पितं हसितं स्थितम्।
प्रक्रांतं च मुहुः पृष्ट्वा हनूमंतं व्यसर्जयत्॥ (भट्टि०८।१२४, १२५)

१०—तं दृष्टावऽचिन्तयत्सीता हेतोः कस्यैष रावणः।
अवरुह्य तरोराराादेति वानरविग्रहः॥
उत्तराहि वसन् रामः समुद्राद्रक्षसां पुरम्।
अवैल्लवणतोयस्य स्थितां दक्षिणतः कथम्। (भट्टि० १०४, १०७)

———

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—नवयुवक को बड़े ध्यान से देख कर स्त्रियाँ बड़ी कठिनाई से अपने आपको सँभाल सकीं (ईश्) ।

२—यदि मनुष्य अपने कार्यों में पशुओं का अनुकरण (अनु + कृ) करते हैं तो दोनों में क्या अन्तर है ?

३—मित्र, निराश न होओ, जिसके लिए (कृते) तुम इतने दुःखी हो वह स्वयं शीघ्र ही तुम्हारे पास आवेगी ।

४—अपने गृह-कार्य का भार अपने पुत्रों को सौंप कर वन में निवास करने वालों को जो सुख प्राप्त होता है, उसके बराबर कोई दूसरा सुख नहीं है ।

५—तुम जिस उच्च कुल में उत्पन्न हुये हो, क्या तुम्हारा यह कार्य उसके अनुरूप है ?

६—मेरे गुरुजनों की आज्ञा केवल मेरे शरीर पर प्रभुत्व (प्र + भू) रख सकेगी, परन्तु मेरे मन और उसकी क्रियाओं पर नहीं ।

७—बहुत दिनों तक अपनी माता से दूर रखे जाने के कारण, बच्चा बराबर उसकी याद करता है ।

८—इस पर्वत के उत्तर में (उत्तरतः) हरी घास से आच्छादित एक विस्तृत मैदान है, जो प्रायः दर्शकों की दृष्टि को विमोहित कर देता है ।

९—सभी राजमंत्रियों के सामने (समक्ष) नौकरने जो कहानी राजा से कही, उसने राजा के हृदय में घर कर लिया ।

१०—यहाँ मैं अपने सामने (पुरः) हड्डियों का ढेर और वहाँ पेड़ के नीचे (अधः) बहुत से मांस के टुकड़े देखता हूँ ! यह क्या हो सकता है ?

११—सुषेण के शासन में उसकी प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता था कि मैं राजा द्वारा पूज्य (पूज्) और मान्य (मन्) हूँ ।

१२—प्रजाओं द्वारा मान्य गुणों के कारण आप अपने पिता के समान हों ।

१३—मालविका को देखने के लिए गई हुई देवी को बहुत समय हो गया।

१४—यह राजा नौकरों द्वारा सेव्य है और 'नृपाल' की पदवी उसके लिये बिलकुल उपयुक्त है।

१५—सत्संगति के समान (सदृश) इस संसार में कुछ नहीं है।

१६—बुद्धिमान् छात्रों के लिए सुन्दर वस्त्रों की अपेक्षा अच्छी पुस्तकें अधिक प्रिय हैं।

१७—सदाचारी ब्राह्मण को दिन में तीन बार संध्योपासना करनी चाहिए और सूर्यास्त के पूर्व दिन में केवल एक बार भोजन करना चाहिए।

१८—सीता के लिए राम प्राणों से भी अधिक प्रिय थे।

पाठ ११

भावे षष्ठी और सप्तमी

१२०—"जब शतृ अथवा शानच् प्रत्ययान्त शब्द का लिंग वचन और कारक, क्रिया के कर्त्ता से भिन्न किसी अन्य कर्त्ता के अनुरूप होता है, तब वह 'वाक्य-खंड' (Phrase) 'भावे' कहलाता है"—वेन।

जिस उपवाक्य में यह स्वतंत्र वाक्य-खंड रहता है उसकी साधारण वाक्य-रचना से उस वाक्य-खण्ड का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। जैसे—'वायु अनुकूल होने पर जहाज चल पड़ा' (यहाँ पर 'अनुकूल होने पर' स्वतंत्र वाक्य-खण्ड है, जिसका 'जहाज चल पड़ा' उपवाक्य की रचना से कोई सम्बन्ध नहीं है)। विभिन्न भाषाओं में 'भावे' की विभक्तियाँ विभिन्न होती हैं। अँग्रेजी में वही भावे-विभक्ति प्रथमा होती है, लैटिन में पंचमी और संस्कृत में षष्ठी और सप्तमी होती है। जब किसी वाक्य में आश्रित-उपवाक्य का कर्त्ता प्रधान-उपवाक्य में कर्त्ता के स्थान पर प्रयुक्त संज्ञा अथवा संज्ञास्थानीय सर्वनाम के रूप में नहीं रहता, तब स्वतंत्र-वाक्य-खण्ड (भावे) का प्रयोग हो सकता है। उदाहरणार्थ इस वाक्य को लीजिए :—'लंका को ले लेने के पश्चात् राम अयोध्या को लौटे।' यहाँ दोनों उपवाक्यों का कर्त्ता एक ही है, अतः स्वतंत्र वाक्य-खण्ड (भावे) का प्रयोग नहीं हो सकता। इस वाक्य का अनुवाद होगा—'लंकां गृहीत्वा गृहीतलंकः वा रामोऽयोध्यां निववृते'। किन्तु 'राम, बन्दरों के लंका ले लेने पर, अयोध्या लौट आए', इस वाक्य का अनुवाद इस प्रकार किया जा सकता है—'कपिभिर्गृहीतायां लंकायां (अथवा कपिषु लंकां गृहीतवत्सु) रामोऽयोध्यां निववृते।'

नोट—इन भावे-वाक्यखण्डों की रचना में 'शतृ' और 'शानच्'

प्रत्ययान्त पदों के कर्त्ता को षष्ठी अथवा सप्तमी में रखना चाहिए और उनका लिंग, वचन उन्हीं के कर्त्ता के अनुसार होना चाहिए।

१२१[1]—जिस संज्ञा अथवा सर्वनाम पद की होती हुई (शतृप्रत्ययान्त) क्रिया द्वारा दूसरी क्रिया के सम्पादन का बोध होता है, उस संज्ञा अथवा सर्वनाम पद में सप्तमी का प्रयोग होता है। अर्थात् प्रथम क्रियाव्यापार का समय ज्ञात रहता है और दूसरे क्रिया-व्यापार का समय अज्ञात रहता है। दूसरे के समय का निर्धारण पहिले के आधार पर किया जाता है। जैसे—'कः पौरवे वसुमतीं शासति अविनयमाचरति' (शाकुन्तल० ६)—पुरु वंशी (दुष्यन्त) के शासन करते हुए कौन उद्दण्डता का आचरण कर रहा है? 'वचस्यवसिते तस्मिन् ससर्ज गिरमात्मभूः' (कुमार० २।५३) उस बात के समाप्त हो जाने पर ब्रह्मा ने वाणी का उच्चारण किया। 'क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति' (मुद्रा० १)—यह कौन मेरे रहते चन्द्रगुप्त को जीतने की इच्छा करता है?

विशेष—संस्कृत में भावे सप्तमी का प्रयोग अँग्रेजी के 'Nominative-Absolute' के ढंग पर होता है।

१२२[2]—अनादर होते हुये जब कोई कार्य सम्पादित होता है तब जिसका अनादर होता है उसमें षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे :—'नन्दाः पशवइव हताः पश्यतो राक्षसस्य' (मुद्रा० ३)—राक्षस के देखते हुए नन्द लोग पशुओं की भाँति मार डाले गये। इसी प्रकार 'तथापि', 'ऐसा होते हुये', 'यद्यपि', 'हालाँकि' आदि भाव को व्यक्त करने वाले शब्दों से युक्त वाक्य या वाक्यांशों में षष्ठी-भावे-वाक्य-खण्ड का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे—यद्यपि मैं देख रहा था, तब भी बालक एक बाज द्वारा अपहृत कर लिया गया। 'पश्यतोऽपि मे श्येनेनापहृतः शिशुः' (पंचतंत्र १।२१)।

१२३—अंग्रेजी के अव्यय (Particles) शब्द When, while

---

(१) यस्य च भावेन भावलक्षणम् (२।३।३७)।

(२) षष्ठी चानादरे (२।३।३८)

आदि के भाव को प्रकट करने के लिए 'भावे-षष्ठी' का प्रयोग प्रायः भावे-सप्तमी की तरह किया जाता है और तब भावे-षष्ठी अपना सामान्य अर्थ नहीं रखती। जैसे :—'एवं तयोः परस्परं वदतोः स राजा शयनमासाद्य प्रसुप्तः' (पंचतंत्र १।६) —जब वे दोनों इस तरह बातचीत कर रहे थे, राजा अपने बिछौने पर आकर सो गया।

विशेष—जब किसी स्वतंत्र-वाक्य-खण्ड में 'होते हुये' कृदन्त रहता है तब संस्कृत में उसे छोड़ दिया जाता है और उसके स्थान पर दो विशेष्य अथवा एक विशेष्य और एक विशेषण साथ-साथ भावे विभक्ति में रक्खे जाते हैं। जैसे :—'नाथे कुतस्त्वयि अशुभं प्रजानां' (रघु० ५।१३)—आपके राजा होते हुये (रहते हुए) प्रजा का किसी भी प्रकार का अनिष्ट कैसे हो सकता है ?

१२४—कभी-कभी 'अनादर' 'यद्यपि' 'तथापि' आदि अर्थों में भावे-षष्ठी और भावेसप्तमी दोनों का प्रयोग होता है। जैसे—रुदति पुत्रे रुदतो वा पुत्रस्य पिता प्राव्राजीत्' (सिद्धान्त कौमुदी)—पुत्र के रोते रहने पर भी पिता सन्यासी हो गया।

(अ)—'जैसे ही', 'ऐसा हुआ नहीं—कि', 'मुश्किल से ऐसा हुआ कि उसी समय' 'जब ऐसा हुआ—उसी क्षण' आदि भाव को व्यक्त करने के लिए भावे-सप्तमी का प्रयोग होता है और सप्तमी के साथ 'एव' शब्द जोड़ दिया जाता है अथवा 'शतृ' और 'शानच्' प्रत्ययान्त पद 'मात्र' के साथ समस्त होकर सप्तमी में 'एव' के साथ अथवा 'एव' के बिना प्रयुक्त होता है। जैसे—'अनवसित-वचन एव मयि महानाशीविष उदैरयच्छिरः' (दशकुमार० २।४) जैसे ही मैंने अपना कथन समाप्त किया कि एक विशाल सर्प ने अपना सिर उठाया। 'अप्रभातायामेव रजन्याम्' (मुद्रा० १)—अभी प्रातः काल हुआ ही था कि। 'प्रविष्ट मात्र एव तत्रभवति निरुपप्लवानि नः कर्माणि संवृत्तानि' (शाकुन्तल० ३)।—आपके प्रवेश मात्र से ही हम लोगों के सभी कार्य निर्विघ्न हो गये।

नोट—'मात्र' शब्द अन्य विभक्तियों में भी 'एव' के साथ अथवा 'एव' के बिना उपर्युक्त भाव को ही व्यक्त करता है। जैसे—'जातमात्रं न यः शत्रुं व्याधिं च प्रशमं नयेत्' (पंचतंत्र ३।१)—शत्रु और रोग को उत्पन्न होते ही जो दबा नहीं देता।

(ब)—कभी-कभी 'एवं' 'इत्थं', 'तथा', इति' आदि के साथ कृदन्त पद अव्यय की तरह प्रयुक्त होते हैं। जैसे—'एवं गते' (शाकुन्तल० ४) ऐसी दशा होने पर। 'तथानुष्ठिते' (हितो० ३)—ऐसा करने पर।

१२५[1]—स्वतंत्र-वाक्य-खण्डों के कर्त्ता अथवा कर्म को किसी मुख्य उप-

---

(१) यह एक ऐसा विषय है जिस पर वैयाकरण मौन हैं। फिर भी मैं समझता हूँ कि इस प्रकार का प्रयोग निम्न प्रकार से निश्चित किया जा सकता है:—

(१) 'स्वतंत्र वाक्य रचना' के लक्षण द्वारा प्रमाणित,

(२) प्रसिद्ध संस्कृत लेखकों के प्रयोगों द्वारा प्रमाणित,

(३) 'लैटिन' जैसी प्राचीन भाषाओं में प्रयुक्त उदाहरणों द्वारा।

लक्षण में स्पष्टतया उल्लेख है कि 'स्वतंत्र-वाक्य-खण्ड' का कर्त्ता किसी भी दशा में प्रधान-उपवाक्य में नहीं प्रयुक्त होना चाहिए। दूसरे संस्कृत लेखकों की कृतियों में ऐसे प्रयोग बहुत ही कम या बड़ी कठिनता से मिलेंगे जिनमें 'प्रधान-उपवाक्य' में कर्त्ता या कर्म षष्ठी विभक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी विभक्ति में दुहराया गया हो। जैसे 'महाबली' कहना ठीक नहीं है, 'महाबलः' प्रयोग ही ठीक है, उसी प्रकार 'दुह्यमाना गा जलमपाययत्' 'गोषु दुह्यमानासु' इत्यादि की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त और सुष्ठु प्रयोग है और इसीलिए मुहावरेदार है। तीसरे 'भावेविभक्ति' का प्रयोग इसी प्रकार लैटिन में भी है। "जब विशेष्य अथवा सर्वनाम पद विशेषण अथवा कृदन्त के साथ स्वयं एक पद का निर्माण करते हैं और वे किसी दूसरे शब्द के लिंग, वचन के आश्रित नहीं रहते, तो वे अपादान के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—"Pythagoras Tarquinio Superbo regnate in Italiam

वाक्य में षष्ठी के अतिरिक्त किसी विभक्ति में, चाहे संज्ञा हो चाहे सर्वनाम हो, दुहराते नहीं। जब ऐसे उदाहरण मिलें जहाँ प्रधान उपवाक्य में कर्त्ता अथवा कर्म अथवा तदस्थानीय सर्वनाम को दुहराना हो तब स्वतंत्र-वाक्य-खण्ड नहीं बनाना चाहिए, किन्तु सम्पूर्ण वाक्य को एक मान कर उसका अनुवाद कृत् प्रत्ययान्त शब्दों द्वारा करना चाहिए। जैसे—'गोषु दुह्यमानासु ता जलमपाययत्' के स्थान पर 'दुह्यमाना गा जलमपाययत्' लिखना चाहिए। इसी प्रकार 'आगतेषु विप्रेषु तेभ्यो दक्षिणां देहि' उतना मुहावरेदार प्रयोग नहीं है जितना 'आगतेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणां देहि'। 'आपणात् पात्रे समानीते तस्मिन्नन्नं पचामि' के स्थान पर 'आपणात् समानीते पात्रे अन्नं पचामि' अधिक सुष्ठु प्रयोग है। इसी प्रकार 'सारंगे एवं विचारयति स (सारंगः) व्याधेन हतः' उतना मुहावरेदार नहीं है जितना 'एवं विचारयन् सारंगो व्याधेन हतः'। इसी प्रकार 'तडयतोऽपि स्वामिनस्तस्मै भृत्या न कुप्यन्ति' मुहावरेदार नहीं है, किन्तु 'ताडयतेऽपि स्वामिने भृत्या न कुप्यन्ति' मुहावरेदार प्रयोग है। परन्तु 'मदने हरेण दग्धे तस्य पत्नी विवशा बभूव' अथवा 'मृतेऽस्मिन् राज्ञि तस्य पुत्रोराज्यमधिगमिष्यति' सर्वथा मुहावरेदार प्रयोग है।

---

venit"। इस प्रकार यद्यपि संस्कृत वैयाकरण इस विषय में मौन हैं, फिर भी उक्त तीनों सिद्धान्तों से निष्कर्ष निकलता है कि जो अधिक संक्षिप्त और मुहावरेदार होता है वह उसकी अपेक्षा शुद्ध है जिस पर वैयाकरणों ने अपने मौन से किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं प्रकट की है। एक मेरे दाक्षिणात्य मित्र ने मेरा ध्यान 'नारायणीयम्' नामक कृति की ओर आकृष्ट किया है जो श्री भागवत पुराण का संक्षिप्त संस्करण है, जिसमें ग्रन्थकारने उपर्युक्त नियम का पालन ठीक से नहीं किया है। मेरे मित्र ने अपने इस वक्तव्य की पुष्टि में दो या तीन उदाहरण भी दिये हैं। मेरे विचार से इस प्रकार के प्रयोग अशुद्ध और मुहावरे से रहित हैं। ऐसे अपर्याप्त प्रमाणों के आधार पर मैं उक्त नियम में संशोधन के लिए तैयार नहीं हूँ।

अभ्यास

१—अलमलमुपालम्भेन । पत्तने विद्यमानेऽपि ग्रामे रत्नपरीक्षा (मालविका० १)

२—इदमवस्थान्तरं गते तादृशेनुरागे किं वा स्मारितेन (शाकुन्तल० ५)

३—मा तावदनात्मज्ञे देवेन प्रतिषिद्धे वसंतोत्सवे त्वमाम्रकलिकाभंगं किमारभसे (शाकुन्तल० ६)

४—अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां किं दीपिकापौनरुक्त्येन । (विक्रमो० ३)

५—आर्ये आत्रेयि, अथ तस्मादरण्यात् परित्यज्य गते लक्ष्मणे सीतादेव्याः किं वृत्तमित्यस्ति काचित् प्रवृत्तिः । (उत्तर० २)

६—हा कष्टमरुन्धति वसिष्ठाधिष्ठितेषु, रघुकदंबकेषु जीवंतीषु च प्रवृद्धासु राज्ञीषु, कथमिदमापतितम् । (उत्तर० २)

७—अत्रान्तरे शक्तिखंडमर्षितेन गांडीविनैवं भणितम् । अरे दुर्योधनप्रमुखाः कुरुबलसेनाप्रभवः, अरे अविनयनदीकर्णधार कर्ण, युष्माभिर्मम परोक्ष एकाकी पुत्रकोऽभिमन्युर्व्यापादितः । अहं पुनर्युष्माकं प्रेक्षमाणानामेनं कुमारवृषसेनं स्मर्तव्यशेषं नयामि । (वेणी० ४)

८ कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ।। (शाकुन्तल० ५)

९—मनोरथस्य यद्बीजं तद्दैवेनादितो हृतम् ।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्यागमः कुतः ।। (उत्तर० ५)

१०—सा सीतामंकमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम् ।
मामेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात् ।। (रघु० १५।८४)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—राजा देवीमुखेन दुहितरमुवाच । पुत्रि, त्वयि दुहितरि स्थितायां किमेके युज्यते यत्सर्वे पार्थिवाः मया सह विग्रहं कुर्वन्ति । (पंचतंत्र १।५)

२—अथ कदाचिदवसन्नायां रात्रावस्ताचलचूडावलंबिनि भगवति कुमुदिनीनायके चंद्रमसि लघुपतनको नाम वायसो व्याधमपश्यत् । (हितो० १)

३—विकारहेतौ सति विक्रियंते येषां न चेतांसि त एव धीराः । (कुमार० १।५९)

४—अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी । (कुमार० ४।३१)

५—यस्मिञ्जीवति जीवन्ति बहवः सोऽत्र जीवति ।
वायसाः किं न कुर्वंति चंच्वा स्वोदरपूरणम् ।। (पंचतंत्र १।१)

६—दर्शितभयेऽपि धातरि धैर्यध्वंसो भवेन्न धीराणाम् ।
शोषितसरसि निदाघे नितरामेवोद्धतः सिंधुः ।। (पंचतन्त्र १।१)

७—गुणवत्तरपात्रेण छाद्यंते गुणिनां गुणाः ।
रात्रौ दीपशिखावर्तिर्न भानावुदिते सति ।। (पंचतन्त्र १।१६)

८—संतानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानिसद्बंधुवियोगजानि ।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्रोतः सहस्रैरिव संप्लवन्ते ।। (उत्तर० ४)

९—पंचभिर्निर्मिते देहे पंचत्वं च पुनर्गते ।
स्वां स्वां योनिमनुप्राप्तं तत्र का परिदेवना ।। (हितो० ४)

१०—सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम् ।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ।। (रघु० ५।१३)

११—तस्मिन् ह्रदः संहितमात्र एव क्षोभात्समाविद्धतरंगहस्तः ।
रोधांसि निघ्नन्नवपातमग्नः करीव वन्यः परुषं ररास ।। (रघु० १६ ७८)

१२—जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे ।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः ।। (उत्तर० १)

१३—त्वय्युत्कृष्टबलेऽभियोक्तरि नृपे नंदानुरक्ते पुरे
चाणक्ये चलिताधिकारविमुखे मौर्ये नवे राजनि ।

स्वाधीने मयि मार्गमात्रकथनव्यापारयोगोद्यमे
त्वद्वांछांतरितानिसम्प्रति विभो तिष्ठन्ति साध्यानि वः ॥ (मुद्रा० ४)

१४—अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरंतरौर्वायमाणे
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम्।
कर्णालं सम्भ्रमेण व्रज कृप समरं मुंच हार्दिक्य शंकां
ताते चापद्वितीये वहति रणधुरं को भयस्यावकाशः ॥ (वेणी० ३)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए

[**नोट**—निम्नलिखित वाक्यों का अनुवाद 'भावे षष्ठी' और 'भावे सप्तमी' के द्वारा ही किया जाय]

१—यद्यपि देवता लोग देखते रहते हैं फिर भी लोग बुरा कर्म करते हैं।

२—दारिद्रय-हस्ती द्वारा आत्म-सम्मान-वृक्ष के काट दिये जाने पर सम्पूर्ण गुण-पक्षी उड़ जाते हैं।

३—जब दुर्भाग्य बिलकुल सन्निकट आ जाता है तब मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

४—चित्रकार के चित्र समाप्त करते ही मुझे बुलाने के लिए आना।

५—साधु ने इन शब्दों का उच्चारण किया ही था कि उसी क्षण अप्सरा पत्थर के रूप में बदल गई।

६—जब विपत्ति का कारण इतना दूर है तब तुम बीमारी का बहाना करके क्यों कहते हो कि मैं आप लोगों के साथ चलने में असमर्थ हूँ।

७—जैसे ही यह दुःखद समाचार उन लोगों के कानों तक पहुँचा वैसे ही उन्हें बड़ा कष्ट हुआ।

८—माता द्वारा निष्ठुरतापूर्वक परित्यक्त होने पर उस बालक की क्या दशा हुई, मैं नहीं जानता।

९—इन्हीं तथा ऐसे ही कष्ट-कर विचारों से मन व्यग्र रहने के कारण उसने बिना सोये रात्रि व्यतीत की।

१०—जैसे ही एक बाण उस लक्ष्य पर छोड़ा गया वैसे ही उस दिशा की ओर से उसने एक करुण-क्रंदन की ध्वनि सुनी।

११—कान्तिशाली दिग्पालों के रहते हुये भी दमयन्ती नल को ही पति रूप में चाहती है।

१२—अरे, पराक्रम की शेखी बघारने वाले नीचो, तुम्हे धिक्कार है! हम सौ भाइयों के जीवित रहते हमारे भाई की छाया तक लाँघने में कौन समर्थ हो सकता है?

१३—उदीयमान चन्द्रमा द्वारा अन्धकार के दूर होने पर, पूर्व दिशा मेरे नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित करती है।

१४—बन्दी की प्राण-रक्षा की प्रार्थना करने पर भी राजा ने उसको प्राणदण्ड की आज्ञा दी।

१५—जब मृत्यु ध्रुव है तो भाग कर अपने यश को क्यों कलंकित करते हो?

भाग ३

व्याकरणात्मक रूपों और शब्दों का प्रयोग तथा अर्थ

पाठ १२

सर्वनाम

पुरुषवाचक सर्वनाम

१२६—पुरुषवाचक सर्वनामों का प्रयोग कोई असाधारण नहीं है। इनमें क्रिया और उपसर्ग के योग में संज्ञाओं के ही नियम प्रयुक्त होते हैं। जैसेः—'अहं त्वां प्रार्थये'—मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ। 'त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्' (विक्रमो० १)।

१२७[1]—किन्तु 'अस्मद्' और युस्मद्' के संक्षिप्त रूपों, मा, मे, नौ, नः, त्वा, ते, वां और वः की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। इनका प्रयोग वाक्य के प्रारम्भ में; च, वा, एव, हा (कभी-कभी अह या ह) के बिलकुल पहिले और छन्दों के चरणों के प्रारम्भ में, कभी नहीं होता। जैसे—'मे मित्र' 'नः पाहि' 'वां सख्यं' आदि प्रयोग अशुद्ध हैं। 'तस्य च मम (नकि मे) च वैरमस्ति'—उसके और मेरे बीच में शत्रुता है। 'हा मम मन्द भाग्यं' (न कि मे)। 'वेदैरशेषैः स वेद्योऽस्मान्' (सिद्धान्त कौमुदी)—सम्पूर्ण वेदों द्वारा ज्ञेय श्री कृष्ण हम लोगों की सदा रक्षा करें।

---

(१) न च वाहाऽहैव युक्ते (८।१।२४), पदात् (८।१।१७) अनुदात्तं सर्वमपादादौ (८।१।१८) युष्मदस्मदोः षष्ठी चतुर्थी द्वितीयास्थयोर्वान्नावौ (८।१।२०)।

(अ) 'अस्मद्' 'युष्मद्' शब्दों के ये लघु रूप जब च, वा, एव इत्यादि से युक्त नहीं होते तब उन लघुरूपों का प्रयोग च, वा, एव इत्यादि अव्ययों के साथ हो सकता है। जैसे—'हरो हरिश्च मे स्वामी' (सिद्धान्त कौमुदी)—हर और हरि मेरे स्वामी हैं। 'किं वा मे पुत्री करोतु'—मेरी पुत्री क्या करे ?

(ब) इसी प्रकार इन लघुरूपों का प्रयोग सम्बोधन के बिलकुल बाद ही नहीं हो सकता। जैसे—'वयस्य, ममगृहमेतद् (न कि मे)। देवाऽस्मान् (न कि नः) पाहि सर्वदा' (सिद्धान्त कौमुदी)—हे ईश्वर, सदा हम लोगों की रक्षा करो। वास्तव में सम्बोधन एक छोटा सा वाक्य है।

(स)—यदि सम्बोधन पद के बाद कोई विशेषण रहे तो इन लघुरूपों का प्रयोग हो सकता है। जैसे—'हरे दयालो, नः पाहि' (सिद्धान्त कौमुदी) हे दयालु हरि, मेरी रक्षा कीजिए।

१२८—'भवत्' शब्द का प्रयोग प्रायः प्रत्यक्ष सम्बोधित व्यक्ति के प्रति शिष्टाचार प्रदर्शन के लिये होता है, यह आवश्यक नहीं है कि वह व्यक्ति आदरणीय हो। ऐसी दशा में यह अन्यपुरुष-सर्वनाम की भाँति समझा जाता है और उसके साथ क्रिया भी अन्य पुरुष की ही प्रयुक्त होती है। जैसे—'अथवा कथं भवान् मन्यते' (मालविका० १)—अथवा आप क्या समझते हैं ? 'वयमपि भवत्यौ किमपि पृच्छामः'— मैं भी आप दोनों से कुछ पूछता हूँ।

१२९—जब आदर प्रदर्शित करना होता है तब भवत् (भवती) के पूर्व 'अत्र' और 'तत्र' अथवा 'स'[1] का प्रयोग होता है। वक्ता के समीपवर्ती व्यक्ति के लिये 'अत्र भवान्' या 'अत्रभवती' और दूरवर्ती अथवा अनुपस्थित व्यक्ति के लिए 'तत्रभवान्' या 'तत्रभवती' पद का प्रयोग होता है। जैसे—'क्व तत्रभवती कामन्दकी ?'—आदरणीया कामन्दकी जी कहाँ हैं ? 'आदिष्टो-

(१) 'स' का ऐसा प्रयोग अशुद्ध है। 'अत्र' और 'तत्र' की भाँति 'स' भवत् के पूर्व उपसर्ग नहीं है। 'सभवता' आदि प्रयोग नहीं मिलते। ऊपर उदाहरण में 'स' को 'भवान्' से अलग पढ़ना चाहिए।

ऽस्मि तत्रभवता काश्यपेन' (शाकुन्तल ४)—पूज्य काश्यप जीने मुझे आज्ञा दी है। अपेहि रे, प्रकृतिमापन्नः' (शाकुन्तल० २) —अरे दूर हटो, ये महाशय चेतना युक्त हो गये हैं। मां, सभवान् नियुंक्ते' (मालती० १) मुझको वे महाशय नियुक्त कर रहे हैं

संकेतवाचक सर्वनाम

१३०—संकेतवाचक सर्वनाम तीन प्रकार के होते हैं—'इदं' या 'एतद्' (यह), तद् (वह) और 'अदस्' (यह या वह)। ये सम्बद्ध संज्ञाओं के साथ भी प्रयुक्त होते हैं और स्वतंत्र भी। जैसे—एष नृपः, स पुरुषः, तद्गृहं, स आह, एष मे किंकरः, इदं नो गृहं, असौ विद्याधरः।

१३१—'यह मैं आता हूँ', 'वह देखिए', लड़का आता है' की भाँति 'इदं' और 'एतद्' शब्दों के रूपों का प्रयोग किसी समय 'यह', 'वह देखिए' के अर्थ में प्रायः उत्तमपुरुष अन्यपुरुष के साथ होता है और साधारण विशेषणों की तरह उनके लिंग, वचन और कारक वाक्य के कर्त्ता के अनुसार होते हैं। जैसे 'आर्यपुत्र, इयमस्मि' (शाकुन्तल०१)—स्वामी, यह मैं हूँ। 'इयमहमारोहामि' (उत्तर०१)—यह मैं चढ़ता हूँ। 'अयमागच्छामि' (शाकुन्तल०३) यह मैं आता हूँ। 'इयं सा जातिः परित्यक्ता' (वेणी०३)।

१३२—'तद्' शब्द के रूपों का प्रयोग प्रायः 'प्रतिष्ठित' अथवा 'ख्यातनामा' के अर्थ में होता है। जैसे—'सा रम्या नगरी' (भट्टि०३।३७) वह प्रसिद्ध आकर्षक नगरी। 'सामन्तचक्रं च तत्' (भट्टि०)—और वह ख्यातनामा सामन्तों का मण्डल।

लैटिन में ille के प्रयोग के साथ तुलना कीजिए।

(अ) 'तद्' शब्द का प्रयोग प्रायः 'एव' के साथ 'वही' अथवा 'उसी' के अर्थ में होता है, साधारणतया 'एव' का ज्ञान कभी-कभी सन्दर्भ से जाना जाता है। (अर्थात् उसका प्रयोग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से होता

है।) जैसेः—'तानीन्द्रियाणि सकलानि' (भर्तृ०२।४०) सभी इन्द्रियाँ वे ही है। 'तदेव नाम' (भर्तृ०)—नाम वही है। 'एते त एव गिरयः' (उत्तर०३) ये वे ही पर्वत हैं। 'तदेव पंचवटी वनम्' (उत्तर०३)—वही पंचवटी का वन है।

(ब) जब 'तद्' शब्द के रूपों का प्रयोग दुहराया जाता है तब उसका अर्थ 'कई' अथवा 'विभिन्न' होता है। जैसेः—'तेषु तेषु स्थानेषु' (कादम्बरी०-३६६)—विभिन्न स्थानों में।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

१३३—जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम की पुनरुक्ति होती है तब उसका अर्थ 'सब कुछ', 'सम्पूर्ण' होता है और उसका सम्बन्धी सम्बन्ध वाचक सर्वनाम भी दुहराया जाता है। जैसे—'क्रियते यद्यदेषा कथयति' (उत्तर०१) जो-जो यह कहती है वह सब मैं करूँगा। 'यो यः शस्त्रं बिभर्त्ति ....क्रोधांधस्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्' (वेणी०३)—जो-जो शस्त्र धारण करते हैं, चाहे यमराज ही क्यों न हों, उन सबों का मैं संहारक हूँ। इसीप्रकार 'यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः' (भर्तृ०२।५१)।

(अ) कभी-कभी सम्बन्धवाचक सर्वनाम, अपि, चित्, चन अव्ययों के सहित अथवा इनके बिना भी प्रश्नवाचक सर्वनाम के साथ जुड़ कर 'जो कोई भी' 'जिस किसी भी' का अर्थ प्रकट करते हैं। जैसे—'एतादृशी रूपवती कन्या यस्मै कस्मैचित् न दातव्या'—ऐसी सुन्दर कन्या जिस किसी को नहीं दे देनी चाहिए। 'यो वा को वा भवाम्यहम्' (वेणी०३)—मैं जो कोई भी हूँ। 'यत्र कुत्रापि स्वपिति' जहाँ कहीं भी सो जाता है।

प्रश्नवाचक, अनिश्चयवाचक और निजवाचक सर्वनाम

१३४—प्रश्नवाचक सर्वनाम और उसके रूपों का प्रयोग प्रश्न करने के लिये होता है। जैसेः—'कः पुनरसौ जामाता' (उत्तर०१)—परन्तु ये दामाद

कौन हैं? 'कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्मः' (विक्रमो० १)। 'किं करोमि क्व गच्छामि' (उत्तर० १) क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?

१३५—अनिश्चयवाचक सर्वनाम के अर्थ में कभी-कभी प्रश्नवाचक सर्वनाम और प्रश्नवाचक क्रियाविशेषण के साथ 'चित्', 'चन', 'अपि' और कभी-कभी 'स्विद' भी जोड़ते हैं। जैसे—'कश्चिद्यक्षो वसतिं चक्रे' (मेघदूत १)—किसी यक्ष ने अपना निवास स्थान बनाया। कदाचित्, कदाचन, कदापि—किसी समय। 'कास्विदवगुण्ठनवती नारी' (शाकुन्तल० ५) घूँघट वाली कोई स्त्री।

(अ) कभी-कभी 'अपि' का भाव 'अनिर्वचनीय' 'अवर्णनीय' होता है। जैसे—'कोऽपि हेतुः' (उत्तर० ६)—कोई 'अनिर्वचनीय' कारण। इसी प्रकार 'तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः' (उत्तर० २)।

(ब) 'क्वचित्-क्वचित्', 'कदाचित्-कदाचित्' का प्रयोग 'किसी जगह', 'दूसरी-जगह' (यहाँ-वहाँ) और 'एक समय', 'दूसरे समय', ('किसी-किसी समय', 'अभी-अभी') के अर्थ में होता है। जैसे—क्वचिद् वीणा वाद्यं क्वचिदपि च हा हेति रुदितं' (भर्तृ० ३।१२)—कहीं वीणा बजती है, कहीं हाय-हाय का करुण-क्रन्दन हो रहा है। 'कदाचित् काननं जगाहे, कदाचित् कमल वनेषु रेमे' (कादम्बरी ५८)—कभी (किसी समय) जंगल में प्रवेश कर जाता था और कभी (किसी समय) कमल-वनों में विचरण करता था।

(स) 'क्वचित्-क्वचित्' का अर्थ कहीं-कहीं 'कभी-कभी' (समय सूचक) भी होता है। जैसे—'क्वचित् घनानां पततां क्वचिच्च' (रघु० १३।१६)—कभी बादलों का, कभी पक्षियों का।

१३६—'अन्य-अन्य' अथवा 'पर-पर' सर्वनाम का प्रयोग 'एक-दूसरे' के अर्थ में होता है। जैसे—'अन्यः करोति अन्यो भुंक्ते'—एक करता है दूसरा उपभोग करता है। 'मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कार्यमन्यत् दुरात्मनां' (पंचतंत्र १) दुष्टों के मन में एक बात रहती है, वाणी में दूसरी बात और कार्य में कुछ और बात।

१३७—पूर्व वर्णित दो पदार्थों के सम्बन्ध में प्रायः 'एक—अपर अथवा अन्य' का प्रयोग 'एक—दूसरे' के अर्थ में होता है। जैसे—'एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान् सौराज्य रम्यानपरो विदर्भान्' (रघु० ५।६०)—एक चैत्ररथ के प्रदेश में चला गया और दूसरा अच्छे राजा के कारण सुखी विदर्भ देश को चला गया।

१३८—जब 'एक—अपर अथवा अन्य' का प्रयोग 'बहुवचन' में होता है, तो उसका अर्थ 'कुछ—दूसरे' होता है। जैसे—'विधवानां पुनरुद्वाहः शास्त्रप्रतिषिद्ध इत्येके मन्यन्ते शास्त्रविहित इत्यपरे (अथवा अन्ये)'—कुछ लोग विधवा-विवाह को शास्त्रविरुद्ध मानते हैं, दूसरे लोग शास्त्रसम्मत।

(अ) इस अर्थ में कभी-कभी 'एके' के स्थान पर 'केचित्' का प्रयोग होता है। जैसे—'मदुक्तं केचिदन्वमन्यन्त अपरे पुनर्निनिन्दुः' (दशकुमार० २।४)—कुछ लोगों ने मेरे वक्तव्य का समर्थन किया, परन्तु दूसरे लोगों ने निन्दा की।

१३९—'स्व', 'स्वकीय', 'आत्मीय' और 'निज' का प्रयोग 'निजवाचक' (अपना) के रूप में होता है। जैसे—'स्वं नाम कथय'—अपना नाम बताओ। 'निजं धैर्यमदर्शयत्'—उसने अपना धैर्य दिखाया।

(अ) 'स्वयं' (अपने आप) निजवाचक क्रियाविशेषण है। जैसे—'सा स्वयमेव तत्र जगाम'—वह स्वयं (अपने आप) ही वहाँ गई।

१४०—निज वाचक सर्वनाम के रूप में अधिकता से प्रयुक्त शब्द 'आत्मन्' है। जिस संज्ञा के स्थान पर 'आत्मन्' शब्द का प्रयोग हो, वह चाहे जिस लिंग और वचन की हो, परन्तु 'आत्मन्' शब्द का प्रयोग सदा पुंल्लिग और एकवचन में ही होता है। जैसे—'का स्त्री अनेन प्रार्थ्यमानमात्मानं विकत्थते' (विक्रमो० २)—इसके द्वारा प्रार्थित कौन स्त्री अपने पर गर्व करती है? 'आत्मानं बहु मन्यामहे वयम्' (कुमार० ६।२०)—हम लोग अपने को बहुत धन्य समझते हैं। इसीप्रकार—'गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्वाः स्वप्नेषु वामनैः' (रघु० १०।६०)।

———

अभ्यास

१—तस्य च मम च पौरधूर्तैर्वैरमुदपाद्यत। (दशकु० २।२)

२—न नः कुतूहलमस्ति सर्पदर्शने। (मुद्रा० २)

३—श्रीशस्त्वाऽव मापीह दत्ता ते मेऽपि तु शर्म सः।
 स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः॥
 सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः।
 सोऽव्याद् वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः॥
(सिद्धान्त कौमुदी)

४—एवमत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु। अस्ति तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलांछनो भवभूतिर्नाम जातूकर्णीपुत्रः। (उत्तर० १)

५—एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यिकस्तदानींतनश्च संवृत्तः। (उत्तर० १)

६—तदेव पंचवटीवनम्। सैव प्रियसखी वासंती। त एव जातनिर्विशेषाः पादपाः। मम पुनर्मन्दभाग्यायाः सर्वमेवैतद् दृश्यमानमपि नास्ति। (उत्तर० ३)

७—आयुष्मन्नेष वाग्विषयीभूतः स वीरः। (उत्तर० ५)

८—राजा—आर्य बहु प्रष्टव्यमत्र। चा० वृषल, विश्रब्धं ब्रूहि ममापि बह्वाख्येयमत्र रा०—एष पृच्छामि। चा०—अहमप्येष कथयामि। (मुद्रा० ३)

९—अमुना व्यतिकरेण कृतापराधमिव त्वय्यात्मानमवगच्छति कादम्बरी। (कादम्बरी २०३)

१०—केचित् संपद्भिः प्रलोभ्यमाना रागावेशेन बाध्यमाना विह्वलतामुपयांति। अपरे तु धूर्तैः प्रतार्यमाणाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयांति। (कादम्बरी १०८)

११—साहसकारिण्यस्ताः कुमार्यो याः स्वयं संदिशन्ति समुपसर्पंति वा (कादम्बरी २३७)।

१२—अनयत्प्रभुशक्तिसंपदा वशमेको नृपतीननंतरान् ।
अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पंचशरीरगोचरान् ॥
(रघु० ८।१९)

१३—कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ।
(श्रीमद्भगवद्गीता ७ । २०)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—अयमसौ मम ज्यायानार्यः कुशो नाम भरताश्रमात् प्रतिनिवृत्तः (उत्तर०६) ।

२—लक्ष्म्योन्मादिता व्यसनशतशरव्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति । (कादम्बरी१०७)

३—तस्य तरुषण्डस्य मध्ये मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः क्वचित् त्र्यम्बकवृषभविषाणकोटिखंडिततटशिलाखण्डं क्वचिदैरावतदशनमुसल-खंडितकुमुददंडमच्छोदं नाम सरो दृष्टवान् । (कादम्बरी १२३)

४—इति नरपतिरस्त्रं यद्यदाविश्चकार ।
क्रमविदथ मुरारिः प्रत्यहस्तत्तदाशु ॥ (शिशु० २०।७६) ।

५—तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव नाम,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥ (भर्तृ० २।४०)

६—एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा-
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि ।
आमंजु-वंजुल-लतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि ॥ (उत्तर० २) ।

७—योऽस्ति यस्य यदा मांसमुभयोः पश्यतान्तरम् ।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्विमुच्यते ॥ (हितो० १)

८—वज्रं च राजतेजश्च द्वयमेवातिभीषणम् ।
एकमेकत्र पतति पतत्यन्यत् समंततः ॥ (हितो०१) ।

९—विश्वम्भरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने ।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गंगादेव्यां विमुंचति ॥ (उत्तर० ७) ।

१०—काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्ध वेषयोः ।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्रा चन्द्रमसोरिव ॥ (रघु० १।४६) ।

११—कोऽप्येष एव पिशुनोग्रमनुष्यधर्मः ।
कर्णे परं स्पृशति हंति परं समूलम् ॥ (पंचतंत्र १।११) ।

१२—रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यम्
तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम् ।
न कारणात् स्वाद् बिभिदे कुमारः
प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् ॥ (रघु० ५।३७) ।



निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—तपस्वी गौतमजी ने मुझे इस कार्य को करने की आज्ञा दी है ।

२—इस मंगलमय अवसर पर श्रीमान् (आप) जी क्या कहने की इच्छा रखते हैं ?

३—प्रिय गोपाल, मत रोओ । जिनको तुमने मृत समझा था, वे तुम्हारे दोनों भाई यह आ रहे हैं ।

४—यह, अपने हाथों में फल लिए हुए, इस बच्चे की माता आ रही है ।

५—बुद्धिमानों की संगति में एक अनिर्वचनीय आनन्द होता है ।

६—उस संकट काल में उन लोगों ने बड़ी कठिनाई से अपनी रक्षा की ।

७—ये दोनों लड़के अपने ही बच्चों की तरह मेरे द्वारा पाले गये; एक बहुत ही चतुर था, परन्तु दूसरा अत्यन्त मूढ़।

८—उस समाचार को सुनने पर स्त्री ने अपने को अत्यन्त भाग्यहीन समझा।

९—ऐसा कहा जाता है कि भद्रकाली के मन्दिर में एक वृद्धा रहती है। किसी समय वह आयँ बाँय बकने लगती है और किसी समय चेतनता में बात करती है।

१०—कुछ दार्शनिक विश्वास करते हैं कि ईश्वर ने इस समस्त सृष्टि का निर्माण किया है, दूसरे लोग समझते हैं कि सृष्टि अपने आप निर्मित है।

११—कुछ लोग अपना ही भला चाहते हैं, कुछ दूसरों का भला चाहते हैं और कुछ लोग दोनों को साधने की चेष्टा करते हैं।

१२—यज्ञदत्त के लड़के भिन्न-भिन्न कलाओं और विद्याओं में निपुण हो गये हैं।

१३—चीथड़ों को पहिने हुये यह वही व्यक्ति है, जिसको मैंने सड़क पर देखा था।

१४—वह कहीं भी पढ़ लेता है, किसी के साथ बाहर चला जाता है, किसी के भी घर में भोजन कर लेता है और कहीं भी सो लेता है।

१५—जो दृढ़प्रतिज्ञ होता है वह अपने प्रति किये गये किसी भी अपमान का बदला लेने के लिए प्रयत्न करता है।

१६—जो भी तुम्हारे घर पर आएँ उनसे नम्रतापूर्वक बातचीत करो।

———

पाठ १३

कृदन्त विचार

संस्कृत में अव्ययार्थक प्रत्यय (क्त्वा, ल्यप्) को छोड़ कर सभी प्रत्यय विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं और लिंग, वचन तथा कारक में विशेष्य के अनुसार ही होते हैं। अँग्रेजी में 'Participles' इन्हें इसलिए कहते हैं कि ये प्रत्यय क्रिया, विशेषण और संज्ञा तीनों के कार्यों के सम्पादन में भाग लेते हैं। संस्कृत में मुख्य प्रत्यय निम्नलिखित हैं—वर्तमानकालिक प्रत्यय, भूतकालिक प्रत्यय, भविष्यत्कालिक प्रत्यय, लिडर्थ (परोक्षभूत) प्रत्यय, कृत्य प्रत्यय, भाववाच्य तथा कर्मवाच्य प्रत्यय और अव्ययार्थक प्रत्यय। (इन प्रत्ययों के रूपों की सिद्धि के लिए व्याकरण के ग्रन्थों को देखिए)। जिन धातुओं में ये प्रत्यय लगते हैं, उनमें जो विभक्ति प्रयुक्त होती है, वही विभक्ति इन प्रत्ययों से सिद्ध शब्दों के योग में भी आती है। इस पाठ में वर्तमान कालिक प्रत्यय (शतृ, शानच्), भविष्यत्कालिक प्रत्यय (स्यतृ, स्यमान) और लिडर्थ (परोक्षभूत) प्रत्यय (क्वसु, कानच्) का निरूपण किया जायगा।

(Present Participles) वर्तमानकालिक प्रत्यय (शतृ, शानच्)

१४२—संस्कृत में (शतृ, शानच् प्रत्ययान्त) वर्तमानकालिक प्रत्ययान्त (नियम के लिए डा० किलहार्न के व्याकरण के सेक्शन ४६०-२ को देखिए) शब्द अँग्रेजी में (ing) से अन्त होने वाली क्रिया से निष्पन्न शब्दों के समकक्ष होते हैं। शतृ और शानच् प्रत्ययों का प्रयोग तब होता है जब कार्य का एक साथ होना पाया जाता है। जैसे—'इति विचारयन्नेव तुरगादवततार' (कादम्बरी १२५)—इस प्रकार सोचता हुआ ही वह घोड़े से उतर पड़ा। 'विवाहकौतुकं

बिभ्रत एव तस्य वसुधां हस्तगामिनीमकरोत्' (रघु० ८।११) वैवाहिक हस्त-सूत्र को धारण करते ही उनको (अजको) उन्होंने पृथ्वी भी सौंप दी। 'व्रजंश्च समर्थयामास' (कादम्बरी १४१)—और जाते हुये उसने सोचा।

अंग्रेजी में एक सम्पूर्ण वाक्य में जो भाव व्यक्त किया जाता है, संस्कृत में शतृ और शानच् प्रत्ययान्त शब्दों में वही भाव 'जबकि' के अर्थ में विद्यमान रहता है।

विशेष—(अ) संस्कृत के वर्तमानकालिक (शतृ, शानच्) प्रत्ययान्त शब्दों को अँग्रेजी के ing में अन्त होने वाले प्रत्ययान्त विशेष्य (संज्ञा) अथवा Gerund के समकक्ष कभी न समझना चाहिए।

(ब) जब क्रियाओं का एक साथ होना न पाया जाय तब शतृ, शानच् प्रत्ययों का प्रयोग नहीं हो सकता। जैसे—'पर्वत पर चढ़कर उन लोगों ने कुछ समय तक विश्राम किया' इस वाक्य का अनुवाद होगा 'पर्वतमारुह्य ते कंचित् कालं व्यश्राम्यन्' न कि 'पर्वतमारोहन्तः' इत्यादि। यदि दोनों कार्य एक साथ हो रहे हैं तब अवश्य 'शतृ' प्रत्ययान्त का प्रयोग होगा।

(स) वर्तमानकालिक (शतृ, शानच्) प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग कर्त्ता कारक में विधेयस्थानीय विशेषण के रूप में नहीं होता। 'स कुर्वन्नस्ति' का प्रयोग नहीं होता, यद्यपि 'कार्यं कुर्वन् स क्रीडति' लिखा जाता है।

१४३—[1] प्रायः शानच् (वर्तमानकालिक आत्मनेपद) प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग 'प्रकृति' अथवा 'स्वभाव', 'आयु का कोई माप दण्ड', और 'योग्यता' अथवा 'किसी कार्य को करने की क्षमता' आदि अर्थों को व्यक्त करने के लिए होता है। जैसे—'भोगं भुञ्जानः' (सिद्धान्त कौमुदी)—आनन्द करने का आदी। 'कवचं बिभ्राणः' (सिद्धान्त कौमुदी)—कवच धारण करने योग्य अवस्था वाला)। 'शत्रुं निघ्नानः' (सिद्धान्त कौमुदी)—शत्रु को विनष्ट करने योग्य।

(१) ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् (३।२।१२९)

ऊपर के द्वितीय उदाहरण के साथ निम्नलिखित वाक्य की तुलना कीजिये—'सम्यग् विनीतमथ वर्महरं कुमारम्' (रघु० ८।९४) यहाँ वर्महरः = 'कवचधारणार्हवयस्कः'

१४४—[1]क्रिया की किसी सहायक परिस्थिति अथवा विशेषता का बोध कराने केलिये और किसी क्रिया का कारण बतलाने केलिए शतृ और शानच् (वर्तमानकालिक) प्रत्ययों का प्रयोग होता है। जैसे—'शयाना भुञ्जते यवनाः' (सिद्धान्त कौमुदी)—यवन लेटेहुये भोजन करते हैं। इसी प्रकार 'तिष्ठन् मूत्रयति' (महाभाष्य)—'गच्छन् भक्षयति' (महाभाष्य)। 'हरिं पश्यन् मुच्यते' (सिद्धान्त कौमुदी—हरि के दर्शन के कारण वह मुक्त हो जाता है। प्रथम वाक्य (शयाना भुंजते यवनाः) 'कथं भुंजते' का उत्तर है और अन्तिम वाक्य (हरिं पश्यन्) 'केन मुच्यते' का।

(अ) वर्तमानकालिक (शतृ, शानच्) प्रत्ययान्त शब्द किसी क्रिया के कर्त्ता की विशेषता भी प्रकट करते हैं। जैसे—'योऽधीयान आस्ते स देवदत्तः' (महाभाष्य)—जो पढ़ता हुआ बैठा है वह देवदत्त है।

विशेष—अँग्रेजी Participle के सीमित प्रयोग की भाँति संस्कृत में शतृ और शानच् प्रत्ययान्त शब्दों द्वारा भी सीमित कर देने का बोध होता है। जैसे—Students preparing their lessons, will be rewarded' का अनुवाद संस्कृत में होगा—पाठानधीयानाः शिष्याः पारितोषिकाणि लप्स्यन्ते'

(ब) सामान्य सत्यता को व्यक्त करने के लिये भी इन प्रत्ययों का प्रयोग होता है। जैसे—'शयाना वर्धते दूर्वा' (महाभाष्य)—भूमि पर पड़ी-पड़ी ही दूब बढ़ती है। 'आस्तीनं वर्धते विसम्' (महाभाष्य)—कमल का नालदण्ड सीधा खड़े-खड़े ही बढ़ता है।

१४५—आस् (बैठना), स्था (खड़ा होना) और कभी-कभी भू (होना) और अस् (होना) धातुओं के योग में, 'कार्यसातत्य' (काम का निरन्तर

---

(१) लक्षण हेत्वोः क्रियायाः (३।२।१२६)

होते रहना) व्यक्त करने के लिए, वर्तमानकालिक (शतृ, शानच्) प्रत्ययों का प्रयोग होता है। जैसे—'वल्मीकाग्राणि विदारयन् प्रगर्जंश्चास्ते' (पंचतंत्र १।१) दीमकों के ढेर को गिराता हुआ और खूब जोर से गर्जता रहा। 'गीतसमाप्त्यवसरं प्रतीक्ष्यमाणस्तस्थौ' (कादम्बरी १३२)—गीतसमाप्ति के अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा रहा।

१४६—अँग्रेजी में ' to ' तथा हिन्दी में 'से' के भाव को व्यक्त करने के लिए 'लज्ज ह्री, त्रप्' (लज्जित होना) धातुओं के योग में उक्त प्रत्ययों का प्रयोग होता है। जैसे 'एवं निर्घृणं प्रहरन्न लज्जसे' (कादम्बरी २४७)—क्या इस प्रकार निर्दयता पूर्वक प्रहार करने से तुम लज्जित नहीं होते? 'स्वयं साहसं संदिशन्ती बाला जिह्रेमि' (कादम्बरी २३७ —मैं युवती लड़की स्वयं साहसयुक्त बात कहने से लज्जित होती हूँ।

१४७—कभी-कभी इन प्रत्ययों का प्रयोग 'मा' निषेधवाचक अव्यय के योग में 'अभिशाप' अथवा 'धिक्कार' का भाव व्यक्त करने के लिए होता है। जैसे—'मा जीवन्, यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति' (शिशुपाल० २।४५)—जो दूसरों के अवज्ञारूपी दुःख से पीड़ित होता हुआ भी जीवित रहता है, उसे धिक्कार है अर्थात् उसे जीवित नहीं रहना चाहिए।

(Future Participles) भविष्यत्कालिक प्रत्यय (स्यतृ, स्यमान)

१४८—भविष्यत्कालिक (स्यतृ और स्यमान (कर्मवाच्य) प्रत्ययान्त शब्दों से व्यक्त होता है कि कोई कार्य करने जा रहा है अथवा करने वाला है। जैसे—'करिष्यन्'—करने जा रहा है अथवा करने वाला है। 'मोक्ष्यन्'-—छूटने जा रहा है या छूटने वाला है। 'करिष्यमाणः'—इसके द्वारा किया जाने वाला है।

(अ) सामान्यभविष्यत्काल का भाव व्यक्त करने के अतिरिक्त इन प्रत्ययों से अन्त होने वाले शब्द अभिप्राय या प्रयोजन भी व्यक्त करते हैं। जैसे—'वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्वान् स दावं विचचार' (रघु० २।८)—उसने

हिंसक जंगली जानवरों को शिक्षा देने के अभिप्राय से सम्पूर्ण वन में विचरण किया। 'करिष्यमाणः सशरं शरासनम्' (रघु० ३।५२)—धनुष को बाणयुक्त करने की इच्छा करता हुआ। इस प्रकार यह प्रत्यय अँग्रेजी में भविष्यत् कालिक रूप के समकक्ष है।

नोट—'प्रस्थान करने के पूर्व उसने थोड़ा जल पिया' ऐसे वाक्यों का अनुवाद करते समय भविष्यत्कालिक (स्यतृ, स्यमान) प्रत्ययान्त शब्दों को कर्त्ता का विशेषण बना देना चाहिए। जैसे—'प्रयाणं करिष्यन् स किंचिज्जलं पपौ'। अँग्रेजी में होगा 'Before taking his departure, he drank a little water.' यहाँ पर 'Before' में 'going' अथवा 'about to take' का भाव है।

लिडर्थ (परोक्षभूत) प्रत्यय (क्वसु और कानच्)

(Perfect Participles)

१४९—लिडर्थ (क्वसु, कानच्) प्रत्ययों का प्रयोग बहुत कम होता है। इसका भाव होता है 'जो किया जा चुका है' अथवा 'जो कर चुका है'। जैसे—-श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते' (रघु० ५।३४) सम्पूर्ण अच्छी वस्तुओं को प्राप्त कर चुके हुये का। 'निषेदुषीमासनबन्धधीरः' (रघु० २।६)—जब वह बैठ जाती तब वे भी स्थिर होकर बैठते।

अभ्यास

१—सा टिट्टिभी स्वांडभंगाभिभूता प्रलापान् कुर्वाणा न कथंचिदतिष्ठत् (पंचतंत्र १।१५)

२—अथ द्वावपि तौ पुष्पितपलाशप्रतिमौ परस्परवधाकांक्षिणौ दृष्ट्वा

करटको दमनकमाह । भो मूढमते, अनयोर्विरोधं वितन्वता त्वया न साधु कृतम् (पंचतंत्र १।१६)

३—राजा विस्फारितेन स्निग्धेन चक्षुषा पिबन्निवालपन्निव स्पृशन्निव मनोरथसहस्रप्राप्तदर्शनं सस्पृहमीक्षमाणस्तनयाननं मुमुदे कृतकृत्यं चात्मानं मेने । (कादम्बरी ७२)

४—साहित्यसंगीत कलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥
(भर्तृ० २।१२)

५—सज्जीभूतं साधनम् । प्रयाणाभिमुखः सकलः स्कंधावारस्त्वां प्रतिपालयन्नास्ते । तत्किमद्यापि विलंबितेन (कादम्बरी २७७)

६—राजाधिराजनंदन नगरंध्रगतस्य ते गतिं ज्ञास्यन्नहं च गतः कदाचित्कलिंगान् । (दशकु० २।७)

७—अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः ।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः ॥ (शाकुन्तल० १)

८—वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरुपेयिवान् ।
उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः ॥
(रघु० ११ । २२)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—आसीच्च मे मनसि । शान्तात्मनि अन्यस्मिन् जने मां निक्षिपता किमिदमनार्येण सदृशमारब्धं मनसिजेन । (कादंबरी १४२) ।

२—अग्रजन्माऽब्रवीत् । महाभाग सुतानेतान् मातृहीनाननेकैरुपायै रक्षन्निदानीमस्मिन् कुदेशे भैक्ष्यं सम्पाद्य ददद्देतेभ्यो वसामि शिवालयेऽस्मिन्निति । (दशकु० १।३) ।

३—विवादे दर्शयिष्यंतं क्रियासंक्रान्तिमात्मनः ।
यदि मां नानुजानासि परित्यक्तोऽस्म्यहं त्वया ॥ (मालविका० १) ।

४—अविदित्वाऽत्मनः शक्तिं परस्य च समुत्सुकः ।
गच्छन्नभिमुखे वह्नौ नाशं याति पतंगवत् ॥ (पंचतंत्र १।८) ।

५—अंतर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः ।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ॥ (उत्तर० ३)

६—आदिदेशाथ शत्रुघ्नं तेषां क्षेमाय राघवः ।
करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात् ॥ (रघु० १५।६) ।

७—कदा वाराणस्याममरतटिनी रोधसि वसन्
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोंऽजलिपुटम् ।
अये गौरीनाथ, त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ (भर्तृ० ३।१०) ।

८—तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः ।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्र प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ॥ (रघु० ५।६१)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए

[अनुवाद में वर्तमान, भविष्यत् तथा लिडर्थ (परोक्षभूत) प्रत्ययों का ही प्रयोग कीजिए]

१—अपने सिर पर अनाज का बोझ लादे हुये धीरे-धीरे चलते हुये तथा परस्पर बातचीत करते हुये मैंने सड़क पर बहुत से मनुष्यों को देखा ।

२—जहाज पर इंगलैण्ड जाता हुआ व्यक्ति बहुत से सुन्दर दृश्यों को देख सकता है ।

३—इस चित्र की सुन्दरता का क्या कहना है ! इसके विभिन्न भागों को नेत्राकर्षक बनाने में चित्रकार ने अपनी सम्पूर्ण कला का प्रदर्शन किया है ।

४—मेरे पास तुम्हारे द्वारा इस प्रकार समाचार भेजकर क्या वह लज्जित नहीं है ?

५—रति, अपने पति के शव को देखती हुई और उसके विविध प्रकार के सद्गुणों का स्मरण करती हुई, बहुत देर तक रोती रही ।

६—चन्द्रापीड का राज्याभिषेक होने को था (अभि + सिच्), शुकनास ने बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातों की ओर उसका ध्यान आकर्षित करते हुए, उपदेश दिया ।

७—न्याय-शास्त्र में प्रवीण होने की अभिलाषा से वह बनारस गया और वहाँ बहुत दिनों तक अध्ययन करता रहा ।

८—पुरस्कार, जिसे गोपाल को देने का मैंने वचन दिया था, देने के पहिले मैंने उससे पूछा कि क्या आप इसको अपने प्रयत्न के अनुपयुक्त समझते हैं ?

९—अपने दृढ़ शत्रु के सामने झुकने वाले बेत के पौधे सुरक्षित रहते हैं, किन्तु बहुत बड़े सिन्दूर-वृक्ष गर्व के कारण खड़े रहने से जल की तेज धारा में बह जाते हैं ।

१०—सिंह जंगल के जानवरों को बारी-बारी से मारता रहा ।

११—चारों वेदों को पढ़े हुये (अधि + इ), छःहों अंगों में पारंगत और चार शास्त्रों में निष्णात इस ब्राह्मण से तुमको द्रोह (द्रुह्) नहीं करना चाहिए ।

१२—शंकर जी के धनुष को तोड़ने वाले और अपनी असाधारण शक्ति तथा निपुणता द्वारा दर्शकों के चित्त को अपनी ओर आकर्षित करने वाले श्री राम को जनक जी ने अपनी पुत्री सीता दे दी ।

पाठ १४

(Past Participles) भूतकालिक प्रत्यय (क्त, क्तवतु)

१५०—भूतकालिक प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं। एक धातु के अन्त में 'त' अथवा 'न' जोड़कर निष्पन्न कर्मवाच्य (क्त), दूसरा कर्मवाच्य प्रत्यय के बाद 'वत्' जोड़कर निष्पन्न कर्तृवाच्य (क्तवतु)। जैसे—'तेनेदमुक्तम्'—यह उसके द्वारा कहा गया। 'स इदमुक्तवान्'—उसने यह कहा। ये दोनों प्रत्यय भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। काव्यकाल के संस्कृत में क्रिया की अपेक्षा इन प्रत्ययों के प्रयोग का प्रचलन अधिक हुआ। 'अहंतदकरवम्' की अपेक्षा साधारणतया 'मया तत्कृतं' अथवा 'अहं तत्कृतवान्' का प्रयोग अधिक पाया जाता है। इस प्रत्यय द्वारा विधेय (क्रिया) के बहुत काम चलते हैं।

१५१—बहुत सी अकर्मक क्रियाओं के साथ भूतकालिक कर्मवाच्य प्रत्ययों का प्रयोग होता है। इनका तथा बहुत सी अकर्मक के रूप में प्रयुक्त होने वाली सकर्मक क्रियाओं का भी प्रयोग तृतीया विभक्ति के साथ होता है। जैसे—'प्रतिबुद्धमिदानीं मकरन्दपूर्णचन्द्रेण' (मालती०४)—पूर्ण चन्द्रमा के समान मकरन्द ने इस समय चेतनता प्राप्त करली। 'जितमपत्यस्नेहेन' (उत्तर०-७)—अपत्यस्नेह के द्वारा जीत लिया गया।

विशेष—ऐसे कर्मवाच्यों का प्रयोग केवल भूतकालिक प्रत्ययान्तों तक ही सीमित नहीं है, किन्तु लकारों के रूपों के साथ भी इनका प्रयोग होता है। जैसे—'मध्याह्नेऽपि वनराजिषु आहिण्ड्यते' (शाकुन्तल ०२)—मध्याह्न में भी मैं वनपंक्तियों में घूमता रहता हूँ।

> "आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
> तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥" (चाणक्य० ७४)

(इन्द्रियों का असंयम आपत्तियों का मार्ग कहा गया है और उन पर विजय प्राप्त कर लेना सम्पत्ति का मार्ग है। जो मार्ग इष्ट हो उससे जाओ।)

१५२—[1]गत्यर्थक, अकर्मक, श्लिष् (आलिंगन करना), शी, स्था, आस्, वस् (रहना), जन्, रुह् और जॄ (जीर्णहोना) (क्रयादि) धातुओं में भूतकालिक कर्मवाच्यार्थक (क्त) प्रत्यय का प्रयोग कर्तृवाच्य में होता है। जैसे—'गतोऽहं कलिंगान्, (दशकुमार०२) मैं कलिंग चला गया। 'जलं पातुं यमुना कच्छमवतीर्णः' (पंचतंत्र १।१)—जल पीने के लिए, यमुना के कछार में उतर गया। 'लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः' (सिद्धान्त कौमुदी)—हरि ने लक्ष्मी का आलिङ्गन किया। 'शेषमधिशयितः'—शेष नाग के ऊपर सोये। 'शिवमुपासितः'—शिव की उपासना की। 'विश्वमनुजीर्णः'—संसार में पड़कर वृद्ध हो गया। 'उपरते भर्तरि' (कादम्बरी १७३)—पति के मर जानेपर। इसीप्रकार—'वैकुण्ठमधिष्ठितः, हरिर्दिनमुपोषितः, वृक्षमारूढ़ः, सुतो जातः' इत्यादि।

विशेष—कालिदास ने 'स्मृ' धातु में भूतकालिक कर्मवाच्यार्थक (क्त) प्रत्यय का प्रयोग कर्तृवाच्य में किया है। जैसे—'मधुकर, विस्मृतोस्येनां कथं' (शाकुन्तल० ५), 'अन्यसंगात् पूर्ववृत्तम् विस्मृतो भवान्' (शाकुन्तल० ५) 'अहो विस्मृतं मे हृदयम्' (विक्रमो० २)।

१५३—[2] भूतकालिक कर्मवाच्यार्थक (क्त) प्रत्यय का प्रयोग कभी-कभी नपुंसक लिंग भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए होता है। जैसे—'जल्पितं' (बोलना), 'शयितं' (सोना), 'हसितं' (हँसना) इसीप्रकार—'गतं' 'स्थितं;' 'कस्येदमालिखितं' (यह चित्र किसका है ?)

विशेष—ऐसे प्रयोगों में रूप अपना कर्मवाच्यत्व खो बैठते हैं और तृतीया के साथ उनका प्रयोग नहीं होता। जैसे—उसकी गति (चाल) विलासपूर्ण है

---

(१) गत्यर्थाकर्मक श्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च (३।४।७२)

(२) नपुंसके भावे क्तः (२।३।११४)।

'तस्याः (न कि तया) गतं सविलासं'। 'नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तं' (मालविका० २)—उसकी गति-हीन स्थिति नृत्य की अपेक्षा अधिक आकर्षक है।

१५४—मन् (सोचना, इच्छा करना), बुध् , (जानना), पूज् (पूजना) तथा इनके समान अर्थ रखनेवाली अन्य धातुओं में भूतकालिक कर्मवाच्यार्थक (क्त) प्रत्यय का प्रयोग वर्तमानकाल के अर्थ में होता है और षष्ठी विभक्ति के साथ आता है (अनुच्छेद ११५ देखिए)।

विशेष—कुछ अन्य शब्द भी इसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं। वे निम्नांकित श्लोक में दिये गये हैं :—

शीलितो रक्षितः क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि।
रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि॥
हृष्टतुष्टौ तथा कान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ।
कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृताः पूर्ववत्स्मृता॥ (महाभाष्य)

कृत्य प्रत्यय (तव्यत् , अनीयर् , यत् , ण्यत्)

(Potential Passive Participles)

१५५—संस्कृत में कृत्य प्रत्ययान्त शब्द तीन प्रकार से बनते हैं— (१) तव्यत् (२) अनीयर् और (३) यत् , ण्यत् प्रत्ययों को लगाकर। (शब्द-निर्माण के नियमों के लिए डा० किलहोर्न कृत व्याकरण के अनुच्छेद ५१६-५२६ देखिए)। जैसे—कर्त्तव्य, करणीय और कार्य। संस्कृत भाषा में शब्द-लाघव केलिए ये प्रत्यय बहुत ही उपयोगी हैं और अँग्रेजी अथवा हिन्दी में जिस भाव को व्यक्त करने केलिए कई शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है वह भाव संस्कृत में केवल एक शब्द कृत्य प्रत्ययान्त से ही व्यक्त किया जा सकता है। जैसे—वह मार डाला जाना चाहिए—'हन्तव्यः'। कृत्य प्रत्ययों द्वारा यह बोध होता है कि धातु द्वारा व्यक्त कार्य अवश्य सम्पादित होना चाहिए। जैसे—वक्तव्यं-वचनीयं-वाच्यं—जो अवश्य कहा जाना चाहिए। इसप्रकार उक्त

प्रत्ययों द्वारा व्यक्त भाव 'योग्यता', 'कर्त्तव्य' अथवा 'आवश्यकता' को ध्वनित करते हैं। जैसे—मुझे वहाँ जाना चाहिए—'मया तत्र गन्तव्यम्'। इसे करना मेरा कर्त्तव्य है—मया तत् कर्त्तव्यम्।

१५६—वाक्यों में इन प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग उसीप्रकार होता है जिस प्रकार उन धातुओं के कर्मवाच्य का, जिनके अन्त में ये प्रत्यय लगते हैं। जैसे—'मद्वचनात्स राजा त्वयेदं वाच्यः' (रघु० १४।६१)—तुम्हारे द्वारा राजा मेरे वचनों से यह कहे जाने चाहिए। 'अजा ग्रामं नेतव्या'—बकरी गाँव में ले जाई जानी चाहिए। इसीप्रकार—'असौ दुहितुः पत्या परिग्रहप्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः' (शाकुन्तल०७)—इस कन्या का पति द्वारा ग्रहण किया जाना, हम लोगों द्वारा सुना दिया जाना चाहिए। इन प्रत्ययों के योग में इन प्रत्ययों से सम्बद्ध धातुओं द्वारा सूचित कार्य का करने वाला कर्त्ता-पद षष्ठी अथवा तृतीया विभक्ति में प्रयुक्त होता है (देखिए अनुच्छेद १०७)।

१५७—क्रियास्थानीय इन कृत्य प्रत्ययों के प्रयोग में कोई विचित्रता नहीं है। इनका प्रयोग स्वतंत्र रूप से नपुंसकलिंग एक वचन में भी होता है। जैसे—'अभिज्ञान शाकुन्तलाख्येन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः' (शाकुन्तल०१) हम लोगों को शकुन्तला नाटक द्वारा (श्रोताओं की) सेवा करनी चाहिए। 'तत्रभवता तपोवनं गन्तव्यम्' (विक्रमो० ५)—उन महाशय को तपोवन चला जाना चाहिए।

(अ) 'भवितव्यं' और 'भाव्यम्' स्वरूपों का स्वतंत्र प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है। इनका प्रयोग 'होना', 'अवश्य होना चाहिए', 'जहाँ तक सम्भव है, अर्थों में होता है और ये अनिश्चय के बोधक हैं। दोनों दशाओं में 'होना' के पूर्ववर्ती संज्ञापद, सर्वनामपद अथवा विशेषणपद को साधारण विशेषण की भाँति ही कर्त्ता का समानाधिकरण होना चाहिये। जैसे—'स्वेषु स्वेषु पाठे-स्वसंमूढैर्भवितव्यम् (युष्माभिः)' (विक्रमो० १)—तुम लोगों को अपने-अपने पाठ (अभिनय) में सावधान रहना चाहिए। 'तयाऽस्मिंल्लतामण्डपे सन्निहितया भवितव्यम्' (शाकुन्तल० ३)—उसे इस लताकुञ्ज में अवश्य उपस्थित रहना

चाहिए। 'अस्य शब्दानुरूपेण पराक्रमेण भाव्यम् भवितव्यं वा' (पंचतंत्र १।१) —इसकी शक्ति इसकी गर्जना के अनुरूप होनी चाहिए।

(ब) कभी-कभी इन प्रत्ययों का प्रयोग भविष्यत्काल में निश्चय द्योतन के लिए होता है। जैसे—'लुब्धकेन मृगमांसार्थिना गन्तव्यम्' (हितो० १)—मृग मांस को चाहने वाला बहेलिया निश्चय जायेगा। 'ततः तेनापि शब्दः कर्त्तव्यः' (हितो० ३) तब उसके द्वारा भी निश्चय ही शब्द किया जाना चाहिए।

(स) कभी-कभी कृत्य प्रत्यय से बने हुए शब्द केवल भविष्यत् काल का ही द्योतन करते हैं। जैसे—'युवयोः पक्षबलेन मयापि सुखेन गन्तव्यम्' (हितो० ४) तुम दोनों के पंखों के बल से मैं भी आसानी से चला जाऊँगा।

अभ्यास

१—अत्रभवतोः परस्परेण ज्ञानसंघर्षो जातः। तदत्रभवत्या प्राश्निकपदमध्यासितव्यम् [मालविका० १]।

२—तयोर्बद्धयोः किंनिमित्तोऽयं मोक्षः, किं देव्या परिजनमतिक्रम्य भवान् संदिष्ट इत्येवमनया प्रष्टव्यम् [मालविका० ४]।

३—विश्रान्तेन भवता ममाप्येकस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम् [शाकुन्तल० २]

४—नास्मि भवत्योरीश्वरनियोगप्रत्यर्थी। स्मर्तव्यस्त्वयं जनः। [विक्रमो० २]

५—तत्किं मन्यसे, राजपुत्रि, मृषोद्यं तदिति। न हीदं सुक्षत्रियेऽन्यथा मंतव्यम्। भवितव्यमेव तेन। [उत्तर० ४]

६—सर्वथा निष्प्रतीकारेयमापदुपस्थिता। किमिदानीं कर्तव्यं, कां दिशं गंतव्यमित्येते चान्ये च विषण्णहृदयस्य मे संकल्पाः प्रादुरासन्। [कादम्बरी १५७]

७—सततमतिगर्हितेनाकृत्येनापि परिरक्षणीयान्मन्यंते सुहृदसून्साधवः । तदतिह्णे पणमकर्तव्यमप्येतदस्माकमवश्यकर्तव्यतामापतितम् ।
[कादम्बरी १५८]

८—चाणक्यः—भद्र प्रथमं तावद्वध्यस्थानं गत्वा घातकाः सरोषं दक्षिणाक्षिसंकोचसंज्ञां ग्राहयितव्याः । तेषु गृहीतसंज्ञेषु भयापदेशादितस्ततः प्रद्रुतेषु शकटदासो वध्यस्थानादपनीय राक्षसं प्रापयितव्यः । [मुद्रा० १]

९—आः क्षुद्राः, समरभीरवः, कथमेवं प्रलपतां वः सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया [वेणी० ३]

१०—आपदि येनोपकृतं येन च हसितं दशासु विषमासु ।
उपकृदपकृदपि च तयोर्यस्तं पुरुषं परं मन्ये ॥ [पंचतंत्र १।१५]

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—आपन्नस्य विषयवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमित्येष वो धर्मः (शाकुन्तल ०३)

२—अन्तरिते तस्मिन् शबरसेनापतौ स जीर्णशबरस्तं वनस्पतिमामूलादपश्यत् । उत्क्रान्तामिव तस्मिन् क्षणे तदालोकभीतानां शुककुलानामसुभिः ।
(कादम्बरी ३३)

३—अहं तच्छ्रुत्वा चेतस्यकरवम् । मयाधुना म्लेच्छजातिभिरपि दूरतः परिहृतप्रवेशं पक्कणं द्रष्टव्यम् । चण्डालैः सहैकत्र स्थातव्यम् । चाण्डालबालकजनस्य च क्रीडनीयेन भवितव्यमिति । (कादम्बरी० ३५५)

४—कार्यव्यग्रत्वात् मनसः प्रभूतत्वाच्च प्रणिधीनां कोऽयमिति विस्मृतम् । इदानीं स्मृतिरुपलब्धा । व्यक्तमाहितुण्डिकच्छद्मना कुसुमपुरादागतेन विराधगुप्तेन भवितव्यम् । (मुद्रा० २)

५—आः दुरात्मन्, कुरुकुलपांसुल, एनमतिक्रान्तमर्यादे त्वयि निमित्तमात्रेण पाण्डवक्रोधेन भवितव्यम् । (वेणी० १)

६—वत्से, साम्प्रतिकमेवैतत् । कर्तव्यानि दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि । (उत्तर० ३)

७—पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥ (उत्तर० ३।२६)

८—तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
येनाशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम् ॥ (हितो० १)

९—आरूढमद्रीनुदधीन् वितीर्णम् भुजंगमानां वसतिं प्रविष्टम् ।
ऊर्ध्वंगतं यस्य न चानुबन्धि, यशः परिच्छेत्तुमियत्तयालम् । (रघु० ६।७७)

१०—अवसितं हसितं प्रसितं मुदा विलसितं ह्रसितं स्मरभासितम् ।
न समदाः प्रमदा हतसंमदाः पुरहितं विहितं न समीहितम् ॥
(भट्टि० १०।६)

११—शार्ङ्गरव, त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः :—
अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मनः ।
त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम् ॥
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया ।
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं बधूबन्धुभिः ॥ (शाकुन्तल० ४)

१२—त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः, शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया ।
समानयस्तुल्यगुणं वधूवरं, चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ॥
(शाकुन्तल० ५)

———

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए

(**नोट**—अनुवाद में प्रत्ययों का प्रयोग कीजिए)

१—बलवती सेना द्वारा रक्षित होते हुये भी तारक को कार्तिकेय ने परास्त कर दिया।

२—प्रिय वत्स, ऐसा करके तुमने जामदग्न्य का अपराध ही किया है (अप्+राध्), उनका कोई हित नहीं किया है।

३—उसकी सेना पूर्णतया शत्रुद्वारा परास्त होने पर, उसके कुछ सैनिक पहाड़ों पर चढ़ गये (अधि+रुह्), कुछ समुद्र में उतर गये और कुछ निर्जन गुफाओं में प्रवेश कर गये (विश्)।

४—यदि तुम अपने आत्मीय मित्रों की उपेक्षा करोगे तो तुम अवश्य अनादर के पात्र बनोगे।

५—जो मेरा नाम लेकर पुकारता है, यह व्यक्ति कौन हो सकता है ? अच्छा! निश्चय ही ये हमारे पुराने मित्र मित्रवर्मा हैं।

६—थोड़ी देर तक मेरी प्रतीक्षा करो, मुझे भी सभा में उपस्थित होना आवश्यक है।

७—जैसे ही वह उठता है, अपना अध्ययन करने के बजाय, वह बाहर खेलने चला जाता है।

८—चिंता को स्थान मत दो, तुम्हारा लड़का अब तक अवश्य घर आ गया होगा।

९—बहुत कष्टों को झेलता हुआ मैं बहुत से देशों का भ्रमण कर आया हूँ (भ्रम्), परन्तु मैंने अपने अभिलषित उद्देश्य की प्राप्ति न की।

१०—वह तुम्हें मटियामेट (विनष्ट) करने पर तत्पर प्रतीत होता है, परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि वह अपने प्रयत्न में निश्चित असफल होगा।

११—यदि तुम लोग उसकी सहायता न करोगे तो वह उस देश में कैसे जीवित रहेगा ?

१२—ये वस्तुएँ तुम्हारे द्वारा उस विशाल भवन के स्वामी के पास ले जाई जानी चाहिए।

१३—अभी मुझे बहुत से ग्रन्थ पढ़ने हैं (वाचय्) अतः मैं तुम्हारे साथ चलने में समर्थ नहीं हूँ।

१४—यह महान् पुरस्कार सूचित करता है कि अँगूठी राजा द्वारा बहुत ही प्रिय समझी गई होगी (मन्)।

१५—बुद्धिमान पुरुषों द्वारा पूर्ण किये जाने में कुछ भी कठिनाई (दुस्साध्य) नहीं है।

१६—उसके पास अपार धन था, इसलिए उसके पास बहुत सी स्त्रियाँ रही होंगी।

१७—हम लोग अपनी सेना के साथ कितनी देर तक युद्ध के लिए सन्नद्ध खड़े रहें।

———

पाठ १५

प्रथम भाग

अव्ययार्थक भूतकालिक प्रत्यय (क्त्वा, ल्यप्),

(Indeclinable Past Participles or gerunds)

१५८—संस्कृत में अव्ययार्थक भूतकालिक प्रत्यय (क्त्वा, ल्यप्), जिसे साधारण रूप से स्वतंत्र प्रत्यय अथवा gerund कहते हैं, सदा पूर्वकालिक क्रिया अथवा किसी अन्य कार्य के पूर्व किये हुये कृत्य का बोध कराने के लिए, धातुओं में जुड़ते हैं। [अर्थात् हिन्दी में पूर्वकालिक क्रिया के द्योतन के लिये संस्कृत में क्त्वा, ल्यप् प्रत्ययों का प्रयोग होता है]। जैसे—'प्रतीहारी समुपसृत्यसविनयमब्रवीत्' (कादम्बरी ८)—पास में जाकर प्रतीहारी नम्रतापूर्वक बोली। 'वैशाम्पायनो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्' (कादम्बरी ८)—क्षण भर ध्यान करके वैशम्पायन ने आदर पूर्वक कहा।

परन्तु 'गाँव को जाता हुआ मार्ग में तृण छूता है' का अनुवाद होगा 'ग्रामं गच्छन् पथि तृणं स्पृशति'।

१५९—संस्कृत में अव्ययार्थक भूतकालिक प्रत्यय (क्त्वा) का प्रयोग सब जगह सभी धातुओं के साथ होता है, परन्तु इसके दूसरे स्वरूप 'ल्यप्' का प्रयोग उन्हीं धातुओं के साथ होता है जिनके पूर्व उपसर्ग लगे रहते हैं। नियम को समझने के लिए डा॰ किलहोर्न कृत व्याकरण के अनुच्छेद ५०५ से ५१६ तक देखिए। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है कि इन प्रत्ययों का प्रयोग पूर्वकालिक क्रिया केलिए ही होता है और इनका कर्त्ता वही होता है जो

प्रधान क्रिया का होता है। जैसे—'तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायंभुवं ययुः' (कुमार० २।१)—इन्द्र को आगे करके ब्रह्मा के निवासस्थान पर गये। यहाँ पर 'पुरोधाय' और 'ययुः' (आगे करके और गये) क्रिया का कर्त्ता एक ही है, इसलिए 'ल्यप्' प्रत्यय का प्रयोग हो सकता है। परन्तु 'स तं हत्वाहमागच्छम्' अशुद्ध है। ऐसी दशा में 'क्त्वा' अथवा 'ल्यप्' प्रत्ययों का प्रयोग नहीं हो सकता, किन्तु इसी भाव को व्यक्त करने के लिये 'भावे-सप्तमी' का प्रयोग किया जायेगा। जैसे—'तस्मिन् तेन हतेऽहमागच्छम्'। इसीप्रकार 'सर्वैः पशुभिर्मिलित्वा सिंहोविज्ञप्तः' (हितो० २)—एक साथ मिलकर सभी पशुओं द्वारा सिंह को सूचित किया गया। 'स एनं दोषं प्रख्याप्य नगरान्निर्वास्यताम्' (मुद्रा० १)—इस अपराध को लगाकर वह नगर से निर्वासित कर दिया जाय।

१६०—घटनाओं के वर्णन अथवा उनके कथन में, क्रिया के रूपों और समुच्चयबोधक अव्ययों की प्रयोग-विधि में संक्षिप्तता (लाघव) के लिए संस्कृत के ये क्त्वा, ल्यप् प्रत्यय बहुत ही उपयोगी हैं। 'ऐसा करने के बाद', 'जब' अथवा 'बाद' से प्रारम्भ होने वाले वाक्यों में 'जब' 'बाद' इत्यादि शब्दों का संस्कृत में अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, केवल 'क्त्वा' अथवा 'ल्यप्' प्रत्ययों से ही काम चल जाता है। जैसे—'रावणं हत्वा'—रावण को मारने के बाद। जब वह वहाँ गया तो वहाँ उसने कुछ नहीं पाया—'स तत्र गत्वा न किमपि लेभे'।

अँग्रेजी वाक्य, "having" से प्रारम्भ कई उपवाक्यों से युक्त सुनने और देखने में बहुत ही भद्दा लगता है, परन्तु संस्कृत में उन भावों को व्यक्त करने के लिये, जिन्हें अँग्रेजी में क्रिया के कालों और अव्यय पदों द्वारा व्यक्त किया जाना चाहिये, 'क्त्वा' और 'ल्यप्' प्रत्ययान्त कई शब्दों के प्रयोग से बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया जा सकता है। जैसे—'मां रुधिरेणा-लिप्य वृक्षस्याधः प्रक्षिप्य गम्यतां पर्वतमृष्यमूकं प्रति' (पंचतंत्र ३)—मुझे रुधिर से लिप्त कर, वृक्ष के नीचे फेंक कर ऋष्यमूक पर्वत की ओर चले जाओ।

'अथ स ब्राह्मणस्तं पशुं राक्षसं मत्वा भयाद्भूमौ प्रक्षिप्य, दैवं निर्भर्त्स्य गृहमुद्दिश्य प्रस्थितः' (हितो० ४)—तब उस ब्राह्मण ने उस पशु को राक्षस जानकर, भय के कारण भूमि पर फेंक कर और भाग्य को कोस कर घर की ओर प्रस्थान किया। जिन अँग्रेजी के वाक्यों का संगठन संयोजक अव्ययों द्वारा हुआ हो (Copulative Assertions) उनका अनुवाद संस्कृत में 'क्त्वा' और 'ल्यप्' प्रत्ययों के योग से बड़ी सुगमता से किया जा सकता है।

विशेष—इन प्रत्ययों के प्रयोग में स्वाभाविक क्रम को ध्यान में रखना चाहिए। जैसे—'पक्त्वा-भुक्त्वा स्वपिति'—भोजन पकाकर और खाकर सोता है। परंतु 'भुक्त्वा पक्त्वा स्वपिति' प्रयोग ठीक नहीं है।

१६१—संस्कृत में कुछ 'क्त्वा' और 'ल्यप्' प्रत्ययान्त शब्द प्रायः उपसर्गों और अव्यय-वाक्य खण्डों (कर्मप्रवचनीय) की भाँति प्रयुक्त होते हैं। जैसे—'मुक्त्वा' (अतिरिक्त, बिना), आदाय (साथ, ओर), उद्दिश्य (ओर, सम्बन्ध में) अधिकृत्य (विषय में)।

द्वितीय भाग

णमुल् अथवा 'अम्' से अन्त होने वाले प्रत्ययान्त शब्द

१६२—धातुओं अथवा क्रियाओं के अन्त में 'अम्' लगाकर भी संस्कृत में 'क्त्वा', 'ल्यप्' प्रत्यय के अर्थ को व्यक्त किया जाता है। सामान्यभूत कालिक कर्मवाच्य की क्रिया की 'इ' के पूर्व जो परिवर्तन होते हैं वे ही परिवर्तन इस प्रत्यय के लगने पर होते हैं। (देखिए डा० कीलहोर्न कृत व्याकरण अनुच्छेद ३६७)। जैसे—क्षेपं—फेंक कर (क्षिप् से), वादं—कह कर (वद् से), भोजं—खाकर (भुज से)।

१६३—जब 'अम्' प्रत्ययान्त रूप दुहराया जाता है तो धातु द्वारा व्यक्त कार्य-व्यापार अथवा दशा का 'पौनःपुन्य' बोधित होता है। जैसे—

'स्मारं स्मारं नमति शिवं' (सिद्धान्त कौमुदी) बार-बार शिव का स्मरण करके उनको नमस्कार करता है। 'कलिंगनाथो मयि बद्धवैरं इति श्रावं श्रावं चण्डवर्मा युद्धायोद्यतो बभूव' (दशकु० २।३)—कलिंगाधिपति मुझसे वैर बाँधे है, इसको बार-बार सुनकर चण्डवर्मा युद्ध के लिए उद्यत हो गया। इसी प्रकार 'पायं पायं, दर्शं दर्शं' बार-बार पीकर अथवा देखकर।

१६४—[1]साधारणतया 'क्त्वा' प्रत्ययान्त रूप 'अग्रे', 'प्रथमम्' और 'पूर्वं' शब्दों के साथ प्रयुक्त होता है। जैसे—'अग्रे-प्रथमं-पूर्वं वा भोजं भुक्त्वा वा व्रजति'—पहिले खाकर चलता है।

(अ) [2] अन्यथा, एवं, कथं और इत्थं शब्दों के अनन्तर 'कृ + णमुल्' प्रत्यय लगता है। परन्तु 'कृ + णमुल्' प्रत्यय से निष्पन्न सम्पूर्ण शब्द का अर्थ वही होता है जो 'अन्यथा' आदि शब्दों का अर्थ होता है। जैसे—'एवं कारं भुंक्ते' (सिद्धान्त कौमुदी) इस प्रकार खाता है। 'कथंकारं भुंक्ते'—किस प्रकार खाता है। परन्तु 'शिरोऽन्यथाकृत्वा भुंक्ते'।

(ब) [3] जब क्रोधात्मक उत्तर दिया जाता है तब 'यथा, तथा' शब्दों के बाद 'कृ + णमुल्' प्रत्यय लगता है। जैसे—'यथा कारं भोक्ष्ये, किं तवानेन' (सिद्धान्त कौमुदी)—मैं इसी प्रकार खाऊँगा इससे तुमसे क्या प्रयोजन?

१६५—[4]मीठा अथवा स्वादिष्ट अर्थ द्योतक शब्दों के बाद 'कृ + णमुल्' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। जैसे—'स्वादुंकारं-लवणंकारं भुंक्ते'—भोजन को स्वादिष्ट बनाकर अथवा नमकीन बनाकर खाता है।

१६६—[5]'दृश्' और 'विद्' (जानना) धातु के कर्म के बाद, कर्म की सम्पूर्ण जाति का बोध कराने के लिये 'दृश् + णमुल्' और 'विद् + णमुल्'

---

१. विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु (३।४।२४)। २. अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् (३।४।२७)। ३. यथा तथयोरसूया प्रतिवचने (३।४।२८)। ४. स्वादुमि णमुल् (३।४।२६)। ५. कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये (३।४।२६)।

प्रत्यय को जोड़ दिया जाता है। जैसे—'कन्यादर्शं वरयति' (सिद्धान्त कौमुदी)—जितनी कन्याओं को देखता है उन सबका वरण करता है। 'ब्राह्मणवेदं भोजयति'—जितने ब्राह्मणों को जानता है सबको भोजन कराता है।

(अ) [1] 'णमुल्' प्रत्ययान्त 'विद्' (पाना) और 'जीव्' (जीना) धातुओं के रूप 'यावत्' शब्द के बाद पूर्व अर्थ (साकल्य) में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—'यावद्वेदं भुंक्ते'—वह जितना पाता है सब खाता है। 'यावज्जीवमधीते'—वह जीवन पर्यन्त अध्ययन करता है।

(ब) [2]'चर्मन्' और 'उदर' शब्दों के पश्चात् 'पूर् + णमुल्' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। जैसे—'उदरपूरं भुंक्ते'—पेट भर खाता है। 'चर्मपूरं स्तृणाति'—चमड़े को ढँकने भर के लिए फैलाता है।

१६७—[3]'पिष् + णमुल' प्रत्यय का प्रयोग 'शुष्क', 'चूर्ण' और 'रूक्ष' शब्दों के बाद, अँग्रेजी के (Cognate object) (क्रिया से निर्मित कर्म) की भाँति, होता है। अर्थात् णमुलन्त धातु और केवल धातु का भी प्रयोग धातु द्वारा बोधित अर्थ के रूप में होता है। जैसे—'चूर्णपेषं पिनष्टि'—वह कुछ चीज को तब तक पीसता रहता है जब तक चूर चूर नहीं हो जाता। इसी प्रकार 'शुष्क-रूक्ष-पेषं पिनष्टि'।

(अ) [4]समूल, अकृत और जीव के बाद क्रम से 'हन् + णमुल्', 'कृ + णमुल्' और 'ग्रह् + णमुल्' का प्रयोग क्रिया द्वारा निर्मित कर्म (Cognate object) के अर्थ में होता है। जैसे—'समूलघातं हन्ति'—जड़ सहित नष्ट कर देता है। अर्थात् बिलकुल ही नष्ट कर देता है। 'अकृतकारं करोति'—बिना पूर्वकृत कर्म को करता है। 'तं जीवग्राहं गृह्णाति'—उसको जीवित ही पकड़ता है।

---

१. यावति विन्दजीवोः (३।४।३०) २. चर्मोदरयोः पूरेः (३।४।३१) ३. शुष्क चूर्ण रूक्षेषु पिषः (३।४।३५) ४. समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः (३।४।३६)

(ब) इसीप्रकार 'हन् + णमुल्' और 'पिष् + णमुल्' प्रत्ययों का प्रयोग उस संज्ञा के बाद होता है जो 'हन्' और 'पिष्' क्रिया के सम्पादन में कारण हो। जैसे–'पादघातं हन्ति' = पादेन हन्ति--पैर से मारता है। 'उदपेषं पिनष्टि' = उदकैः पिनष्टि—पानी से पीसता है। 'तं हस्तग्राहं गृह्णाति'—उसको हाथ से पकड़ता है। इसी प्रकार 'पाणिग्राहं', 'करग्राहं' इत्यादि। 'हस्तवर्तं वर्तयति = हस्तेन इत्यादि। अन्य उदाहरण—'जीवनाशं नश्यति'—इस प्रकार नष्ट करता है कि उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है अर्थात् मर जाता है। 'उर्ध्वशोषं शुष्यति वृक्षः'—वृक्ष खड़ा-खड़ा ही सूख जाता है। इसी प्रकार 'उर्ध्वपूरं पूर्यते'।

१६८—[1] कभी-कभी सादृश्य अथवा समानता व्यक्त कराने के लिए इस प्रत्यय (णमुलन्त) का प्रयोग उस संज्ञा के बाद होता है, जिसके साथ सादृश्य दिखाना होता है; साधारणतया जिसे 'इव' द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। जैसे—'अजनाशं नष्टः'—बकरा की तरह नष्ट हो गया। 'पार्थसंचारं चरति'—पार्थ की भाँति चलता है। 'घृतनिधायं निहितं जलम्'—घी की तरह पानी रक्खा गया।

१६९—[2] जब णमुल् प्रत्ययान्त शब्द और प्रधान क्रिया का कर्म समान हो और 'क्त' प्रत्ययान्त रूप के प्रयोग करने की दशा में वह संज्ञा तृतीया में प्रयुक्त हो तब 'हन्' 'तड्' आदि हिंसार्थक धातुओं का 'णमुल्' प्रत्ययान्त रूप संज्ञा के बाद प्रयुक्त होता है। जैसे—'दण्डोपघातं गाः कालयति'—डण्डे से मार कर गायों को इकट्ठा करता है।

(अ) इसी प्रकार 'ब्रजोपरोधं गाः स्थापयति'—गायों को इस प्रकार रखता है कि वे सब एक गोष्ठ में आ जाती हैं। 'पार्श्वोपपीडं शेते' = पार्श्वाभ्यामुपपीडयन् शेते।

---

(१) उपमाने कर्मणि च (३।४।४५)।

(२) हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् (३।४।४८)

(ब) हस्त, केश तथा एतदर्थक शब्दों के अनन्तर, जब तात्कालिक सन्निकर्ष सूचित करना हो, णमुलन्त 'ग्रह' का प्रयोग होता है। जैसे—'केश-ग्राहं युध्यन्ते'—एक दूसरे का बाल पकड़ कर युद्ध करते हैं (केशेषु गृहीत्वा)। इसीप्रकार 'हस्तग्राहं = हस्तेन गृहीत्वा'। 'यष्टिग्राहं' = यष्टिं गृहीत्वा—लाठी लेकर।

१७०—[1] अवयव की अनस्थिरता सूचित करने के लिए किसी के निजी शरीरावयवसूचक शब्दों के बाद 'णमुलन्त' शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—'भ्रूविक्षेपं कथयति (वृत्तान्तम्)'—वह चारों ओर भौंहों को नचाकर वृत्तान्त कहता है।

(अ)[2] इसीप्रकार जब काम करने में शरीर का कोई अंग घायल अथवा पीड़ित हो तो उस अंग के बाद कर्मकारक के अर्थ में 'णमुल्' प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—'उरः प्रतिपेषं युध्यन्ते'—वे इस प्रकार युद्ध करते हैं कि सारा वक्षःस्थल पीड़ित हो उठता है (कृत्स्नमुरः पीडयन्तः)। 'स्तनसंबाधमुरो जघान च' (कुमार० ४।२६)—और उसने अपने वक्षःस्थल को इस प्रकार पीटा कि उसके स्तन पीड़ित हो उठे।

१७१—[3]'नामन्' के अनन्तर 'आ' उपसर्ग पूर्वक 'दिश्' और 'ग्रह्' के साथ कर्मकारक के अर्थ में 'णमुल्' प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे—'नामादेशमाचष्टे'—अपना नाम बताकर कहता है। 'नामग्राहं मामाह्वयति' वह नाम लेकर मुझे पुकारता है।

विशेष—'णमुल्' प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग संज्ञाओं के बाद समस्तपद बनाने के लिए भी होता है। जैसे—'ब्राह्मणवेदं' न कि ब्राह्मणान् वेदम्। 'जीवग्राहं' न कि जीवं ग्राहं।

---

(१) स्वांगेऽध्रुवे (३।४।५४)।

(२) परिक्लिश्यमाने च (३।४।५५)।

(३) नाम्न्यादिशिग्रहोः (३।४।५८)।

अभ्यास

१—स दुष्टाशयो बकः क्रमेण तान् पृष्ठमारोप्य, जलाशयस्य नातिदूरे शिलां समासाद्य, तस्यामाक्षिप्य स्वेच्छया भक्षयित्वा, भूयोऽपि जलाशयं समासाद्य, जलचराणां मिथ्यावार्तासन्देशकैर्मनांसि रंजयन्नाहारवृत्तिमकरोत्। (पंचतंत्र १।७)

२—ततो भ्रातृशरीरमग्निसात् कृत्वा पुनर्नवीकृतवैधव्यदुःखया मया त्वदीयं देशमवतीर्येमे काषाये गृहीते। (मालविका० ५)

३—प्रवृत्ते प्रदोषसमये चन्द्रापीडश्चरणाभ्यामेव राजकुलं गत्वा पितुः समीपे मुहूर्तं स्थित्वा दृष्ट्वा च विलासवतीमागत्य स्वभवनं शयनतलमधिशिश्ये। (कादम्बरी ९८)

४—ते हिमालयमामंत्र्य पुनः प्राप्य च शूलिनम्।
सिद्धं चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टाः खमुद्ययुः॥ (कुमार० ६।९४)

५—अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः सोऽनेन स्वागतेनाभिनंद्यते।
(शाकुन्तल० ६)

६—सा कुबेरभवनान्निवर्तमाना समापत्तिदृष्टेन केशिना दानवेन चित्रलेखाद्वितीया वंदीग्राहं गृहीता। (विक्रमो० १)

७—मगधराजः प्रक्षीणसकलसैन्यमंडलं मालवराजं जीवग्राहमभिगृह्य दयालुतया पुनरपि स्वराज्यं प्रतिष्ठापयामास। (दशकु० १।१)

८—मत्तकालो नाम लाटेश्वरो वीरकेतोस्तनयां वामलोचनां नाम तरुणीरत्नमसामान्यलावण्यं श्रावं श्रावमवधूतदुहितृप्रार्थनस्य तस्य पाटलीनाम्नीं नगरीमरौत्सीत्। (दशकु० १।३)

९—अनंतरं सूत्रधारो दारुवर्मा वैरोधकपुरःसरैः पदातिलोकैर्लोष्ठ-घातं हतः। (मुद्रा० २)

१०—संप्राप्य राक्षससभां चक्रंद क्रोधविह्वला ।
नामग्राहमरोदीत्सा भ्रातरौ रावणांतिके ॥ (भट्टि० ५।५)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—लतानुपातं कुसुमान्यगृह्णात् स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च ।
कुतूहलाच्चारुशिलोपवेशं काकुत्स्थ ईषत्स्मयमान आस्त ॥ (भट्टि० २।११)

२—स्नेहात् सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान् ।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय
धर्मासनाद् विशति वासगृहं नरेन्द्रः ॥ (उत्तर १।७)

३—विश्वासप्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता ।
अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किन्नाम पौरुषम् ॥ (हितो० ४)

४—तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिरं विभाव्य
चेतः कथं कथमपि व्यपवर्तते मे ।
लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य धैर्य-
मुन्मथ्य मंथरविवेकमकांड एव ॥ (मालती० १)

५—श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोपि सद्यः
शापस्यांतं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः ।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखान् प्रापयामास शश्वत् ॥ (मेघदूत ११६)

६—निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता १।३१)

७—राजवाहनो रसालतरुषु कोकिलादीनां पक्षिणामालापान् श्रावं श्रावं

विकसितानि सरांसि दर्शं दर्शम् अमन्दलीलया ललनासमीपमवाप।
(दशकु० १।५)

८—तेनैव दीपदर्शितेन बिलपथेन गत्वा स्थितेऽर्धरात्रे वासगृहं प्रविष्टो विश्रब्ध-प्रसुप्तं सिंहघोषं जीवग्राहमग्रहीषम्। (दशकु० २।४)

९—तं विप्रदर्शं कृतघातयत्ना यान्तं वने रात्रिचरी डुढौके।
जिघांसुवेदं धृतभासुरस्त्रस्तां ताडकाख्यां निजघान रामः॥ (भट्टि० ३।१४)

१०—विद्युतप्रणाशं स वरं प्रणष्टो यद्वोर्ध्वशोषं तृणवद् विशुष्कः।
अर्थे दुरापे किमुत प्रवासे न शासनेऽवास्थित यो गुरूणाम्॥
(भट्टि० ३।१४)

११—यो नष्टानपि जीवनाशमधुना शुश्रूषते स्वामिन—
स्तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ संधास्यते राक्षसः।
इत्थं वस्तुविवेकमूढमतिना म्लेच्छेन नालोचितम्
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा पूर्वं विपर्यस्यति॥ (मुद्रा० ६)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए

[नोट—'क्त्वा' और 'ल्यप्' प्रत्ययों का प्रयोग कीजिए]

१—बहेलिया को अपनी ओर आता हुआ देखकर सभी जानवर डर कर विभिन्न दिशाओं में भाग गये।

२—वंग देश के राजा से यह समाचार कह कर तुम कब लौटे?

३—दत्तचित्त होकर, प्रारम्भ किये हुये कार्य को न बन्द करने की प्रतिज्ञा करके अपने कार्य को प्रारम्भ करो।

४—किसी नगर के आस-पास घूमता हुआ सियार एक नील के पात्र में एकाएक गिर पड़ा और उठने में असक्त होकर अपने को मृत प्रदर्शित करके वहीं पड़ा रहा।

५—धूर्त की बात को सुनकर ब्राह्मण ने बकरे को जमीन पर रख दिया, उसे बार-बार देखा, अपने कन्धे पर पुनः एक बार रक्खा और धूर्त की बातों को सोचता हुआ वह अपने घर की ओर चल पड़ा।

६—उसे राजसभा में बुलाकर, उपयुक्त पुरस्कारों से सम्मानित कर और राजा का आदेश सुना कर मंत्री द्वारा सम्मानपूर्वक वहिष्कृत कर दिया गया।

[**नोट**—अनुवाद में 'णमुल्' प्रत्यय का प्रयोग कीजिए]

७—जितनी कन्याओं को उसने अपने योग्य समझा, (दृश्) उन सभी का उसने वरण कर लिया।

८—उसने दवा को पीसकर चूर्ण बना डाला (पिष्) और उसे आग पर रख तथा उबाल कर पी लिया।

९—राजा के अनुयायियों द्वारा वह, उनके मालिक को मार डालने के कारण पत्थरों से मार डाला गया (हन्)।

१०—मैंने अपने शत्रु के ऊपर तुरन्त आक्रमण कर दिया और उसके सभी अनुचरों को भगा कर उसे जीवित ही पकड़ लिया (ग्रह्)।

११—पाटलिपुत्र के राजा ने वसुदुर्ग नगर को जीत लिया और वहाँ के निवासियों को बन्दी बना लिया।

१२—मेरा नाम लेकर कौन पुकारता है ?

पाठ १६

तुमुन् प्रत्यय (The Infinitive Mood)

१७२—जब कोई एक कार्य दूसरे कार्य के लिए किया जाता है तो दूसरे कार्य का बोध कराने के लिए संस्कृत में धातु के आगे 'तुमुन्' प्रत्यय लगता है। अनद्यतन भविष्यत् (Periphrastic Future) के प्रथम पुरुष के एक वचन के रूप की भाँति 'तुमुन्' प्रत्ययान्त रूप भी बनता है। यह प्रत्यय 'के लिए' के अर्थ में प्रयुक्त होता है और अँग्रेजी के Infinitive of purpose अथवा Gerund की भाँति कार्य करता है। इस प्रकार 'तुमुन्' प्रत्यय चतुर्थी विभक्ति का बोधक होता है और यदि आवश्यकता पड़ती है तो 'तुमुन्' प्रत्यय के स्थान पर धातु के आगे कृदन्त प्रत्यय लगाकर संज्ञा बनाने के पश्चात् उसके चतुर्थी के रूप का प्रयोग करते हैं। जैसे—'पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे' (रघु० ४। ६०)—तब पारसीकों को जीतने के लिए प्रस्थान किया। यहाँ पर 'जेतुं' के स्थान पर 'जयाय' का प्रयोग करके वाक्य को इस प्रकार लिख सकते हैं—'पारसीकानां जयाय प्रतस्थे'। इसीप्रकार 'स्वेदसलिल-स्नातापि पुनः स्नातुमवातरम्' (कादम्बरी १४७)। 'स्नातुं' के स्थान पर 'स्नानाय' हो सकता है।

विशेष—(अ) अँग्रेजी Infinitive की भाँति संस्कृत 'तुमुन्' प्रत्यय किसी प्राचीन प्रत्यय का अवशेष है। वैदिक युग में धातु के आगे 'तु' प्रत्यय लगाकर उनके द्वारा बने संज्ञा पदों के रूप चलाये जाते थे। गंतुं, गंतवे, गंतोः आदि रूप मिलते हैं। गंतु एक सामान्य संज्ञापद था। समय व्यतीत होने पर गंतोः, गंतवे रूपों का प्रयोग कम होता गया और जो रूप प्रधानतया प्रयुक्त होता था वह प्रत्यय द्वितीया के अर्थ में था। इसी प्रकार उसके चतुर्थी

विभक्ति के रूप का भी अनुमान किया जा सकता है। इसीलिए वर्तमान 'तुमुन्' प्रत्यय सर्वदा चतुर्थी के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

१७३—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द किसी क्रिया के 'कर्त्ता' अथवा 'कर्म' नहीं हो सकते। उनका वाक्य के किसी शब्द के साथ सम्बन्ध नहीं रहता। जहाँ अँग्रेजी में Infinitive किसी क्रिया के कर्त्ता अथवा कर्म के रूप में प्रयुक्त होता है वहाँ संस्कृत में उस धातु से निष्पन्न भाववाचक संज्ञा का प्रयोग करना पड़ेगा। जैसे—To get up early in the morning is wholesome. का अनुवाद होगा, 'प्रातरेव उत्थानम् आरोग्यवहम्'—न कि उत्थातुम्। I learn to sing = अहं गानम् अधीये (न कि गातुं)।

(अ)—लैटिन की भाँति Seeing (देखना), hearing (सुनना) क्रिया के बाद आने वाले Infinitive का अनुवाद संस्कृत में 'शतृ' और 'शानच्' प्रत्ययान्त शब्दों द्वारा होगा। जैसे—I heard him speak = 'भाषमाणं तमश्रौषम्'। इसी प्रकार 'अधीयानं ददर्श तम्' = 'He saw him study.

१७४—संस्कृत 'तुमुन्' प्रत्यय का मुख्य अर्थ है किसी क्रिया का अभिप्राय व्यक्त करना, परन्तु अँग्रेजी की भाँति संस्कृत में भी कुछ ऐसे स्थल हैं जहाँ 'तुमुन्' (Infinitive) का प्रयोग संज्ञा और विशेषण के साथ भी होता है। जैसे—Fit to do, able to do, time to read. ऐसे प्रयोग कुछ संस्कृत मुहावरों तक ही सीमित हैं। इस प्रकार के कुछ मुख्य-मुख्य प्रयोग निम्नलिखित हैं—

१७५—[1]'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द और क्रिया का कर्त्ता जब एक होता है तभी 'इच्छा' अर्थ में 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे—'पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति' (कुमार० ५। ५३)—पिनाकपाणि शंकर जी को पति के रूप में प्राप्त करने की इच्छा करती हैं। इसी प्रकार 'अत्तुं वाञ्छति

(१) समानकर्त्तृकेषु तुमुन् (३। ३। १५८)।

शांभवो गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी' (पंचतंत्र १ । ६) । किन्तु 'त्वां गन्तुं अहमिच्छामि'—मैं तुमको जाने की इच्छा करता हूँ—प्रयोग अशुद्ध है, क्योंकि इस वाक्य में 'गन्तुं' और 'इच्छामि' का कर्त्ता एक नहीं है ।

१७६—[1]शक् धृष्, ज्ञा, ग्ला, घट्, रभ्, लभ्, क्रम्, सह्, अर्ह्, अस् इन धातुओं के उपपद में प्रयोग होने पर 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग होता है । जैसे—'न शक्नोमिहृदयमवस्थापयितुं' (उत्तर० ४)—मैं अपने हृदय को सँभाल नहीं सकता । 'वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेवम्' (कुमार० ३ । २) इस प्रकार उससे एकान्त में बातचीत करने के लिए चल पड़ा । 'जानासि देवीं विनोदयितुं' (उत्तर० १)—देवी का मनोरंजन करना जानते हो । 'अस्ति-भवति-विद्यते वा भोक्तुमन्नं' (सिद्धान्त कौमुदी) भोजन के लिए अन्न है । 'न विषहे विपत्तिमवलोकयितुं' (वेणी० ३)—मैं विपत्ति देखने को सहन नहीं कर सकता ।

---

(१) शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहर्हास्त्यर्थेषु तुमुन् (३।४।६५)

यह सूत्र गूढ़ार्थ रखता है । भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी में लिखा है कि 'अर्थ ग्रहणमस्तिनैव संवध्यते अनन्तरत्वात्' अर्थात् सूत्र में 'अर्थ' शब्द का संबन्ध केवल 'अस्ति' धातु के साथ ही है (अस्ति और एतदर्थक अन्य धातुओं के योग में भी) । परन्तु अनेक उदाहरणों से भट्टोजि दीक्षित की यह व्याख्या ठीक नहीं प्रतीत होती । भट्टोजि दीक्षित के अनुसार 'पारय्' (योग्य होना) धातु का 'तुमुन्' के साथ प्रयोग नहीं होना चाहिए, परन्तु 'न पारयामि निवेदयितुं' (शाकुन्तल०४), 'पारयिष्यत्यत्रभवत्या अपराद्धुं' (मालविका० ३) आदि प्रसिद्ध लेखकों के उदाहरण उपलब्ध हैं । इसी प्रकार 'विद्' (जानना) धातु का प्रयोग 'तुमुन्' के साथ नहीं होना चाहिए, परन्तु 'न च वेद सम्यग् द्रष्टुं न सा' (रघु० ६।३०) एक बहुत अच्छा उदाहरण है । अतः मैं जहाँ तक समझता हूँ, सूत्र में 'अर्थ' का सम्बन्ध सभी धातुओं के साथ होना चाहिए ।

१७७—[1]पर्याप्त, समर्थ, योग्य आदि का अर्थ बोध कराने वाले शब्दों तथा योग्यता, शक्ति अथवा पटुता अर्थ द्योतक विशेष्यों के साथ भी 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे—'लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः' (हितो० १)—भाग्य में (मस्तक में) जो लिखा है उसे कौन मिटा सकता है? 'लोकानलं दग्धुं हि तत्तपः' (कुमार० २।५६)—उसकी तपस्या समस्त लोक को भस्म करने में समर्थ है। 'अस्ति मे विभवः सर्वं परिज्ञातुं'। (विक्रमो० २) —मैं सब कुछ जानने की शक्ति रखता हूँ। 'कोन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभविष्यति' (शाकुन्तल० ४)—अग्नि के अतिरिक्त और कौन जलाने में समर्थ हो सकता है? 'भोक्तुं प्रवीणः कुशलः पटुर्वा' (सिद्धान्त कौमुदी)—भोजन करने में दक्ष।

१७८—[2]'काल' वाचक शब्दों के योग में भी 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग होता है जैसे—'अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुं' (शाकुन्तल० १)—यह अवसर अपने को प्रकट करने का है। 'समयः खलु स्नानभोजने सेवितुं' (विक्रमो० २)—यह स्नान करने और भोजन करने का समय है।

नोट—लैटिन की भाँति संस्कृत में भी कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं जो स्वरूपतः कर्मवाच्य की हैं किन्तु अर्थ में कर्त्तृवाच्य की हैं। जैसे शक्, युज्, अर्ह् और इनके द्वारा बने हुए शब्द। उदाहरणार्थ—'न शक्यास्ते दोषाः समाधातुं' (हितो० ३)—उन दोषों का परिमार्जन नहीं हो सकता। 'न युक्तं अशोको वामपादेन ताडयितुं' (मालविका० ३)—अशोक को वाम पाद से मारना उपयुक्त नहीं है।

१७९—संस्कृत में 'तुमुन्' का कर्मवाच्य रूप दूसरा नहीं होता। एक ही रूप कर्त्तृवाच्य और कर्मवाच्य दोनों में प्रयुक्त होता है। 'तुमुन्' प्रत्यय से युक्त वाले वाक्यों का कर्मवाच्य बनाने में 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द ज्यों के त्यों

(१) पर्याप्ति वचनेष्वलमर्थेषु (३।४।६६)।

(२) कालसमयवेलासु तुमुन् (३।३।१६७)।

रहते हैं। जैसे—'स मित्राय द्रोग्धुमिच्छति—तेन मित्राय द्रोग्धुमिष्यते'। 'रामो ग्रामं गन्तुमारेभे—रामेण ग्राम गन्तुमारेभे।'

जहाँ 'तुमुन्'प्रत्ययान्त शब्द और क्रिया का कर्म एक ही होता है, वहाँ कर्मवाच्य में कर्म पद कर्त्ता की परिस्थिति में रक्खा जाता है और यह जान लिया जाता है कि उसका सम्बन्ध 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द के साथ होता है। जैसे—'स ग्रन्थं पठितुमिच्छति'—'तेन ग्रन्थः पठितुमिष्यते'। 'ग्रन्थं पठितुमिष्यते' प्रयोग ठीक नहीं है, क्योंकि यह वाक्यविन्यास भावे में हो जायेगा। यहाँ 'इष्' अकर्मक न होने के कारण 'भावे' प्रयोग नहीं हो सकता।

अनुच्छेद १७८ के नोट में लिखित धातुओं के योग में दोनों प्रयोग शुद्ध होंगे। 'पवनमालिंगितुं शक्यते' अथवा 'पवनः आलिंगितुं शक्यते'। यद्यपि दूसरा प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा जाता है।

१८०—'अर्ह्' धातु का प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है। 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्दों के साथ इसका प्रयोग बहुधा 'प्रार्थना' अथवा 'विनय' के अर्थ में होता है। अथवा उन वाक्यों में इसका प्रयोग होता है जहाँ अँग्रेजी में Be pleased (कृपया) अथवा I pray or beg (मैं प्रार्थना करता हूँ) प्रयुक्त होते हैं और इस अर्थ में 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द साधारण रूप से मध्यम पुरुष और प्रथम पुरुष के साथ आते हैं। जैसे—'न मां परं संप्रतिपत्तुमर्हसि' (कुमार० ५।३६)—मुझे आपको पराया न समझना चाहिए। 'अवहितस्तावच्छ्रोतुमर्हति कुमारः' (मुद्रा० ४)—कृपया कुमार इसको ध्यान पूर्वक सुनें। 'प्रिये जानकि न मामेवं विधं परित्यक्तुमर्हसि' (उत्तर० ३)—प्यारी जानकी, कृपया मुझे इस दशा में पड़े हुये न छोड़ो।

१८१—'तुमुन्' प्रत्यय केवल 'तु' 'काम' और 'मनः' शब्दों के साथ 'इच्छुक' अर्थ में प्रयुक्त होता है और यह व्यक्त करता है कि धातु द्वारा सूचित कार्य को करने के लिए कर्त्ता इच्छुक है। जैसे—'पुनरपि वक्तुकाम इवार्यो लक्ष्यते' (शाकुन्तल० १)—आप पुनः कुछ कहने के इच्छुक जान पड़ते हैं।

अभ्यास

१—मध्यस्था भवती नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुमर्हति। (मालविका० १)

२—न युक्तं ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याचष्टुम्। (शाकुन्तल० ५)

३—नार्हति तातो गजपुंगवधारितायां धुरि दम्यं नियोजयितुम्। (विक्रमो० ५)

४—न शक्यं दैवमन्यथा कर्तुमभियुक्तेनापि। यावत्तु मानुष्यके शक्यमुपपादयितुं तावत्सर्वमुपपाद्यताम्। (कादम्बरी ६२)

५—का गणना सचेतनेषु। अपगतचेतनान्यपि संघट्टयितुमलमयं मदनः। (कादम्बरी १५)

६—अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात्।
नवसंरोहणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम्॥ (मालविका० १)

७—घातयितुमेव नीचः परकार्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम्।
पातयितुमेव शक्तिर्नाखोरुद्धर्तुमन्नपिटम्॥ (पंचतंत्र १।१५)

८—शब्दादीन्विषयान् भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः।
पर्याप्तोसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम्॥ (रघु० १०।२५)

९—वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ।
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न शृण्वताम्॥ (रघु० १५।६४)

१०—व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम्। (शाकुन्तल० ५)

११—व्यालं बालमृणालतंतुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते।
छेत्तुं वज्रमणीन् शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षीरांबुधेरीहते।
नेतुं वांछति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः॥
(भर्तृ० २।६)

———

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—अलमनया कथया। संह्रियतामियम्। अहमप्यसमर्थः श्रोतुम्। अतिक्रान्तान्यपि संकीर्त्यमानान्यनुभवसमां वेदनामुपजनयन्ति सुहृज्जनस्य दुःखानि। तन्नार्हसि कथं कथमपि विधृतानिमानसुलभानसून् पुनः पुनः स्मरणशोकानलेन्धनतामुपनेतुम्। (कादम्बरी १६८)

२—अमात्यकुमारो विज्ञापयति। यद्यपि स्वामिगुणा न शक्यन्ते विस्मर्तुं, तथापि मद्विज्ञापनां मानयितुमर्हत्यार्यः। (मुद्रा० २)

३—न खलु न खल्वमंगलानि चिंतयितुमर्हन्ति भवंतः कौरवाणाम्। सन्धेयास्ते भ्रातरो युष्माकम्। (वेणी० १)

४—शमयति गजानन्यान् गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्
भवति सुतरां वेगोदग्रं भुजंगशिशोर्विषम्।
भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्यसहो भरः॥ (विक्रमो० ५)

५—अतोऽत्र किंचिद् भवतीं बहुक्षमां द्विजातिभावादुपपन्नचापलः।
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि॥ (कुमार० ५।४०)

६—तमर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि।
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता॥ (कुमार० ६।७९)

७—न पृथग्जनवच्छुचो वशं वशिनामुत्तम गन्तुमर्हसि।
द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः॥ (रघु० ८।९०)

८—अयि सुतपराक्रमानभिज्ञे—
धर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति
मध्ये वृकोदरकिरीटभृतोर्बलेन।
एकोऽपि विस्फुरितमण्डलचापचक्रं
कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः॥ (वेणी० २)

———

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—जहाँ तक सम्भव हो सका उसने अपने देशवासियों का उपकार करने का प्रयत्न किया।

२—तुम अपने भाई की सम्पत्ति क्यों ले लेना चाहते हो?

३—मैंने उससे काम करने को कहा, परन्तु उसने बहुत ही उपेक्षाभाव से किया।

४—प्रतिकार करना पहिले तो मनुष्य को अच्छा लगता है, परन्तु अन्त में इससे उसी का नाश होता है।

५—मैं किसी गरीब व्यक्ति का भी अपमान होता हुआ सहन नहीं कर सकता।

६—हे कृष्ण, कृपया इस संदेह को दूर (छिद्) कर दीजिए।

७—यह अब तुम्हारे अध्ययन के प्रारम्भ करने का समय है।

८—यहाँ तक कि एक क्षुद्र शत्रु भी अपमान का पात्र नहीं है (अर्ह्)।

९—मैं इच्छुक था कि वे बम्बई जायँ, परन्तु वे लोग वैसा करना नहीं चाहते।

१०—तुम्हें केवल एकाकी छोड़कर दूसरे देश में जाना कैसे सम्भव हो सकता है (शक्य)।

११—दुर्भिक्ष काल में गरीबों को कौन कहे, धनियों के लिए भी सम्मानपूर्वक जीवनयापन करना कठिन हो जाता है।

१२—यह अधम अपने अपराध के कारण दण्डनीय है (युज्यते)

१३—इस प्रसन्नता के दिवस पर सभी कैदी मुक्त कर दिये जायँ।

१४—संकट से पीड़ित होकर आलसी बनकर घर में पड़े रहने की अपेक्षा अपने को संकट में डालना कभी-कभी अच्छा होता है।

१५—अलका में वे विशाल राजप्रासाद उन उन विशेषताओं में तुम्हारी समता (तुल्) करने में समर्थ (अलम्) हैं।

१६—वह दूसरों के प्रति उपकार करने का बहुत ही इच्छुक था, परन्तु अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने में किसी भी सीमा तक समर्थ नहीं हुआ है।

१७—मैं आपसे इस विनय को स्वीकार करने की प्रार्थना करता हूँ। इसे मैं सदा कृतज्ञता पूर्वक स्मरण रखना अपना परम कर्त्तव्य समझूँगा।

पाठ १७

काल और वृत्तियाँ

१८२—संस्कृत में सब मिलाकर दस काल और वृत्तियाँ हैं। निम्नलिखित श्लोक में दसों लकार गिनाये गए हैं :—

लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ् लङ् लिटस्तथा।
विध्याशिषोस्तु लिङ् लोटौ लुट् लृट् लृङ् च भविष्यति ॥

१—वर्तमान काल (Present) २—अनद्यतनभूत (Imperfect) ३—परोक्षभूत(Perfect) ४—सामान्यभूत (Aorist) ५—अनद्यतनभविष्यत् (Periphrastic Future) ६—सामान्य भविष्यत् (Simple Future) ७—आज्ञा (Imperative Mood) ८—विधि (Potential Mood) ९—क्रियातिपत्ति (Conditional Mood) १० आशीः (Benedictive)। पाणिनि द्वारा दिए गये दस लकार निम्नलिखित हैं—१—लट् २—लङ् ३—लिट् ४—लुङ् ५—लुट् ६—लृट् ७—लोट् ८—लिङ् ९—लृङ् और १०—लेट्[1]। इनमें से अन्तिम 'लेट्' का प्रयोग केवल वेद में ही मिलता है और क्रियातिपत्ति अर्थ में प्रयुक्त होता है तथा यह

---

(१) पाणिनि की यह व्याख्या कृत्रिम है और निर्दिष्ट सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। कुछ अन्य वैयाकरणों ने उचित (विवेकपूर्ण) नामकरण किया है। कुछ कालों और वृत्तियों के नाम उनके अनुसार उपर्युक्त क्रम से इस प्रकार हैं—भवन्ती (वर्तमान), अस्तनी, परोक्षा, अद्यतनी, श्वस्तनी, भविष्यन्ती, पंचमी, सप्तमी (केवल ये ही दोनों बिलकुल बनावटी हैं), क्रियातिपत्तिः और आशीः। 'वृत्तिः' शब्द सब के अन्त में समझना चाहिए, इसीलिए स्त्रीलिंग का प्रयोग है।

साधारणतया वैदिक क्रियातिपत्ति (क्रिया का संशयात्मक रूप) का ही रूप है। शेष नव क्रमानुसार उक्त कालों और वृत्तियों को व्यक्त करते हैं। (Benedictive) को संस्कृत में आशीर्लिङ् कहते हैं जो विधिलिङ् से भिन्न है।

निम्नलिखित तालिका में इनको क्रम से समझा जा सकता है।

१—वर्तमान काल	लट्—	Present tense
२—अनद्यतनभूत	लङ्—	Imperfect
३—परोक्षभूत	लिट्—	Perfect tense
४—सामान्यभूत	लुङ्—	Aorist
५—अनद्यतनभविष्यत्	लुट्—	Periphrastic (First) Future
६—सामान्यभविष्यत्	लृट्—	Simple Future tense
७—आज्ञा	लोट्—	Imperative Mood
८—विधि	विधि लिङ्—	Potential Mood
९—क्रियातिपत्ति	लृङ्—	Conditional mood
१०—आशीः	आशीर्लिङ्—	Benedictive

१८३—संस्कृत में प्रत्येक क्रिया के रूप, चाहे वे मूलरूप में (नौगणी) हों, चाहे प्रेरणार्थक (णिजन्त), सन्नन्त अथवा यङन्त हों, दसों लकारों में चलते हैं, यद्यपि अन्तिम दो अर्थात् सन्नन्त और यङन्त के रूप वर्तमान काल के अतिरिक्त अन्य कालों में बहुत ही कम प्रयुक्त होते हैं। प्रायः उनका भाव दूसरे प्रकार से शब्दों का निर्माण करके व्यक्त किया जाता है। जैसे—'जिगमिषति—गन्तुमिच्छति'। अटाट्यते—भृशमटति।

१८४—संस्कृत के कुछ काल तो अन्य भाषाओं के काल के साथ मिलते जुलते हैं, किन्तु कुछ केवल संस्कृत में ही देखे जाते हैं। इस पाठ में और आगे के तीन पाठों में उनके प्रयोग और अर्थ दिये गये हैं। इस पाठ में वर्तमान काल, आज्ञा और आशीर्लिङ् पर विचार किया गया है।

वर्तमान काल

१८५—वर्तमान काल का प्रयोग किसी वर्तमान समय में होने वाले काम अथवा वर्तमान किसी घटना का वर्णन करने के लिए किया जाता है। जैसे—'जगतः पितरौ वन्दे' (रघु० १।१)—मैं सारी सृष्टि के माता-पिता की वन्दना करता हूँ।

विशेष—वास्तव में वर्तमान काल का प्रयोग संस्कृत में लगातार होने वाले किसी कार्य केलिए अथवा अपूर्ण वर्तमान अर्थात् प्रारम्भ होकर निरन्तर चलते रहने वाले कार्य केलिए होता है। पतंजलि कहते हैं कि 'प्रवृत्तस्याविरामे शासितव्या भवन्ती' जिसका अर्थ है कि वर्तमानकाल की क्रिया द्वारा व्यक्त कार्य अभी भी चल रहा है और अभी बन्द नहीं हुआ है। जैसे—'वहति जलमियं पिनष्टि गन्धानियम्' (मुद्रा० १)—यह पानी ले आती (ले आ रही) है, यह सुगन्धित पदार्थों को पीसती (पीस रही) है। 'एतास्तपस्विकन्यका इत एवाभिवर्तन्ते' (शाकुन्तल० १)—ये तापस-कन्याएँ इसी ओर आती (आरही) हैं। इस चलते रहने वाले कार्यव्यापार को व्यक्त करने के लिए संस्कृत में अलग से कोई रूप नहीं है, अतः साधारण रूप का ही प्रयोग होता है।

किन्तु इसे स्मरण रखना चाहिए कि किसी विशेष क्रियाविशेषण द्वारा वर्तमान काल का प्रयोग केवल 'होते हुये' कार्य की सूचना देने के लिये ही किया जा सकता है। जैसे—'देवदत्तो गच्छति' अर्थात् (अधुना) अथवा 'सम्प्रत्यधीयावहे'। जैसा कि बेन ने कहा है (व्याकरण पृष्ठ १८५) कि वर्तमान काल का मुख्य प्रयोग शाश्वत सत्य का बोध कराना है। यह सदा केवल वर्तमान समय का ही बोध कराता है। प्रकृति की नित्य व्यवस्थाओं और नियमों, जीवधारियों की विशेषताओं और प्रवृत्तियों तथा जो भी नित्य, व्यवस्थित और एक स्वरूप है उनको वर्तमान काल द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसे—'सत्संगतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्' (भर्तृ० २।२३)—भला बताइए, सत्संगति पुरुषों केलिए क्या नहीं करती? 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि

हिमालयो नाम नगाधिराजः' (कुमार० १।१)—उत्तर दिशा में नगाधिराज हिमालय है। इसीप्रकार 'नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिहसर्वजन्तूनां' (कादम्बरी ३५)। 'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति' (उत्तर० १)। 'न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते' (मालती० १)।

१८६—इन साधारण भावों के अतिरिक्त, अँग्रेजी की भाँति संस्कृत में भी वर्तमानकाल निम्नलिखित भावों को व्यक्त करता है—

(अ) कभी कभी यह तात्कालिक भविष्यत् काल का बोध कराता है। जैसे—'अयमहमागच्छामि' (शाकुन्तल० ३)—यह मैं आता हूँ (आऊँगा)। 'कदा गमिष्यसि, एष गच्छामि' (सिद्धान्त कौमुदी)। 'नन्वयं न भवसि' (मालती० ५)।

(ब) जब कोई कार्य तुरन्त हुआ हो तो आसन्नभूत काल के कार्य को व्यक्त करने केलिए वर्तमान काल का प्रयोग हो सकता है। जैसे—'कदा त्वं नगरादागतोसि—अयमागच्छामि' (सिद्धान्त कौमुदी)—तुम गाँव से कब आए ? यह, मैं आता हूँ (अभी आया हूँ)।

(स) किस्सा, कहानियों में और भूतकाल की घटनाओं का वर्णन करने में वर्तमान काल का इसप्रकार प्रयोग किया जाता है मानो वक्ता उन सबको अपनी आँखों के सामने घटित देख रहा हो। जैसे—'हस्ती ब्रूते—कस्त्वं' हाथी पूछता है (पूछा)—तुम कौन हो ?

(द) 'तक, जहाँ तक सम्भव है, पूर्व, जब' इत्यादि अर्थ सूचक शब्दों के योग में यह भविष्यत् काल के भाव को व्यक्त करता है। जैसे—'तद्यावन्न परापतति तावदपसर्पतानेन तरुगहनेन' (उत्तर० ४)—तो जब तक वह नहीं लौट आता, इसके पहिले ही इस सघन वृक्ष से निकल चलो।

(इ) कभी-कभी वर्तमान काल, अँग्रेजी के स्वाभाविक अतीतकाल के कार्य की भाँति ('used to' or 'would') संस्कृत में भी स्वाभाविक रूप में होने वाले कार्यों का बोध कराने के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे—'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं' (शाकुन्तल० ४)—पहिले जल पीने की बात भी

नहीं सोचती थी। इसी प्रकार 'हिरण्यको भोजनं कृत्वा विले स्वपिति' (हितो० १)।

१८७—कभी-कभी वर्तमान काल का प्रयोग भविष्यत् काल केलिए हेतु-हेतुमद्भाव के अर्थ में होता है। जैसे—'योन्नंददाति (दाता दास्यति वा), स स्वर्गं याति (याता यास्यति वा), (सिद्धान्त कौमुदी)—जो अन्नदान करता है, देता है (देगा), वह स्वर्ग जाता है (जायेगा) ।

१८८—जब वर्तमान काल के साथ 'स्म' जोड़ दिया जाता है तब उससे 'भूतकाल' का बोध होता है। जैसे—'कस्मिंश्चिद्वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसतिस्म' (पंचतंत्र १।८) किसी जंगल में भासुरक नाम का एक सिंह रहता था। 'क्रीणन्तिस्म प्राणमूल्यैर्यशांसि' (शिशुपालवध १७।१५)—प्राणों का मूल्य देकर यश खरीदा।

१८९—प्रश्न वाचक शब्दों के साथ वर्तमान काल का प्रयोग प्रायः इच्छार्थक रूप में भविष्यत् काल के अर्थ में होता है। जैसे—'किं करोमि, क्व गच्छामि' (उत्तर० १)—क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? 'कं भोजयसि' (सिद्धान्त कौमुदी)। इसीप्रकार 'किं गच्छामि तपोवनं' (मुद्रा० ६)।

(अ) जब किसी प्रश्न का उत्तर दिया जाता है तब वर्तमान काल का प्रयोग 'ननु' शब्द के साथ भूतकाल के अर्थ में होता। जैसे—'कटमकार्षीः किम्—ननु करोमि भोः' (सिद्धान्त कौमुदी)

१९०—[1] क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त 'पुरा' और 'यावत्' शब्दों के साथ वर्तमान काल का प्रयोग निश्चयार्थक भविष्यत् काल के अर्थ में होता है। जैसे—'आलोके ते निपतति पुरा' (मेघदूत ८८)—निश्चय ही तुम्हारे दृष्टिपथ में आयेगा। 'यावदस्य दुरात्मनः समुन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि' (उत्तर० १)—तब तक मैं इस दुष्टात्मा का उन्मूलन करने के लिए शत्रुघ्न को भेजता हूँ (भेजूँगा)।

विशेष—निश्चय का भाव आवश्यक नहीं है।

---

(१) यावत् पुरा निपातयोर्लट् (३।३।४)

आज्ञा (लोट्) (The Imperative Mood)

१९१—अँग्रेजी की तरह इस लकार (लोट्) का प्रयोग मध्यम पुरुष में आज्ञा, विनती अथवा विनम्रसम्मति के अर्थ में होता है। जैसे—'शृणुत रे पौराः' (मृच्छ० १०)—अरे नागरिको, सुनो। 'परित्रायध्वम् परित्रायध्वम्'—रक्षा करो, रक्षा करो। 'हा प्रियसखि, क्वासि, देहि मे प्रतिवचनम्' (उत्तर० १)—हाय प्रिय सखी, कहाँ हो—मुझे उत्तर तो दो। 'तृष्णां छिन्धि, भज क्षमां, जहि मद' (भर्तृ० २)—लालच को त्यागो, क्षमा को ग्रहण करो, गर्व को छोड़ो।

(अ) 'लोट्' लकार का प्रयोग प्रायः कर्मवाच्य में विनम्रता द्योतन के अर्थ में होता है। जैसे—'एतदासनमास्यतां' (विक्रमो० २)—यह आसन है, कृपया बैठ जाइए।

१९२—लोट् लकार के मध्यम पुरुष और अन्यपुरुष का प्रयोग प्रायः आशीर्वादात्मक अर्थ का बोध कराने के लिए होता है। जैसे—'प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः' (शाकुन्तल० १)—उन आठ प्रत्यक्ष स्वरूपों से युक्त शंकर भगवान तुम लोगों की रक्षा करें। 'पर्जन्यः कालवर्षी भवतु जनमनोनन्दिनो वान्तु वाताः' (मृच्छ० १०)—बादल समय पर बरसें, लोगों के मन को आनन्दित करने वाली हवाएँ बहें। 'पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि' (शाकुन्तल० १)—ऐसे गुणों से युक्त चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त करो। 'पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपम्' (रघु० ५।३४)—अपने ही समान पुत्र प्राप्त करो। 'तात मे चिरं जीव' (उत्तर० ४) इत्यादि।

१९३—भूतकाल और वर्तमान काल के रूप में आज्ञाओं और उपदेशों के द्योतन के लिए लोट् लकार का प्रयोग होता है और इसका प्रयोग प्रायः नियमों के विधान तथा उपदेशों के देने में भी उसी प्रकार होता है जिस प्रकार उसी भाव में विधिलिङ् का होता है (पाठ १८ देखिए)।

१९४—लोट् लकार के मध्यम पुरुष का एक प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है। जब कार्य की पुनरावृत्ति अथवा पौनःपुन्य द्योतित करना हो तो 'लोट्'

के मध्यम पुरुष का रूप (परस्मैपद और आत्मनेपद) दुहराया जाता है, चाहे प्रधान-क्रिया का कर्त्ता भिन्न हो और वह किसी भी काल में हो। जैसे—'याहि याहीति याति' (सिद्धान्त कौमुदी) –वह बार बार जाता है। इसी प्रकार 'यात यातेति याथ'। 'अधीष्व अधीष्वेति अधीते'।

विशेष—मराठी तथा संस्कृत से उत्पन्न अन्य भाषाओं के 'आज्ञा' रूप से इसकी तुलना की जा सकती है। जैसे—'हा गृहस्थ खा खा खातो'। 'बोल बोल बोलतो। 'पंतोजीनें मुलांना मार मार मारिलें'।

(अ) इसी प्रकार जब कई कार्य एक व्यक्ति द्वारा किये जाते हुए दिखाए जाते हैं तब (बिना दुहराये हुए) 'लोट्' का प्रयोग होता है। जैसे—'सक्तून् पिबधानाः खादेत्यभ्यवहरति' (सिद्धान्त कौमुदी)—सत्तू पीता हुआ, जौ खाता हुआ भोजन करता है।

मराठी से तुलना कीजिए—'शेंगा खा, दाणे चाव, पाणी पीव, अशा रींतीनें हा सकालीं चरत असतो'। 'कुठें झाडेंच उपट, कुंड्याच फोड, फुलेंच तोड, फांद्याच मोड, असा त्या दुष्टाने बागेचा अगदीं नाश करून सोडिला'।

आशीर्लिङ् (The Benedictive Mood)

१९५—आशीर्लिङ् (भूयात्-भविषीष्ट) का प्रयोग सर्वदा आशीर्वाद देने में होता है और उत्तमपुरुष के वक्ता की इच्छा को व्यक्त करता है। जैसे—'तत्किमन्यदाशास्महे केवलं वीरप्रसवा भूयाः' (उत्तर० १)—तो और क्या आशा करें, केवल वीर पुत्र उत्पन्न करने वाली बनो। 'विधेयासुर्देवाः परमरमणीयां परिणतिं' (मालती० ६) देवता अन्त को अत्यन्त रमणीय बनावें। 'कृतार्था भूयासम्' (मालती ०)—कृतार्थ (सफल) होऊँ।

अभ्यास

१—क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातः श्रमक्लान्तमात्मानं विनोदयामि। (शाकुन्तल० ३)

२—किमधुना करोमि? क्व गच्छामि? कथं मे शान्तिर्भविष्यति? अथवा पिंगलकं गच्छामि, कदाचिच्छरणागतं मां रक्षति, न प्राणैर्वियोजयति। (पंचतंत्र १।१६)

३—ततो दिनेषु गच्छत्सु पक्षिशावकानाक्रम्य कोटरमानीय प्रत्यहं खादति स मार्जारः। (हितो० १)

४—तारापीडो देवीमवदत्। अफलमिवाखिलं पश्यामि जीवितं राज्यं च। अप्रतिविधेये धातरि किं करोमि। तन्मुच्यतां देवि, शोकानुबन्धः। आधीयतां धैर्ये च धर्मे च धीः। (कादम्बी ६५)

५—शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ (शाकुन्तल० ४)

६—पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमंडनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुंतला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ (शाकुन्तल० ४)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१— अये, उदितभूयिष्ठ एष भगवानशेषभुवनद्वीपदीपकस्तपनः। तमुपतिष्ठे। (मालती० १)

२—अनन्यभाजं पतिमाप्नुहीति, सा तथ्यमेवाभिहिता हरेण ।
न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित्, पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् ॥
(कुमार० ३।६३)

३—पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामरांगनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ॥
(शिशु० १।५१)

४—संतः सन्तु निरन्तरं सुकृतिनो विध्वस्तपापोदया
राजानः परिपालयन्तु वसुधां धर्मे स्थिताः सर्वदा ।
काले सन्ततवर्षिणो जलमुचः सन्तु स्थिराः पुण्यतो
मोदन्तां धनबद्धबांधवसुहृद्गोष्ठीप्रमोदाः प्रजाः ॥ (मालती० १०)

५—तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ।
मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय स्वान् गुणान्
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयाम् एतत्सतां चेष्टितम् ॥ (भर्तृ० २।७७)

६—कस्यैकांतं सुखमुपगतो दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण । (मेघदूत ११२)

७—जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ (भर्तृ० २२३)

नीचे लिखे वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—साँप वृक्षपर चढ़कर कौओं के बच्चों को खा जाता था ।

२—अर्जुन अपना धनुष चढ़ाकर कर्ण से कहता है—'क्या अब तुम मुझसे लड़ने को तैयार हो ?'

३—एक कछुआ दो पक्षियों द्वारा अपने कंधों पर ले जाया जाता है।

४—तुम मुझको यहाँ क्यों त्यागते हो? मैं क्या करूँ? रक्षा के लिए मैं किसके पास जाऊँ?

५—मैं तबतक इस पेड़ की छाया के नीचे बैठकर उस स्त्री की प्रतीक्षा करूँगा।

६—मैं अभी एक लम्बी यात्रा से आया हूँ और क्या तुम मुझसे इतनी जल्दी काम करने को कहते हो?

७—तुम दोनों अपने सद्गुणों के अनुरूप पुत्र प्राप्त करो।

८—अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करो, विद्वानों का सत्कार करो, परनिन्दा का एक शब्द भी न कहो और अपनी स्थिति में संतुष्ट रहो।

९—गायें अधिक दूध दें, समय पर बादलों के बरसने से पृथ्वी धनधान्य से परिपूर्ण हो।

१०—उसके राज्य की वास्तविक स्थिति का पता लगाने के लिए गुप्तचर साधुओं का वेष धारण करके उसके राज्य भर में भेजे जायँ।

११—सभी घरों को ढहा कर, मनुष्यों को निर्वासित कर और उनकी सारी सम्पत्ति को जलाकर, उसने सम्पूर्ण देश को जनशून्य कर दिया।

पाठ १८

विधिलिङ् (The Potential Mood)

१९६—संस्कृत का विधिलिङ् अँग्रेजी और लैटिन के Subjunctive Mood से सदृशता रखता है, परन्तु यह न तो अँग्रेजी Subjunctive Mood के सभी अर्थों और प्रयोगों को व्यक्त करता है और न Latin Subjunctive के व्यापक प्रयोग को बताता है। अँग्रेजी में Subjunctive Mood का प्रयोग स्वतंत्र उपवाक्यों में नहीं होता, लैटिन में इच्छा के अर्थ में इसका प्रयोग बिना किसी सहायक क्रिया के होता है और साधारणतया आश्रित उपवाक्यों में ही इसका प्रयोग होता है।

परन्तु संस्कृत विधिलिङ् का प्रयोग स्वतंत्र उपवाक्य और आश्रित उपवाक्य दोनों में होता है। 'नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः' (मेघदूत २६)। 'कृत्यं घटेत सुहृदो यदि तत्कृतं स्यात्' (मालती० १)

अब यह देखना है कि विधिलिङ् का प्रयोग किन-किन अर्थों में होता है।

१९७—विधिलिङ् निम्नलिखित अर्थों को व्यक्त करता है—

(अ) सम्भावना, आज्ञा, इच्छा, प्रार्थना, आशा और सामर्थ्य। (ब) उपर्युक्त अर्थों को व्यक्त करने वाले आश्रित उपवाक्यों में इसका प्रयोग होता है और (स) जहाँ एक वाक्य दूसरे कारणभूत वाक्य पर आश्रित रहता है, ऐसे हेतुहेतुमद्भावात्मक वाक्यों में विधिलिङ् का प्रयोग होता है।

(अ)

१९८—विधिलिङ् द्वारा व्यक्त सम्भावना, आज्ञा आदि अँग्रेजी में May, Shall or Should और अधिकांश में will, would, Could, might आदि द्वारा साधारण वाक्य में व्यक्त किये जाते हैं। जैसे—'लभेत

सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्' (भर्तृ० २।५)—यत्नपूर्वक पेरता हुआ कोई पुरुष बालू से भी तेल प्राप्त कर ले। 'मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम संभावयेत्' (मुद्रा० ५)—महाराज मौर्य भी आभूषण बेंच डालेंगे, इस बात की कौन सम्भावना कर सकता था। 'जेतारं कार्तिकेयस्य विजयेय' (महावीर चरित ३)—मैं कार्तिकेय के विजयी को जीत लूँ। 'मनसिज-तरुः कुर्यान्मां फलस्य रसज्ञं' (मालविका० ४)—काम-वृक्ष अपने फल का आस्वादन कराये। 'कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं' (कुमार० ३।१०)—पिनाकपाणि शंकर का भी धैर्य छुड़ा दूँ। 'भो भोजनं लभेय' (सिद्धान्त कौमुदी)—अरे, मैं किसी प्रकार भोजन प्राप्त कर लूँ।

(अ) विधिलिङ् का प्रयोग अधिकतर आज्ञा देने में, देख-रेख के लिए नियमों के विधान में और कर्तव्य पालन का आभार प्रदर्शन करने में होता है। इसे अँग्रेजी में Shall अथवा Should द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसे—'ऊनद्विवर्षं निखनेत्' (याज्ञवल्क्यस्मृति ३।१)—दो वर्ष से कम बालकों को गाड़ना चाहिए। 'आपदर्थे धनं रक्षेत्' (चाणक्य० २६)—आपत्ति काल के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। 'सहसा विदधीत न क्रियां' (किरात० २।३०)—एकाएक कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

विशेष—पाणिनि का कथन है कि विधिलिङ् तथा लोट् लकार का प्रयोग अपने से छोटों को आदेश देने में, निमन्त्रण देने में, किसी काम को करने के लिए स्वीकृति देने में, किसी अवैतनिक कार्य को बतलाने में, प्रश्न पूछने में और प्रार्थना में होता है। 'विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट संप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' (३।३।१६१)। नियमोपदेश, अनुमति और ठीक समय सूचित करने में विधिलिङ्, लोट् और कृत्य प्रत्यय का समान रूप से प्रयोग होता है। 'प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च' (३।३।१६३)। जैसे—'इह भुंजीत-भुंक्तां भवान्; इहासीत भवान् अथवा इहास्यतां आसितव्यं भवता'—आप यहाँ बैठ सकते हैं। 'नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः' (मेघदूत २६)—आप नीचैः नामक पर्वत पर निवास कर सकते हैं। 'पुत्रमध्यापयेद्भवान्'—

अवैतनिक कर्त्तव्य के रूप में आप पुत्र को पढ़ावें। 'किं भो वेदमधीयीय उत तर्क'—कहिए, मैं वेद पढ़ूँ या तर्कशास्त्र। 'भोजनं लभेय अथवा लभै...' (सिद्धान्त कौमुदी)।

उपर्युक्त अर्थों में लोट् और कृत्य प्रत्ययों की अपेक्षा विधिलिङ् का प्रयोग अधिक प्रचलित है।

१९९—जब उपयुक्तता प्रदर्शित करना होता है तब कृत्य प्रत्ययों अथवा विधिलिङ् का प्रयोग होता है और कभी-कभी 'तृकारान्त' संज्ञा का भी प्रयोग होता है। जैसे—'त्वं कन्यां वहेः, त्वं कन्याया वोढा अथवा त्वया कन्या वोढव्या' (सिद्धान्त कौमुदी)—आप कन्या के साथ विवाह करने के योग्य हैं।

(अ) जब 'क्षमता' अथवा 'सामर्थ्य' व्यक्त करना होता है तब विधि लिङ् अथवा कृत्यप्रत्ययों का प्रयोग हो सकता है। जैसे—'भारं त्वं वहेः अथवा भारस्त्वया वोढव्यः' (सिद्धान्त कौमुदी)—तुम बोझा ढो सकते हो।

२००—[1]किं, कतर इत्यादि प्रश्न वाचक शब्दों के साथ निन्दार्थ में विधिलिङ् अथवा सामान्य भविष्यत् का प्रयोग होता है। जैसे—'कः कतरो वा हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा'—हरि की कौन निंदा करेगा?

(अ)[2] जब आश्चर्य व्यक्त करना होता है और 'यदि' का प्रयोग नहीं है तब विधिलिङ् की अपेक्षा सामान्य भविष्यत् का प्रयोग होता है। जैसे—'आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति' (सिद्धान्त कौमुदी)—यह आश्चर्य ही है कि अन्धा भी कृष्ण को देखे। परन्तु 'आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत' यदि वह पढ़ ले तो आश्चर्य ही है।

(ब)

२०१—अनुच्छेद १९७ में उल्लिखित आशा, प्रार्थना आदि अर्थों को

(१) किं वृत्ते (गर्हायां) लिङ्लृटौ (३।३।१४४) (२) (चित्री करणे) शेषे लृडयदौ (३।३।१५१)

व्यक्त करने वाले आश्रित उपवाक्यों में भी विधिलिङ् का प्रयोग होता है। जैसे—'आशंसेऽधीयीय' (सिद्धान्त कौमुदी)—आशा है कि मैं पढ़ूँ। आशंसा न हि नः प्रेते जीवेम दशमूर्धनि' (भट्टि० १६।५)—हम लोगों को नहीं आशा थी कि रावण के मरने पर हम लोग जीवित रहेंगे।

(अ) 'इच्छा' द्योतक शब्दों के साथ 'तुमुनन्त' (Infinitive) के अर्थ में, प्रधान क्रिया और 'तुमुनन्त' क्रिया का एक (समान) कर्त्ता होने पर, विधिलिङ् का प्रयोग होता है। जैसे—'भुंजीयेति इच्छति' (सिद्धान्त कौमुदी) 'भोक्तुमिच्छति'—भोजन करना चाहता है।

२०२—आश्रित उपवाक्यों में 'परिणाम' अथवा 'अभिप्राय' अर्थ में सम्बन्ध वाचक शब्दों के साथ विधिलिङ् का प्रयोग प्रायः होता है। जैसे—'दोषं तु मे कंचित् कथय येन स प्रतिविधीयेत' (उत्तर० १)—मेरा कुछ दोष बताइए जिससे उसका सुधार किया जाय।

२०३—[1]'कच्चित्' शब्द के अतिरिक्त जब किसी शब्द द्वारा 'आशा' प्रकट की जाती है तब साधारणतया विधिलिङ् का प्रयोग होता है। जैसे—'कामो मे भुञ्जीत भवान्'—मैं आशा करता हूँ कि आप खायेंगे। परन्तु 'कच्चित् जीवति'—मैं आशा करता हूँ कि वह जीवित है। 'कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वां हि तस्य प्रियेति' (मेघदूत ८८)—हे रसिके, आशा करता हूँ कि तुम अपने पति को स्मरण करती हो, क्योंकि तुम उसकी प्रिया हो।

(अ)[2] जब सम्भावय्, अपि अथवा अपिनाम आदि शब्दों द्वारा 'आशा' का बोध होता है तब 'यदि' शब्द के बिना विधिलिङ् अथवा सामान्य भविष्यत् का प्रयोग होता है। जैसे—'संभावयामि भुञ्जीत भोक्ष्यते भवान्' सिद्धान्त-कौमुदी)—मैं आशा करता हूँ की आप खायेंगे। 'अपिनाम भगवतीनीति विजेष्यते' (मालती० ७)—मेरी इच्छा है कि आप की नीति विजयिनी हो।

---

(१) काम प्रवेदनेऽकच्चिति (३।३।१५३) (२) विभाषा धातो संभावना वचनेऽयदि (३।३।१५५)।

'अपि जीवेत् स ब्राह्मणशिशुः' (उत्तर० २) क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि ब्राह्मण बालक जीवित हो उठेगा? परन्तु 'संभावयामि यद्भुञ्जीथास्त्वम्'—मैं आशा करता हूँ कि तुम खाओगे।

(ब)[1] जब इच्छार्थक शब्दों, जैसे—इष्, कम्, प्रार्थ् इत्यादि का प्रयोग होता है तब विधिलिङ् अथवा लोट् (आज्ञा) प्रयुक्त होता है। जैसे—इच्छामि सोमं पिबेत् पिबतु वा भवान्' (सिद्धान्त कौमुदी)—इच्छा करता हूँ कि आप सोम पियें।

२०४—[2] जब वाक्य में 'यदि' शब्द प्रयुक्त रहता है तब काल, वेला, समय शब्दों के साथ विधिलिङ् का प्रयोग होता है। जैसे—कालः समयो-बेला वा यद् भवान्भुञ्जीत'—यह समय है कि आप अपना भोजन ग्रहण करें।

(स)

२०५—हेतु सूचक (conditional), वाक्यों में जिनमें एक वक्तव्य दूसरे पर आश्रित दिखाया जाता है, पूर्व उपवाक्य (Antecedent) और उत्तर (अनुवर्ती) उपवाक्य (consequent) दोनों में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। प्रथम उपवाक्य में कारण (हेतु) निहित रहता है और दूसरे में 'फल' का संकेत रहता है। 'अगर' शब्द के स्थान पर, चाहे प्रत्यक्ष हो चाहे अप्रत्यक्ष, 'यदि' अथवा 'चेत्' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे—"यद्यत्र तातः सन्निहितोभवेत् ततः किं भवेत्' (शाकुन्तल० १)—यदि यहाँ आज पिता जी होते तो क्या होता? 'दैवात्पश्येर्जगति विचरन्निच्छया मत्प्रियां चेत् आश्वास्यादौ तदनु कथयेर्माधवीयामवस्थां' (मालती० ६) यदि संसार भर में इच्छानुसार घूमते हुये तुम मेरी प्रियतमा को देखना तो पहिले उसे आश्वासन देना और तब माधव की दशा का वर्णन करना। इसी प्रकार कृत्यं घटेत् सुहृदो यदि तत्कृतं स्यात्' इत्यादि।

---

(१) इच्छार्थेषु लिङ् लोटौ (३।३।१५७) (२) (कालसमयवेलासु) लिङ् यदि (३।३।१६८)।

विशेष—ध्यान रहे कि 'चेत्' शब्द का प्रयोग संस्कृत वाक्य में पहिले कभी नहीं होता।

२०६—हेतु सूचक (conditional) वाक्यों में विधिलिङ् के स्थान पर प्रायः वर्तमान काल अथवा सामान्य भविष्यत् काल का प्रयोग होता है। जैसे—'यदि स्थिरत्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुः'—यदि स्वामी उठेंगे और देख लेंगे तो क्रुद्ध होंगे। 'न चेत् ब्रवीषि प्रश्नान् अश्नामि त्वाम्' (दशकुमार० २। ६)—यदि प्रश्नों का उत्तर नहीं दोगे तो मैं तुम्हें खा जाऊँगा। 'कृष्णं नंस्यति चेत् सुखं यास्यति' (सिद्धान्त कौमुदी)—यदि श्री कृष्ण को प्रणाम करेगा तो सुख को प्राप्त करेगा।

विशेष—(अ) कभी-कभी पूर्व उपवाक्य (Antecedent) में वर्तमान काल का और उत्तर उपवाक्य (consequent) में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। जैसे—'यदि तस्य प्राणविपत्तिरुपजायते तदपि महदेनो भवेत्' (कादम्बरी १६०)—यदि उसकी मृत्यु हो जाती है तो वह भी एक महान् पाप होगा। इसी प्रकार—'क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जंतुर्ननु लाभवानसौ (भवेत्)' (रघु० ८। ८७)।

(ब) विनम्रतापूर्वक बोलने में उत्तर (अनुवर्ती) उपवाक्य (Consequent) में विधिलिङ् के स्थान पर 'लोट्' लकार का प्रयोग होता है। जैसे—'न चेत् अन्य कार्यातिपातो गृह्यतामातिथेय सत्कारः' (शाकुन्तल० १) यदि किसी अन्य कार्य की हानि न हो तो कृपया आतिथ्य सत्कार ग्रहण करें।

(स) जब हेतु सूचक उपवाक्य (Conditional) स्वीकारात्मक और निश्चयात्मक होता है, जैसे स्वीकारार्थ सूचक क्रियापद (Indicative Mood) द्वारा व्यक्त होता है, अथवा जब दोनों उपवाक्य किसी निश्चित वस्तु की ओर संकेत करते हैं, तब विधिलिङ् के स्थान पर वर्तमान काल का प्रयोग होता है। जैसे—यदि पानी बरसता है तो हम लोग बाहर नहीं जा सकते—'यदि देवो वर्षति तर्हि वयं वहिर्गन्तुं न शक्नुमः' न कि देवो वर्षेत् इत्यादि।

अभ्यास

१—वयस्य, किं परमार्थत एव देव्या व्रतनिमित्तोऽयमारम्भः स्यात्। (विक्रमो० ३)

२—यदि त्वामीदृशमैक्ष्वाको राजा रामभद्रः पश्येत्तदाऽस्य हृदयं स्नेहेनाभिष्यंदेत्। (उत्तर० ५)

३—देव, यदि चन्द्रमस्युष्मा, दहने वा शीतलत्वमंशुमालिनि वा तमः सम्भाव्यते, ततो युवराजेऽपि दोषः। (कादम्बरी २८६)

४—यदि मे सहसा दर्शनपथान्नापयाति, नारोहति वा कैलासशिखरं, नोत्पतति वा गगनतलं, सर्वमेतदेनामुपसृत्य पृच्छामि। (कादम्बरी १३२)

५—लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियम्।
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्। (शाकुन्तल० ३)

६—परोक्षे कार्यहंतारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥ (चाण० १८)

७—अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेदवक्षयात्।
रक्षितं वर्द्धयेत्सम्यग् वृद्धं तीर्थेषु निक्षिपेत्। (हितो० २)

८—उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ३।२४)

९—भवेदभीष्ममद्रोणं धृतराष्ट्रबलं कथम्।
यदि तत्तुल्यकर्मात्र भवान् धुर्यो न युज्यते॥ (वेणी० ३)

१०—तन्नो देवा विधेयासुर्येन रावणवद्वयम्।
सपत्नांश्चाधिजीयास्म संग्रामे च मृषीमहि॥ (भट्टि० १९।२)

११—आददीध्वं महार्हाणि तत्र वासांसि सत्वराः।
उद्धुनीयात सत्केतून् निर्हरेताग्र्यचंदनम्॥ (भट्टि० ४)

१२—नावकल्प्यमिदं ग्लायेद्यत्कृच्छ्रेषु भवानपि ।
न पृथग्जनवज्जातु प्रमुह्येत् पंडितो जनः ॥ (भट्टि० १९।१७)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—अपि नामोर्वशी—

गूढा नूपुरशब्दमात्रमपि मे कांतं श्रुतौ पातयेत्
पश्चादेत्य शनैः कराम्बुजवृते कुर्वीत वा लोचने ।
हर्म्येऽस्मिन्नवतीर्य साध्वस वशात् मन्दायमाना बलात्
आनीयेत पदात्पदं चतुरया सख्या ममोपान्तिकम् ॥ (विक्रमो० ३)

२—इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात् ।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥
(कुमार० ५।५)

३—फलार्थी नृपतिर्लोकान् पालयेद्यत्नमास्थितः ।
दानमानादि तोयेन मालाकारोऽङ्कुरानिव ॥ (पंचतंत्र १।८)

४—कौर्मं संकोचमास्थाय प्रहारानपि मर्षयेत् ।
प्राप्तकालं तु नीतिज्ञ उत्तिष्ठेत् कृष्णसर्पवत् ॥ (हितो० ३)

५—किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन् ।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः ॥ (रघु० १४।६५)

६—प्रसह्य मणिमुद्धरेत् मकरवक्त्रदंष्ट्रांतरात्
समुद्रमपि संतरेत् प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ (भर्तृ० २।४)

७—अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्यात्सानुरागेण कः
प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात् फलम् ।
प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च ॥ (मुद्रा० १)

८—स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हंति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेद् अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥ (रघु० ८।४६)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—अपना वाञ्छित मनोरथ किस प्रकार सिद्ध हो—ऐसा सोचते-सोचते सारी रात बीत गई ।

२—इस अपार चिंता-सागर में निमग्न वह किस प्रकार स्वस्थ हो ।

३—ऐसा सम्भव है कि उसका मानसिक संताप प्रेम के प्रभाव से ही उत्पन्न हुआ हो ।

४—तुम्हें अपने माता-पिता और गुरुओं की आज्ञा का पालन करना चाहिए, सत्य बोलना चाहिए, सत्संगति करनी चाहिए और सदा ईश्वर की महानता का चिन्तन करना चाहिए ।

५—यदि तुम इस सूचीभेद्य अन्धकार में बाहर जाकर बाग से हमारे लिए फूल ले आओ तो मैं तुमको निर्भय समझूँ ।

६—चाहे उसका हृदय पत्थर का ही क्यों न बना हो, इस स्त्री की हृदय विदारक दारुण दशा को देख कर वह दयार्द्र हो उठेगा ।

७—उस आश्चर्य युक्त वृत्तान्त को सुनते ही मैं हतचेत हो गया कि अब मैं क्या कहूँ और क्या करूँ ?

८—लालची व्यक्ति को धन देकर और मूर्ख को उसकी रुचि के अनुसार व्यवहार करके वश में करना चाहिए।

९—रात्रि के अन्धकार-मालिन्य को सूर्य के अतिरिक्त और कौन दूर कर सकता है?

१०—यदि गरुड़ भी मुझसे पहिले चल पड़ें तो मैं रथ की इस गति से उनको भी पकड़ लूँ।

११—क्या यह संभव है कि दुष्ट चाणक्य नन्दवंश के पक्ष में हो जाय?

१२—मैं आशा करता हूँ (कच्चित्) कि आपके धार्मिक कृत्य निर्विघ्न चल रहे हैं।

पाठ १९

लङ् (अनद्यतनभूत), लिट् (परोक्षभूत) तथा लुङ् (सामान्यभूत)

[Imperfect, Perfect and Aorist]

२०७—अँग्रेजी में भूतकाल के द्योतन के लिए केवल एक रूप (सामान्य-भूत) है। (अँग्रेजी क्रिया पर हावर्ड का नोट पृष्ठ १२)—जैसे मैं डोला (I walked)। संस्कृत में अतीत काल का बोध कराने के लिए तीन लकार हैं—अनद्यतनभूत (लङ् लकार), परोक्षभूत (लिट् लकार) और सामान्यभूत (लुङ् लकार)। प्रारम्भ में इनमें से प्रत्येक का अलग-अलग अर्थ था। प्राचीन साहित्य में अथवा जब संस्कृत बोलचाल की भाषा थी, उस समय के ग्रन्थों में इन तीनों लकारों का अपने ठीक-ठीक अर्थ में प्रयोग होता था। लेकिन बाद में जब धीरे-धीरे संस्कृत जन-भाषा नहीं रह गई, तब लेखकों ने इन तीनों लकारों का मनमाना प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भ में इन लकारों का जिन अर्थों में प्रयोग होता था वे निम्नलिखित हैं—

पाणिनि के अनुसार अनद्यतनभूत (लङ्) का प्रयोग आज से पूर्व हुए कार्य का बोध कराने के लिए होता है। 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११)। परोक्षभूत (लिट्) का प्रयोग आज से पहिले होने वाले कार्य, जो वक्ता द्वारा देखा न गया हो, का बोध कराने के लिए होता है। 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५)। सामान्यभूत (लुङ्) का प्रयोग साधारणतया सभी प्रकार के भूतकार्यों का बोध कराने के लिए होता है। किसी निश्चित भूतकाल से इसका सम्बन्ध नहीं है। आज से पूर्व किया हुआ कार्य परोक्षभूत अथवा अनद्यतनभूत द्वारा व्यक्त किया जाता है। अवशिष्ट कार्य अर्थात् जो अभी ही हुआ है अथवा किसी वर्तमान कार्य से सम्बद्ध हो, उसके लिए सामान्यभूत का प्रयोग होता है। अतः

सामान्यभूत का प्रयोग सामान्यतया किसी भी भूतकाल में हुये कार्य के लिये और तुरन्त हुये कार्य के लिये भी होता है। अनद्यतनभूत और परोक्षभूत का प्रयोग अतीत काल में घटित घटनाओं के वर्णन के लिए, साधारणरूप से सुदूर अतीत की घटनाओं का वर्णन करने के लिए होता है। सामान्यभूत का प्रयोग तुरन्त बीते हुए कार्यों में बातचीत के लिये होता है। परन्तु निश्चयात्मक भूतकाल का बोध कराने के लिए अथवा घटनाओं का वर्णन करने के लिए इसका प्रयोग कदापि नहीं होता। इस प्रकार सम्पूर्ण पुरुषसूक्त (ऋग्वेद १०।९०) में केवल अनद्यतनभूत और परोक्षभूत का ही प्रयोग हुआ है और उसमें लिखित घटनाएँ भूतकाल से सम्बन्ध रखती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में तुरन्त होने वाले कार्यों के लिए सामान्यभूत का प्रयोग हुआ है। जैसे—'स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलं, गावो ह जज्ञिरे तस्मात्' इत्यादि। 'अजनि ते वै पुत्रो यजस्व मामनेनेति'। परन्तु बाद के संस्कृत-लेखकों ने अनद्यतनभूत, परोक्षभूत और सामान्यभूत के इस अन्तर की ओर बिलकुल ही दृष्टिपात नहीं किया और किसी भी अतीत कार्य का बोध कराने के लिए तीनों का प्रयोग स्वच्छन्दता-पूर्वक किया है, चाहे वह हाल में घटित हुआ हो, चाहे सुदूर अतीत का परिचायक हो और चाहे वक्ता द्वारा न देखा गया हो।[1] जैसे—'तदाहं किमकर-वम् क्वागमं किं व्यलपमिति सर्वमेव नाज्ञासिषम्' (कादम्बरी १६६)।

२०८—सामान्य प्रयोग के अतिरिक्त अनद्यतनभूत (लङ्) का प्रयोग कभी-कभी हाल में ही हुये किसी कार्य में प्रश्न करने के अर्थ में होता है। जैसे—'अगच्छत्किं स ग्रामं'—क्या वह गाँव गया। परन्तु जब सुदूर भूतकाल की अभिव्यक्ति वाञ्छित रहती है तब केवल परोक्षभूत (लिट्) का ही प्रयोग होना चाहिए। जैसे—'कंसं जघान किं' (सिद्धान्त कौमुदी)—क्या उसने कंस को मार डाला?

(१)—इन तीनों भूतकाल के अन्तर को पूर्णरूप से स्पष्ट समझने के लिए प्रो० आर० जी० भण्डारकर द्वारा लिखित (Second Book of Sanskrit) के प्रथम संस्करण की भूमिका देखिए।

२०९—परोक्षभूत (लिट्)—उत्तमपुरुष में परोक्षभूत का प्रयोग कर्त्ता के मस्तिष्क की अचेतन दशा अथवा उन्माद का बोध कराता है, अतः इसका प्रयोग उत्तम पुरुष में इस अर्थ के अतिरिक्त अन्य किसी भी अर्थ में नहीं करना चाहिए। जैसे—'बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहं' (शिशुपाल वध २१।३६)—पागल होने के कारण उसके सामने मैं बहुत देर तक बकता रहा।

(अ)—किसी व्यक्ति के विरुद्ध जो कथित हो उसके विपरीत उसी व्यक्ति से कहकर सच्ची वस्तुस्थिति को छिपाने में परोक्षभूत—उत्तमपुरुष का प्रयोग होता है। जैसे—'कलिंगेष्ववात्सीः किं'—क्या तुम कलिंग देश में रहे थे? 'नाहं कलिंगाञ्जगाम' (सिद्धान्त कौमुदी)—मैं कलिंग देश नहीं गया था।

२१०—सामान्यभूत (लुङ्)—[2]अभी बीते हुये भूतकाल अथवा अनिश्चित भूतकाल का बोध कराने के अतिरिक्त सामान्यभूत (लुङ्) निरन्तर होते हुये कार्य का भी द्योतक होता है। इस अर्थ में लङ् लकार का प्रयोग कदापि नहीं हो सकता। जैसे—'ब्राह्मणेभ्यो यावज्जीवमन्नमदात्' न कि अददात्—उसने ब्राह्मण को जीवनपर्यन्त अन्न दिया अर्थात् भोजन दिया।

(अ) 'स्म' रहित 'पुरा' के योग में अनद्यतनभूत, परोक्षभूत, सामान्यभूत अथवा वर्तमान किसी का भी प्रयोग हो सकता है। जैसे—'वसन्तीह पुरा छात्रा अवात्सुरवसन्नूषुर्वा'—यहाँ पहिले छात्र रहते थे। परन्तु 'पुरास्म' के साथ केवल वर्तमान काल का ही प्रयोग होता है। जैसे—'यजतिस्म पुरा'—उसने पहिले यज्ञ किया था।

२११—'मा' अथवा 'मास्म' के बाद सामान्यभूत का 'अ' (बढ़ा हुआ अंश) सामान्य रूप से लुप्त हो जाता है। 'अ' से लुप्त सामान्यभूत मध्यमपुरुष 'स्म' के साथ आज्ञा (लोट्) के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—'वयस्य मा कातरो भूः' (मालविका० ४)—मित्र, डरो न। 'भर्त्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया

(२) क्रियाप्रबंधसामीप्ययोः (३।३।१३५)।

मास्म प्रतीपं गमः' (शाकुन्तल० ४)—पति के द्वारा अपमानित होने पर भी क्रोध से उनके विपरीत आचरण न करना।

मा मूमुहत्खलु भवन्तमनन्यजन्मा
मा ते मलीमसविकारघनामतिर्भूत्।
इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव…(मालती० १)

(स्वयंभू कामदेव तुमको मोहित न करे, तुम्हारी बुद्धि कलुष विचारों से न भरे—इस विषय में ऐसा कहना अथवा इसी प्रकार और कुछ कहना व्यर्थ है।)

अभ्यास

१—तपोवनवासिनामुपरोधो माभूत्। (शाकुन्तल० १)

२—नरपतिराहारं निर्वर्त्य आस्थानमंडपमयासीत्। तत्र चावनिपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ताः कथाः कुर्वन् मुहूर्तमिवासांचक्रे। (कादम्बरी १७)

३—शुकनासोऽपि महान्तं कालं तं राज्यभारमनायासेनैव प्रज्ञाबलेन बभार। यथैव राजा सर्वकार्याण्यकार्षीत्तद्वदसावपि द्विगुणितप्रजानुरागञ्चकार। (कादम्बरी ५८)

४—आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां
ये व्याहारास्तेषु मा संशयो भूत्। (उत्तर० ४)

५—जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥ (रघु० १।२१)

६—अधिगतपरमार्थान् पंडितान् मावमंस्थाः
तृणमिव लघुलक्ष्मी नैव तान् संरुणद्धि। (भर्तृ० २।१७)

अभ्यास के लिये अतिरिक्त वाक्य

१—चंडवर्मा प्राणैरेनं न व्ययूयुजत् । अपि त्वनीनयदपनीताशेषशल्यमकल्पसंधो बन्धनगृहमजीगणच्च गणकसंवैरद्यैव क्षपावसाने विवाहनीया राजदुहितेति । (दशकु० २।१)

२—दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः, प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे ।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणम् भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥
(रघु० ३।१४)

३—मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव ॥ (रघु० १।३७)

४—भूयस्तपोव्ययो मा भूद्वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात् ।
मैथिली तनयोद्गीतनिःस्पंद मृगामाश्रमम् ॥ (रघु० १५।३७)

५—क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता १।३)



निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—जब मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे मित्रों ने मुझे नींद में बड़बड़ाते हुए सुन लिया है तो मैं लज्जित हो गया ।

२—इस विषय में चिन्तित न हो, तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरे पिता तुम्हारे पुत्र की देख-रेख करेंगे ।

३—उसने सारा दिन, कभी मित्रों के साथ धार्मिक बातें करते हुए और कभी चित्र अंकित करने में तल्लीन होकर व्यतीत कर दिया ।

४—हमारी पुस्तक तुमने क्यों नष्ट करदी ? नहीं, महानुभाव मैंने उसको देखा तक नहीं ।

५—जब मैं उसको देखने गया तो मैंने उसे घर पर नहीं पाया।

६—हम लोगों के पिता जी ने सारी पैतृक सम्पत्ति का बँटवारा कर दिया है, जिससे बाद में हम लोग एक दूसरे से लड़ें न।

७—राजा ने सभी आश्रमों के चारों ओर अपने रक्षकों को नियुक्त (स्थापय्) कर दिया है, जिससे ऋषियों की तपस्या में किसी प्रकार का विघ्न न पड़े।

८—मैं यह जानकर प्रसन्न हूँ कि गरीबों की दशा को सुधारने में तुम्हारे प्रयत्न सफल हुये हैं।

९—वादी (मुद्दई) के सभी गवाह आ गये हैं, इसलिये मुकद्मे की सुनवाई प्रारम्भ होनी चाहिए।

१०—अपने जीवन के कई वर्षों को शिकार में व्यतीत करके अन्त में वह अकस्मात् एक भयानक व्याघ्र के मुख का शिकार बना।

पाठ २०

दोनों भविष्य-काल और क्रियातिपत्ति (लृङ्)

(The two Futures and the Conditional)

२१२—अँग्रेजी में भविष्य काल का बोध (Will) अथवा (Shall) द्वारा कराया जाता है। संस्कृत में भविष्य काल के कार्य का बोध कराने के लिये दो भिन्न-भिन्न लकार हैं—अनद्यतन भविष्य (लुट्) और सामान्य भविष्य (लृट्)। दोनों में मौलिक अन्तर लगभग वही है जो अनद्यतनभूत और सामान्य भूत में है। भिन्नता केवल इस बात में है कि अनद्यतनभूत और सामान्यभूत भूतकाल से सम्बद्ध हैं और अनद्यतन भविष्य और सामान्य भविष्य भविष्य काल से सम्बन्ध रखते हैं। दूसरे शब्दों में—अनद्यतन भविष्य (लुट्) उस कार्य की ओर संकेत करता है जो आज न होगा और सामान्य भविष्य (लृट्) सामान्यतया सभी प्रकार के भविष्य कार्यों का और तुरन्त होने वाले कार्यों का बोध कराता है। इस प्रकार अनद्यतन भविष्य आज न होने वाले किसी सुदूरवर्ती भविष्यकाल का बोध कराता है, जबकि सामान्य भविष्य, अनिश्चित भविष्य, आज का भविष्यकाल, तुरन्त का भविष्यकाल और निरन्तर होने वाले भविष्यकाल का बोध कराता है। जैसे—'पंचषैरहोभिर्वयमेव तत्र गंतारः' (मुद्रा० ५)—पाँच छः दिनों में हम स्वयं ही वहाँ जायेंगे। 'एते......उन्मूलितारः कपिकेतनेन' (किरात० ३।२२)—ये लोग अर्जुन द्वारा नष्ट कर दिये जायेंगे। 'यास्यत्यद्य शकुन्तला' (शाकुन्तल० ४)—शकुन्तला आज जायेगी। 'सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः' (मेघदूत ६)—नेत्र-सुखद आपको अकाश में बकुले सेवेंगे।

इन दोनों लकारों के प्रयोग में ग्रन्थकार उतने स्वतंत्र नहीं हैं जितना तीन

भूतकाल के लकारों के प्रयोग में हैं। अनद्यतन भविष्य (लुट्) का बहुत ही कम प्रयोग होता है और जहाँ यह प्रयुक्त होता भी है, सुदूर भविष्यकाल का ही बोध कराने के लिए होता है, जब कि सामान्य भविष्य का प्रयोग किसी भी अनिश्चित भविष्य काल की क्रिया के लिये होता है।

२१३—जब भविष्य क्रिया की अत्यन्त सन्निकटता व्यक्त करनी होती है तब वर्तमान अथवा भविष्य किसी भी काल का प्रयोग हो सकता है। जैसे—'कदा गमिष्यसि—एष गच्छामि गमिष्यामि वा' (सिद्धान्त कौमुदी)—तुम कब जाओगे, यह मैं अभी जाता हूँ या जाऊँगा।

२१४—[1]जब हेतुसूचक (Conditional) वाक्य में आशा व्यक्त की जाती है, तब दोनों उपवाक्यों में भविष्य का बोध कराने के लिए सामान्यभूत (लुङ्), वर्तमान काल (लट्) या सामान्य भविष्य (लृट्) किसी का प्रयोग हो सकता है। जैसे—'देवश्चेदवर्षीद्, वर्षति, वर्षिष्यति वा धान्यमवाप्स्म वपामो वप्स्यामो वा' (सिद्धान्त कौमुदी)—यदि वर्षा होगी तो हम लोग अनाज बोयेंगे।

२१५—कभी-कभी जब किसी से विनम्रतापूर्वक कुछ काम करने के लिए कहा जाता है तो लोट् (आज्ञा) के अर्थ में सामान्य भविष्य (लृट्) का प्रयोग होता है। जैसे—'तदा मम पाशांश्छेत्स्यसि' (हितो० १)—तब मेरा बन्धन काट देना। इसी प्रकार 'पश्चात् सरः प्रति गमिष्यति मानसं तत्' (विक्रमो० ४)

२१६—क्रियातिपत्ति (लृङ्) का प्रयोग उन हेतुसूचक वाक्यों में होता है जहाँ क्रिया का न होना दिखाया जाता है, अथवा जहाँ पूर्व उपवाक्य (Antecedent) की असत्यता दिखाई जाती है। यह सामान्यतया अँग्रेजी के पूर्णभूतकालिक हेतुसूचक (Pluperfect Conditional) के समान है और संस्कृत में पूर्व उपवाक्य (Antecedent) और उत्तर उपवाक्य

(१) आशंसायां भूतवच्च (३।३।१३२)

(Consequent) दोनों में इसका प्रयोग होना चाहिए। जैसे—'यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखोच्छ्वास गन्धं, तवरतिरभविष्यत्पुण्डरीके किमस्मिन्' (विक्रमो० ४)—'यदि तुम उसके मुख के उच्छ्वास की गन्ध पाये होते (जिसे तुम निश्चय ही नहीं पाये हो) तो क्या तुम्हारी अनुरक्ति इस कमल में हुई होती ?

भट्टि का क्रियातिपत्ति प्रयोग बहुत व्यापक है (सर्ग २१), परन्तु संस्कृत ग्रन्थों के प्रयोगों से उसका समर्थन नहीं होता।

नोट—संस्कृत में क्रियातिपत्ति का प्रयोग उन हेतुसूचक वाक्यों में नहीं करना चाहिए जहाँ केवल यह व्यक्त करना हो कि किसी कल्पित दशा में ऐसा-ऐसा परिणाम होगा। जैसे—'यदि वह यहाँ होता तो वीरतापूर्वक अपने देश की रक्षा करता'—(यदि सोऽत्रसन्निहितोभवेत् तर्हि स्वदेशं वीरवद् रक्षेत्)। ऐसे वाक्यों के अनुवाद में विधिलिङ् का प्रयोग होता है।

काल और वृत्तियों के प्रयोग पर अतिरिक्त विचार

२१७—वर्तमान, भूत और भविष्य काल के विभिन्न रूपों के विवरण और जटिलताएँ संस्कृत में नहीं मिलतीं। केवल एक मुख्य काल होता है और उसी काल द्वारा साधारणतया विभिन्न रूप व्यक्त किये जाते हैं। अँग्रेजी में भी बहुत से रूपों का प्रादुर्भाव अभी हाल का है और उनका भी अधिक प्रयोग नहीं होता। इसीलिए संस्कृत छात्रों को इन कालों के विभिन्न रूपों का यथारूप उन्हीं समकक्ष लकारों में अनुवाद करने में बहुत कठिनाई पड़ती है। निम्नलिखित अनुच्छेदों में इस विषय पर कुछ नियम दिये गये हैं, जिनका वर्णन पूर्व के तीन पाठों में विस्तारपूर्वक किया गया है।

वर्तमान, भूत और भविष्य

२१८—जैसा कि पहिले कहा गया है कि वर्तमान काल अपने सामान्य रूप में उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होता है, जिन अर्थों में अँग्रेजी का वर्तमान काल

(Present Indefinite) (अनुच्छेद १८६)। कम से कम प्राचीन लेखकों के प्रयोगों के आधार पर कहा जा सकता है कि भूतकालिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति, भूतकाल से सम्बद्ध तीनों भूतकालों में से किसी काल के द्वारा की जा सकती है। भविष्यकाल की क्रिया की अभिव्यक्ति साधारणतया दोनों भविष्यकाल के रूपों द्वारा होती है और कभी-कभी विधिलिङ् द्वारा भी होती है (अनुच्छेद १६८)।

परन्तु भिन्न-भिन्न कालों के बहुत से रूपों पर संस्कृत के लेखकों ने बिलकुल ही नहीं विचार किया है। यदि संस्कृत में उन रूपों के अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है तो दूसरे प्रकार से अनुवाद कर दिया जाता है।

२१९—ऐसे रूपों का अनुवाद, जिनसे क्रिया की निरन्तरता ज्ञात होती है, अँग्रेजी में जिनको 'Present Continuous', 'Past Continuous' और 'Future Continuous' कहते हैं, संस्कृत में केवल सामान्य रूपों द्वारा किया जाता है। जैसे—वह अपना पाठ पढ़ रहा है = 'स पाठमधीते' नकि 'अधीयानोऽस्ति'। नैरन्तर्यबोधक वर्तमान रूप ही वास्तव में सच्चे अर्थ में वर्तमानकाल है (बेन कृत व्याकरण—पृष्ठ १८६)। बालक इस समय खेल रहे हैं = 'बालका अधुना क्रीडन्ति'। सूर्य तप रहा है = 'रविरतपत्' नकि तपन् आसीत्। वह अपना पाठ तैयार करता रहेगा = स पाठमध्येष्यते।

विशेष—जहाँ क्रियासातत्य प्रकट करना होता है (जैसा कि अनुच्छेद १४५ में वर्णित है) वहाँ 'आस्' के साथ 'वर्तमान कृत् प्रत्यय'—'शतृ' अथवा 'शानच्' का प्रयोग होता है। जब इन नैरन्तर्यबोधक रूपों का प्रयोग आश्रित उपवाक्यों में होता है तब 'शतृ' अथवा 'शानच्' प्रत्ययान्त भावेसप्तमी का रूप बड़ी आसानी से प्रयुक्त हो सकता है। जैसे—जब मन्त्री बोल रहा था, सभा में एक दूत ने प्रवेश किया = भाषमाणेऽमात्ये कश्चिद्दूतः सभां प्राविशत्।

२२०—दृढ़ताबोधक रूपों का अनुवाद (जिनका प्रयोग केवल वर्तमान और भूत के लिये ही होता है) एव, नूनं, खलु अथवा इसी प्रकार के किसी भी निश्चयबोधक शब्द को साधारण रूपों के साथ जोड़कर किया जा सकता

है। जैसे—मैं तुमको तो अपराधी समझता ही हूँ 'अहं त्वामपराधिनं मन्ये खलु—एव' अथवा 'नूनं त्वां............ मन्ये'। वह झूठ तो बोला ही = 'सोऽसत्यमभाषतैव अथवा अभाषत खलु।'

(Perfect and its Continuous Forms.)

पूर्ण तथा उसके नैरन्तर्यसूचक रूप

२२१—वस्तुतः पूर्णवर्तमान (Present Perfect) को लुङ् लकार अथवा भूतकालिक कृत्प्रत्यय (क्तवतु) द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसे—जो कुछ पाप मैंने दिन में किया है = 'यदह्ना पापमकार्षम्'। मैंने अपना काम कर लिया है = 'अहं मम कार्यं संपादितवान्'। कभी अनद्यतनभूत और परोक्षभूत द्वारा भी व्यक्त किया जाता है। जैसे—उसने अपना भाषण समाप्त कर दिया है = 'भाषणमवसितवान् अथवा भाषणाद्व्यरंसीत् अथवा व्यरमत् अथवा विरराम।

२२२—आश्रित उपवाक्यों में पूर्णभूत को भावे सप्तमी अथवा 'क्त' द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। जैसे—जब वह चला गया तब मैं लौट आया = तस्मिन्नपक्रान्तेऽहं प्रत्यागच्छम्। जब मैंने अपना पाठ तैयार कर लिया तब स्कूल गया। 'पाठानधीत्य शालामगच्छम्'। कभी-कभी केवल भूतकालिक कृत्प्रत्यय (क्त, क्तवतु) द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसे—इस प्रकार कह चुकने वाले से मैंने कहा कि अब जाओ = 'इत्युक्तवन्तं व्रज साधयेत्यहमब्रवम्'। जो घायल हो चुका था उसको उसने अच्छा कर दिया = 'क्षतमचिकित्सत'।

२२३—पूर्ण भविष्य (Future Perfect) की अभिव्यक्ति भू धातु के विधिलिङ् द्वारा धातु के भूतकालिक कृत्प्रत्ययान्त (क्त, क्तवतु प्रत्यायान्त) रूप के साथ, हो सकती है और अच्छी प्रकार से कर्मवाच्य या भाववाच्य

द्वारा हो सकती है। जैसे—अब तक वह वहाँ चला गया होगा = 'अनेन समयेन स तत्र गतो भवेत् अथवा तेन तत्र गन्तव्यम्'।

२२४—पूर्ण नैरन्तर्यसूचक रूपों (Perfect continuous forms) जैसे—"मैं करता रहा हूँ, मैं करता रहा था, मैं करता रहा हूँगा", का अनुवाद निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है :—

(अ) समय सूचक शब्दों के साथ साधारण लकारों के रूपों द्वारा। जैसे—'तौ चिरान्निवसतः' (हितो० १।२)

(ब) आस्, वस् अथवा स्था (अनुच्छेद १४५) के समान (Corresponding) लकारों के साथ वर्तमान कालिक कृत्प्रत्ययान्त (शतृ, शानच् प्रत्ययान्त) शब्दों द्वारा।

अथवा (स) कालवाचक शब्दों के साथ वर्तमानकालिक कृत्प्रत्ययान्त (शतृ, शानच् प्रत्यायान्त) शब्दों के षष्ठी रूप द्वारा और कर्त्ता को भी उसी विभक्ति (षष्ठी) में रख कर। जैसे—मैं इसे तीन दिन से करता रहा हूँ = 'इदं कुर्वतो मम दिनत्रयं जातं।' वह वहाँ कितने समय तक ठहरता रहा था ? = 'तस्य तत्र स्थितस्य कियान् कालो व्यतीतः ?'

२२५—क्रिया के तुमुनन्त रूपों के साथ 'काम' अथवा 'मनः' जोड़कर, 'वह करने ही वाला है, वह करने ही वाला था, वह करने ही वाला होगा' ऐसे वाक्यों का अनुवाद किया जा सकता है। (अनुच्छेद १८१)। जैसे—'कर्त्तुकामोऽस्ति बभूव-भविष्यति वा।' और आश्रित वाक्यों में ऐसे वाक्यों का अनुवाद भविष्यकालिक कृत्प्रत्यायान्त (स्यतृ, स्यमान) शब्दों द्वारा भी किया जा सकता है। जैसे—जब वह जाने ही वाला था तब मैंने उससे ऐसा कहा = 'गमिष्यन्तं-गन्तुकामं तमहमेवमवोचम्'।

गा गी गे

(Will and Shall)

२२६—(नोट—अँग्रेजी में 'Shall' और 'will' में जो अन्तर है वह

हिन्दी के 'गा' 'गी' 'गे' के प्रयोग में नहीं है। गा, गी, गे का प्रयोग तीनों पुरुषों में समान रूप से होता है।)

अँग्रेजी में उत्तमपुरुष के साथ Shall और मध्यम तथा अन्य पुरुष के साथ Will केवल सामान्य भविष्यकाल का बोध कराते हैं। इनका अनुवाद संस्कृत में सामान्यभविष्य अथवा विधिलिङ् द्वारा किया जा सकता है। जैसे—I shall do it (मैं इसको करूँगा) = 'अहं तत् कुर्याम् अथवा करिष्यामि।' He will go there (वह वहाँ जायेगा) = 'स तत्र गच्छेत् अथवा गमिष्यति।'

२२७—'दृढ़ता' अथवा 'इच्छा' बोधक Will, जो कर्त्ता से सम्बद्ध हो, उत्तम पुरुष में इच्छार्थक धातुओं के वर्तमान काल द्वारा अथवा साधारणतया 'एव' या इसी प्रकार के निश्चयार्थक शब्दों के साथ सामान्यभविष्य द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। जैसे—'I will do it' (मैं इसे निश्चित रूप से करूँगा) = 'अहं तत्कर्त्तुमिच्छामि' अथवा 'अहं तत्करिष्याम्येव'। 'Even if death be the result, I will do it' (चाहे इसका परिणाम मृत्यु ही क्यों न हो, मैं इसे निश्चय ही करूँगा) = 'यद्यपि तन्मृत्युपर्यवसायि भवेत् तथाप्यहं तत्करिष्याम्येव'।

२२८—(१) मध्यमपुरुष और अन्यपुरुष के साथ प्रयुक्त 'Shall' वक्ता की आज्ञा, धमकी अथवा आत्म-संकल्प को व्यक्त करता है। इसका अनुवाद विधिलिङ् द्वारा अथवा आज्ञार्थक जैसे 'आज्ञापय्' आदि शब्दों द्वारा अथवा वक्ता को प्रेरणार्थक क्रिया का कर्त्ता मानकर क्रिया के प्रेरणार्थक भविष्यकाल के रूपों द्वारा किया जा सकता है। जैसे—'The son shall obey his father' (पुत्र को अपने पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए) = 'पुत्रः पितुराज्ञामनुरुध्येत'। 'Thou Shalt go to the Castle' अर्थात् I Command thee to go इत्यादि' (मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि दुर्ग में जाओ) = 'दुर्गं गन्तुं त्वामाज्ञापयामि'। 'He shall do

it' (उसको यह करना चाहिए) = 'अहं तं तत्कारयिष्यामि', अहं तं गमयिष्यामि' इत्यादि ।

कभी-कभी 'एव', 'अवश्यं' आदि शब्दों के साथ अथवा इनके बिना भी, कृत्य प्रत्ययों (तव्यत्, अनीयर्, यत्, ण्यत्) (Potential Passive participle) के प्रयोग द्वारा अनुवाद किया जा सकता है। जैसे—'Thou shalt not kill him' (तुम्हारे द्वारा वह नहीं मारा जाना चाहिए) = त्वया स नैव हंतव्यः । 'Thou shalt not move even a step from this place' (तुमको इस स्थान से एक पग भी आगे न बढ़ना चाहिए) = 'त्वयास्मात्स्थानात्पदात्पदमपि न दातव्यं'।

(२) जब 'Shall' द्वारा प्रतिज्ञा का बोध हो तब किसी निश्चयार्थक शब्द के साथ विधिलिङ् अथवा सामान्यभविष्य की क्रिया के रूप को लगाकर अनुवाद किया जा सकता है। जैसे—'He shall be my prime minister' (निश्चय जानो कि वह हमारा प्रधान सचिव होगा) = 'स मम प्रधान सचिवो भवेत् (भविष्यति) इत्यहं निश्चयेन कथयामि अथवा तं प्रधान सचिवं करिष्याम्येव ।'

२२९—अप्रत्यक्ष (Indirect) कथनों में प्रयुक्त 'Shall' भविष्य के अर्थ में सभी पुरुषों में, सामान्य भविष्य द्वारा अथवा विधिलिङ् द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। जैसे—'You say you shall do it' ('हम लोग इसे करेंगे' ऐसा तुम लोग कहते हो') = 'वयं तत्करिष्यामः (कुर्याम्) इति यूयं भणथ ।' कर्त्ता के निश्चय को व्यक्त करने वाले और सभी पुरुषों में प्रयुक्त 'Will' का अनुवाद अनुच्छेद २२७ के नियम के अनुसार किया जा सकता है। जैसे—'He says he will write' (वह कहता है कि मैं लिखूँगा) = 'अहमवश्यं लेखिष्यामीति स वदति' ।

२३०—प्रश्नवाचक वाक्यों में, उत्तम पुरुष को छोड़ कर सभी पुरुषों के साथ प्रयुक्त तथा जिस पुरुष से प्रश्न किया जाय उसकी इच्छा को व्यक्त करने वाले 'Will और Shall' का अनुवाद दूसरे की इच्छा प्रकट करने

के लिए विधिलिङ् अथवा लोट् (आज्ञा) द्वारा किया जा सकता है और जब कर्त्ता की इच्छा को व्यक्त करना होता है तब 'इच्छा' अर्थ सूचक धातुओं द्वारा अनुवाद किया जा सकता है। जैसे—'Shall I or he go?' (क्या मुझको अथवा उसको जाना चाहिए) = 'गच्छेयं अथवा गच्छानि किं, गच्छेत् (गच्छतु) किं'। 'Shall you go?' (क्या तुम जाने के इच्छुक हो ?) = 'गच्छेत् किं अथवा गन्तुं शक्नुयात् किम्' ? Will you or he go ? (क्या तुमको अथवा उसको जाने की इच्छा है ?) = 'गन्तुमिच्छथ किम् अथवा गन्तुमिच्छति किम्।' परन्तु Will जब प्रश्नवाचक वाक्यों में साधारण भविष्यकाल का द्योतन करने के लिए आता है तब उसका अनुवाद सामान्य-भविष्य द्वारा किया जा सकता है। जैसे—'Will he go there?' (क्या वह वहाँ जायेगा ?) = 'तत्र गमिष्यति किम्'। 'Will you come to my house?' (क्या मेरे घर आओगे ?) = 'मम गृहमागमिष्यथ किम् ?'

Should and Would

२३१—अनिश्चित भविष्यकाल, अनुग्रह अथवा कर्त्तव्य को व्यक्त करने वाले 'Should' का अनुवाद विधिलिङ् (अनुच्छेद १९८) अथवा कृत्यप्रत्ययों (तव्यत्, अनीयर्, यत्, ण्यत्) द्वारा किया जाता है। जब इससे कुछ सन्देह अथवा अविश्वास प्रकट होता है, जैसे—I should think so' (मुझे ऐसा सोचना चाहिए), तब 'इति मे वितर्कः' अथवा 'इति मे मतिः' कहकर अनुवाद हो सकता है।

२३२—भाग्यवश अथवा इच्छा को व्यक्त करने वाले Would का अनुवाद विधिलिङ् द्वारा होता है (अनुच्छेद १९८)। जब इससे स्वभाविक कार्य का बोध होता है तब केवल वर्तमान काल द्वारा ही अनूदित हो सकता है। जैसे—'कालं नयति' = समय बिताता था। 'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलम्' (शाकुन्तल०४)=वह पहिले जल नहीं पीती थी। 'यदि वे यहाँ उपस्थित हुए होते तो क्या ही अच्छा होता' = 'यदि सोऽत्र संनिहितःस्यात् तर्हि अहो शोभनं भवेत्।'

(अ) प्रश्नवाचक वाक्यों में प्रयुक्त Would और Should का अनुवाद ठीक उसी प्रकार होता है जैसे Will और Shall का। जैसे—'Should I or he go out?' (क्या मुझको और उसको बाहर जाना चाहिए) = 'बहिर्गच्छेयं-गच्छानि किं (गच्छेत् अथवा गच्छतु)'। 'Would you do this? (क्या इसको करने की तुम्हारी इच्छा है ?) = यूयमेतत्करिष्यथ अथवा कर्त्तुमिच्छथ किं'

May (might) और can (could)

२३३—सम्भावना, स्वीकृति, अभिप्राय बोधक May का अनुवाद विधिलिङ् द्वारा होता है। जैसे—'अत्रैर्दीव्येयमिति प्रत्यहमत्रायामि' = मैं यहाँ प्रतिदिन आता हूँ जिससे जुआ खेलूँ। परन्तु जब इसके द्वारा 'इच्छा' का बोध होता है तब उसका अनुवाद विधिलिङ् अथवा आज्ञा (लोट्) अथवा आशीर्लिङ् द्वारा होता है।

२३४—Can (could) सदा सामर्थ्य का बोध कराता है न कि आज्ञा का। संस्कृत में इसका अनुवाद प्रधान क्रिया के साथ 'तुमुन्' प्रत्यय लगाकर और 'योग्य है' अर्थ वाली किसी क्रिया का प्रयोग करके किया जा सकता है। जैसे—'मैं इसे कर सकता हूँ' = 'तत्कर्त्तुं शक्नोमि, समर्थः पारयामि' इत्यादि।

२३५—'Might' का अनुवाद सामान्यतया विधिलिङ् द्वारा होता है। जैसे—'It might be so' (ऐसा हो सकता है) = 'एवं स्यात्'।

अथवा कभी-कभी कृत्यप्रत्ययों (तव्य, अनीयर्, यत्, ण्यत्) का प्रयोग करके अनुवाद किया जाता है। जैसे—'He might be my friend' (शायद वह हमारा मित्र हो सकता है) = 'कदाचिदनेन मम मित्रेण भवितव्यम्।'

(अ) 'Might' जब सम्भावना व्यक्त करता है और पूर्णकाल (Perfect tense) के साथ प्रयुक्त होता है तब उसका अनुवाद विधिलिङ् अथवा भूतकालिक कृत् प्रत्यय (क्त) द्वारा किया जा सकता है। जैसे—'He might have done it' (सम्भव है उसने इसको किया हो) = 'तेनैतत्कृतं स्यात्

कर्त्तव्यम् ।' इसी प्रकार 'I could have done it' (मैं इसको कर लिये होता) = मयैतत्कर्त्तुं शक्यमासीत् (किन्तु न कृतं) ।

(Must और Ought)

२३६—आवश्यकता, बाहरी प्रभाव, निश्चय अथवा भवितव्यतर्क के अर्थ में Must का अनुवाद सदा कृत्यप्रत्यय (तव्यत्, अनीयर्, यत्, ण्यत्) द्वारा होता है। जैसे—'you must go' (तुमको अवश्य जाना चाहिए) = 'त्वया गन्तव्यम्'। 'He must obey me' (उसको मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए) = 'अहं तेनानुरोद्धव्यः ।'

२३७—Ought का भी अनुवाद उसी प्रकार होता है। जैसे—'You ought to learn it' (तुमको इसे अवश्य पढ़ना चाहिए) = 'त्वयेदं (अवश्यं) अध्येतव्यं ।' कभी-कभी 'तुमुन्' प्रत्ययान्त के साथ 'अर्ह' का रूप लगा कर अनुवाद करते हैं। जैसे—'इदंपठितुमर्हसि'। पूर्णकाल (Perfect tense) के साथ प्रयुक्त Must और Ought भूतकालिक कृत्प्रत्यय (क्त) के साथ विधिलिङ् द्वारा अथवा कृत्य प्रत्यय (तव्यत्, अनीयर्, यत्, ण्यत्) द्वारा अनूदित हो सकता है। जैसे—'He must have come home' (वह अवश्य घर आया हो) = 'स गृहमागतो भवेत् अथवा तेन गृहमागन्तव्यं ।' 'एवमनया प्रष्टव्यम्' (मालविका० ४)—उसको ऐसा तुमसे पूछना चाहिए। 'You ought to have told me this' (तुम को यह मुझसे कह देना चाहिए था) = 'इदं त्वया मह्यं कथयितव्यम् ।'

हेतुहेतुमद्भूत (The Subjunctive Mood)

२३८—अँग्रेजी में तीन मुख्य रूप ऐसे होते हैं जिनमें Subjunctive Mood का प्रयोग होता है—१—वर्तमानकाल—२—भूतकाल—३—पूर्णभूतकाल का-सा काल (Pluperfect)।

'कदाचित्' (ऐसा न हो कि) के बाद में वर्तमान काल के आश्रित उपवाक्यों में आज्ञार्थक, परामर्शार्थक आदि क्रियाओं से युक्त आशा, प्रार्थना

द्योतक क्रियाओं के साथ, जब हेतुहेतुमद्भूत (Subjunctive Mood) का प्रयोग होता है तब संस्कृत में उसका अनुवाद विधिलिङ् अथवा लोट् (आज्ञा) द्वारा होना चाहिए। जैसे—मैं आज्ञा देता हूँ कि वह फाँसी पर लटका दिया जाय = 'स शूलमारोप्येत अथवा आरोप्यतां इत्यहमाज्ञापयामि।' मैं आशा करता हूँ कि मैं इस काम में सफल होऊँ = 'अस्मिन् कार्ये विजयी भवेयम् इत्याशंसे अथवा अपि नाम विजयी भवेयं' (अनुच्छेद २०३)। उसको बचाइये, कदाचित् उसकी अस्वस्थता बढ़ न जाय = 'परित्रायतामेनां भवान् मा अस्या विकारो वर्धताम्'।

२३६—हेतुसूचक (Conditional) वाक्यों में जहाँ हेतुहेतुमद्भूत दोनों उपवाक्यों में वर्तमान काल द्वारा व्यक्त हो, उसका अनुवाद अनुच्छेद २०६ के अनुसार हो सकता है। जैसे—यदि तुम जाते हो तो मैं जाता हूँ = 'यदि यूयं गच्छथ (गमिष्यथ अथवा गच्छेत्) तर्हि अहं गच्छामि (गमिष्यामि अथवा गच्छेयं')। यदि पानी बरसता है तो हम लोग बाहर नहीं जा सकेंगे = 'यदि देवो वर्षेत् (वर्षति वर्षिष्यति वा) तर्हि वयं बहिर्गन्तुं न शक्नुयाम (शक्ष्यामः), इत्यादि।

२४०—जब हेतुहेतुमद्भूत (Subjunctive Mood) भूतकालिक हेतु सूचक (conditional) वाक्यों में प्रयुक्त होता है तब दोनों उपवाक्यों में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। जैसे = If he were here, he would accompany me' (यदि वह यहाँ रहे तो मेरे साथ चले) = 'यद्यत्र स भवेत्तन्मया सहागच्छेत्।' परन्तु जब भूतकालिक हेतुहेतुमद्भूत निषेध अथवा पूर्व उपवाक्य (Antecedent) का झूठापन सूचित करता है तब विधिलिङ् का प्रयोग नहीं हो सकता बल्कि क्रियातिपत्ति (conditional) का प्रयोग होगा (अनुच्छेद २१६)। जैसे—'If the Book were in the library (as it is not), it should be given to you' (यदि पुस्तकालय में वह पुस्तक होती (जैसा कि वह है नहीं) तो वह तुम्हें अवश्य दी जाती) = 'यदि तत्पुस्तकं ग्रन्थालयेऽभविष्यत्तर्हि तद्युष्मभ्यं अदास्यत।' इस प्रकार निम्नलिखित तीन वाक्यों का

अनुवाद करने में प्रथम दो वाक्यों में वर्तमानकाल अथवा विधिलिङ् का प्रयोग हो सकता है और अन्तिम तृतीय वाक्य में क्रियातिपत्ति (Conditional) का प्रयोग हो सकता है—

1—If the book is (as I know it is) in the library you may take it.

2—If it be (I am uncertain) there, you may take it.

3—If it were (as I know it is not) there, you might take it.

२४१—भूत कालिक हेतुसूचक (Pluperfect Conditional) का अनुवाद सदा संस्कृत में क्रियातिपत्ति द्वारा ही होता है (अनुच्छेद २१६)।

अभ्यास

१—तदाकर्ण्य दमनकश्चिन्तयामास। युद्धाय कृतनिश्चयोऽयं दृश्यते दुरात्मा। तद् यदि कदाचित्तीक्ष्णशृङ्गाभ्यां स्वामिनं प्रहरिष्यति, तर्हि महाननर्थः सम्पत्स्यते। (पंचतंत्र १)

२—युवराज, किं न जितं देवेन तारापीडेन यद् जेष्यसि। कानि द्वीपान्तराणि नात्मीकृतानि यान्यात्मीकरिष्यसि। कानि रत्नानि नोपार्जितानि यान्युपार्जयिष्यसि। (कादम्बरी ११७)

३—तौ चेद्राजपुत्रौ निरुपद्रवाववर्धिष्येतामियता कालेन तवेमां वयोवस्थामस्प्रक्ष्येताम्। (दशकुमार० २।३)

४—तया देवतयास्मै स्वप्ने समादिष्टम्। उत्पत्स्यते तवैकः पुत्रो जनिष्यते चैका दुहिता। स तु तस्याः पाणिग्राहकमनुजीविष्यति।

(दशकुमार० २।६)

५—गामधास्यत् कथं नागो मृणालमृदुभिः फणैः ।
आरसातलमूलात्त्वमवालम्बिष्यथा न चेत् ।। (कुमार० ६।६८)

६—राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते ।
तमन्विष्य प्रशमयेः भवितासि ततः कृती ।। (रघु० १५।४७)

७—अकरिष्यदसौ पापमतिनिष्करुणैव सा ।
नाभविष्यमहं तत्र यदि तत् परिपंथिनी ।। (मालती० ६)

८—सिध्यंति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः,
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ।।
(शाकुन्तल० ७)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—भागुरायणः—कुमार, न कदाचिदपि शकटदासोऽमात्यराक्षसस्याग्रतोऽयं लेखो मया लिखित इति प्रतिपत्स्यते । अतोऽन्यल्लिखितमानीयतामस्य यतो वर्णसंवाद एवैतत् सर्वं विभावयिष्यति । (मुद्रा० ५)

२—रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति चक्रवालम् ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे
हा हंत हंत नलिनीं गज उज्जहार ।। (सुभाषित०)

३—परस्परेण स्पृहणीयशोभं, न चेदिदं द्वंद्वमयोजयिष्यत् ।
अस्मिन् द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत् ।।
(कुमार० ७।२५)

४—यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता २।५२, ५३)

५—भयाद्रणादुपरत मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ (श्री मद्भगवद्गीता २।३५)

६—मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता १८।५८)

७—परिणेष्यति पार्वतीं यदा, तपसा तत्प्रणवीकृतो हरः ।
उपलब्धसुखस्तदा स्मरं, वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति ॥ (कुमार० ४।४२)



निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—सारी प्रजा को सूचित कर देना चाहिए कि अब से चन्द्रगुप्त स्वयं राज्य के सब कामों को देखेंगे ।

२—यदि तुम केवल प्रयत्न भर करो तो तुम अपना अभिलषित उद्देश्य प्राप्त कर लोगे ।

३—साधु ने कहा—यह सब निकट भविष्य कलियुग में होगा और लोग तरह-तरह के पाप करेंगे ।

४—मुझे पूरा विश्वास है कि यदि बचपन से ही वह लड़का सावधानी से पोषित होता तो अब तक वह इस लड़के के बराबर बड़ा हो गया होता ।

५—सम्पत्ति के समय में किसी मनुष्य को सैकड़ों मित्र घेरे रहते हैं, परन्तु संकट काल में वे उसको छोड़ देते हैं ।

६—यदि राजा अपराधियों को दण्ड देने में सतर्क न रहता तो बलवान निर्बलों को नष्ट कर डालते।

७—यदि तुम और गोपाल वहाँ होते तो तुम कठिनाई के उस भयावह दृश्य को देखना सहन कर सकते।

८—एक बार एक बारहसिंगा ने गर्व से कहा—यदि मेरी टाँगें मेरी सींगों के समान होतीं तो इस भूमि पर कोई भी जानवर सुन्दरता में मेरी समता (तुल्) न कर सकता।

९—यदि राम उसी क्षण वहाँ न गये होते तो सम्पूर्ण घर जल गया होता।

१०—यदि मैं उस समय बिलकुल तटस्थ न रहा होता तो मैं राजा के असन्तोष का पात्र हो गया होता।

११—यह बहुत ही असम्भव है कि वह अब लौट कर आयेगा और हमलोगों के साथ सुखपूर्वक कालयापन करेगा।

१२—जितनी तन्मयता से मैंने राजा की सुश्रूषा की यदि उसकी आधी भी तन्मयता परमात्मा के लिए की होती तो उसने मुझको नंगा करके मेरे शत्रुओं को न सौंप दिया होता।

पाठ २१

अव्यय पदों की प्रयोग विधि

(अंग, अथ, अधिकृत्य, अपि, अयि, अये, अहह और अहो)

२४२—पाणिनि (अष्टाध्यायी), अमरकोश तथा वर्धमान कृत 'गणरत्न-महोदधि' में 'अव्यय' शीर्षक के अन्तर्गत बहुत से पद परिगणित हैं। उनमें से बहुत से संयोजक पद हैं जो बहुत काम के हैं, इसलिए उनके अर्थों को उपयुक्त ढंग से समझ लेना चाहिए। ऐसे सामान्य काम के अव्यय पदों में से कुछ अव्यय पदों पर इस पाठ में और आगे के सात पाठों में विचार किया जायेगा।

२४३—[1]'अंग' शब्द स्वतः सम्बोधन करने के लिये प्रयुक्त होता है। जैसे—'तन्मन्ये क्वचिदंग भृंगतरुणेनास्वादिता मालती' (गणरत्नमहोदधि)—श्रीमान् जी! इसीलिए मैं सोचता हूँ कि मालती-पुष्प का आस्वादन कहीं किसी तरुण भ्रमर द्वारा किया गया है। 'अंग कच्चित्कुशली तातः' (कादम्बरी२२१) 'प्रभुरपि जनकानामंग भो याचकस्ते' (महावीर-चरित ३)।—अथवा अंग पद आदर या सम्मान सूचक अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता है। जैसे—'अंग विद्वन्माणवकमध्यापय' (गणरत्न महोदधि)—हे पंडित! बालक को पढ़ाइए।

(अ) 'अंग' का प्रयोग कभी-कभी 'किम्' के साथ होता है और अर्थ प्रायः वही होता है जो 'किमुत' अथवा 'किंपुनः' का। जैसे—'तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम् किमंग वाग्घस्तवता नरेण' (पंचतंत्र १।१)—धनिकों का काम एक तिनका से भी पड़ जाया करता है फिर वाणी और हाथ से युक्त मनुष्य की कौन कहे।

---

(१) अंग पूजासम्बोधनयोः (गणरत्न महोदधि)

२४४—[1] 'अथ' का प्रयोग निम्न अर्थों में होता है :—

१—मंगल सूचक अर्थ में। जैसे—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' (शांकरभाष्य)—इसके पश्चात् अब ब्रह्म की जिज्ञासा आती है।

२—किसी वक्तव्य के प्रारम्भ की सूचना के रूप में—जैसे—'अथेदमारभ्यते द्वितीयं तंत्रं' (पंचतंत्र २)—अब यहाँ से दूसरा तंत्र प्रारम्भ होता है।

३—'इसके पश्चात्', 'तब' के अर्थ के रूप में—जैसे—'अथ प्रजानामधिपःप्रभाते वनाय धेनुं मुमोच' (रघु० २।१)—इसके पश्चात् राजा ने सबेरे ही गाय को वन में जाने के लिए खोला। इसी अर्थ में प्रायः 'यदि' अथवा 'चेद्' का अन्योन्य सम्बन्धी होकर प्रयुक्त होता है। जैसे—'न चेन्मुनिकुमारोऽयमथ कोस्य व्यपदेशः' (शाकुन्तल० ७)

४—प्रश्न पूछने के अर्थ में—जैसे—'अथ शक्तोऽसिभोक्तुं' (गणरत्न महोदधि) प्रायः 'अथ' का प्रयोग प्रश्न वाचक शब्द के साथ ही होता है। जैसे—'अथ सा किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी'। (शाकुन्तल० ७)

५—'तथा' और 'भी' के अर्थ में—जैसे—'भीमोऽथार्जुनः' (गणरत्न महोदधि)—भीम और अर्जुन भी। 'गणितमथ कलां कौशिकीं' (मृच्छकटिक१)—गणित तथा कौशिकी कला भी।

६—'यदि', 'मानो', 'यदि ऐसा है' के अर्थ में—जैसे—'अथ कौतुकमावेदयामि' (कादम्बरी १४४)—यदि तुम्हें कुतूहल है तो मैं कहता हूँ। 'अथ मरणमवश्यमेव जंतोः' (वेणीसंहार० ३)—यदि जीवधारी की मृत्यु अवश्यम्भावी है।

---

(१) मंगलानन्तरारंभप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ। (अमरकोश, तृतीय, नानार्थ०)

अथोथस्यातां समुच्चये।
मंगले संशयारंभाधिकारानन्तरेषु च।
अन्वादेशे प्रतिज्ञायां प्रश्न साकल्ययोरपि ॥ (हे)

७—पूर्णता, समग्रता के अर्थ में—जैसे—'अथ धर्मं व्याख्यास्यामः' (गणरत्न महोदधि)—हम सम्पूर्णतया धर्म का विवेचन करेंगे।

८—संदेह अथवा अनिश्चितता के अर्थ में—जैसे—'शब्दो नित्योऽथानित्यः' (गणरत्न महोदधि)।

विशेष—कोश 'अधिकार' अर्थ में भी इसका प्रयोग बताते हैं। जैसे—'अथ समासः' किन्तु उक्त (१) और (२) और 'अधिकार' अर्थ में अभिन्न हैं, क्योंकि ये सभी, जहाँ तक सम्भव है, वाक्य के आरम्भ में ही प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार अन्वादेश (एक वाक्य में उसी शब्द का, वाक्य के दूसरे (बाद वाले) भाग में दुबारा प्रयोग) और प्रतिज्ञा को भी समझना चाहिए।

२४५—'किं' के साथ 'अथ' (अथकिम्) का अर्थ होता है 'और क्या', 'हाँ,' 'ठीक ऐसा ही'। जैसे—'शकारः—चेट, प्रवहणमागतं ? चेटः—'अथ किं' (मृच्छकटिक ८)—शकार—क्या रथ आ गया ? भृत्य—हाँ।

(अ) 'अथवा' का प्रयोग अँग्रेजी वियोजक 'or' की भाँति होता है। परन्तु साधारणतया इसका प्रयोग किसी पूर्व कथित वक्तव्य को शुद्ध करने के लिए अथवा परिवर्तन करने के लिए होता है। जैसे—'दीर्यें किं न सहस्रधाहमथवा रामेण किं दुष्करं' (उत्तर० ६)—मैं हजारों टुकड़ों में क्यों नहीं विदीर्ण हो गया ? अथवा राम के द्वारा किस कार्य का किया जाना दुष्कर है ?

२४६—'अधिकृत्य' का प्रयोग 'विषय में' 'सम्बन्ध में' के अर्थ में द्वितीया के योग में होता है। जैसे—'अथ कतमं पुनरृतुमधिकृत्य गास्यामि' (शाकुन्तल० १)—तो किस ऋतु के विषय में गाऊँ ? 'उद्दिश्य' का प्रयोग उसी प्रकार 'के सम्बन्ध में' 'और' के अर्थ में होता है। जैसे—'स्वपुरमुद्दिश्य प्रतस्थे' (हितो० ४) अपने नगर की ओर उसने प्रस्थान किया। 'किमुद्दिश्यामीऋषयो मत्सकाशं प्रेषिताः स्युः' (शाकुन्तल० ५)—किस कार्य के सम्बन्ध में (किस उद्देश्य से) ये ऋषि लोग मेरे पास भेजे गये होंगे ?

२४७—[1] 'अपि' निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—

१—'यद्यपि' के अर्थ में—जैसे—'पातितोऽपि कराघातैः' (भर्तृ० २।८५) —यद्यपि हाथ की चोट से गिरा दिया गया।

२—'भी' के अर्थ में—जैसे—'इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी' (शाकुन्तल० १) —वल्कल धारण करने पर भी यह तन्वी अधिक सुन्दर है।

३—'और भी' के अर्थ में—'राजापि मुनिवाक्यमंगीकृत्यातिष्ठत्' (दशकुमार१।१) और राजा भी मुनि के कथन को मान कर रुक गया। 'विष्णुशर्मणापि राजपुत्राः पाठिताः' (पंचतंत्र १)—और विष्णुशर्मा द्वारा भी राजपुत्र पढ़ाये गये। 'अपि सिंच अपि स्तुहि' (सिद्धान्त कौमुदी)—और सींचो भी और स्तुति भी करो। 'अस्ति मे सोदरस्नेहोप्येतेषु' (शाकुन्तल० १)—मेरे अन्तःकरण में इनके प्रति भगिनी जैसा स्नेह भी है।

४—प्रश्न पूछने के अर्थ में यह वाक्य के आदि में प्रयुक्त होता है। जैसे—'अपि तपो वर्धते' (शाकुन्तल० १)—क्या आप की तपस्या में उन्नति है? 'अप्येतत्तपोवनं' (उत्तर० २)—क्या यह तपोवन है?

५—'शंका अथवा अनिश्चतता' के अर्थ में—'अपि चौरो भवेत्'—हो सकता है कि चोर हो (इस विषय में मुझे निश्चित जानकारी नहीं है)।

६—'आशा' 'सम्भावना' के अर्थ में—'अदि जीवेत्स ब्राह्मणशिशुः' (उत्तर० २)—मुझे आशा है कि वह ब्राह्मण बालक जीवित हो जायेगा।

विशेष—अन्तिम अर्थात् 'आशा' अर्थ में 'नाम'-संयुक्त 'अपि' का प्रायः प्रयोग होता है। जैसे—'तदपि नाम रामभद्रः पुनरपीदं वनमलंकुर्यात्' (उत्तर० २)—तो ऐसी सम्भावना है कि श्री रामचन्द्र जी पुनः इस वन को सुशोभित करें।

---

१. गर्हा समुच्चयप्रश्नशंकासम्भावनास्वपि (अमरकोश)

अपि सम्भावना प्रश्न शंका गर्हा समुच्चये।
तथा युक्त पदार्थेषु कामचार क्रियासु च ॥ (विश्व०)

नोट—अन्य अर्थों में भी 'अपि' का प्रयाग होता है। जैसे-'गर्हा' (निन्दा)—'धिग्देवदत्तमपि स्तुयाद्वृषलं' (सिद्धान्त कौमुदी)—देवदत्त को धिक्कार है कि शूद्र की भी स्तुति करता है (ऐसा दोषी वह है)। 'पदार्थ' अर्थ में—(किसी अप्रत्यक्ष शब्द के अर्थ में)—'सर्पिषोपि स्यात्' (सिद्धान्त कौमुदी) —घृत का एक बूँद भी। कामचार क्रिया अथवा अन्ववसर्ग (किसी की इच्छा के अनुसार करने की अनुमति देना)। 'अपिस्तुहि'—स्तुति कर सकते हो (यदि इच्छा हो तो)। इसी प्रकार—'अपि स्तुह्यपि सेधास्मांस्तथ्यमुक्तं नराशन' (भट्टि०८।६२)।

(अ)—संख्या वाचक शब्दों के बाद 'अपि' 'सम्पूर्णता' का अर्थ व्यक्त करता है। जैसे—'सर्वैरपि राज्ञां प्रयोजनम्' (पंचतंत्र)—राजाओं का सभी से प्रयोजन रहता है। इसी प्रकार 'चतुर्णामपिवर्णानाम्'।

(ब)—प्रश्न वाचक सर्वनामों और उनके द्वारा बने हुए शब्दों के बाद जुटने पर 'अपि' का अर्थ 'कोई' होता है और कभी-कभी 'अवर्णनाय' होता है, देखिए अनुच्छेद १३५।

(स)—'यद्यपि'—'तथापि'—ये सापेक्ष्य शब्द हैं।

२४८—[1] 'अयि' का प्रयोग (१) नम्रतापूर्वक सम्बोधन (हे मित्र !) करने के अर्थ में होता है। जैसे—'अयि विवेकविश्रान्तमभिहितम्' (मालविका० १)—हे मित्र ! तुमने विवक शून्य बात कही है। 'अयिमातर्देवयजन संभवे देवि सीते' (उत्तर०)—हे माता ! देवयज्ञ से उत्पन्न देवी सीता ! (२) नम्रतापूर्वक प्रश्न करने के अर्थ में भी 'अयि' का प्रयोग होता है। जैसे—'अयि जीवितनाथ जीवसि' (कुमार० ४।३)—हे प्राणपति ! क्या आप जीवित हैं ?

२४९—'अये' का प्रयोग प्रधानतया (१) 'आश्चर्य' 'विस्मय' के अर्थ में होता है। जैसे—'अये भगवत्यरुन्धती !' (उत्तर० ५)—ओ हो ! ये तो भगवती अरुन्धती जी हैं। 'अये मय्येव भ्रूकुटीधरः संवृत्तः' (उत्तर० ५)। (२) 'शोक'

१—अयि प्रश्नानुनययोस्तथा सम्बोधनेपि च (मेदिनी)।

'खिन्नता', 'भय' के अर्थ में होता है। जैसे—'अये देवपादपद्मोपजीविनोवस्थेयम्' (मुद्रा० २)—खेद है कि आप महाराज के कमलवत् चरणों के दास की यह दशा है!

२५०—[1]'अहह' का प्रयोग (१) 'प्रसन्नता', 'आश्चर्य' अथवा 'विस्मय' के अर्थ में होता है। (२) 'शोक' अथवा 'अपार वेदना प्रकट करने' के अर्थ में होता है। जैसे—'अहह! महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः' (भर्तृ० १।३५) —अहा! महान् लोगों के चरित्र का ऐश्वर्य निःसीम होता है। 'अहह! दारुणो वज्रनिर्घातः' (उत्तर० २)—हाय, यह तो दारुण वज्रपात है। 'अहह! कष्टमपण्डितता विधेः' (भर्तृ० ३।८८)—अरे! ब्रह्मा की मूर्खता पर बड़ा कष्ट होता है।

२५१—[2]'अहो' (१) सम्बोधन का चिह्न है। जैसे—'अहो राजानः'—हे राजालोग! (२) इसका प्रयोग 'विशेषणों' और 'संज्ञाओं' के साथ 'प्रसन्नता' अथवा 'विषाद' सूचक 'अहा' अथवा 'क्या ही' के अर्थ में होता है। जैसे—'अहो! मधुरमासां कन्यकानां दर्शनम्' (शाकुन्तल० १)—अहा! इन कन्याओं का दर्शन कितना मधुर है। 'अहो! सर्वास्ववस्थास्वनवद्यता रूपस्य' (मालविका० २)—अहा! सभी दशाओं में रूप की अनवद्यता (कैसा अनिन्द्य सौन्दर्य है)। 'अहो विपाकः' (उत्तर० ४)—अरे! दशा का यह परिवर्तन? 'अहो उन्मीलन्ति वेदनाः' (उत्तर० ४)। (३) किसी अप्रत्याशित वस्तु या व्यक्ति से एकाएक भेंट होने पर जो आश्चर्य प्रकट होता है, उस अर्थ में भी कभी-कभी इसका प्रयोग होता है। जैसे—'अहो! बकुलावलिका!' (मालविका० १)—अरे! यह बकुलावलिका है!

---

(१) अहहेत्यद्भुते खेदे परिक्लेश प्रकर्षयोः (मेदिनी)

२—अहो धिगर्थे शोके च करुणार्थविषादयोः।
सम्बोधने प्रशंसायां विस्मये पादपूरणे॥ (मेदिनी)

अभ्यास

१—अहो सर्वास्ववस्थासु चारुता शोभां पुष्यति । (मालविका० २)

२—सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति । अहं तु तामेवाश्रमललामभूतां शकुंतलामधिकृत्य ब्रवीमि । (शाकुन्तल० २)

३—अहो ! दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयतास्य वपुषः । अथवोपपन्न-मेतदस्मिन् ऋषिकल्पे राजनि । (शाकुन्तल० २)

४—अयि ज्ञायते कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्म इति । (विक्रमो० १)

५—अयि जात, कथयितव्यं कथय । (उत्तर० ४)

६—कथमीदृशेन सह वत्सस्य चन्द्रकेतोर्द्वन्द्वसंप्रहारमनुजानीयाम् । अथ-वा इक्ष्वाकुगृहवृद्धा वयम् । प्रत्युपस्थिते च का गतिः । (उत्तर० ५)

७—अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमंगकानि । अलमप्रभुरस्म्यात्मनः । सीदति मे हृदयम् । अन्धकारतामुपयाति चक्षुः । अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यै-वोपपादयेत् । (कादम्बरी २६)

८—अहो प्रभावो महात्मनाम् । अत्र शाश्वतं विरोधमपहायोपशांता त्मानस्तिर्यंचोऽपि तपोवनवसतिसुखमनुभवन्ति । (कादम्बरी ४५)

९—अपि नाम तयोः कल्याणिनोर्भूरिवसुदेवरातापत्ययोर्मालती-माधवयोरभिमतः पाणिग्रहः स्यात् । (मालती० १)

१०—अहो मे मूर्खतायाः प्रकारः । अहो यत्किंचनकारितायामादरः । अहो निरर्थकव्यापारेष्वभिनिवेशः । अहो बालिशचरितेष्वासक्तिः । (कादम्बरी १२०)

११—चाणक्य—भद्र उपवर्णयेदानीं कुसुमपुरवृत्तांतम् । अपि वृषल-मनुरक्ताः प्रकृतयः । चरः—अथ किम् । आर्येण तेषु तेषु विरागकार-णेषु परिहृतेषु देवे चंद्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः । (मुद्रा० १)

१२—अये अश्वमेध इति विश्वविजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्रियपरिभावी महानुत्कर्षनिकषः। (उत्तर० ४)

१३—ताः स्वचारित्र्यमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली।
ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया॥ (रघु० १५।७३)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—भगवति, मदीयेषु लेखेषु तत्रभवते त्वामुद्दिश्य सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामि। (मालविका०५)

२—हा कथं सीतादेव्या ईदृशं जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि। अथ वा नियोगः खल्वीदृशो मन्दभाग्यस्य। (उत्तर०१)

३—चाणक्यः—अपि प्रचीयन्ते संव्यवहाराणां लाभा वः।
चन्द्रगुप्तः—आर्य, अथ किम्। (मुद्रा० १)

४—अथ धर्मानुरोधादितरपक्षावलम्बनद्वारेण मृत्युमंगीकरोमि। एवमपि प्रथमं तावत् स्वयमागतस्य तत्रभवतः कपिंजलस्य प्रणयप्रसरभंगः। पुनरपरं यदि तस्य जनस्य मत्कृतादाशाभंगात् प्राणविपत्तिरुपजायते तदपि मुनिजनवधजनितं महदेनो भवेत्। (कादम्बरी १६०)

५—चाणक्यः—अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य किं वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः। अहो राक्षसस्य नन्दवंशे निरतिशयो भक्तिगुणः। स कस्मिंश्चिदपि जीवति नन्दान्वयावयवे वृषलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते। (मुद्रा० १)

६—यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कलया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्॥
(शाकुन्तल० ५)

७—अप्यग्रणीर्मन्त्रकृताम् ऋषीणाम् कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते । (रघु० ५।४)

८—विललाप स वाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ॥ (रघु० ८।४३)

९—अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते ।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥
(कुमार० ५।३३)

१०—अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥—(श्री मद्भगवद्गीता २।२६)

११—सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ (शाकुन्तल० १)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—मूर्ख का भी अनादर नहीं करना चाहिए, विद्वान् व्यक्ति का तो कहना ही क्या ।

२—परन्तु मान लीजिए कि आप मुझको वहाँ बलपूर्वक ले भी चलते हैं तो भी मेरा मन अपनी प्रेयसी के प्रति लगा रहेगा, जो मेरे हार्दिक प्रेम का एकमात्र लक्ष्य है ।

३—स्वामी—क्या तुमने वह काम कर लिया है जिसको करने के लिये मैंने तुमसे कहा था ?
सेवक—हाँ, उसको मैंने बहुत पहिले कर लिया ।

४—अपनी प्रजा की सुरक्षा के लिए यह राजा प्रशंसा का पात्र है ।

५—जिस बालक के विषय में मैं कह रहा हूँ, वह बड़ा तेज है ।

६—जो व्यक्ति किसी निश्चित कारण से क्रोध करता है, वह उस कारण के दूर होते ही प्रसन्न हो जाता है।

७—इस पर भगवान विष्णु गरुड़ के निवास स्थान पर गये। वे अपने पूज्य स्वामी के स्वागत के लिए शीघ्र ही निकल आए।

८—क्या यह हो सकता है कि हमारी आकांक्षाएँ पूरी हों?

९—इन अभागे व्यक्तियों की कितनी दयनीय दशा है? यह तो पाषाण-हृदय को भी द्रवीभूत कर देगी।

१०—अहा! इस परम रमणीय उद्यान का ऐसा निर्मल सौन्दर्य!

११—किसी की अभिलषित आकांक्षाओं की पूर्ति कितनी बाधाओं से युक्त होती है?

१२—हाय! मैंने अपना सारा समय द्यूत क्रीड़ा में व्यतीत कर दिया, अपने को छोड़कर मैं इसके लिए किसको दोष दूँ?

१३—ओहो! यह तो मेरी ही मुद्रिका है, मैं इसे आज आठ दिनों से खोज रहा हूँ। इसको तुमने कहाँ पाया?

१४—मैं चलते-चलते थक गया हूँ, आइए अब घर चलें।

१५—मैं आशा करता हूँ कि उस व्यक्ति का आपको स्मरण होगा, जिसके विषय में एक महीना पहिले मैंने आपसे कहा था।

पाठ २२

आ, आं, आः, इति, इव, उत, एव, एवं, ओम्

२५२—[1]'तक' और 'से' के अतिरिक्त (अनुच्छेद ८४ देखिए) 'आ' का अर्थ 'बहुत थोड़ा' 'किंचित्' भी होता है और अँग्रेजी के 'ish' (जैसे Blackish में) (कुछ कुछ काला) के समकक्ष होता है। यह विशेषणों के पूर्व लगता है। जैसे—'आ पिंगल'—किंचित् पीला। 'आमत्तानां कोकिलानां कूजितैः' (मालविका० ३)—कुछ मदोन्मत्त कोयलों की कूक से।

क्रियाओं के साथ 'आ' का प्रयोग सर्वविदित है।

(अ) [2] कभी-कभी 'आ' का प्रयोग भूतकाल की घटनाओं का स्मरण दिलाने के लिए होता है। जैसे—'आ एवं किल तदासीत्' (उत्तर० ६)—अच्छा, उस समय ऐसा ही था। कभी-कभी केवल पादपूर्त्यर्थ के रूप में इसका प्रयोग होता है। जैसे—'आ एवं मन्यसे' (गणरत्न महोदधि)।

२५३—[3] 'आं' का प्रयोग किसी भूतकाल की घटना का स्मरण दिलाने के लिए होता है और कभी-कभी 'दृढ़निश्चय' व्यक्त करने के लिए अव्यय के रूप में इसका प्रयोग होता है। जैसे—किं नाम दंडकोऽयं-(सर्वतो विलोक्य)—आं' (उत्तर० २)—क्या यह दण्डक वन है ? (चारों ओर देखकर) अच्छा, हाँ (अब मुझे स्मरण आ रहा है)। 'आं चिरस्य प्रतिबुद्धोस्मि' (गणरत्न महोदधि)—सचमें मैं बहुत देर बाद उठा हूँ।

---

(१) आङीषदर्थेऽभिव्यक्तौ सीमार्थेधातुयोगजे (अमर कोश)
(२) आ प्रगृह्यः स्मृतौ वाक्ये (अमर कोश)
(३) आं स्मृतौ चावधारणे (विश्वकोश)

(अ) कभी-कभी इसका प्रयोग स्वीकारात्मक उत्तर (हाँ) देने के रूप में होता है। जैसे--'आं देव्याः पार्श्वगतोऽसौ जनश्चित्रेदृष्टः' (मालविका० १)—हाँ, यह व्यक्ति रानी के पास खड़ा हुआ चित्र में देखा गया था।

२५४—[1] 'आः' का प्रयोग 'पीड़ा' अथवा 'क्रोध' व्यक्त करने में होता है। जैसे—'आः शीतं' (गणरत्न महोदधि)—अरे! कैसी सर्दी है! 'आः कथमद्यापि राक्षसत्रासः' (उत्तर० १)—अरे! क्या अब भी राक्षसों का भय है?

२५५—'इति' अव्ययपद का प्रयोग सामान्य रूप से वक्ता के ही शब्दों में उसके कथन को व्यक्त करने के लिए होता है और उसको ठीक वक्ता के कथन के बाद में रक्खा जाता है, जैसा कि अँग्रेजी के प्रत्यक्ष कथन (Direct construction) में होता है। यह उद्धरण चिह्न ('—') के स्थान पर प्रयुक्त होता है अथवा अप्रत्यक्ष कथन (Indirect construction) में 'कि' (that) के स्थान पर वक्ता के उद्धृत शब्दों के अन्त में इसका प्रयोग होता है। जैसे—'आज्ञप्तोऽस्मि राजश्यालकेन—स्थावरक, प्रवहणं गृहीत्वा जीर्णोद्यानमागच्छेति' (मृच्छकटिक ६)—राजा के साले द्वारा मुझे आदेश मिला है कि 'हे स्थावरक, गाड़ी लेकर पुराने उद्यान में आओ'। 'तयोर्मुनि कुमारकयोरन्यतरः कथयति—अक्षमालामुपयाचितुमागतोस्मीति' (कादम्बरी १५१)—उन मुनिकुमारों में से एक कहता है कि मैं अक्षमाला माँगने आया हूँ, इत्यादि।

विशेष—अप्रत्यक्ष कथनों (Indirect narrations) का संस्कृत में अनुवाद करने में, प्रत्यक्ष कथन में होने वाले उद्धृत शब्दों के अन्त में 'इति' का प्रयोग करना चाहिए। जैसे—'Ram said to me that he would give me money whenever I wanted it'—'रामो मामुवाच—यदा यदा धनेन तव प्रयोजनं स्यात् तदा तदाऽहं तत् तुभ्यम् दद्यामिति अथवा दद्यामिति रामो मामुवाच'।

१. आस्तु स्यात्कोपपीडयोः (अमर.कोश)

(अ) इस अर्थ में 'इति' शब्द के प्रयोग से 'कथन' का बोध होता है, अतएव एक पृथक् अथवा निर्दिष्ट 'कथन' की सम्पूर्ण शर्तें पूर्ण होनी चाहिए अर्थात् उद्धृत वक्तव्य में कम से कम एक कर्त्ता और एक क्रिया अवश्य हो। जैसे—'क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः' (शिशुपालवध १।३)—उन्होंने धीरे-धीरे उनको 'नारद' समझा। 'अवैमि चैनामनघेति' (रघु० १४।४०)—मैं उनको निर्दोष समझता हूँ। यहाँ पर 'क्रमादमुं नारदमित्यबोधि सः' अथवा 'एनामनघामित्यवैमि' कहना अशुद्ध होगा। यदि 'इति' का प्रयोग न हो तो कर्मकारक का प्रयोग किया जा सकता है।

२५६—[१] इस सामान्य अर्थ के अतिरिक्त 'इति' के निम्नलिखित अर्थ भी होते हैं :—

(१) 'कारण' जैसा कि अँग्रेजी में 'Because', 'since', 'on the ground that' आदि द्वारा अर्थ व्यक्त होता है। जैसे—'वैदेशिकोस्मीति पृच्छामि कः पुनरसौ जामाता' (उत्तर० १)—मैं विदेशी हूँ इसलिए पूछता हूँ कि यह जामातृ कौन हैं? 'लब्धास्पदोस्मीति विवादभीरोः' (मालविका० १)—'मैं प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका हूँ इस कारण से उस विवादभीरु का'।

(२) 'उद्देश्य' अथवा 'निमित्त'—जैसे—'शरीरस्य मा विनाशो भूदिति मयेदमुत्क्षिप्य समानीतम्' (कादम्बरी ३२०)—शरीर का विनाश न हो इसलिए मैं उसको उठा कर ले आया (नहीं तो वह नष्ट हो जाता)

(३) 'इस प्रकार' उपसंहार के अर्थ में—जैसे—'इति तृतीयोङ्कः'—'इस प्रकार तीसरा अंक समाप्त होता है। 'पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि'। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशाएँ, आत्मा और मन ये द्रव्य हैं।

---

१. इति स्वरूपे सान्निध्ये विवक्षानियमे मते।
हेतौ प्रकारप्रत्यक्षप्रकाशेप्यवधारणे ॥
एवमर्थे समाप्तौ स्यात्। (हेम०)

(४) 'इस प्रकार', 'इस रूप में', 'इस ढंग का'—जैसे—'इत्युक्तवन्तं परिरभ्य दोर्भ्यां' (किरात० २.८०)—इस प्रकार कहते हुए का भुजाओं से आलिंगन करके। 'गौरश्वो हस्तीति जातिः'—जाति इस तरह की होती है जैसे—गाय, घोड़ा, हाथी।

(५) 'जैसा कि नीचे लिखा गया है', 'निम्नलिखित', 'जो बाद में कहा गया'—जैसे—'रामाभिधानो हरिरित्युवाच' (रघु० १३।१)—राम नाम वाले हरि ने ऐसा कहा (जैसा कि नीचे कहा गया है)।

(६) 'के रूप में', 'जहाँ तक'—'जिस दृष्टि से किसी पदार्थ पर विचार किया जाता है उसको व्यक्त करता है'—जैसे—'पितेति स पूज्यः अध्यापक इतिनिन्द्यः'—पिता के रूप में पूज्य है, अध्यापक की दृष्टि से वह निन्द्य है। 'शीघ्रमिति सुकरं निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत्' (शाकुन्तल० ३)—जहाँ तक शीघ्रता का प्रश्न है यह सरल है, जहाँ तक गोपनीयता का प्रश्न है यह विचारणीय है।

(७)—'मान्य सम्मति अथवा मत'—जैसे—'इत्यापिशलिः' (गणरत्न महोदधि)—ऐसा आपिशलि का मत है।

(८) 'व्याख्या,' 'उदाहरण'—जैसे—'इन्दुरिन्दुरिव श्रीमानित्यादौ तदन्वयः' (चन्द्रालोक)।

विशेष—'स्वरूप' और 'प्रकार' इन दोनों का अर्थ समान है। 'प्रत्यक्ष,' 'प्रकाश' और 'अवधारण' के प्रयोग बहुत कम मिलते हैं।

(अ)—'निश्चित प्रश्न' करने के अर्थ में 'किं' के साथ 'इति' को जोड़ कर 'कमिति' का प्रयोग किया जाता है। जैसे—'किमित्यपास्याभरणानि यौवने, धृतं त्वया वार्धकशोभिवल्कलम्' (कुमार० ५।४४)—क्यों, इस युवावस्था में आभूषणों को त्यागकर तुमने वृद्धावस्था-योग्य वल्कलवस्त्र को धारण कर लिया है?

२५७—[१]—'इव' का प्रयोग साधारणतया बराबरी दिखलाने अथवा

[१]—ईषदर्थोपमोत्प्रेक्षा वाक्यभूषणयोरिव। (गणरत्न महोदधि)

उपमा देने के लिए होता है और जिससे समता की जाती है (उपमान) उसके बाद प्रयुक्त होता है। जैसे—'वैनतेय इव विनतानन्दजननः' (कादम्बरी ५)—गरुड़ की भाँति विनता अथवा विनम्रों को आनन्द देने वाले। 'संसारः अर्णव इव'—सागर की भाँति संसार।

विशेष—'इव' से युक्त शब्दों को एक ही कारक में होना चाहिए। जैसे—'महीमिव जलभृतदेहां कन्यकां ददर्श' (कादम्बरी १२१)—जल से परिपूर्ण पृथिवी की भाँति अथवा जल द्वारा निर्मित शरीर धारिणी कन्या को देखा। 'दिवसेनेव मित्रानुवर्तिना विलासिजनेनाधिष्ठिता' (कादम्बरी ५१)—सूर्यद्वारा अनुगम्यमान दिवस की भाँति स्वमित्रों द्वारा अनुसृत तथा विलासी पुरुषों से घिरा हुआ।

(अ) 'इव' के अन्य अर्थ ये हैं:—(१) 'किंचित्,' 'कुछ-कुछ' जैसे—'कडार इवायम्' (गणरत्न महोदधि)—यह कुछ पिंगल-सा है। (२) 'मानो' 'जैसे'—जैसे—'मृगानुसारिणं पिनाकिनमिव पश्यामि' (शाकुन्तल० १)—मृग का अनुसरण करने वाले शंकर को मानो देखता हूँ। 'यो जहासेव वासुदेवं (कादम्बरी ५)—जो मानो वासुदेव का उपहास सा कर रहा था।

(ब)—'कदाचित्' 'वस्तुतः' के अर्थ में 'इव' का प्रयोग प्रश्नवाचक सर्वनामों और उनसे बने हुये अन्य शब्दों के साथ होता है। जैसे—'विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः' (उत्तर० ५)—बिना सीता देवी के श्री राम चन्द्र जी को वस्तुतः क्या दुःख नहीं है? 'परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्तु पुरुषः' (मुद्रा० ३)—वस्तुतः पराधीन व्यक्ति प्रसन्नता का स्वाद कैसे जाने?

२५८—[1]'उत' का प्रयोग साधारणतया 'अथवा' के अर्थ में, 'अन्य विकल्प' को व्यक्त करने के लिए, 'किम्' के अन्योन्याश्रयी के रूप में होता है। कभी-कभी 'उत' के स्थान पर 'आहो', 'उताहो', 'आहोस्वित्' का भी प्रयोग होता है जैसे—'न जाने किमिदं वल्कलानां सदृशमुताहो जटानां

(१)—उत प्रश्ने वितर्के स्यादुतात्यर्थ विकल्पयोः (विश्व कोश)

समुचितं किं तपसोनुरुपमाहोस्विद्धर्मोपदेशांगमिदम्' (कादम्बरी १५१) —मैं नहीं समझता कि यह तुम्हारे वल्कल वस्त्रों के अनुरूप है या तुम्हारी जटाओं के अनुकूल है, या तुम्हारी तपस्या के योग्य है अथवा तुम्हारे धर्मोपदेश का एक अंग है !

(अ) जब 'उत' दुहराया जाता है तब उसका अर्थ 'यातो—या' होता है। जैसे—'एकमेव वरं पुंसामुतराज्यमुताश्रमः' (गणरत्न महोदधि)—पुरुष के लिए एक ही श्रेष्ठ है—यातो राज्य या आश्रम (कुटी)।

२५६—जब केवल 'उत' का अकेला प्रयोग होता है तो उसके निम्नलिखित अर्थ होते हैं—(१) 'सन्देह', 'अनिश्चय', 'अनुमान'। जैसे—'स्थाणुरयमुत पुरुषः' (गणरत्न महोदधि)—यह ठूँठ है या पुरुष। (२) प्रश्न पूछने में इस का प्रयोग होता है। जैसे—'उत दण्डः पतिष्यति' (गणरत्न महोदधि)—क्या डंडा गिरेगा ?

विशेष—'अत्यर्थ' के अर्थ में इसका प्रयोग बहुत कम होता है।

२६०—'एव' का प्रयोग प्रायः किसी शब्द द्वारा व्यक्त भाव को पुष्ट करने और उस पर बल देने के लिए होता है। इस अर्थ में इसका अनुवाद निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग करके विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है:—ठीक, वही, ठीक, केवल, अकेला, प्रथम ही, उसी समय, कठिनता से। जैसे—'एवमेव'—ठीक इसी प्रकार। 'अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव' (भर्तृ० नीति० ४०)—धन के मद से रहित वही व्यक्ति। 'सा तथ्यमेवाभिहिता भवेन' (कुमार० ३।६३)—उसको शिव द्वारा केवल सत्य बात बता दी गई। 'नाम्नैव निर्भिन्नाराति हृदयः' (कादम्बरी ५)—जो केवल नाम-मात्र से शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण कर देता था। 'उपस्थितेयं नाम्नि कीर्तिते एव यत्' (रघु० १।८७)—नाम लेते ही यह (कामधेनु) उपस्थित हो गई। 'भवितव्यमेव तेन' (उत्तर० ४)—यह तो होगा ही।

२६१—[1]'एवं' का प्रयोग 'ऐसा', 'इसप्रकार' के अर्थ में यातो पूर्व-

(१)—एवं प्रकारोपमयोरंगीकारेऽवधारणे। (विश्व कोश)

कथित वस्तु या बाद की वस्तु या किसी काम को करने का आदेश देने के लिए होता है। जैसे—'एवमुक्तः कपिंजलः प्रत्यवादीत्' (कादम्बरी १५१)—ऐसा कहे जाने पर कपिंजल ने उत्तर दिया।

(अ. 'स्वीकार करना' (हाँ, सचमुच) अर्थ को व्यक्त करने में भी 'एवं' का प्रयोग होता है। जैसे—'एवमेतत्' (उत्तर० १)—हाँ, यह ऐसा ही है। 'एवं कुर्मः'—हाँ, हम लोग ऐसा ही करेंगे।

विशेष—'एवं' का प्रयोग 'समानता' अथवा 'दृढ़ निश्चय' के अर्थ में बहुत कम होता है।

२६२—[२]'ओम्' बहुधा प्रयोग में आनेवाला अव्यय पद नहीं है। साधारणतया इसका प्रयोग 'मंगलारम्भ' सूचित करने के लिए होता है। जैसे—'ओं अग्निमीडे पुरोहितम्'। अथवा इसका प्रयोग धार्मिक शास्त्रोक्त विधि या प्रार्थना की समाप्ति का बोध कराने के लिए 'एवमस्तु' के अर्थ में भी होता है। जैसे—'ब्रह्मभूःभुवः स्वरोम्'।

(अ) इसका प्रयोग संस्कृत साहित्य में 'हाँ' 'बहुत अच्छा' के अर्थ में स्वीकारात्मक भाव को व्यक्त करने के लिए होता है। जैसे—'ओमित्युच्यताममात्यः' (मालती० ६)—मंत्री से बता दो कि मैं ऐसा ही करूँगा (बहुत अच्छा)। 'द्वितीयश्चेदोमिति ब्रूमः'।

अभ्यास

१—भर्तृदारिके, आर्यायाः पंडितकौशिक्या इव स्वरसंयोगः श्रूयते। (मालविका० ५)

२—उत्खातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेगः। (शाकुन्तल० १)

---

(२)—ओमित्यनुमतौ प्रोक्तं प्रणवे चाप्युपक्रमे। (विश्वकोश)

३—प्रथममिति प्रेक्ष्य दुहितृजनस्यैकोऽपराधो भगवता मर्षयितव्यः ।
(शाकुन्तल० ४)

४—अतिभूमिं गतेन रणरणकेनार्यपुत्र शून्यमिवात्मानं पश्यामि ।
(उत्तर० १)

५—सखे करटक, किमित्ययमुदकार्थी स्वामी पानीयमपीत्वा सचकितो मन्दं मंदमवतिष्ठते । (हितो०)

६—सखे पुण्डरीक, सुविदितमेतन्मम । केवलमिदमेव पृच्छामि यदेतदारब्धं भवता किमिदं गुरुभिरुपदिष्टम् उत धर्मशास्त्रेषु पठितमुत मोक्षप्राप्तियुक्तिरियमाहोस्विदन्यो नियमप्रकारः ।
(कादम्बरी १५५)

७—सीता—एते चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम् । अहो जाने तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वर्ते इति । रामः—एवम् ।
(उत्तर० १)

८—पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
संतः परीक्ष्यान्यतरद् भजंते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥
(मालविका० १)

९—यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ।
इति चिंताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥ (हितो० १)

१०—प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः ।
प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्धितः ॥
तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योपि प्रियोऽभवत् ।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥ (उत्तर० ६)

११—ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव ।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥ (शाकुन्तल० ४)

१२—लिंपतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ॥ (मृच्छ० ५)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—किमिव दुष्करमकरुणानां सोऽयत्नेनैव पादपमधिरुह्यैकैकशः फलानीव तस्य वनस्पतेः शाखासंधिभ्यः कोटरांतरेभ्यः शुकशावकानग्रहीदपगतासूंश्चकृत्वा क्षितावपातयत्। (कादम्बरी ३३)

२—स मद्वचनानंतरमेव न वेद्मि किमसह्यवृत्तेर्मदनज्वरस्य वेगादुत सद्योविपाकस्यात्मनो दुष्कृतस्य गौरवादाहोस्विन्मद्वचस एव सामर्थ्यादाछिन्नमूलस्तरुरिव क्षितावपतत्। (कादम्बरी ३१२)

३—पात्रविशेषन्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य ॥ (मालविका० १)

४—सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥ (कुमार० १।४६)

५—का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः।
हुंकारेणेव धनुषः सहि विघ्नानपोहति ॥ (शाकुन्तल० ३)

६—गत एव न ते निर्वतते स सखा दीप इवानिलाहतः।
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम् ॥ (कुमार० ४।३०)

७—स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा।
विरहः किमिवानुतापयेद्वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम् ॥ (रघु० ८।८६)

८—प्रयान्तीव प्राणाः सुतनु हृदयं ध्वंसत इव।
ज्वलन्तीवांगानि प्रसरति समंतादिव तमः ॥ (मालती० ६)

९—किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषामुत संत्यजामि।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत्स दोलाचलचित्तवृतिः ॥ (रघु० १४।३४)

———

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए:—

१—दुष्ट व्यक्ति विश्वसनीय नहीं होता क्योंकि वह मधुरभाषी होता है।

२—वह यहाँ गत दो महीनों से ठहरा हुआ है, जिससे कि वह नगर के विद्वानों से परिचित हो जाय।

३—उसने जल्दी से मेरे पास आकर, मानो क्रुद्ध होकर मुझसे कहा कि तुमने मेरा बहुत बड़ा अपराध किया है।

४—इस संसार में मनुष्यों द्वारा अनुभूत यह बुद्धिमत्तापूर्ण उक्ति है कि 'विपत्तियाँ अकेली नहीं आतीं।'

५—जब शत्रु हम लोगों पर अपार शिलावृष्टि की भाँति टूट पड़े तो हम लोग किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये।

६—बहुत दिनों से भोजन न मिलने के कारण वह मानो मरणासन्न हो गया।

७—सारा संसार मुझको निर्बल समझता है क्योंकि मैं किसी को हानि नहीं पहुँचाता।

८—मेरे शब्दों को सुनते ही तुरन्त वह अविवेकी व्यक्ति केवल एक नौकर के साथ खतरा मोल लेने के लिए तैयार हो गया।

९—अब क्या करना चाहिए, यह मैं नहीं जानता। मैं इसी नगर में रहूँ अथवा इसे छोड़ दूँ।

१०—वह सोचता रहा कि मेरे सामने खड़ा हुआ व्यक्ति मेरा शत्रु है अथवा तपस्वी के रूप में कोई गुप्तचर है अथवा कोई शरणागत भिखारी है।

पाठ २३

कच्चित्, क्व-क्व, कामम्, किं (किमु, किमुत, किंपुनः), किल, केवलं तथा खलु

२६३—[1] 'कच्चित्' वक्ता द्वारा व्यक्त कुछ आशा का बोध कराता है और इसका अर्थ होता है "मैं आशा करता हूँ कि"। आकृति की दृष्टि से यह प्रश्न वाचक है और प्रश्न के अनुसार इसका अभीष्ट उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' होता है। जैसे—'शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्' (रघु० ५।८)—आपके लिए तीर्थजल कल्याणकारी तो हैं ? (मैं आशा करता हूँ कि वे हैं)। 'कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लव आश्रमपादपानाम्' (रघु० ५।६)—आश्रम के वृक्षों के लिए आँधी आदि का उपद्रव तो नहीं होता ? (नहीं, ऐसा नहीं होता)।

२६४—[2] 'क्व' का अर्थ होता है 'कहाँ' और जब यह दो या दो से अधिक निश्चित वाक्यों में दुहराया जाता है तब इसका अर्थ होता है 'बहुत बड़ा अन्तर', 'अधिक अयोग्यता'। जैसे—'क्व सूर्य प्रभवो वंशः क्व चाल्प विषया मतिः' (रघु० १।२)—कहाँ सूर्य से उत्पन्न वंश और कहाँ अल्पविषय वाली मेरी बुद्धि' (दोनों में बहुत अन्तर है, बुद्धि वंश का वर्णन करने में बिलकुल अयोग्य है)। 'तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः' (कुमार०५।४)—तपस्या और तुम्हारे शरीर में कितना बड़ा अन्तर है ? (कोमल शरीर तपस्या करने के योग्य नहीं है)।

२६५—[3] 'कामं' का अर्थ होता है 'इच्छानुसार', 'किसी के संतोष के

१—कच्चित् कामप्रवेदने। (अमर कोश)

२—द्वौ क्व शब्दौ महदन्तरं सूचयतः। (रघु० १।२ पर मल्लिनाथ कृत टीका)

३—कामं प्रकामेनुमतावसूयानुगमेपि च (विश्व कोश)

लिए'। परन्तु संस्कृत-साहित्य में जिन अर्थों में सामान्यतया इसका प्रयोग होता है वे हैं 'माना कि', 'स्वीकार करना', 'थोड़ी देर के लिए मानलिया कि'। प्रायः इसके बाद 'तु' या 'तथापि' अथवा इसी प्रकार के अन्य शब्दों का प्रयोग अवश्य होता है। जैसे—'कामं न तिष्ठति मदानन सम्मुखी सा भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः' (शाकुन्तल० १)— मानाकि वह हमारी ओर उन्मुख होकर नहीं 'खड़ी होती' परन्तु फिर भी उसकी दृष्टि अधिकांश रूप में किसी दूसरी ओर नहीं है।

२६६—[1] 'किं' का प्रयोग प्रायः 'क्यों', 'किस प्रयोजन से' के अर्थ में, प्रश्न करने के लिए होता है। जैसे—'तत्रैव किं न चपले प्रलयं गतासि' (मुद्रा० २)—हे चपले, तू उसी जगह मर क्यों नहीं गई? कभी-कभी इसका प्रयोग समास में 'कुत्सित' अर्थ में होता है। जैसे—'स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपम्' (किरात० १।५)—जो राजा को सत्सम्मति नहीं देता वह कुत्सित मित्र है।

२६७—जब 'किं' के बाद वा, उत अथवा आहो का प्रयोग होता है तब उसका अर्थ होता है 'कि या'। जैसे—'ज्ञायतां किमेतदारण्यकं ग्राम्यं वेति' (पंचतंत्र १।१)—इसका पता लगना चाहिए कि यह (पशु) जंगली है या पालतू है। 'किं' के बाद 'उत' के प्रयोग के लिए अनुच्छेद २५८ देखिए।

(अ) [2] उ, उत अथवा पुनः के साथ संयुक्त 'किं' का अर्थ होता है 'तो कहना ही क्या है', 'तो बात ही क्या है', 'शक्ति ही क्या है'। जैसे—'एकैक-मप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्' (हितो० १)—इनमें से एक एक अनर्थ के कारण हैं, फिर जहाँ चारों हों, तो कहना ही क्या है। 'चाणक्येनाहूतस्य निर्दोषस्यापिशंका जायते किमुत सदोषस्य' (मुद्रा० १)—चाणक्य द्वारा बुलाए

(१) किं पृच्छायां जुगुप्सने। (अमर कोश)

(२) किमु सम्भावनायां स्यात् विमर्शे चापि दृश्यते। (मेदिनी)
किमुतातिशये प्रश्ने विकल्पे च प्रयुज्यते। (विश्व कोश)

हुए निर्दोष व्यक्ति के हृदय में भी शंका उत्पन्न हो जाती है फिर सदोष के विषय में तो कहना ही क्या है। 'मयि नांतकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्य हिंस्राः' (रघु० २।६२)—मेरे ऊपर प्रहार करने में यमराज भी समर्थ नहीं है फिर अन्य हिंसक जीवों की शक्ति ही क्या है। 'स्वयं रोपितेषु तरुषु उत्पद्यते स्नेहः किं पुनरंगसंभवेष्वपत्येषु' (कादम्बरी २६१)—अपने लगाए हुए वृक्षों के प्रति तो स्नेह उत्पन्न ही हो जाता है, फिर अपने अंग से उत्पन्न सन्तान के विषय में तो कहना ही क्या है। 'भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षमं परिपन्थीभवितुं किं पुनर्युधिष्ठिरबलं' (वेणी० ३) आप जैसे व्यक्ति के सामने त्रैलोक्य तो विघ्न डाल ही नहीं सकता फिर युधिष्ठिर की सेना की क्या शक्ति।

विशेष—'किमु' का प्रयोग 'अनिश्चय' अथवा 'सन्देह' व्यक्त करने के लिए भी होता। जैसे—'किमु विषविसर्पः किमु मदः' (उत्तर०१)—(शरीर में) यह या तो विष का प्रसार है या अति हर्ष ?

२६८—'किल' का सामान्य अर्थ है 'सचमुच', 'यथार्थ में', 'निश्चय पूर्वक' और यह उसके बाद प्रयुक्त होता है जिस पर बल देना होता है। जैसे—'अर्हति किल कितव उपद्रवं' (मालविका० ४)—इस धूर्त के प्रति उपद्रव होना ही चाहिए। 'प्रत्यूहः सर्वसिद्धीनामुत्तापः प्रथमः किल' (हितो० ३)—पहिले से ही अधिक उत्तेजित हो जाना निश्चय ही (सचमुच) सब कार्यों की सिद्धि में बाधक है।

२६९—[1] 'किल' का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में भी होता है :—(१) 'ऐसा कहा जाता है', 'लोग ऐसा कहते हैं' के अर्थ में—जैसे—'बभूव योगी किल कार्त्तवीर्यः' (रघु० ६।३८)—ऐसा कहा जाता है कि 'कार्तवीर्य' नाम का एक योगी था। 'जघान कंसं किल वासुदेवः' (महाभाष्य)

(२) बनावटी कार्य को व्यक्त करने के लिए। जैसे—'प्रसह्य सिंहः किल

---

१ वार्ता संभाव्ययोः किल। (अमर कोश)

किल इत्यागमारुचिन्यक्करणसंभाव्यहेत्वलीकेषु। (गणरत्न महोदधि)

तां चकर्ष' (रघु० २।२७)—अनावटी सिंह ने उसको (नन्दिनीको) हठात् दबोच लिया। 'पयस्यगाधे किल जातसंभ्रमा' (किरात० ८।४८)।

(३) आशा व्यक्त करने के लिए। जैसे—'पार्थःकिल विजेष्यति कुरून्' (गणरत्न महोदधि)—आशा है कि अर्जुन कुरुओं को जीत लेंगे।

विशेष—'किं' के साथ 'किल', 'अरुचि' और 'न्यक्करण' (धिक्कार) अर्थ में वर्धमान द्वारा प्रयुक्त हुआ है (एवं किल केचित् वदन्ति और त्वं किल योत्स्यसे)। जैसे—न श्रद्दधे किं किल त्वं शूद्रान्नं भोक्ष्यसे' (सिद्धान्त कौमुदी)—मुझे विश्वास नहीं है कि तुम शूद्र का अन्न खाओगे।

हेतु के अर्थ में बहुत कम प्रयुक्त होता है।

२७०—'केवलं' क्रियाविशेषण है जिसका अर्थ होता है 'सिर्फ' परन्तु कभी-कभी इसका प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है। जैसे—'निषेदुषी स्थंडिल एव केवलम्' (कुमार० ५।१२)—केवल चबूतरेपर (बिना बिछौना के) बैठती थीं।

(अ) 'अपि' अथवा 'किन्तु' के साथ 'न केवलं' का प्रयोग 'न केवल—किन्तु' के अर्थ में प्रायः देखा जाता है। जैसे—'वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना' (रघु० ८।३१)—न केवल उसका धन ही किन्तु उसका गुणवान् होना भी दूसरों के हित के लिए था।

(ब) कभी-कभी 'अपि' के स्थान पर 'प्रत्युत' का प्रयोग होता है। जैसे—'अयं वत्सो न केवलं म्रियते प्रत्युत प्राञ्जलिना गरुडेन पर्युपास्यमानस्तिष्ठति' (नागानन्द ५)—यह पुत्र केवल जीवित ही नहीं है किन्तु हाथ जोड़े हुए गरुड़ जी द्वारा सेवित भी है।

२७१—[१]'खलु' का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है:—

---

(१) निषेधवाक्यालंकारजिज्ञासानुनये खलु। (अमर कोश)

खलु इति निषेधवाक्यालंकारजिज्ञासानुनयनियमनिश्चय हेतु विषादेषु।
(गणरत्न महोदधि)

(१)—'सचमुच', 'वस्तुतः', 'निश्चय ही'। किसी बात पर जोर देने के लिए अथवा पादपूर्त्यर्थ। जैसे—'मार्गे पदानि खलु ते विषमी भवन्ति' (शाकुन्तल० ४)—सचमुच तुम्हारे पैर मार्ग में इतस्ततः पड़ रहे हैं।

(२)—सानुनय प्रार्थना पूर्वक। जैसे—'न खलु न खलु बाणः सन्निपात्यो-ऽयमस्मिन्' (शाकुन्तल० १)—कृपया इसके ऊपर बाण न छोड़िये न छोड़िये। 'न खलु न खलु मुग्धे साहसं कार्यमेतत्'। (नागानन्द)

(३) विनम्रता पूर्वक प्रश्न करने में। जैसे—'न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः' (वेणी संहार ३)—यह बताने की कृपा करें कि क्या गुरुजी इसके ऊपर क्रुद्ध नहीं हुए?

(४) 'क्त्वा' प्रत्ययान्त शब्दों के साथ निषेध अर्थ में 'अलं' की भाँति। (अनुच्छेद ५७ देखिए) जैसे—'निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम्' (शिशुपाल वध २।७०)—जब पत्र द्वारा कोई बात निर्णीत हो तो मौखिक संदेश कहलाना व्यर्थ है।

(५) 'कारण' अर्थ में। जैसे—'न विदीर्ये कठिनाः खलु स्त्रियः'—(कुमार० ४।५)—मैं विदीर्ण नहीं हो रही हूँ क्योंकि स्त्रियाँ कठोर होती हैं।

वर्धमान ने इसको 'विषाद' के उदाहरण के रूप में दिया है।) इसी प्रकार 'विधिना जन एव वञ्चितस्त्वदधीनं खलु देहिनां सुखं' (कुमार० ४।१०)।

(६) कभी-कभी इसका प्रयोग वाक्यालंकार के रूप में केवल पादपूर्त्यर्थ होता है।

विशेष—'गणरत्नमहोदधि' में 'नियम' और 'निश्चय' अर्थतः समान हैं।

अभ्यास

१—विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य। (शाकुन्तल० ३)

२—न खलु विदितास्ते तत्र निवसंतश्चाणक्यहतकेन—अथ किम्। (मुद्रा० २)

३—भर्तृगतया चिंतयात्मानमपि नैषा विभावयति, किं पुनरागंतुकम्
(शाकुन्तल० ४)

४—द्वावपि किलागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च। किन्तु शिष्यागुणविशेषेण गणदास उन्नमितोपदेशः। (मालविका० ३)

५—अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः। (विक्रमो० १)

६—भो, न केवलं रूपे, शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका। (मालविका० २)

७—वत्से सीते स्वहस्तावचितैः पुष्पैः सवितारं देवमुपतिष्ठस्व। न च त्वामवनिपृष्ठचारिणीमस्मत्प्रभावाद्वनदेवता अपि द्रक्ष्यंति, किं पुनर्मर्त्याः। (उत्तर० ३)

८—गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरंपरा। सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतनं, किमुत समवायः। (कादम्बरी १०३)

९—भोः कामं धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य। तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थितस्य पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै निवेदयितुं नोत्सहे। (शाकुन्तल० ५)

१०—एवं कदलीदलेनानवरतं वीजयतः समुद्भून्मे मनसि चिंता। नास्ति खल्वसाध्यं मनोभुवः। क्वायं हरिण इव वनवासनिरतः स्वभावमुग्धो जनः क्व च विविधविलासरसराशिर्गंधर्वराजपुत्री महाश्वेता। (कादम्बरी १५७)

११—निवार्यतामालि किमप्ययं बटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः सःपापभाक्॥
(कुमार० ५।३८)

१२—किमपेक्ष्य फलं पयोधरान्ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः।
प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया॥
(किरात० २।२१)

१३—कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥
(श्रीमद्भगवद् गीता १८।७२)

१४—कामं नृपाः संतु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चंद्रमसैव रात्रिः ॥
(रघु० ६।२२)

१५—क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः ।
परिहासविजल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः ॥
(शाकुन्तल० २)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—वयस्य मया न साधु समर्थितमापत्प्रतीकारः किल प्रमदवनोद्यानप्रवेश इति (विक्रमो०२)

२—भगवन्तं जाबालिमवलोक्याहमचिंतयम्—तपस्विनां प्रतनुतपसामपि तेजः प्रकृत्या दुःसहं भवति किमुत सकलभुवनवंदितचरणानां मुनीनाम् । एवं-विधानामक्षयकारिणाम् पुण्यानि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां, किं पुनर्दर्शनानि । (कादम्बरी•४३)

३—आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ।
परातिसंधानमधीयते यैर्विद्येति ते संतु किलाप्तवाचः ॥ (शाकुन्तल० ५)

४—यदृच्छया त्वं सकृदप्यवन्ध्ययोः पथि स्थिता सुन्दरि यस्य नेत्रयोः ।
त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्सखीजनस्ते· किमु रूढसौहृदः ॥
(विक्रमो० १)

५—न केवलं दरीसंस्थं भास्वतां दर्शनेन वः ।
अंतर्गतमपास्तं मे रजसोऽपि परं तमः ॥ (कुमार० ६।६०)

६—न केवलं तद्गुरुरेकपार्थिवः ।
क्षितावभूदेकधनुर्धरोपि सः । (रघु० ३।३१)

७—सुखश्रवा मंगलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम् !
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भंत दिवौकसामपि ॥ (रघु०३।३१)

८—रघुमेव निवृत्तयौवनं तममन्यंत नरेश्वरं प्रजाः ।
स हि तस्य न केवलां श्रियं प्रतिपेदे सकलान्गुणानपि ॥ (रघु०८।५)

९—मेघालोके भवति सुखिनोप्यन्यथावृत्ति चेतः
कंठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे । (मेघदूत ०३)

१०—दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मंदायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ (मेघदूत ०३)

११—स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागंतरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥ (शाकुन्तल०५)

१२—क्व रुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम् ।
मृदुतीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथ दृश्यते त्वयि ॥ (मालविका० ३)

१३—कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि ।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थनां कुरुते ॥ (शाकुन्तल० २)



निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—ऐसी सूचना मिली है कि हम लोगों की असावधानी के कारण राजा हम लोगों से बहुत ही रुष्ट हो गये हैं ।

२—मैं किसी व्यक्ति को, चाहे वह एक ही बार का देखा हुआ हो, नहीं भूल सकता, फिर पुराने मित्र के विषय में क्या कहना ?

३—इस तपोवन में निर्जीव पदार्थ भी पवित्र-शक्ति से युक्त प्रतीत होते हैं, फिर जीव-धारियों के विषय में क्या कहना है !

४—जब मैं उसके पास गया तो उसने मेरी ही नहीं किन्तु स्वयं आचार्य की भी निन्दा की ।

५—केवल इतनी ही बात नहीं है कि लोग मुझसे घृणा नहीं करते बल्कि वे मुझको भोजन भी कराते हैं ।

६—मैं समझता हूँ कि यह बात राजा के कान तक नहीं पहुँची है कि मैंने ही कौमुदी-महोत्सव को तुरन्त बन्द करने की आज्ञा दी है ।

७—हम लोग जानते हैं कि इस संसार में जो लोग धनी उत्पन्न ही हैं वे भी पूर्ण सुखी नहीं हैं, फिर जो विभिन्न प्रकार के कष्ट-प्रद साधनों द्वारा अपनी जीविका उपार्जित करते हैं, उनकी तो बात ही क्या है ।

८—मुझे पूर्ण आशा है कि आप इस निःसहाय व्यक्ति के प्राणों को मुक्त कर देंगे । सज्जन लोग अपने शत्रु तक की हत्या करने में हिचकते हैं, फिर इस शिशु-जैसे निर्दोष प्राणी के विषय में क्या कहना है ।

९—मैं आशा करता हूँ कि आप लोगों के सभी धार्मिक कृत्य निर्विघ्न चल रहे हैं ।

१०—माना कि आप में सभी अच्छाइयाँ हैं, फिर भी आप को उपदेश देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ ।

११—वस्तुतः मुझे नहीं स्मरण है कि मैंने इसके साथ कब विवाह किया । किन्तु इसको देखकर मेरा मस्तिष्क बहुत प्रभावित हुआ है ।

१२—क्या आपके पवित्र अध्ययन और हृदय की इस अनस्थिरता में संगति (साम्य) है ?

१३—कहाँ तो स्वभाव से ही राजाओं के अगम्य कृत्य और कहाँ अल्प बुद्धि वाले हमारे जैसे व्यक्ति । (क्व-क्व)

पाठ २४

च (च-च), जातु, तत्, ततः, तथा, तावत् और तु ।

२७२—[1]'च' संयोजक अव्यय है और शब्दों अथवा वाक्यों को जोड़ता है। यह अँग्रेजी में 'And' अथवा लैटिन में 'et' का स्थानीय नहीं है। यह जिन-जिन शब्दों अथवा वाक्यों को जोड़ता है उनमें से प्रत्येक शब्द अथवा वाक्य के साथ अथवा अन्तिम शब्द या वाक्य के साथ प्रयुक्त होता है; परन्तु वाक्य के आदि में इसका प्रयोग कभी भी नहीं होता। जैसेः— 'रामश्च गोविन्दश्च' अथवा 'रामो गोविन्दश्च'—राम और गोविन्द । 'तण्डुलानानयति च तान्पचति चौदनं भुंक्ते च' अथवा 'तण्डुलानानयति तान् पचत्योदनं भुंक्ते च'—वह चावल ले आता है, उनको पकाता है और भात खाता है। परन्तु प्रत्येक सम्बद्ध शब्दों के साथ इसका प्रयोग करने की अपेक्षा अन्तिम शब्द के साथ ही उपयुक्त प्रतीत होता है। जैसे—

'कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः'

(रघु० ६।७६)

अ—'च' का प्रयोग प्रायः वाक्य में प्रथम शब्द के अतिरिक्त किसी भी भाग के साथ कर दिया जाता है। जैसे—'अथ गजस्तं प्रणम्य प्रस्थितः शशकाश्च तद्दिनादारभ्य सुखेन तिष्ठन्ति' (पंचतंत्र ३।१) इसके बाद हाथी उसको प्रणाम करके चला गया और उसी दिन से सभी खरगोश सुख से रहने लगे।

ब—जब 'न' के साथ 'च' का प्रयोग होता है तब उसका अर्थ 'न तो—

१—चान्वाचये समाहारेऽप्यन्योन्यार्थे समुच्चये ।
पक्षान्तरे तथा पादपूरणेऽप्यवधारणे ॥ (वि०)

न' होता है। जैसे—'न च न परिचितो न चाप्यगम्यः' (मालविका० १)—न तो वह अज्ञात ही है और न अगम्य ही।

स—कभी-कभी इसमें 'अलगाव' अथवा 'विरोध' का भाव रहता है और तब उसका अनुवाद 'किन्तु', 'तब भी', 'तथापि' आदि के द्वारा किया जाता है। जैसे—'शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः' (शाकुन्तल० १)—आश्रम शान्त है तब भी हमारी भुजाएँ फड़क रही हैं।

विशेष—इस अर्थ में 'च' प्रायः दुहराया जाता है (अगला परिच्छेद देखिए)।

द—कहीं-कहीं (बहुत कम स्थलों में) यह 'सचमुच', 'वस्तुतः' के अर्थ में प्रयुक्त होता है और उस समय 'एव' का भाव रहता है। जैसे—'अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयोः' (गणरत्न महोदधि)।

आपकी महिमा सचमुच वाणी और मन की पहुँच से परे है।

ई—कभी-कभी इसका प्रयोग 'शर्त' सूचित करने के लिए (चेद् अथवा यदि के समान) होता है। जैसे—'जीवितं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु (महाभाष्य) अर्थात् 'जीवितमिच्छसे चेत् इत्यादि'।

फ—अथवा इसका प्रयोग पादपूर्त्यर्थ या वाक्यालंकार के रूप में किया जा सकता है। जैसे—भीमः पार्थस्तथैव च' (गणरत्न महोदधि)।

विशेष—कोशकारों ने 'च' का अर्थ 'अन्वाचय, समाहार, इतरेतर समुच्चय' दिया है, जिनका साधारण अर्थ जोड़ना होता है। अन्वाचय का अर्थ होता है—एक आश्रित वक्तव्य को प्रधान वक्तव्य के साथ जोड़ना। जैसे—'भिक्षामट गां चानय'—भिक्षा के लिए जाओ और (साथ ही साथ) गाय लेते आओ। 'समाहार' का अर्थ होता है सामूहिक एकता। जैसे—'पाणी च पादौ च पाणिपादम्'। 'इतरेतर' पारस्परिक सम्बन्ध को कहते हैं। जैसे—'प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च प्लक्षन्यग्रधौ'। 'समुच्चय' का अर्थ होता है समूह। जैसे—'पचति च पठति च'।

२७३—'च' प्रायः दो वक्तव्यों के साथ दुहराया जाता है। (१) 'एक ओर... ...दूसरी ओर', 'यद्यपि......तथापि' अर्थ में। जैसे—'न सुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनंगविचेष्टितम्' (विक्रमो० २)—एक ओर तो उस पूर्णचन्द्रमुखी का हस्तगत होना सुलभ नहीं है और दूसरी ओर यह कामदेव की अनेक चेष्टाएँ हो रही हैं। (२) 'च' का प्रयोग, साथ साथ होने वाली अथवा तुरन्त होने वाली घटनाओं को सूचित करने के लिए 'ज्योंही.... त्योंहीं', 'जैसेही......तैसेही' के अर्थ में होता है। जैसे—'ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः' (रघु० १०।१६)—जैसेही वे लोग समुद्र के पास पहुँचे वैसे ही श्री विष्णु जग गये।

२७४—'जातु' का अर्थ है 'कदाचित्' 'किंचित्भी' 'सम्भवतः', 'शायद'। जैसे—'किं तेन जातु जातेन' (पंचतंत्र १।१)—कदाचित् उसके उत्पन्न होने से क्या लाभ। 'न जातु बाला लभतेस्म निर्वृतिं' (कुमार० ५।५५)—उस बाला ने किंचित् भी सुखोपभोग नहीं किया।

विशेष—पाणिनि का मत है कि 'जातु' का प्रयोग विधि लिङ् के साथ 'नहीं मानना' के अर्थ में होता है। जैसे—'जातु यत्त्वादृशो हरिं निन्देन्न-मर्षयामि' (सिद्धान्तकौमुदी)—मैं नहीं मानता कि आप जैसे व्यक्ति हरि की निन्दा करेंगे।

२७५—'तद्' सर्वनाम (इसके प्रयोग के लिए अनुच्छेद १३२ देखिए) और क्रियाविशेषण अव्यय भी है। क्रियाविशेषण के रूप में इसका अर्थ होता है—

(१) 'इस प्रयोजन से', 'इसलिए' 'अतः'। जैसे—'राजपुत्रा वयं तद्विग्रहं श्रोतुं नः कुतूहलमस्ति' (हितो० ३)—हम लोग राजकुमार हैं, अतः युद्ध के विषय में सुनने के लिए कुतूहल है। (२) 'यदि' के सम्बन्धी के रूप में 'तो', 'इस दशा में' के अर्थ में। जैसे—'तदेहि विमर्दक्षमां भूमि-मवतरावः' (उत्तर० ५)—तो आओ युद्ध के उपयुक्त किसी स्थान पर चलें।

'तथापि यदि महत्कुतूहलं तत्कथयामि' (कादम्बरी १३६)—तब भी यदि आपकी जिज्ञासा अधिक है तो मैं कहूँ।

२७६—'ततः' का प्रयोग प्रायः 'तद्' के पंचमी के रूप में होता है। जैसे—'तस्मात्, तस्याः, ततोऽन्यत्रापि दृश्यते' (सिद्धान्तकौमुदी) = तस्मादन्यत्रापि, परन्तु इसका प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में अधिक होता है। प्रधान रूप में इसका अर्थ है 'यहाँ से', 'उस स्थान से' और सामान्य अर्थ है 'तब', 'बाद में', 'इसके पश्चात्'; जैसे—'ततः कतिपयदिवसापगमे' (कादम्बरी ११०)—इसके बाद कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर। इसका निम्नलिखित अर्थ में भी प्रयोग होता है :—

(१) 'इस कारण से', 'इसलिए', 'फलतः' अर्थ में 'यतः' के सम्बन्धी के रूप में

(२) वाक्य में 'यदि' के सम्बन्धी के रूप में 'तब', 'उस दशा में' के अर्थ में। जैसे—'यदि गृहीतमिदं ततः किम्' (कादम्बरी १२०)—यदि यह पकड़ लिया गया तब क्या होगा?

(३) कभी-कभी इसका प्रयोग 'इसके अनन्तर', 'आगे', 'इसके अलावा' के अर्थ में होता है। जैसे—'ततः परतो निर्मानुषमरण्यम्' (कादम्बरी १२१)—इसके अनन्तर एक निर्जन वन है।

(अ) ततस्ततः (ततः + ततः)—का प्रयोग बातचीत (संलाप) में 'इसके आगे', 'आगे कहिए', 'आगे चलो' के अर्थों में होता है। जैसे—'राक्षसः—उभयोरप्यस्थाने प्रयत्नः। ततस्ततः' (मुद्रा० २)—राक्षस—दोनों का प्रयत्न ठीक नहीं हुआ। हाँ, आगे क्या हुआ?

२७७—तथा[1]—का अर्थ होता है 'इस प्रकार', 'ऐसा', 'उस प्रकार से' जैसे—'तथा मां वञ्चयित्वा' (शाकुन्तल० ५)—इस प्रकार मुझको धोखा

१—तथाऽभ्युपगमे पृष्टप्रतिवाक्ये समुच्चये।
सदृशे निश्चयेपि स्यात्। (मेदिनी)

देकर। 'सूतस्तथाकरोति' (विक्रमो० १)—सारथी वैसा ही करता है। 'तथा च श्रुतिः' (शांकरभाष्य)—और ऐसा ही वेद भी कहते हैं।

(अ)—इसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में भी होता है :—

(१) 'और भी', 'इस प्रकार भी', 'समान रीति से' जैसे—'अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा' (पंचतंत्र १।१३)—जो भविष्य का विधाता है और भी जो प्रत्युत्पन्नमति है।

(२) 'हाँ', 'यह ऐसा ही हो', 'इसी प्रकार होगा' के अर्थों में 'स्वीकृति' तथा 'प्रतिज्ञा' सूचक के रूप में प्रयुक्त होता है और इसके बाद में 'इति' का प्रयोग होता है। जैसे—'राजा—एवं तत्रभवतः सकाशं प्रापय'। प्रतीहारी—तथेति निष्क्रान्ता'। राजा—इनको महाराज के पास ले जाओ। प्रतीहारी—अच्छा, ऐसा ही होगा (आपकी आज्ञा का पालन होगा) (इसी प्रकार कहती हुई निकल गई)।

(३) इसका प्रयोग 'यथा' पूर्वक आग्रह सहित प्रार्थना अथवा शपथ के रूप में 'इतना ध्रुव जितना कि' के अर्थ में भी होता है। जैसे—'यथाहमन्यं न चिन्तये तथाऽयं पततां परासुः' जितना यह ध्रुव है कि मैं किसी भी अन्य व्यक्ति के विषय में नहीं सोचता हूँ उतना ही ध्रुव इसका मरण भी हो।

'यथा' के साथ प्रयुक्त 'तथा' के कुछ अर्थों के लिए पाठ २७ देखिए।

विशेष—'तथाहि' का प्रयोग 'क्योंकि', 'जैसा कि कहा गया है' 'उदाहरण के लिए' अर्थों में होता है और 'तथा च' का प्रयोग 'और इसी प्रकार' के अर्थ में होता है। इन दोनों ('तथाहि', 'तथा च') का प्रयोग प्रायः उद्धरण देने के लिए होता है।

२७८—'तावत्'—अव्यय के रूप में निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

(१) अपने शाब्दिक अर्थ 'पहिले', 'कुछ और करने के पहिले' के रूप

में। जैसे—'प्रिये इतस्तावदागम्यताम्' (शाकुन्तल०१)—प्रिये, पहिले इधर तो आओ। 'आह्लादयस्व तावच्चन्द्रकरश्चन्द्रकान्तमिव' (विक्रमो०५)—पहिले मुझ को आनन्दित करो जैसे चन्द्रकिरणें चन्द्रकान्त मणि को आह्लादित करती हैं।

(२) 'रही अमुक की बात', 'तब तक', 'इस बीच में' के रूप में। जैसे—'सखे, स्थिर प्रतिबन्धो भव। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिस्ये' (शाकुन्तल०२)—मित्र, विरोध करने में दृढ़ रहो, रही बात मेरे विषय में, सो मैं तो अपने स्वामी की इच्छा के अनुसार आचरण करूँगा।

(३) 'अभी', 'तुरन्त' के रूपमें। जैसे—'गच्छ तावत्'—अभी जाओ।

(४) किसी बात पर बल देने के लिए 'वस्तुतः', 'सचमुच' के अर्थ में। जैसे—'त्वमेव तावत् प्रथमो राजद्रोही' (मुद्रा०१)—वस्तुतः तू ही प्रथम राजद्रोही है।

(५) 'जहाँ तक अमुक का सम्बन्ध है' के अर्थ में। जैसे—'एवं कृते तव तावत् प्राणयात्रा क्लेशं विना भविष्यति' (पंचतंत्र १।८)—जहाँ तक तुम्हारा सम्बन्ध है, ऐसा करने पर तुम्हारी जीविका भी सरलता से चल जायगी। 'विग्रहस्तावदुपस्थितः' (हितो०३)—जहाँ तक युद्ध का सम्बन्ध है वह तो सामने उपस्थित ही है।

'यावत्' के साथ 'तावत्' के प्रयोग के अर्थ के लिए पाठ २७वाँ देखिए।

२७९—'तु'[1] का प्रयोग प्रायः विरोधसूचक के रूप में 'किन्तु' 'परन्तु' 'केवल एक', 'इसके विरुद्ध' के अर्थ में होता है। जैसे—'स सर्वेषां सुखानां प्रायोऽन्ते ययौ। एकं तु सुतमुखदर्शनसुखं न लेभे' (कादम्बरी ५९)। उसने प्रायः सभी सुखों का अनुभव किया, किन्तु केवल पुत्रमुखदर्शन का सुख नहीं प्राप्त किया। इस अर्थ में 'तु' सदा 'किम्' अथवा 'परम्' से संयुक्त रहता है।

१—तु पादपूरणे भेदे समुच्चयेऽवधारणे। (विश्व०)

नोट—'तु' का प्रयोग वाक्य के प्रारम्भ में कभी नहीं होता, जबकि 'परन्तु' और 'किन्तु' का प्रयोग सर्वदा वाक्य के प्रारम्भ में होता है ।

(अ) 'तु' का प्रयोग बिना किसी विरोध सूचक भाव के प्रायः 'और अब', 'अब' 'तो' के अर्थ में होता है । जैसे—'एकदा तु नातिपूरोदिते सहस्र मरीचिमालिनि प्रतीहारी समुपसृत्याब्रवीत्' (कादम्बरी ८)—तो एकबार जब सहस्रकिरण वाले भगवान सूर्य अधिक ऊपर नहीं चढ़े थे कि उसी समय द्वार-पाल ने पास में जाकर कहा। 'अवनिपतिस्तु तामनिमेषलोचनो ददर्श' (कादम्बरी ११)—राजा तो उसकी ओर एकटक देखने लगे। 'यत्तु आसन शब्दस्यासन्नादेश इति काशिकायामुक्तं तत्प्रामादिकम्' (सिद्धान्त कौमुदी)। 'निर्वापितं तु परिरभ्य वपुर्न नाम' (मालती०८)।

(ब) 'तु' का प्रयोग कभी-कभी 'अन्तर' 'भिन्नता' अथवा 'उत्तमता' सूचित करने के लिए होता है । जैसे—'मृष्टं पयो मृष्टतरं तु दुग्धम्' (गणरत्न महोदधि)—जल स्वच्छ होता है किन्तु दूध और भी स्वच्छ होता है । कभी-कभी किसी बात पर बल देने के लिए भी इसका प्रयोग होता है । जैसे—'भीमस्तु पाण्डवानां रौद्रः' (गणरत्न महोदधि)—पाण्डवों में भीम सबसे अधिक भयंकर हैं ।

अभ्यास

१—तद्यदि नातिखेदकरमिव ततः कथनेनात्मानमनुग्राह्यमिच्छामि । (कादम्बरी १३४)

२—अपसृते च तस्मिन् स विहंगराजो राजाभिमुखो भूत्वा राजानमुद्दिश्यार्यामिमां पपाठ । राजा तु तां श्रुत्वा संजातविस्मयोऽमात्यमब्रवीत् । (कादम्बरी १२)

३—आर्य ततः किं विलंब्यते । त्वरितं (तं) प्रवेशाय । (उत्तर० १)

४—अनेन क्रमेण तस्य सर्वेष्वरण्यवासिष्वाधिपत्यं बभूव । ततस्तेन स्वज्ञातिभिरावृतेनाधिकं प्रभुत्वं साधितम् । (हितो० ३)

५—आर्ये कृतपरिश्रमोस्मि चतुःषष्ट्यंगे ज्योतिःशास्त्रे । तत्प्रवर्त्यतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाकः । चंद्रोपरागं प्रति तु केनापि विप्रलब्धासि । (मुद्रा० १)

६—भगवन् कुसुमायुध त्वया चंद्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामतिसंधीयते कामिजनसार्थः । (शाकुन्तल० ३)

७—तात लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामंत्रयिष्ये । (शाकुन्तल० ४)

८—करटक उवाच । भद्र किं कृतं तत्रभवता । दमनक आह—मया तावन्नीतिबीजनिर्वापणं कृतं, परतो दैवविहितायत्तम् (पंचतंत्र १ । १५)

९—दृष्ट्वा मेघनादं दूरत एव कृतनमस्कारं तमप्राक्षीत् । तिष्ठतु तावत्पुरस्तात्पत्रलेखागमनवृत्तांतप्रश्नो, वैशंपायनवृत्तांतमेव तावत् पृच्छामि । (कादम्बरी ३०४)

१०—अयमेकपदे तया वियोगः सहसा चोपनतः सुदुःसहो मे ।
नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरम्यैः ॥
(विक्रमो० ४)

११—प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च ।
संमोहनं नाम च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं समधत्त बाणम् ॥
(कुमार० ३ । ३६)

१२—न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ (मनु० २ । ९४)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—अत्रभवत्याप्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु । कुत इदमुच्यत इति चेत् त्वं साधुभिरुपदिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति । स चेत्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, अभिनंद्य शुद्धांतमेनां प्रवेशयिष्यसि । विपर्यये तु पितुरस्याः समीपनयनमवस्थितमेव । (शाकुन्तल०५)

२—कथारंभकाले राजपुत्रा ऊचुः—आर्य मित्रलाभः श्रुतस्तावदस्माभिः इदानीं सुहृद्भेदं श्रोतुमिच्छामः । (हितो०२)

३—सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा ।
चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥ (हितो०१)

४—लब्धांतरा सावरणेपि गेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते ।
बिभर्षि चाकारमनिर्वृत्तानां मृणालिनी हैममिवोपरागम् ॥ (रघु० १६।७)

५—मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः ।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ॥ (शाकुन्तल०६)

६—देव परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु—
सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेपं क्रंदितुं च प्रवृत्ता ।
स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ॥ (शाकुन्तल०५)

७—धनंतावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते ।
लब्धनाशी यथा मृत्युस्तस्मादेतन्न चिंतयेत् ॥ (हितो० १)

८—सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ॥
(श्री मद्भगवद्गीता १५।१५)

९—न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः ।

क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ॥ (शाकुन्तल० १)

१०—आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखं
संजातश्च घनाघनो जलधरः शीर्णश्च वायोर्जवात् ।
निर्वृत्तश्च फलेग्रहिद्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना
त्वं चूडामणितां गतश्च जगतो यातश्च मृत्योर्वशम् ॥ (मालती० ६)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए--

१—जो लोग सच्चरित्रता पूर्वक आचरण करते हैं और परोपकार में लगे हैं, केवल वे ही ईश्वर के कृपापात्र होते हैं ।

२—मैं बम्बई से आठ रेशमी वस्त्र, पाँच रजत पात्र और कई अन्य उपयोगी वस्तुएँ ले आया हूँ ।

३—एक तो उन्हें मैंने कभी पहिले देखा नहीं है, दूसरे उनका वचन वज्र-प्रहार की तरह कठोर है; यह कौन पुरुष हो सकता है ?

४—जैसे ही ये वीर सैनिक अपने स्वामी का पक्ष छोड़ देंगे, वैसे ही मैं उसके राज्य में विद्रोह उत्पन्न कर दूँगा ।

५—तुमने युद्ध के लिए अच्छी तैयारी कर ली है, अतः तुमको किसी चीज की कमी न रहेगी ।

६—दुर्योधन—उस युवक वीर की वीरता पर बड़ा आश्चर्य है ! मैं समझता हूँ कि उसके अद्भुत वीरतापूर्ण कार्यों को देख कर सभी योद्धा कुछ समय के लिए आश्चर्य में पड़कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये होंगे । अच्छा, तब क्या हुआ ?

७—अपने सुमधुर वचनों द्वारा इस प्रकार मुझे अभिभूत करके अब क्या तुम मुझको त्याग कर लज्जित नहीं हो रहे हो ?

८—अपनी सहचरी के क्षणिक वियोग से तुम इतने दुःखी हो, फिर भी मुझ जैसे कामासक्त व्यक्ति को अपनी खोई हुई प्रिया के विषय में कुछ भी समाचार बतलाने में इतना आगापीछा करते हो ?

९—जैसे ही उसने अपने घर की देहली पर पैर रक्खा वैसे ही उसके ऊपर तीन व्यक्ति झपट पड़े और उसे बन्दी बना लिया।

१०—अब आपको धन, प्रतिष्ठा, सन्तान तथा और भी मनुष्यों द्वारा वांछित अन्य पदार्थ प्राप्त हो चुके हैं। अब और आप क्या चाहते हैं ? अथवा क्यों, यह ठीक ही कहा गया है कि मनुष्य की तृष्णा का विस्तार कहाँ तक है, इसका कोई अन्त नहीं है।

११—तुम यज्ञशर्मा के पास जाओ और उससे पूछो कि तुम इतने समय तक क्यों रुक गये; तब तक मैं दूसरे ब्राह्मणों को जाकर बुला ले आता हूँ।

१२—राम प्रातःकाल उठकर पढ़ना प्रारम्भ कर देता है और तुम तो बिछौने पर खर्राटे लेते रहते हो।

१३—जहाँ तक मित्रगुप्त के सबसे बड़े पुत्र का सम्बन्ध है, उसपर निश्चित विश्वास किया जा सकता है, किन्तु उसके अन्य पुत्रों के विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता।

१४—यदि यह हो जाय तो तुम स्वयं ही अपना कार्य निर्विघ्न करते चलोगे और हम लोग भी अपना-अपना कार्य करने में समर्थ होंगे।

पाठ २५

दिष्ट्या, न, नाम, नु, ननु तथा नूनम्

२८०—'दिष्ट्या' हर्ष सूचक या प्रसन्नता द्योतक अव्यय पद है और निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—'मुझे बड़ी प्रसन्नता है', 'हर्ष का विषय है', 'परमात्मा को धन्यवाद है'। जैसे—'दिष्ट्या प्रतिहतं दुर्जातम्' (मालती०४)—प्रसन्नता का विषय है कि विपत्ति टल गई। 'दिष्ट्या कोपव्याजेन देव्या परित्रातो भवान्' (मालविका०१)—परमात्मा को धन्यवाद है कि कोप के व्याज से महारानी द्वारा आप बचा लिए गए।

(अ)—'दिष्ट्या' का प्रयोग प्रायः 'वृध्' धातु के साथ होता है। 'दिष्ट्या-वृध्' का अर्थ 'बधाई' देना होता है। बधाई का पात्र 'वृध्' धातु का कर्त्ता होता है और जिस कारण से बधाई दी जाती है उसे तृतीया विभक्ति में रक्खा जाता है। जैसे—'दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते' (विक्रमो०१)—मैं इस विजय पर आपको बधाई देता हूँ। 'दिष्ट्या सुहृद् बुद्ध्या वर्धितोऽसि' (मालती०४)—मैं आपको बधाई देता हूँ कि आपके मित्र मूर्च्छा से निवृत्त होकर चेतनता में आ गये।

२८१—'न' (नहीं) का प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में होता है। जैसे—'न दृष्टोऽयं मया'—वह मुझसे नहीं देखा गया। अंग्रेजी में किसी Noun (संज्ञा) के पूर्व यदि 'No' का प्रयोग होता है तो किसी अनिश्चयात्मक रूप के साथ 'न' द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसे 'No man came to me'—'न कोऽपि नरो मामायातः' 'योगिनां न किमपि भयम्'—योगियों को कोई भी भय नहीं है। निषेध वाचक वाक्यों में अनिश्चय बोधक रूपों द्वारा समूह से बिलगाव मालूम पड़ता है। जैसे—'मरणान्न कोऽपि बिभेति'—मृत्यु से कोई भी नहीं डरता।

(अ) कई परिस्थितियों में 'न-न' का प्रयोग किसी बात पर बल देने के लिए होता है। जैसे—'नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्' (शाकुन्तल० ३)। यह अपनी मनोगतव्यथा को नहीं बतायेगी यह बात नहीं है (किन्तु बतायेगी ही)।

२८२—'नाम'[1] का प्रयोग प्रायः किसी के नाम की सूचना के लिए होता है।
जैसे—'रावणो नाम लंकेशः'—रावण नामक लंका का अधिपति। 'पुष्पपुरी नाम नगरी'—पुष्पपुरी नाम की नगरी।

विशेष—'नाम' शब्द के पूर्व में प्रयुक्त शब्द में वही विभक्ति होगी, जो उसके विशेष्य शब्द में होगी। जैसे—'मेघनादो नाम मित्रम्' (पंचतंत्र १।१५)—मेघनाद नाम का मित्र। 'तन्नन्दिनीं सुवृत्तां नामोपयम्य' (दशकुमार १।१) 'अस्ति पाटलिपुत्रे नाम नगरे बलभिन्नाम वणिक्' (दशकुमार २।७)। यह 'नाम' शब्द किसी शब्द के साथ समस्त नहीं होता। 'नामन्' शब्द के समान इसको नहीं ग्रहण करना चाहिए। 'नामन्' शब्द समस्त होता है। जैसे—'दशरथ नाम राजा' प्रयोग अशुद्ध है। 'दशरथो नाम राजा' अथवा 'दशरथ नामा' शुद्ध है (दशरथो नाम यस्य सः)।

२८३—'नाम' शब्द साधारणतया 'वस्तुतः', 'निश्चय ही' 'सच में' अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—'मया नाम जितम्' (विक्रमो० १)—मैं वस्तुतः जीत गया हूँ (विजयी हुआ हूँ)। 'विनीत वेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम' (शाकुन्तल० १)—निश्चय ही तपोवनों में बहुत ही विनम्र वेष में प्रवेश करना चाहिए।

विशेष—जब 'नाम' का प्रयोग 'कः' 'किम्' 'कथम्' के साथ होता है,

---

१ नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने। (अमरकोश)
नाम प्राकाश्य कुत्सयोः।
संभाव्याभ्युपगमयोरलीकेविस्मये क्रुधि। (हे०)

तब इसका अर्थ होता है 'सम्भावना', 'मैं जानना चाहता हूँ कि' (२५६ अनुच्छेद के 'इव' के साथ मिलाइये)। जैसे—'को नाम राज्ञां प्रियः' (पंचतंत्र १।३)—सम्भवतः राजाओं का कौन प्रिय है। 'को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे' (उत्तर० ७)—यह समझने की बात है कि जब भाग्य अपना पराक्रम दिखलाने पर सन्नद्ध हो तब भला उसके द्वार को कौन बन्द कर सकता है? 'अयि कथम् नामैतत्' (उत्तर० ६)—सचमुच में यह कैसी बात है?

२८४—'नाम' का प्रयोग निम्नलिखित रूपों में भी होता है—

(१) बहाना करने के लिए। जैसे—'कार्तान्तिको नाम भूत्वा' (दशकुमार० २।६) ज्योतिषी का बहाना करके।

(२) धातु के लोट् (आज्ञा) लकार के रूपों के साथ 'मान लिया', 'ऐसा सम्भव हो सकता है कि', 'यदि आप चाहें तो' के अर्थ में। जैसे—'यत्खल्वनालोचितावधि दुःखावसानमेव दुःखं तन्मरणभीरोर्भवतु नाम शोकावेगाय।' (कादम्बरी ३२८) ऐसा सम्भव हो सकता है कि शोक पर्यवसायी, अनिश्चित समय तक रहने वाली विपत्ति, मृत्यु से भयभीत व्यक्ति के हृदय में शोक की ही भावनाएँ उत्पन्न करे। 'एवमस्तु नाम'—यदि आप की इच्छा है तो ऐसा ही हो।

(३) 'आश्चर्य' व्यक्त करने के रूप में। जैसे—'अन्धो नाम पर्वतमारोहति' (गणरत्न महोदधि)—आश्चर्य है कि अन्धा भी पर्वत पर चढ़ता है।

(४) 'क्रोध' और कभी-कभी 'निन्दा' व्यक्त करने के रूप में। जैसे—'किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि' (उत्तर० ४) अरे, क्या शस्त्र चमक रहे हैं? 'ममापि नाम दशाननस्य परैः परिभवः' (गणरत्न महोदधि)—अरे, क्या मुझ रावण का भी शत्रुओं से पराभव हो?

२८५—'नु'[1] का प्रयोग प्रायः 'सन्देह' अथवा 'अनिश्चय' व्यक्त करने के लिए प्रश्न करने के अर्थ में होता है। जैसे—'स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु' (शाकुन्तल०६)—यह स्वप्न था या माया या मतिभ्रम था ?

(अ) 'नु' का प्रयोग प्रायः प्रश्नवाचक सर्वनाम और उससे निष्पन्न शब्दों के साथ समस्त होकर 'सम्भावना' 'वस्तुतस्तु' के अर्थ को व्यक्त करने के लिए होता है। (अनुच्छेद २५७ के 'इव' से मिलाइए) जैसे—'किं न्वेतत्स्यात्किमन्यदितोऽथवा' (मालती० १)—यह सम्भवतः क्या हो सकता है ? अथवा इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? 'कथं नु गुणवद्विन्देयं कलत्रम्' (दशकुमार० २।६)—वस्तुतः मैं गुणवती स्त्री किस प्रकार पाऊँ ?

२८६—[2] 'नु' का सम्बन्ध सामान्यतया प्रायः 'न' के साथ है और अब 'ननु' एक पृथक् शब्द की भाँति व्यवहृत होता है। इसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है :—

(१) 'क्या यह सचमुच ऐसा नहीं है कि', 'निश्चय ही यह ऐसा ही है।' जैसे—'यदा मेधाविनी शिष्योपदेशं मलिनयति तदाचार्यस्य दोषो ननु' (मालविका० १)—जब मन्दबुद्धि शिष्या (दिये गये) उपदेश को विनष्ट कर देती है तो क्या वस्तुतः गुरु का दोष नहीं है ?

(२) इसका प्रयोग अँग्रेजी में why की भाँति संशोधक शब्द के रूप में होता है। जैसे—'ननु' पदे परिवृत्य भण' (मृच्छ० ६) मैं कहता हूँ कि शब्दों को बदल कर इसे कहो। 'ननु भवानग्रतो मे वर्तते' (शाकुन्तल० २)—क्यों, आप स्वयं मेरे सामने हैं ? (क्या यह सत्य नहीं है कि आप मेरे सामने हैं ?)। 'ननु विचिनोतुं भवांस्तदस्मिन्नुद्याने' (विक्रमो० २)—(भला तुम खड़े क्यों हो ?) तुम्हें उसको इस उद्यान में खोजना चाहिए।

(३) 'मैं प्रार्थना करता हूँ', 'कृपया' इत्यादि अर्थों में इसका प्रयोग होता

(१) नु पृच्छायां विकल्पे च। (अमर०)

(२) प्रश्नावधारणानुज्ञाननयामन्त्रणे ननु। (अमर०)

है। जैसे—'ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकं' (कुमार० ४।३२)—कृपया मुझे मेरे पति के पास पहुँचा दीजिए।

(४) किसी व्यक्ति को सम्बोधित करने के लिए 'ओहो' 'अहा' आदि के अर्थ में। जैसे—'राजवाहनोऽभाषत, ननु मानव अत्र भवानेकाकी किमिति निवसति' (दशकुमार०१।२)—राजवाहन ने कहा—हे मनुष्य, तुम यहाँ अकेले क्यों निवास करते हो? 'ननु मूर्खाः पठितमेव युष्माभिस्तत्काण्डे' (उत्तर०४)—अरे मूर्खो, तुम लोग उस काण्ड में इसको पढ़ चुके हो।

(५) प्रश्न करने के रूप में। जैसे—'ननु समाप्तकृत्यो गौतमाः' (उत्तर०४) क्या गौतम ने अपना काम पूरा कर लिया?

(अ) तर्कपूर्ण शास्त्रार्थों में आपत्ति उपस्थित करने अथवा विरोधी विचारों का प्रतिपादन करने के लिए 'ननु' का प्रयोग होता है और 'अत्र' के साथ अथवा उसके बिना 'उच्यते' उस कथन के साथ जोड़ दिया जाता है, जिसमें आपत्ति का उत्तर निहित रहता है अथवा सिद्धान्त का खण्डन रहता है। जैसे—'ननु एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठ इति वचनेन विषमो विभागो दर्शित इति। अत्रोच्यते। सत्यमयं विषमो विभागः सशास्त्रस्तथापि लोकविद्विष्टत्वान्नानुष्ठेयः' (मिताक्षरा)—अब यह आपत्ति की जा सकती है कि (पैतृक सम्पत्ति में) ज्येष्ठ पुत्र को दो भाग मिलना चाहिए, इस कथन से पैतृक सम्पत्ति का विभाजन विषम है (कि बड़ा लड़का दो भाग ग्रहण करे), इसका उत्तर यह है कि यह बात सत्य है कि यह विषम विभाजन शास्त्र सम्मत है फिर भी लोकव्यवहार के विरुद्ध होने के कारण यह मान्य नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार—'ननु अचेतनान्येव वृश्चिकादिशरीराण्यचेतनानां च गोमयादीनां कार्याणीति उच्यते' (शांकरभाष्य ४२८)। इस अर्थ में 'ननु' के प्रयोग के अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं—'ननु चेतनमपि कार्यकारणं स्वामिभृत्यन्यायेन भोक्तुरुपकरिष्यति। न।' (शांकरभाष्य ४२३) 'ननु जगदप्यप्रकृतमसं शब्दितं च। सत्यमेतत्' (शांकरभाष्य ३८३)।

विशेष—किसी विषय पर आपत्ति उपस्थित करने में 'कथं तर्हि' (तो यह कैसे) और 'इति चेत्' (यदि ऐसा कहा जाय कि) का प्रयोग होता है। जैसे—'कथं तर्हि 'क्वासि हे सुभ्रु'—प्रमाद एवायमितिभागुरिः' (सिद्धान्त कौमुदी)—अब कोई भी यह प्रश्न कर सकता है कि यह 'सुभ्रु' कैसे होता है ? हमारा कथन है कि भागुरि के मत से यह अशुद्ध है।

२८७—'नूनं' का मुख्य अर्थ है 'निश्चय ही', 'सचमुच', 'अवश्य ही'। जैसे—'स नूनं तव पाशांश्छेत्स्यति' (हितो० १)—वह निश्चय ही तुम्हारे बन्धन को काट देगा। 'अद्यापि नूनं हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलति' (शाकुन्तल० ३)—निश्चय ही हर की क्रोधाग्नि तुम में अब भी जल रही है।

अभ्यास

१—ननु समानेऽपि ज्ञानवृद्धभावे वयोवृद्धत्वात् गणदासः पुरस्कारमर्हति। (मालविका० २)

२—मया नाम मुग्धचातकेनेव शुष्कघनगर्जितेऽन्तरिक्षे जलपानमिष्टम्। (मालविका० २)

३—अनियंत्रणानुयोगो नाम तपस्विजनः। (शाकुन्तल० ६)

४—अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला। (शाकुन्तल० ४)

५—दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान्वर्धते! (शाकुन्तल० ७)

६—निशम्यैतन्नियतिबलान्नु तत्पाटवान्नु स्वबुद्धिमांद्यान्नु स्वनियममनादृत्य तस्यामसौ प्रासजत्। (दशकु० २।२)

७—एतद्वचनं श्रुत्वा बद्धकलकले महाजने पितुरंगे प्रदीप्तशिरसमा-

शीविषं न्यक्षिपम्। अहं च भीतो नामावप्लुत्य तातस्य विषं क्षणादस्तंभयम्। (दशाकु० २ । ४)

८—इमं ललनाजनं सृजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता। नोचेदब्जभूरेवंविधनिर्माणनिपुणो यदि स्यात् तर्हि समानलावण्यामन्यां तरुणीं किं न करोति। (दशाकु० १ । ५)

९—यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः।
अयि विद्युत्प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि॥

(मृच्छ० ५)

१०—प्रश्चोतनं नु हरिचदनपल्लवानां
निष्पीडितेंदुकरकंदलजो नु सेकः।
आतप्तजीवनमनःपरितर्पणो मे
संजीवनौषधिरसो नु हृदि प्रसिक्तः॥ (उत्तर० ३)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुंतलं नामापूर्वनाटकं प्रयोगेणाधिक्रियतामिति। (शाकुन्तल० १)

२—अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि। न कदाचित्सत्पुरुषाः शोकपात्रात्मानो भवन्ति। ननु प्रवादेऽपि निष्कंपा गिरयः। (शाकुन्तल० ६)

३—सखि लवंगिके दिष्ट्या वर्द्धसे। ननु भणामि प्रतिबुद्ध एव ते प्रियवयस्यः प्रतिपन्नचेतनो महाभागो मकरन्द इति। (मालती० ४)

४—आर्य, ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य। तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम्। (उत्तर० १)

५—स शक्तिकुमारो नाम श्रेष्ठिपुत्रोऽष्टादशवर्षदेशीयश्चिंतामापेदे। नास्त्यदाराणामननुगुणदाराणां वा सुखं नाम। तत्कथं नु गुणवद्विन्देयं

कलत्रमिति । अथ परप्रत्ययाहृतेषु दारेषु याद्दच्छिकीं संपत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तान्तिको नाम भूत्वा भुवं बभ्राम । (दश कुमार० २ । ६)

६—विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम् ।
उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रमः ॥
(कुमार० ५ । ३२)

७—नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदंडः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय ।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः संतु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बंधुकृत्यं प्रजानाम् ॥ (शाकुन्तल० ५)

८—वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ।
ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ॥ (रघु० ८ । ३८)

९—अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चंद्रो नु कांतिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥ (विक्रमो० १)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—मणिपुर नामक नगर में धनमित्र नाम का एक धनी व्यापारी रहता था ।

२—परमात्मा की जो महत्ता बड़े-बड़े महर्षियों की कल्पना को भी व्यग्र कर देती है, उसे सम्भवतः कौन मरणधर्मा जान सकता है ?

३—अन्य गुणवान् राजकुमारों के होते हुए भी अशुभ लक्षणों से युक्त वह राजपद पर अभिषिक्त कर दिया गया ।

४—ऐसा कौन व्यक्ति है जो अपने आप अपने ऊपर आपत्ति ढाने का यत्न करेगा ?

५—अपने अभिलषित मनोरथ की सिद्धि के लिए मैं आप सब लोगों को बधाई देता हूँ ।

६—परमात्मा को धन्यवाद है कि इतने दिनों के वियोग के पश्चात् तुम पुनः मुझको दिखलाई पड़े ।

७—मित्र, कृपया मेरे लिए इतना तो कीजिए । मैं स्त्री का वेष धारण करता हूँ और आप की पुत्री बन जाता हूँ, तब तुम मुझे राजा के पास ले चलो और उनसे इस प्रकार कहो ।

८—क्या यह सचमुच व्याघ्र है अथवा व्याघ्रचर्म ओढ़े हुए कोई अन्य जानवर है ।

९—गोविन्द—राम, तुम गुरु जी की सेवा में कब जाओगे ?
राम—क्यों, आज गुरुजी की सेवा करने की तो तुम्हारी बारी है ।

१०—तुम कहते हो कि धन व्यय करने में गोविन्द बहुत ही अपव्ययी है । क्यों, तुम स्वयं भी तो इस बात में और दूसरी बहुत सी बातों में उसके समकक्ष हो ।

११—तब यदि वह मित्र जानना चाहे कि ब्रूटस (गोपाल) सीजर (विष्णु) के विरुद्ध क्यों उठ खड़ा हुआ तो मेरा यह उत्तर है कि मैं सीजर (विष्णु) को कम प्यार नहीं करता था, किन्तु मैं रोम (स्वर्णपुर) को अधिक प्यार करता था ।

पाठ २६

पुनः, प्रायः (प्रायेण), बत, बलवत् , मुहुः, यत् और यत्सत्यम्

२८८—'पुनः' का सामान्यतया 'फिर' अर्थ होता है । जैसे—'पुनर्विवक्षुः' (कुमार० ५।८३)—फिर से बोलने की इच्छा वाला। परन्तु प्रायः इसका अर्थ होता है 'किन्तु', 'इसके विपरीत', 'जबकि'। जैसे—'तदेव पंचवटी वनं स एव आर्यपुत्रः । मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति' (उत्तर० ३)—यह वही पंचवटी वन है, आर्यपुत्र भी वही हैं, किन्तु मुझ अभागिनी के लिए यह सब कुछ मेरी आँखों के सामने होते हुए भी मानो कुछ नहीं है ।

(अ) 'पुनः' की अपेक्षा 'पुनः पुनः' बलवत्तर होता है और उसका अर्थ होता है 'बार-बार' 'भूयः भूयः'। जैसे—'स्वपाठान् पुनः पुनर्वाचय'—अपने पाठों को बार-बार पढ़ो। 'किं' के साथ 'पुनः' का प्रयोग पहिले ही दिया जा चुका है। (अनुच्छेद २६७)

२८९—'प्रायः' अथवा 'प्रायेण' का अर्थ होता है 'साधारणतया' और इसका प्रयोग सामान्य नियम बनाने के लिए होता है। जैसे—'प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः' (मुद्रा० ४)—स्वामी की सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर साधारणतया सेवक उसको छोड़ देते हैं। 'प्रायेणैते रमणविरहेष्वंगनानां विनोदाः' (मेघदूत ८७)—प्रेमियों से वियुक्त हो जाने पर प्रायः ये ही स्त्रियों के मनोरंजन होते हैं ।

२९०—'बत'[1] का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है :—

(१) करुणा अथवा शोक व्यक्त करने के लिए 'हा !' 'अफसोस' के

१—खेदानुकम्पासन्तोषविस्मयामंत्रणे बत। (अमर०)

अर्थ में। जैसे 'अहो बत महत्पापं कर्त्तुं व्यवसिता वयं' (श्रीमद्भगवद्गीता १।४५)—हा ! शोक का विषय है कि हम लोग महान् पाप करने में प्रवृत्त हो रहे हैं।

(२) 'हर्ष' अथवा 'आश्चर्य' के अर्थ में इसका प्रयोग 'अहो' के साथ होता है। जैसे—'अहो, बतासि स्पृहणीयवीर्यः' (कुमार० ३।२०) – अहो ! तुम्हारा शौर्य कितना स्पृहणीय है ? 'अहो बत महच्चित्रम्' (कादम्बरी १५४) 'हता बत वराकी सा' (गणरत्न महोदधि)। सम्बोधन के रूप में भी इसका प्रयोग होता है। जैसे—'बत वितरत तोयं तोयवाहा नितान्तम्' (गणरत्न महोदधि)—हे जलद, खूब जल प्रदान करो। 'त्यजत मानमलं बत विग्रहैः' (रघुवंश ६।४७)।

२६१—'बलवत्' का अर्थ है 'शक्तिशाली' और इसका प्रयोग क्रिया-विशेषण अव्यय के रूप में 'बड़े जोरों से', 'अधिकता से', 'बहुत अधिक' अर्थों में होता है। जैसे—'शिव इन्द्रियक्षोभं बलवन्निजग्राह' (कुमार० ३।६६)—शिव ने प्रबलता से अपनी इन्द्रियों के क्षोभ को दबाया। 'बलवद-स्वस्थशरीरा शकुन्तला' (शाकुन्तल० ३)—शकुन्तला का स्वास्थ्य बहुत अधिक खराब है।

२६२—वक्तव्य के अन्त में 'इति' अथवा 'इति' के बिना 'यत्' 'प्रत्यक्ष कथन' की ओर संकेत करता है। जैसे—'सत्योऽयं जनप्रवादो यत्सम्पत्संपद-मनुबध्नातीति' (कादम्बरी ७३)—यह लोकोक्ति सत्य है कि सम्पत्ति सम्पत्ति को अपनी ओर खींचती है। 'तस्य कदाचिच्चिन्ता समुत्पन्ना, यदर्थोत्पत्त्युपायाश्चिन्तनीयाः कर्त्तव्याश्च' (पंचतन्त्र १)—उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि सम्पत्ति प्राप्त करने के यत्नों को सोचना चाहिए और करना चाहिए।

(अ) 'यत्' का प्रयोग 'कि' के अर्थ में होता है। जैसे—'किं त्वं मत्तोऽसि यदेवमसम्बद्धं प्रलपसि'—क्या तुम पागल हो कि इस प्रकार असम्बद्ध बात कहते हो ? इसका प्रयोग 'क्योंकि' के अर्थ में भी होता है। जैसे—'किं शेषस्य

भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्' (मुद्रा० २)—क्या शेषनाग को अपने शरीर पर बोझे का कष्ट नहीं ज्ञात होता ? क्योंकि वे इसको फेंक नहीं देते (अपने सिर से)। प्रियमाचरितं लते त्वया मे यदियं पुनर्मया दृष्टा' (विक्रमो० १)—हे लते, तुमने हमारा बड़ा हित किया क्योंकि इसको मैंने फिर एक बार देख लिया।

विशेष—'क्योंकि—इसलिए', 'क्योंकि—अतः', 'इसलिए', 'अतः' आदि के भावों से युक्त वाक्यों का अनुवाद करने में 'तत्' अथवा 'ततः' का प्रयोग किया जा सकता है, अथवा सम्पूर्ण वाक्य का अनुवाद 'यत्' या 'यतः' के द्वारा किया जा सकता है। जैसे—'अहं भ्रातरं गृहान्निष्कासयामि यत् (यतः) सोऽतीव दुर्वृत्तः'—मैं अपने भाई को घर से निकाल दूँगा क्योंकि वह बहुत ही दुराचारी है।

२६४—'यतः' का प्रयोग जब 'यस्मात्' के स्थान पर होता है तब उसका अर्थ होता है 'जिस स्थान से'। जैसे—'यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं' (रघु० ५।४)—जहाँ से (जिस गुरु से) तुमने सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। जब 'कारण' व्यक्त रहता है तब 'यतः' का अर्थ होता है 'क्योंकि' जैसे—'किमेवमुच्यते महदन्तरं यतः कर्पूरद्वीपः स्वर्ग एव' (हितोप० ३)—तुम इस प्रकार क्यों कहते हो ? बहुत अधिक अन्तर है क्योंकि कर्पूरद्वीप स्वतः स्वर्ग है।

२६५—'यत्सत्यं' एक शब्द समझा जाता है। इसका प्रयोग 'निश्चयही' 'अवश्यही', 'सच पूछिये तो', 'सचमुच' आदि अर्थों में होता है। जैसे—'अमंगलाशंशयास्य वो वचनस्य यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम्' (वेणी० १)—अमंगल की आशंका सूचक तुम्हारे इस वचन से सचमुच मेरा हृदय काँपता है।

अभ्यास

१—यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति तत्किमात्मनः प्रभावेण ननु नदीवेगस्य। (शाकुन्तल० २)

२—इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते। (शाकुन्तल० ५)

३—निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। (शाकुन्तल० ६)

४—सर्वथा न कंचिन्न खलीकरोति जीविततृष्णा यदीदृगवस्थामपि मामायासयति जलाभिलाषः। (कादम्बरी २५)

५—पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेनं भगवंतं पुण्याः कथाः शृण्वंतः समुपासते। (कादम्बरी ३४)

६—कस्मान्मया निष्प्रयोजनमिदमश्वमुखद्वयमनुसृतमिति विचार्यमाणे यत्सत्यमात्मैव मे परिहासमुपजनयति। (कादम्बरी १२०)

७—अहं तं समादिशम्। सैषा सज्जनाचरिता सरणिर्यदणीयसि कारणेऽनणीयानादरः संदृश्यते। (दशकु० २। ७)

८—अलमन्यथा गृहीत्वा न खलु मनस्विनि मया प्रयुक्तमिदम्।
प्रायः समानविद्याः परस्परयशःपुरोभागाः॥ (मालविका० १)

९—अयि कठोर यशः किल ते प्रियं किमयशो ननु घोरमतः परम्।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः कथय नाथ कथं बत मन्यसे॥
(उत्तर० ३)

१०—यत्सत्यं काव्यविशेषवेदिन्यां परिषदि प्रयुंजानस्य ममापि चेतसि सुमहान् परितोषः प्रादुर्भवति। यतः—
चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः।
न शालेः स्तंबकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते॥ (मुद्रा० १)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—अथ तेषां मध्यात् काकः प्रोवाच। स्वामिन्वयं तावत्सर्वत्र पर्यटिताः परं

न किंचित्सत्त्वमासादितं दृष्टं वा । तदद्य मां भक्षयित्वा प्राणान्धारयतु स्वामी येन देवस्याप्यायना भवति मम पुनः स्वर्गप्राप्तिरिति ।

(पंचतंत्र १ । ११)

२—इह (पंचमे प्रकोष्ठे) गंधर्वसुरगणैरिव विविधालंकारशोभितैर्गणिकाजनैर्बंधुलैश्च यत्सत्यं स्वर्गायत इदं गेहम् । (मृच्छकटिक० ४)

३—आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ।। (शाकुन्तल० १)

४—ज्वलति चलितेंधनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात्प्रतिपद्यते जंतुः ।। (शाकुन्तल० ६)

५—अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः ।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् ।। (रघु० १ । ८७)

६—अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एव वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ।। (रघु० ८ । ४७)

७—खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके
वांछन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ।। (भर्तृ० २ । ९०)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—मैं इस विषय पर बोलना उचित नहीं समझता क्योंकि इसके विशेष विवरण से मैं परिचित नहीं हूँ ।

२—क्योंकि कल रात में तुम लोगों ने मेरे घर में सेंध लगाई, इसलिए मैं तुम लोगों को बन्दी बनाता हूँ और पूँछताछ के लिए न्यायालय में ले चलता हूँ ।

३—लड़कियों से सम्बन्धित विषयों में प्रायः गृहस्थ लोग अपनी स्त्रियों की आँखों से देखते हैं।

४—अहा! इस स्थान का अद्वितीय वैभव! वास्तविकता तो यह है कि सौन्दर्य में यह सुरेश के नन्दन कानन से भी स्पर्धा करता है।

५—जहाँ से तुम आ रहे हो, क्या वह स्थान अपार अन्न से भरा हुआ है?

६—मैं अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करने जा रहा हूँ, परन्तु तुम कहाँ जा रहे हो?

७—इस प्रकार लकड़हारे ने अपने जीवन और धन की रक्षा की, जब कि राक्षस पूरे बारह वर्ष कार्य में व्यस्त रहा।

८—सुवदना मुझसे कहती है कि उसकी स्वामिनी चन्द्रलेखा उस दिन से बहुत अस्वस्थ है, जब से वह दुर्गा के मंदिर में नाची थी। अब मैं उसके स्वास्थ्य के विषय में पूछने अवश्य जाऊँगा।

९—मालिकों द्वारा नौकरों से लिये जाने वाले कार्यों के अनुसार उनका नौकरों के प्रति प्रदर्शित सम्मान सदा बदलता रहता है, यह साधारण नियम है।

१०—क्या तुम सोचते हो कि सूर्य कभी भी नहीं थकता, इसलिए कि वह अपने दिव्य मार्ग (आकाश) में कभी भी स्थिर नहीं रहता।

११—मित्र, शीघ्र ही मेरे बन्धन काट डालो और मुझे बचाओ, क्योंकि यह सत्य ही कहा गया है कि विपत्ति सौहार्द्र की कसौटी है।

पाठ २७

यथा-तथा और यावत्-तावत्

२९६—'यथा' का शब्दार्थ होता है (१) 'जैसे', 'जैसा कि कहा गया है।' जैसे—'यथाज्ञापयतिदेवः' (शाकुन्तल० १)—जैसी आप की आज्ञा अर्थात् आपकी आज्ञा का पालन होगा।

(२) 'अर्थात्', 'जैसा कि नीचे कहा गया है', 'इस प्रकार'। जैसे—'तद्यथानुश्रूयते' (पंचतंत्र १)—वह जैसा कि नीचे कहा गया है अर्थात् यह निम्नलिखित प्रकार से है।

(३) 'समान' 'जैसे' इव की तरह साम्य सूचित करने के लिए। जैसे—'आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः' (उत्तर० ४)—यह दशरथ के घर में लक्ष्मी की भाँति थी।

(४) इसका प्रयोग प्रत्यक्ष कथन के प्रारम्भ में भी होता है। जैसे—'विदितं खलु ते यथा स्मरः क्षणमप्युत्सहते न मां बिना' (कुमार० ४।३६)—यह तो आप को ज्ञात ही है कि कामदेव मेरे बिना क्षण भर भी चैन नहीं पाता। इस अर्थ में प्रायः 'यथा' के बाद अन्त में 'इति' का प्रयोग कर दिया जाता है। जैसे—'संदिष्टास्मि तातेन यथा वत्स मित्रावसो जीमूतवाहनाद्योग्यतरो वरो न लभ्यते। तस्मादस्मै मलयवती प्रतिपाद्यतामिति' (नागानन्द०२)—श्रीमान् पिता जी ने मुझे यह संदेश दिया है कि—हे पुत्र मित्रावसु, जीमूतवाहन से योग्यतर वर नहीं मिल सकता, इसलिए मलयवती को उसके हाथों सौंप दो।

(५) 'जैसे' 'उदाहरणार्थ' के अर्थ में। जैसे—'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्नि यथा महानसे' (तर्कसंग्रह)—जहाँ-जहाँ धुआँ रहता है वहाँ वहाँ अग्नि रहती है, जैसे रसोई घर।

(६) 'जिससे कि', 'ताकि', 'जिसमें'—इस अर्थ में प्रायः यथा के स्थान पर 'येन' का प्रयोग होता है। जैसे—'त्वं दर्शय तं चौरसिंहं यथा व्यापादयामि' (पंचतंत्र १।८)—तुम मुझको उस चोर सिंह को दिखलाओ जिससे कि मैं उसे मार डालूँ। 'स्वामिन्मम प्राणैः प्राणयात्रा विधीयतां येन ममोभयलोकप्राप्तिर्भवति' (पंचतंत्र १।१२)—हे स्वामी, मेरे शरीर से आप अपने प्राण की रक्षा करें जिससे कि मेरे दोनों लोक सफल हों।

२९७—'यथा—तथा' का प्रयोग जब साथ-साथ होता है तब निम्नलिखित अर्थ होते हैं :—

(१) 'जैसा-वैसा'—इस अर्थ में कभी-कभी 'तथा' के स्थान पर 'तद्वत्' का प्रयोग होता है। जैसे—'यथा वृक्षस्तथा फलम्' जैसा पेड़ वैसा फल। 'यथा बीजांकुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिरक्षितः।
फलप्रदो भवेत्काले तद्वल्लोकः सुरक्षितः ॥' (पंचतंत्र १।८)

—जैसे यत्नपूर्वक रक्षित सूक्ष्म बीज का अंकुर समय पर फल देने वाला होता है उसी प्रकार अच्छी तरह से रक्षित प्रजा।

(२) 'इस प्रकार·········कि'—इस अर्थ में 'इस प्रकार' के स्थान पर 'तथा' और 'कि' के स्थान पर 'यथा' का प्रयोग होता है। जैसे—'यदि वामनुमतं तथा वर्तेथां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि' (शाकुन्तल० ३)—यदि आप इसका समर्थन करें तो ऐसा आचरण करूँ कि मैं राजर्षि की कृपा का पात्र बन जाऊँ। 'अहं स्वामिनं विज्ञाप्य तथा करिष्ये यथा स वधं करिष्यति' (पंचतंत्र १।११)—मैं स्वामी जी से कह कर ऐसी व्यवस्था करूँगा कि वह उसका वध कर डालेगा।

विशेष—ईदृश, तादृश, तावत्, एतावत्, इयत् आदि का प्रयोग 'तथा' के स्थान पर होता है और सम्बन्ध वाचक सर्वनाम के रूपों (प्रायः येन) का प्रयोग द्वितीय उपवाक्य में 'यथा' के स्थान पर होता है। जैसे—'ईदृशी अहं मन्दभागिनी यस्या न केवलमार्यपुत्रविरहः पुत्रविरहोऽपि' (उत्तर० ३)

—मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि जिसका पतिदेव से ही वियोग नहीं है किन्तु पुत्रों से भी है। 'मम चैतावान् लोभविरहो येन स्वहस्तगत सुवर्णकंकणमपि यस्मै कस्मैचिद्दातुमिच्छामि' (हितोप० १) मैं इतना निर्लोभ हो गया हूँ कि अपने हाथ में स्थित स्वर्ण कंकण को भी जिस किसी भी व्यक्ति को दान कर देना चाहता हूँ।

(३) 'क्योंकि—इसलिए'—जैसे—'यथायं चलितमलयाचलशिला-संचयः प्रचण्डो नभस्वांस्तथा तर्कयामि आसन्नीभूतः पक्षिराजः' (नागानन्द० ४)—क्योंकि मलय पर्वत के पत्थरों को हिला देने वाली यह वायु अति प्रचण्ड है, इसलिए मैं समझता हूँ कि गरुड़ आ गये।

(४) 'यदि····तो' के अर्थ में 'यदि-तर्हि' की भाँति प्रयुक्त होता है। अथवा अत्यन्त दृढ़ शपथ के रूप में 'यथा-तथा' का प्रयोग होता है। जैसे—

वाङ्मनः कर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।
तथा विश्वम्भरे देवि मामन्तर्धातुमर्हसि ॥
(रघु० १५।८१)

—यदि मैं अपने पतिदेव के प्रति मन, वचन और कर्म से शुद्ध हूँ तो हे विश्व का पालन करने वाली पृथ्वी देवी, मुझे आप अपने भीतर आत्म-सात् कर लीजिए।

(५) 'उतना·····जितना', 'जितना···उतना'—ऐसे प्रयोगों में 'उतना' के स्थान पर 'तथा' और 'जितना' के स्थान पर 'यथा' आता है और अर्थ में समानता व्यक्त करता है। जैसे—'न तथा बाधते शीतं यथा बाधति बाधते' (सुभाषित रत्नाकर)—शीत मुझे उतना नहीं कष्टकर है जितना 'बाधति' शब्द। ऐसे प्रयोगों में 'एव' का प्रयोग 'यथा-तथा' के साथ अथवा इनमें से किसी एक के साथ कर दिया जाता है, जिससे कि समानता और भी दृढ़ हो जाय। जैसे—'वधू चतुष्केऽपि यथैव शान्ता प्रिया तनूजास्य तथैव सीता' (उत्तर० ४)—चारों बधुओं में सीता उनको उसी प्रकार प्रिय थीं जिस प्रकार उनकी पुत्री शान्ता थी।

(अ) 'यथा' और 'तथा' की पुनरुक्ति (यथा-यथा, तथा-तथा) 'जितना ही-जितना, उतना ही-उतना' के अर्थ में होती है। जैसे—'यथा यथा यौवनमतिचक्राम तथा-तथा अनपत्यताजन्मा महानवर्द्धतास्य सन्तापः' (कादम्बरी ५६)—जैसे-जैसे उसकी युवा अवस्था व्यतीत होती गई वैसे-वैसे उसकी संतानहीनताजनित चिन्ता बढ़ती ही गई। इसी प्रकार 'यथा यथा मृतपुत्रं न चिन्तयिष्यसि तथा तथा तव दुःखं शममेष्यति अथवा यथा यथा अल्पीयसि पुत्रचिंता तथा-तथा अल्पीयो दुःखम्।'—अपने मृत पुत्र के विषय में जितना ही आप न सोचेंगे उतना ही आप का दुःख शान्त होता जायेगा। अथवा जैसे-जैसे पुत्र की चिन्ता कम होगी वैसे-वैसे दुःख भी कम होता जायेगा। 'यथा यथा भोज यशो विवर्धते ... तथा-तथा मे हृदयं विदूयते।'—जैसे जैसे भोज का यश बढ़ता है ..... वैसे-वैसे मेरा हृदय दुःखी होता है।

२९८—'यावत्'[1] शब्द 'काल' और 'मार्ग' की दूरी व्यक्त करने के लिए 'जहाँ तक'—'तब तक' के अर्थ में अकेला प्रयुक्त होता है। इस रूप में इसके योग में द्वितीया विभक्ति आती है। जैसे—'स्तन्यत्यागं यावत्पुत्रयोरवेक्षस्व' (उत्तर०७)—जब तक स्तन का दूध नहीं छोड़ देते तब तक इन पुत्रों की रक्षा करो। 'कियन्तमवधिं यावदस्मच्चरितं चित्रकारेणालिखितम्' (उत्तर० १)—कहाँ तक हम लोगों का जीवन-चरित्र चित्रकार द्वारा चित्रित किया जा चुका है?

(अ) 'यावत्' का प्रयोग कभी-कभी तत्काल किये जाने वाले कार्य के सूचनार्थ 'अभी', 'तो' के अर्थ में होता है। जैसे—'तद् यावद् गृहिणीमाहूय संगीतकमनुतिष्ठामि' (शाकुन्तल० १)—तो मैं गृहिणी को बुलाकर संगीत का आयोजन करता हूँ। 'यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि ताम्' (शाकुन्तल ०३) तब तक इसकी छाया का आश्रय लेकर उसकी प्रतीक्षा करता हूँ।

२९९—'यावत्' और 'तावत्' परस्पर सम्बन्धी के रूप में निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होते हैं:—

(१) यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे। (अमर०)

(१) 'उतना ही...जितना'—ऐसे प्रयोगों में 'तावत्' का अर्थ 'उतना ही' और 'यावत्' का 'जितना ही' होता है। दोनों का प्रयोग संज्ञा अथवा विशेषण के समान होता है। जैसे—'पुरे तावन्तमेवास्य तनोति रविरातपम्। दीर्घिका-कमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते।' (कुमार० २।३३)—उसके नगर में सूर्य उतनी ही धूप करते हैं जितने से उसकी बावड़ी के कमल खिल उठें।

(२) जब 'यावत्—तावत्' दोनों मिलकर सम्पूर्णता को द्योतित करें तब उनका प्रयोग 'सम्पूर्ण' अर्थ में होता है। जैसे—'यावद्दत्तं तावद् भुक्तम्' (गण-रत्न महोदधि)—जितना मुझे दिया गया था उतना सब मैंने खा लिया। 'याव-न्मानुष्यके शक्यमुपपादयितुं तावत्सर्वमुपपाद्यताम्' (कादम्बरी ६२)—जितना मनुष्य के लिए करना शक्य है उतना सब कीजिए।

(३) 'जब तक.....तब तक'—इसमें 'यावत्' 'जब तक' के स्थान पर और 'तावत्' 'तब तक' के स्थान पर प्रयुक्त होता है। जैसे—'यावद्वित्तोपार्जन-शक्तस्तावन्निज परिवारो रक्तः' (मोहमुद्गर)—जब तक मनुष्य अर्थोपार्जन में समर्थ रहता है तब तक उसका परिवार उसमें अनुरक्त रहता है।

विशेष—(अ) जिन वाक्यों में 'जब तक ...तब तक' का प्रयोग होता है, वहाँ 'यावत्' और 'तावत्' दोनों का प्रयोग करना पड़ता है। 'जब तक' से युक्त उपवाक्य में (क्रिया विशेषण उपवाक्य में) यावत् का प्रयोग होगा और 'तावत्' का प्रयोग मुख्य उपवाक्य में होगा। जैसे—'यावद्राज्यभारो मयि विन्यस्तस्तावदहं प्रजा अनुरक्ताः करिष्यामि'—जब तक राज्य का भार मेरे ऊपर है तब तक मैं प्रजा को अपने में अनुरक्त रक्खूँगा। 'सूत, तावद्रथं स्थापय यावदहमवतरामि'—हे सारथी, तब तक तुम रथ को खड़ा रक्खो जब तक मैं उतर न जाऊँ।

(ब) 'पहिले ही' 'पूर्व ही' से युक्त वाक्यों के अनुवाद में 'यावत्-न' का प्रयोग किया जाता है। जैसे—यावदेते सरसो नोत्पतन्ति तावदेतेभ्यः प्रवृत्तिर-वगमयितव्या' (विक्रमो०४)—सरोवर से उनके उड़ने के पहिले ही मुझे उनसे समाचार ले लेना चाहिए।

३००—कभी-कभी 'यावत्-तावत्' केवल 'जब-तब' का ही अर्थ व्यक्त करते हैं। जैसे—'यावदसौ पान्थ उत्थायोर्ध्वं निरीक्षते तावत्तेनावलोकितो हंसः काण्डेन हतो व्यापादितश्च। (हितोप० ३)—जब यात्री उठकर ऊपर देखने लगा तब उसके द्वारा देखा गया हंस बाण से आहत मार डाला गया।

कभी-कभी इनका प्रयोग 'जैसे ही ··· वैसे ही' के अर्थ में होता है। 'यावत्' का प्रयोग 'जैसे ही' और 'तावत्' का प्रयोग 'वैसे ही' के स्थान पर होता है। जैसे—एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छामि ·· तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे' (हितोप० १)—जैसे ही एक दुःख से पार पाया नहीं कि वैसे ही दूसरा दुःख मेरे ऊपर आ पड़ा।

अभ्यास

१—भगवन्संकल्पयोने प्रतिबंधत्स्वपि विषयेष्वभिनिवेश्य तथा प्रहरसि यथा जनोयं कालांतरक्षमो न भवति। (मालविका० ३)

२—अकथितोपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्येति। (शाकुन्तल० १)

३—आश्रमवासिनो यावदवेद्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वजिनः। (शाकुन्तल० १)

४—बहुवल्लभा राजानः श्रूयंते। तद्यथा नौ प्रियसखी बंधुजन-शोचनीया न भवति तथा निर्वाहय। (शाकुन्तल० ३)

५—संजीवक आह भो मित्र कथं ज्ञेयो मयासौ दुष्टबुद्धिरिति। इयन्तं कालं यावदुत्तरोत्तरस्नेहेन प्रसादेन चाहं दृष्टः। (पंचतंत्र १।१५)

६—यद्येवं नकुलस्य बिलद्वारात्सर्पकोटरं यावन्मत्स्यमांसशकलानि

प्रक्षिप यथा नकुलस्तन्मार्गेण गत्वा तं दुष्टसर्पं विनाशयति।
(पंचतंत्र १।२०)

७—अयि मातर्देवयजनसंभवे देवि सीते, ईदृशस्ते निर्माणभागः परिणतो येन लज्जया स्वच्छंदेनाक्रंदितुमपि न शक्यते।
(उत्तर० ४)

८—ततो यावदसौ पांथस्तद्वचसि प्रतीतो लोभात्सरसि स्नातुं प्रविशति तावन्महापंके निमग्नः पलायितुमक्षमः। (हितो० १)

९—यथा यथेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। (कादम्बरी १०५)

१०—यावत्संबंधिनो न परापतन्ति तावद्वत्सया मालत्या नगरदेवतागृहं गंतव्यमित्यादिशंति भगवतीनिदेशवर्तिनोऽमात्यदाराः।
(मालती० ६)

११—यथेतोमुखागतैरपि महान् कलकलः श्रुतोऽस्माभिस्तथा तर्कयामि। अन्यदपि पारक्यं बलमुपगतमिति। (मालती० ८)

१२—क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥
(कुमार० ३।७२)

१३—यथैव श्लाघ्यते गंगा पदेन परमेष्ठिनः।
प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छ्रिरसा त्वया॥ (कुमार० ६। ७०)

१४—अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः।
क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥ (हितो० १)

१५—यावतः कुरुते जंतुः संबंधान्मनसः प्रियान्।
तावंतोपि विलिख्यन्ते हृदये शोकशंकवः॥ (हितो० ४)

१६—स तावदभिषेकांते स्नातकेभ्यो ददौ वसु।
यावतैषां समाप्येरन् यज्ञाः पर्याप्तदक्षिणाः॥ (रघु० १०। १७)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—यावत्तत्रभवान्वयस्यः कार्यासनादुत्तिष्ठति तावदेतस्मिन्विरलजनसंपाते विमानोत्संगपरिसरे स्थास्यामि । (विक्रमो० २)

२—तदेवंप्राये ऽतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतंत्रेऽस्मिन् महामोहान्धकारकारिणि च यौवने कुमार तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्नाक्षिप्यसे विषयैर्न कृष्यसे रागेण नापह्रियसे सुखेन । (कादम्बरी १०६)

३—यथा यथा चलितजलयंत्रविगलिताभिरंबुधाराभिराहन्यते सा तथा तथा वैद्युतानलसहोदर इव स्फुरति मदनपावकः । (कादम्बरी २५१)

४—चंद्रापीडः प्रातरेव किंवदन्तीं शुश्राव । यथा किल दशपुरीं यावत् परागतः स्कंधावार इति । (कादम्बरी २६२)

५—वत्स यावदयं संसारस्तावत्सिद्धैवेयं लोकयात्रा । यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । (वेणी० ३)

६—अपि दृष्टवानसि मम प्रियां वने कथयामि ते तदुपलक्षणं शृणु ।
पृथुलोचना सहचरी यथैव ते सुभगं तथैव खलु सापि वीक्षते ॥
(विक्रमो० ४)

७—वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।
भवति च पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बोद्ग्राहे मणिर्न मृदां चयः ॥ (उत्तर० २)

८—यथाकालकृतोद्योगात्कृषिः फलवती भवेत् ।
तद्वन्नीतिरियं देव चिरात्फलति न क्षणात् ॥ (हितो० ३)

९—क्रोडीकरोति प्रथमं यथा जातमनित्यता ।
धात्रीव जननी पश्चात्तथा शोकस्य कः क्रमः ॥ (नागानन्द० ४)

१०—यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ॥ (हितो० ४)

११—उभयोर्न तथा लोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये ।
नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया यथा ॥ (रघु० १५ । ६८)

१२—यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ (भर्तृ० ३ । ८८)

१३—यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ।
(श्रीमद्भगवद्गीता ११ । २९)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—अपने मित्रों के परामर्श से उसके विनाश के लिए मेरे द्वारा सैकड़ों उपाय सोचे गये । वे निम्नलिखित हैं :—

२—मैं समझता हूँ कि आप पहिले ही से सुने होंगे कि स्वर्ग में एक परियों का वर्ग रहता है जिसे अप्सरा कहते हैं ।

३—वह वीरता में तो भीम की भाँति है, परन्तु हृदय की नीचता में वह निष्ठुर दैत्यों से भी बढ़कर है ।

४—रावण ने अपनी उग्र तपस्या से शंकर को इतना प्रसन्न कर लिया कि ईश ने उसे कई वरदान दिये ।

५—यह राजा अपने राज्य का ऐसा सुप्रबन्ध करता है कि उसकी अगणित प्रजा का एक व्यक्ति भी उसके प्रति अश्रद्धालु नहीं है ।

६—जब कि सभी युद्ध की तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं तब शत्रु के साथ सन्धि करना उचित नहीं समझता।

७—जितना ही मैं इस संसार के विषय में सोचता हूँ उतना ही मेरा मन इससे विरक्त होता जाता है।

८—जैसे ही उसने अपने घर में प्रवेश किया, वैसे ही उसकी स्त्री यह कहती हुई उसकी ओर झपट कर आई कि 'मेरे बच्चे को एक साँप ने काट लिया है।'

९—मैं आशा करता हूँ कि आप यहाँ तब तक रुकेंगे जब तक गोविन्द तीर्थ-यात्रा से लौट नहीं आता।

१०—जब तक मेरी साँस है तब तक मैं प्राण-पण से अपने प्रियदेश की रक्षा करूँगा, जिससे कि अपमान से दूषित नाम छोड़कर न मरूँ।

११—उसने डाक्टर की दवा २१ दिन तक ली, परन्तु स्वास्थ्य में कुछ भी परिवर्तन न देख कर, उसने उसका लेना बन्द कर दिया।

१२—अध्यापक ने लड़के को एक डण्डे से इतना अधिक मारा कि वह चेतना शून्य होकर जमीन पर गिर पड़ा।

१३—दार्शनिक ईश्वर के विषय में जितना ही अधिक सोचते हैं उतना ही कम उसको जान पाते हैं।

१४—वह अपने चरित्र की शुद्धता के कारण उतना ही प्रसिद्ध है जितना कि अपने गुणों के कारण और इन्द्रियों के नियन्त्रण में उतना ही तत्पर है जितना कि दूसरों के प्रति उपकार करने में।

१५—क्या तुम नहीं जानते कि सभी मांसाहारी पशुओं को पंजे दिये गये हैं? (यावत्-तावत् का प्रयोग कीजिए)

१६—जितना ही तुम गम्भीर अध्ययन करोगे उतना ही तुम्हारे लिए असफलता का कम अवसर रहेगा और सुधार की सम्भावना उतनी ही अधिक होती जायेगी।

———

पाठ २८

वरं-न, वा, स्थाने, हंत, हा और हि

३०१—'न' सहित वरं (वरं—न) के बाद में प्रायः 'च', 'तु' अथवा 'पुनः' का प्रयोग 'उससे अच्छा है—न कि', 'उससे अच्छा है—परन्तु नहीं' के अर्थ में होता है। 'वरम्' का प्रयोग अधिक मनोवांछित वस्तु युक्त उपवाक्य में होता है; अधिक मनोवांछित वस्तु कर्त्ता कारक के रूप में प्रयुक्त होती है। 'न च', 'न तु', अथवा 'न पुनः' का प्रयोग कम वांछित वस्तु युक्त उपवाक्य में होता है (इस वस्तु को भी कर्त्ता कारक ही में रक्खा जाता है)। जैसे—'वरं कन्या जाता न चाविद्वांस्तनयः' (पंचतंत्र १) एक मूर्ख पुत्र की अपेक्षा कन्या उत्पन्न होना अच्छा है (अच्छा है कि पुत्री पैदा हो न कि मूर्ख पुत्र)। 'वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः' हितोप० १)—प्राण का परित्याग कर देना अच्छा, परन्तु नीचों की संगति अच्छी नहीं।

(अ) कभी-कभी 'न' का प्रयोग बिना 'च', 'तु' अथवा 'पुनः' के भी होता है। जैसे—'याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा' (मेघदूत ५)—गुणवान् व्यक्ति से की गई याचना असफल होने पर भी श्रेष्ठ है, परन्तु नीच से की गई याचना सफल होने पर भी अच्छी नहीं है। 'वरं भ्रान्तं वनचरैः सह न मूर्खजनसम्पर्कः' (भर्तृ० २ । १४)—वनचरों के साथ घूमना अच्छा है, परन्तु मूर्खों के साथ रहना अच्छा नहीं है।

३०२—'वा'[1] 'या' का पर्यायवाचक है, परन्तु संस्कृत में इसका प्रयोग भिन्न है। यह 'च' की समकक्षता का भी माना जाता है। (देखिए अनुच्छेद

(१) वा समुच्चय एवार्थ उपमान विकल्पयोः। (हेम०)

२७२)। जैसे—'रामोगोविन्दो वा' अथवा 'रामो वा गोविन्दो वा' (राम या गोविन्द)।

(आ) 'वा' निम्नलिखित अर्थों में भी प्रयुक्त होता है—

(१) 'तथा' 'भी'—जैसे—'पत्रलेखे कथय महाश्वेतायाः कादम्बर्याश्च कुशलं, कुशली वा सकलः परिजन इति' (कादम्बरी २३०)—पत्रलेखा, महाश्वेता और कादम्बरी का कुशल समाचार बताओ और यह भी बताओ कि सम्पूर्ण परिजन सकुशल है न।

(२) 'इव' के अर्थ के रूप में 'समान' और 'जैसे' के स्थान पर 'वा' का प्रयोग होता है। जैसे—'जातां मन्ये तुहिनमथितां पद्मिनीं वान्य रूपाम्' (मेघदूत ८६)—मैं उसको तुषार से मलिन कमलिनी की भाँति विकृत रूपवाली समझता हूँ।

(३) 'विकल्प के रूप में' प्रायः व्याकरण के नियमों में। जैसे—दोषो णौ। वा चित्त विरागे' (पाणिनि० ६।४।९०-९१)—णिजन्त (प्रेरणार्थक) में 'दुष' के 'उ' को दीर्घ कर दिया जाता है, परन्तु मस्तिष्क के विकार के अर्थ में 'उ' का दीर्घ विकल्प से होता है।

(ब) 'वा' का प्रयोग 'इव' या 'नाम' की भाँति 'सम्भवतः' के अर्थ में प्रश्न वाचक सर्वनाम से सिद्ध-शब्दों के साथ होता है। जैसे—'मृतः को वा न जायते' (पंचतंत्र १।१)—सम्भवतः कौन मृत व्यक्ति पुनः उत्पन्न नहीं होता। 'कस्य वान्यस्य वचसि मया स्थातव्यम्' (कादम्बरी १५६)—अन्य किस व्यक्ति के कथनानुसार मैं आचरण करूँ ? 'कथं वा गम्यते' (उत्तर० ३)—वास्तव में तुम कैसे जा सकते हो ?

३०३—'वा' जब दुहराया जाता है ('वा—वा') तब इसका अर्थ होता है 'या तो······या'। जैसे—'उभे एव क्षमे वोढुमुभयोर्वीजमाहितं। सा वा शम्भोस्तदीया वा मूर्तिर्जलमयी मम' (कुमार० २।६०)—इन दोनों के द्वारा स्थापित वीर्य को दो ही धारण करने में समर्थ हैं, शिव जी के वीर्य को पार्वती और मेरे वीर्य को उनकी जलमयी मूर्ति। 'तत्र कविपरिश्रमानुरोधाद्वा

उत्तानकथावस्तुगौरवाद्वा नवनाटकदर्शनकुतूहलाद्वा भवद्भिरवधानं दीयमानं प्रार्थये। (वेणी० १)—तो इस विषय में मेरी प्रार्थना है कि आप लोग कवि के परिश्रम के अनुरोध से या उत्तम कथावस्तु के गौरव से या एक नवीन नाटक के अभिनय के दर्शन के कुतूहल से, इधर अपना ध्यान आकर्षित करें।

३०४—'स्थाने' शब्द का प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में 'ठीक है'। 'उपयुक्त रीति से', 'यह उचित ही है' के अर्थ में होता है। जैसे—'स्थाने प्राणाः कामिनां दूत्यधीनाः' (मेघदूत ३)—यह सत्य ही कहा है कि कामातुरों (प्रेमियों) के प्राण दूतियों के अधीन होते हैं। 'स्थाने तपो दुश्चरमेतदर्थमपर्णया पेलवयापि तप्तम्' (कुमार० ७।६५)—यह सब प्रकार से उचित ही है कि अत्यन्त कोमल अंगवाली होती हुई भी पार्वती ने उनके (शिव के) लिए अत्यन्त उग्र तपस्या की।

(अ) 'अस्थाने' का अर्थ होता है 'अनुपयुक्त', 'अवसर से भिन्न' जैसे—'अस्थाने द्वयोरपि प्रयत्नः' (मुद्रा० २)—दोनों के प्रयत्न उपयुक्त अवसर पर नहीं हुये।

३०५—'हन्त' [१] का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है:—

(१) 'प्रसन्नता', 'विस्मय', 'घबड़ाहट'—हिन्दी में इसके स्थान पर 'अरे', 'ओह', 'अहा' का प्रयोग होता है। जैसे—'हंत प्रवृत्तं संगीतकम्' (मालविका० १)—अरे संगीत प्रारम्भ हो गया!

(२) 'दया', 'विषाद'। जैसे—'पुत्र हंत ते धानाकाः' (गणरत्न महोदधि)—हे पुत्र, खेद है कि तुम्हारे पास केवल धनिया है।

(३) 'शोक' व्यक्त करने के लिए ओह या हाय के अर्थ में। जैसे—'हंत, धिङ् मामधन्यम्' (उत्तर० १)—हाय, मुझ अभागे को धिक्कार है।

(४) यह कभी-कभी वाक्यारम्भक अव्यय की भाँति प्रयुक्त होता है।

---

(१) हंत हर्षेऽनुकंपायां वाक्यारम्भविषादयोः। (अमर०)

जैसे—'हंत ते कथयिष्यामि' (रामायण १।४८।१४)—अच्छा, अब मैं आपसे कहूँगा।

३०६—'हा'[1] प्रायः 'शोक', 'उद्वेग', 'दुःख', वेदना' आदि को व्यक्त करता है। हिन्दी में आह, हाय, हरे राम, हाय राम, के अर्थ का बोधक है। जैसे—'हा प्रिये जानकि' (उत्तर० ३)—हाय, प्यारी जानकी। 'हा हा देवि स्फुटति हृदयम्' (उत्तर० ३)—हाय हाय देवी, मेरा हृदय विदीर्ण होता जा रहा है। कभी-कभी इसका प्रयोग 'आश्चर्य' व्यक्त करने के लिए भी होता है। जैसे—'हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौशल्या' (उत्तर० ४) अरे, यह तो महाराज दशरथ की धर्मपत्नी मेरी प्रिय सखी कौशल्या हैं!

द्वितीया विभक्ति के साथ 'हा' के प्रयोग की विधि के लिए अनुच्छेद ३४ देखिए।

विशेष—'हा' का प्रयोग 'जुगुप्सा' के अर्थ में बहुत कम मिलता है।

३०७—'हि'[2] का प्रयोग वाक्य के प्रारम्भ में कदापि नहीं होता। इसके निम्नलिखित अर्थ होते हैं:—

(१) 'क्योंकि'—'बिलकुल ठीक' अथवा 'तर्क पूर्ण कारण' व्यक्त करने के लिए। जैसे—'अग्निरिहास्ति धूमोहि दृश्यते' (गणरत्न महोदधि) यहाँ अग्नि है क्योंकि धुआँ दिखाई पड़ता है। 'अपि महर्षिणा त्वं गृहायानुमतः कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयमाश्रमम्' (रघु० ५।१०)—क्या तुम महर्षि द्वारा गृहस्थ बनने के लिये अनुमति प्राप्त कर चुके हो, क्योंकि यह द्वितीय आश्रम में प्रवेश करने का समय है।

विशेष—किसी विशेष प्रयोग के विषय में, जो सामान्य वक्तव्य के रूप में होते हैं, उनमें 'हि' का यह भाव छिपा रहता है।

---

(१) हा इति विस्मय विषादशुग्जुगुप्सार्तिषु। (ग० म०)

(२) हि पादपूरणे हेतौ विशेषेप्यवधारणे (विश्व०)

(२) 'वस्तुतः', 'निश्चय ही'। जैसे—'देव प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रं किमत्र वाग्व्यवहारेण' (मालविका० १)—हे देव, नाट्यशास्त्र 'वस्तुतः' प्रयोग प्रधान ही होता है, इस विषय में मौखिक व्यवहार से क्या लाभ ? 'न हि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतंगजः' (मालविका० ३)—वास्तव में कमलिनी को देखकर मतंगज ग्राह की अपेक्षा नहीं करता।

(३) प्रायः इसका भाव 'उदाहरण के रूप में', 'स्फुटार्थ', 'जैसा कि ज्ञात है' भी होता है। 'तथाच' के अर्थ को व्यक्त करने के लिए जब कोई वक्तव्य पूर्व कथन के उदाहरण के रूप में व्यक्त होता है तब भी 'हि' का प्रयोग होता है। जैसे—'प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्। सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः' (रघु० १।१८)—वह प्रजा से केवल उनके कल्याण-मात्र के लिए कर लेता था; उदाहरणार्थ सूर्य सहस्रगुना लौटाने के लिए ही जल को ग्रहण करते हैं।

(४) 'केवल', 'एकाकी'—किसी विचार पर बल देने के लिए भी 'हि' शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—'मूढो हि मदनेनायास्यते' (कादम्बरी १५५)—केवल मूर्ख व्यक्ति ही कामदेव से पीड़ित होता है।

(५) कभी-कभी पादपूर्त्यर्थ भी इसका प्रयोग होता है।

अभ्यास

१—शकुंतला—सखि कस्य वान्यस्य कथयिष्यामि किंत्वायासयित्रीदानीं वां भविष्यामि।

२—उभे—अत एव खलु निर्बन्धः। स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति। (शाकुन्तल०३)

३—हन्त भोः शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। (शाकुन्तल०४)

४—स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुंतला क्लाम्यति। (शाकुन्तल०६)

५—अविनीत, किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्वानि विप्रकरोषि। हंत वर्धते ते संरंभः। स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इतिकृतनामधेयोसि। (शाकुन्तल०७)

६—स्थाने खलु नारायणमृषिं विलोभयंत्यस्तदूरुसंभवामिमां दृष्ट्वा व्रीडिताः सर्वा अप्सरस इति। (विक्रमो० १)

७—भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशंति सुखमुपदेशगुणाः। (कादम्बरी१०३)

८—तदेषा भवतः कांता त्यजैनां वा गृहाण वा।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी॥ (शाकुन्तल०५)

९—अनंतरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतींदोः किरणेष्विवांकः॥
(कुमार० १।३)

१०—बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जयः।
तृणैरावेष्ट्यते रज्जुर्यया नागोपि बध्यते॥ (पंचतंत्र १।१४)

११—कुसुमान्यपि गात्रसंगमाप्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि।
न भविष्यति हंत साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः॥
(रघु० ८।४४)

१२—सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः। ((मुद्रा०३)

१३—वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं
वरं क्लैव्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम्।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि-
र्वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम्॥ (हितो०१)

———

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—वरमावाभ्यां कतिपयदिवसाननयोरप्यदर्शनकृताः क्लेशा अनुभूता न पुनरस्य वैशंपायनानवलोकनदुःखदीनं दिने दिने मुखमीक्षितम् । (कादम्बरी० २०४)

२—असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमंतःकरणप्रवृत्तयः ॥ (शाकुन्तल० १)

३—सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत् ।
प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यंधः क्षिप्तां धुनोत्यहिशंकया ॥ (शाकुन्तल० ७)

४—राजा—एवमादिभिरनुपक्रम्योऽयमातंकः । पश्य—
कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न च चंद्रमरीचयो
न च मलयजं सर्वांगीणं न वा मणियष्टयः ।
मनसिजरुजं सा वा दिव्या ममालमपोहितुं
रहसि लघयेदारब्धा वा तदाश्रयिणी कथा ॥ (विक्रमो० ३)

५—स्थाने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथाहि ते ।
चराचराणां भूतानां कुक्षिराधारतां गतः ॥ (कुमार० ६ । ६७)

६—आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखंती ।
पृच्छंती वा मधुरवचनां सारिकां पंजरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ (मेघदूत ८८)

७—अरुंधती—हा वत्से—
शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा ।
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति ॥ (उत्तर ०४)

८—शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वंद्यासि जगतो ।
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः ॥ (उत्तर ०४)

९—स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिञ्चनत्वं मखजं बिभर्ति ।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥
(रघु०५। १६)

१०—प्रेष्यभावेन नामेयं देवीशब्दक्षमा सती ।
स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्त्रोर्णं वोपयुज्यते ॥ (मालविका०५)

११—नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान् पंक्तिरथो विलंघ्य यत् ।
अपथे पदमर्पयंति हि श्रुतवंतोपि रजोनिमीलिताः ॥ (रघु०१।७४)

१२—तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं स्तनसंबाधमुरो जघान च ।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ॥ (कुमार० ४ । २६)

१३—व्यतिषजति पदार्थानांतरः कोपि हेतुर्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतंगस्योदये पुंडरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकांतः ॥
(मालती०१)

१४—अर्हस्येनं (दावाग्निं) शमयितुमलं वारिधारा सहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम् । (मेघदूत ५४)

१५—स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धिसंघाः ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ११।३६)

१६—राक्षसः—अहो सुश्लिष्टोऽभूदयं प्रयोगः ।
लेखोयं न ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदीया यतः
सौहार्दं शकटेनखंडितमिति श्रद्धेयमेतत्कथम् ।
मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम संभावयेत्
तस्मात्संप्रतिपत्तिरेव हि वरं न ग्राम्यमत्रोत्तरम् ॥ (मुद्रा० ५)

१७—स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव ।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छाययासंश्रितानाम् ॥ (शाकुन्तल ०५)

८—उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं बहवः खंडनहेतवो हि दृष्टाः ।
उपचारविधिर्मनस्विनीनां न तु पूर्वाभ्यधिकोऽपि भावशून्यः ॥
(मालविका० ३)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—घमंडी धनवानों की सदा चाटुकारी करने की अपेक्षा दर-दर भिक्षाटन करके जीविका निर्वाह करना अच्छा है ।

२—या तो वह इसको करने में समर्थ है या उसके दोनों भाई, अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं ।

३—यह बिलकुल ठीक है कि वह तुम्हें धन को मितव्ययिता से व्यय करने की चेतावनी दे रहा है, क्योंकि तुम्हारी लड़की का विवाह दिन प्रतिदिन निकट आता जा रहा है ।

४—जब मनुष्य के ऊपर विपत्तियाँ आ पड़ती हैं तब विवेक ही बुद्धिमानी है, क्योंकि जो बिना विवेक के कार्य करते हैं, उनकी विपत्तियाँ बढ़ती जाती हैं ।

५—जिस कवि की यह उक्ति है कि एक दोष अनेक गुणों में छिप जाता है, उसने मानव प्रकृति का निरीक्षण भली-भाँति नहीं किया है, क्योंकि प्रायः दरिद्रता अच्छाइयों के समूह को विनष्ट कर देती है ।

६—सचमुच दूसरों के प्राणों की रक्षा करने के लिए इस उदारमना व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य कौन अपने जीवन को संकट में डाल सकता है ?

७—हे स्त्री, निश्चय जानो कि तुम शीघ्र ही अपने पति से मिलोगी । क्या यह सत्य नहीं है कि नदी, जिसका जल ग्रीष्म ऋतु में सूख जाता है, वर्षा में पुनः अपनी धारा से युक्त हो जाती है ।

८—मैं सभी देवताओं की उपासना समान श्रद्धा से करता हूँ चाहे वे यवनों के हों चाहे ब्राह्मणों के ।

९—भाइयों के बीच में निर्धन-जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा मैं बाघों और भेड़ियों से भरे हुए जंगल को अधिक पसन्द करता हूँ। ('वरं—न' का प्रयोग कीजिए)।

१०—इस पृथ्वी पर सर्वप्रिय वस्तुओं के विनष्ट हो जाने पर भी मैं जीवित हूँ, मुझे धिक्कार है।

११—ओ हो! जो अँगूठी मैंने खो दी थी वह मुझे प्राप्त हो गई।

१२—अहा! इस व्यक्ति की आकृति कैसी आह्लादकारिणी है? यह उचित ही है कि रामायण के निर्माता ने उनके गूढ़ कृत्यों के वर्णन में दिव्य-वाणी का प्रयोग किया है।

१३—सैकड़ों राजाओं में से उसने केवल इसी राजा को अपने पति के रूप में चुना, क्योंकि मन अपने पूर्व जन्म के संस्कारों को जानता है।

१४—दुष्टों के जाल में फँस कर सम्भवतः कौन व्यक्ति आसानी से निकल सका है? और कौन निर्बल मनुष्य बलवानों से संघर्ष करके असफल नहीं हुआ है?

पाठ २९

परस्मैपद और आत्मनेपद

(सूचना—इस पाठ में और आगे के पाठ में जिन उद्धरणों के सामने कुछ नहीं लिखा गया है, वे सिद्धान्त कौमुदी के हैं और 'भट्टि०' से तात्पर्य है भट्टि काव्य का आठवाँ सर्ग)

३०८—संस्कृत में दो पद होते हैं—आत्मनेपद और परस्मैपद। आत्मनेपद (अपने लिए कथित) व्यक्त करता है कि कार्यव्यापार का फल कर्त्ता के आश्रित है (कर्त्तृगामि फलं)—जैसे—'कुरुते' (अपने लिए करता है)। परस्मैपद (दूसरे के लिए कथित) व्यक्त करता है कि कार्यव्यापार का फल दूसरे पर आश्रित है। 'गच्छति' (दूसरे के लिए जाता है)। यह अन्तर कार्य रूप में बहुत ही कम परिणत होता है। यह तो पद का मूल अर्थ है, इसका सभी दशाओं में अनुगमन नहीं किया जाता। संस्कृत विद्वान् दोनों पदों का प्रयोग स्वच्छन्तापूर्वक करते हैं। जैसे—'निदेशमिदानीं श्रोतुमिच्छामि' (मालविका० १)—मैं अब आदेश सुनना चाहता हूँ। 'उत्कंठासाधारणं परितोषमनुभवामि' (शाकुन्तल० ४)। 'यावद्यते साधयितुं त्वदर्थं' (रघु० ५।२५)

यदि ऐसा मान लिया जाय कि यह अन्तर उभयपदी धातुओं में ही माना जा सकता है तो संस्कृत में प्रयोगों से यह सिद्ध नहीं होता। जैसे—'राजा स्वसूनोश्चन्द्रापीड इति नाम चकार शुकनासोऽपि विप्रजनोचितं वैशम्पायन इति नाम चक्रे' (कादम्बरी ७४)। यहाँ पर परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों का प्रयोग एक ही अर्थ में हुआ है।

३०९—कुछ धातुओं के रूप केवल एक ही 'पद' में व्यवहृत होते हैं,

जैसे—नम्, भ्रम्, रुच्, भाष् इत्यादि और कुछ दोनों पदों में; जैसे—कृ, चि, चुर्, दुह् इत्यादि। कुछ धातुएँ उपसर्ग युक्त होने पर सर्वथा एक ही पद में प्रयुक्त होती हैं, चाहे परस्मैपद में या आत्मनेपद में अथवा उनका प्रयोग किसी विशेष अर्थ में ही होता हो। जैसे—'गम्' धातु परस्मैपदी है, परन्तु 'संगम्' आत्मनेपदी है। 'शास्' (शासन करना) परस्मैपदी धातु है, परन्तु 'आशास्' (आशीर्वाद देना) आत्मनेपदी है। इस प्रकार की कुछ धातुएँ इस पाठ में और इसके आगे के पाठ में दी गई हैं।

भ्वादिगण की धातुएँ

३१०—उपसर्ग रहित 'क्रम्'[1] धातु का प्रयोग दोनों पदों में होता है। परन्तु जब इस धातु का अर्थ होता है—निरन्तरता, निर्बाध, शक्ति, विकास या उन्नति, तब इसका प्रयोग आत्मनेपद में होता है। जैसे—'क्रममाणोरि संसदि' (भट्टि० ८।२१)—'शत्रु की सभा में निर्बाध घूमता हुआ। 'अध्ययनाय क्रमते'—अध्ययन में शक्ति लगाता है। 'क्रमन्तेऽस्मिञ् शास्त्राणि'—इसमें शास्त्र विकसित होते हैं।

(अ) उपर्युक्त अर्थ में 'उप' और 'परा' उपसर्ग पूर्वक 'क्रम्' धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—'इत्युक्त्वा खे पराक्रंस्त' (भट्टि० २२) ऐसा कह कर उसने आकाश में अपना पराक्रम दिखलाया। 'परीक्षितुमुपाक्रंस्त राक्षसी तस्य विक्रमम्' (भट्टि० २३)—उस राक्षसी ने उसके पराक्रम की परीक्षा करने के लिए उपक्रम किया।

(ब) किसी नक्षत्र का उदय होना सूचित करने में आङ् उपसर्ग पूर्वक 'क्रम्' धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—'आक्रमते सूर्यः' (महाभाष्य)—सूर्य उदय हो रहे हैं। 'दिवमाक्रममाणेव' (भट्टि० २३) परन्तु 'आक्रामति

(१) वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः। उपपराभ्याम्। आङ् उद्गमने। वेः पादविहरणे। प्रोपाभ्याम् समर्थाभ्याम्। अनुपसर्गाद्वा। (१।३।३८—४३)

'धूमोहर्म्यतलात्' भवन के ऊपर से धुआँ निकलता है। अथवा 'आक्रामति धूमो हर्म्यतलम्' (महाभाष्य) धुआँ भवन को आच्छादित कर लेता है।

(स) 'चलने' अथवा 'पादविक्षेप' के अर्थ में 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'क्रम' धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—'विष्णुस्त्रेधाविचक्रमे' विष्णु ने तीन पग लिए। 'वाजी विक्रमते'। परन्तु 'विक्रामति सन्धिः'—जोड़ टूट रहा है।

(द) 'प्रारम्भ' के अर्थ में 'प्र' और 'उप' उपसर्ग पूर्वक 'क्रम्' धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—'वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनं'—(कुमार० ३।२)—इस प्रकार उससे एकान्त में बातचीत करना प्रारम्भ किया। परन्तु 'प्रकामति' (जाता है) 'उपक्रामति' (आता है)।

३११—'क्रीड्'[१] (खेलना) धातु परस्मैपदी है, परन्तु अनु, सं, परि और आ उपसर्ग पूर्वक होने पर आत्मनेपदी होती है। जैसे—'अनु परि-आ-आँ क्रीडते माणवकः;' 'संक्रीडन्ते मणिभिः यत्र कन्याः' (मेघदूत ७०)—जह कन्याएँ मणियों से खेलती हैं। परन्तु 'माणवकमनुक्रीडति' (महाभाष्य)—बच्चे के साथ खेलता है।

(अ) 'कोलाहल' करने के अर्थ में 'सं' पूर्वक 'क्रीड्' धातु परस्मैपदी होती है। जैसे—'संक्रीडन्ति शकटानि' (महाभाष्य)—'शकट' कोलाहल करते हैं।

३१२—'सं' पूर्वक 'गम्'[२] धातु 'मिलने' या 'जुटने' अर्थ में आत्मनेपदी है। जैसे—'अक्षधूर्तैः समगंसि' (दशकुमार० २।२)—मैं जुआड़ियों में मिल गया। इसी प्रकार 'सं' पूर्वक 'ऋ' अथवा 'ऋच्छ्' धातु आत्मनेपदी है। जैसे—'समारन्त ममाभीष्टाः' (भट्टि० १६)

३१३—'उद्' पूर्वक 'चर्'[३] (चलना)—सकर्मक के रूप में आत्मनेपदी

(१) क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च। (१।३।२१)

(२) समो गम्यृच्छिभ्याम्। (१।३।२६)

(३) उदश्चरः सकर्मकात्। समस्तृतीया युक्तात्। (१।३।५३-५४)

होती है। जैसे—'पानशौण्डाः पथः क्षीबा वृन्दैरुदचरन्त च' (भट्टि० ३१)—नशे में चूर लोग झुण्ड के झुण्ड मार्ग से भटक गये। इसी प्रकार 'धर्ममुच्चरते'—धर्म का उल्लंघन करता है। परन्तु 'बाष्पमुच्चरति'—भाप ऊपर उठती है।

(अ) तृतीया विभक्तियुक्त वाहनार्थ के साथ प्रयुक्त 'सं' पूर्वक 'चर्' धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—''यानैः समचरंतान्ये' (भट्टि० ३२)—दूसरे लोग सवारी से गये। 'क्वचित्पथा संचरते सुराणाम्' (रघु० १३।१६) कभी-कभी देव-मार्ग (आकाश) से होकर जाता है।

३१४—'जि'[1] धातु 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'विजय' अर्थ में और 'परा' उपसर्ग पूर्वक 'पराजय' अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'चक्षुर्मेचकमंबुजं विजयते' (विद्धशालभञ्जिका १)—नेत्र नीले कमल को जीतने वाले हैं। 'विजयतां देवः' (मालविका० १)—महाराज की जय हो। 'खं पराजयमानोसौ' (भट्टि० ६)—आकाश पर विजय प्राप्त करते हुए यह।

३१५—'तप्'[2] (गर्म करना)—धातु वि अथवा उद् उपसर्ग पूर्वक अकर्मक के रूप में हो अथवा अपने शरीर का कोई अंग उसका कर्म हो' आत्मनेपदी होती है। जैसे—'रविर्वितपतेत्यर्थम्' (भट्टि० १४)—सूर्य प्रचण्ड रूप से तप रहा है। 'तीव्रमुत्तपमानो यमशक्यः सोढुमातपः' (भट्टि० १५)—यह अत्यन्त उत्तप्त करने वाली प्रचण्ड धूप असह्य है। 'उत्तपते-वितपते पाणी' (महाभाष्य) वह अपने हाथों को सेंकता है। परन्तु 'उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः' (महाभाष्य)—स्वर्णकार सोना तपाता है। इसी प्रकार 'चैत्रो मैत्रस्य पाणिमुत्तपति'।

विशेष—'तप्' स्वतः अकर्मक धातु है। जैसे—'तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति' (शाकुन्तल० ५)—सूर्य के प्रदीप्त होने पर अन्धकार कैसे अपना अस्तित्व रख सकता है?

---

(१) विपराभ्यां जेः (१।३।१६)

(२) उद्विभ्यां तपः। (१।३।२७); स्वांग कर्मकाच्चेति वक्तव्यम्।

३१६—'नी'[1] (ले जाना) धातु बिना उपसर्ग के अथवा उद्, उप या वि उपसर्ग पूर्वक निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी होती है :—

(१) उपदेश अथवा आदेश देना—जैसे—'शास्त्रे नयते'—शास्त्र का उपदेश देता है।

(२) ऊपर उठाना—जैसे—'दण्डमुन्नयते'—दण्ड उठाता है।

(३) धार्मिक संस्कारों में दीक्षित करना—जैसे—'माणवकमुपनयते' बालक का उपनयन संस्कार करता है।

(४) 'ज्ञान' 'अन्वेषण'—जैसे—'तत्वं नयते'—सत्य की खोज करता है।

(५) मजदूरी पर रखना, किराये पर रखना—जैसे 'कर्मकरानुपनयते'—मजदूरों को भाड़े पर रखता है।

(६) ऋण या कर अदा करना—जैसे—'करं विनयते'—कर अदा करता है।

(७) खर्च करना, काम में लगाना—जैसे—'शतं विनयते'—सौ रुपया व्यय करता है।

(अ) जब 'शरीर के अंग' के अतिरिक्त कोई पदार्थ कर्म हो तो 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'नी' धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—'विनेष्ये क्रोधमथवा'—(भट्टि० २८)—या मैं अपना क्रोध दूर कर दूँगा। परन्तु 'गण्डं विनयति'—कपोल फेर लेता है।

विशेष—'शिक्षा देना', 'पालना', 'पालतू बनाना' अर्थों में वि+नी परस्मैपदी होती है। जैसे—'वन्यान्विनेष्यन्निव दुष्टसत्वान्' (रघु० २।८)—मानो हिंसक जङ्गली पशुओं को पालतू बनाता हुआ। इसी प्रकार 'विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियं' (रघु० ३।२७)।

३१७—'आ' पूर्वक 'यम्'[2] धातु अकर्मक के रूप में अथवा शरीरावयव

---

(१) सम्माननोत्संजनाचार्यकरणज्ञानभूति विगणनव्ययेषु नियः (१।३।३६)

(२) आङो यमहनः। (१।३।२८)। समुदाङ्भ्योयमोऽग्रन्थे (१।३।७५)। उपाद्यमः स्वकरणे। (१।३।५६)

कर्मयुक्त रूप में अथवा ग्रन्थातिरिक्ति अन्य वस्तु कर्मयुक्त रूप में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'आयच्छते'—फैलाता है। 'पाणिमायच्छते'—हाथ फैलाता है। 'वस्त्रमायच्छते'—वस्त्र फैलाता है।

(अ) 'सम् + उत्' उपसर्ग पूर्वक 'यम्' धातु का कर्म जब किसी साहित्यिक कार्य के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु हो तो यह धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—'व्रीहीन्संयच्छते' धान्य एकत्र करता है। 'भारमुद्यच्छते' बोझा उठाता है। परन्तु 'उद्यच्छति वेदं'—वेदाध्ययन में कठिन परिश्रम करता है।

(ब) 'उप' उपसर्ग पूर्वक 'यम्' धातु 'परिणय' अथवा 'आलिङ्गन' अथवा 'स्वीकार' अर्थ में साधारणतया आत्मनेपदी होती है। जैसे—'सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां' (रघु० १४।७१)—दशानन-शत्रु (श्रीराम) ने सीता को छोड़ कर किसी अन्य के साथ जो विवाह नहीं किया।

३१८—'रम्'[1] (रमण करना) धातु सामान्यतया आत्मनेपदी है, परन्तु वि, आ, अथवा परि उपसर्ग पूर्वक परस्मैपदी होती है। जैसे—'विरम विरम वह्ने' (रत्नावली)—रुको, रुको अग्निदेव। 'आरमति उद्याने'—उद्यान में विश्राम करता है। 'क्षणं पर्यरमत्तस्य दर्शनात्' (भट्टि० ५३)—उसका दर्शन करके क्षण भर के लिए आनन्दित हो गया।

(अ) अकर्मक के रूप में उप उपसर्ग पूर्वक 'रम्' धातु उपयपदी होती है। जैसे—उपारंसीच्च संपश्यन् वानरस्तं चिकीर्षितात्' (भट्टि० ५४)—उसको देखकर बन्दर, जो कुछ करना चाहता था, रुक गया। 'नात्रसीतेत्युपारंस्त'—सीता यहाँ नहीं हैं, यह जानकर रुक गया।

३१९—'वद्'[2] धातु स्वतः निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी है :—

(१) बुद्धिमत्ता अथवा प्रत्युत्पन्नमतित्व। जैसे—'शास्त्रे वदते'।

(१) व्याङ्परिभ्यो रमः। विभाषाऽकर्मकात्। (१।३।८३,८५)

(२) भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः। व्यक्तवाचां समुच्चारणे। अनोरकर्मकात्। विभाषा विप्रलापे। (१।३।४७—५०)

(२) संतुष्टकरना फुस,लाना (साधारणतया इस अर्थ में उप उपसर्ग पूर्वक)।

जैसे—'भृत्यानुपवदते'—अपने नौकरों को संतुष्ट कर देता है।

(३) ज्ञान। जैसे—'शास्त्रे वदते'—शास्त्रों को जानता है।

(४) प्रयास, उद्योग। जैसे—'क्षेत्रे वदते'—खेत में श्रम करता है।

(५) मतभेद, विवाद (साधारणतया इस अर्थ में 'वि' पूर्वक)।

जैसे—'परस्परं विवदमानानां शास्त्राणाम्' (हितोप० १)—परस्पर मतभेद रखने वाले शास्त्रों का।

(६) चाटुकारिता, निवेदन। जैसे—दातारमुपवदते'—दाता की चापलूसी करता है। (यह अर्थ नं० २ के समकक्ष है)

(अ) सं + प्र पूर्वक 'वद्' धातु उच्चस्वर एवं स्पष्ट मनुष्यवाणी के समान अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः'—ब्राह्मण लोग उच्चस्वर में परस्पर बोल रहे हैं। परन्तु 'वरतनु सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः' (महाभाष्य)—हे सुन्दरि, मुर्गे बोल रहे हैं।

(ब) उपर्युक्त अर्थ में 'अनु' पूर्वक 'वद्' धातु अकर्मक के रूप में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'अनुवदते कठः कलापस्य'—कठ कलाप का अनुकरण करता है। परन्तु 'उक्तमनुवदति'—जो कहा गया है उसको दुहराता है। 'अनुवदति वीणा'—वीणा बजती है।

(स) वि + प्र पूर्वक 'वद्' धातु झगड़ा करने के अर्थ में उभयपदी होती है। जैसे—'विप्रवदन्ते या विप्रवदन्ति वैद्याः' वैद्य लोग आपस में झगड़ रहे हैं। 'ऐद् विप्रवदमानैस्तां संयुक्तां ब्रह्मराक्षसैः' (भट्टि० ४२)—झगड़ते हुए ब्रह्म-राक्षसों से युक्त उस स्थान पर गया।

(द) अप + वद् धातु फटकारने अथवा धिक्कारने अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'न्यायमपवदते', 'नृभ्योऽपवदमानस्य' (भट्टि० ५३)।

३२०—'स्था'[1] धातु स्वतः किसी के अभिप्राय को व्यक्त करने के अर्थ

[1] समवप्रविभ्यः स्थः। प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च। (१।३।२२, २३)

में अथवा न्यायाधीश के रूप में स्वीकार करने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'गोपी कृष्णाय तिष्ठते' गोपी अपने अभिप्राय को कृष्ण से व्यक्त कर देती है। 'संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः' (किरात ०।१४)—जो व्यक्ति सन्देह उपस्थित होने पर कर्ण आदि को पंच (निर्णायक) मान लेता है।

(अ) सं, अव, प्र और कभी कभी वि उपसर्ग पूर्वक 'स्था' धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—'दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते' (मृच्छकटिक १)—दरिद्रता के कारण किसी मनुष्य के बन्धुबान्धव लोग उसके कहने में नहीं आते। 'क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुः' (रघु० ८। ८७)—यदि जीव क्षण भर के लिए भी साँस लेता हुआ स्थिर रहता है। हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे' (शिशुपाल वध ३।१)—इसके बाद हरि ने हरिप्रस्थ की ओर प्रस्थान किया। इसी प्रकार 'अत्रापरे प्रत्यवतिष्ठन्ते' (शांकर भाष्य ४५), 'अग्नेर्ज्वलतः विस्फुलिंगा विप्रतिष्ठेरन्' (महाभाष्य)।

(ब) 'आ' पूर्वक 'स्था' धातु केवल प्रतिज्ञा के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'जलं विषं वा तव कारणादास्थास्ये' (महाभारत) तुम्हारे कारण मैं केवल जल अथवा विष का सहारा लूँगा।

३२१—'उद्'[1] उपसर्ग पूर्वक 'स्था' धातु शब्दार्थतः 'उठने' के अर्थ में परस्मैपदी होती है, परन्तु अलंकार के रूप में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'उत्तिष्ठमानं मित्रार्थे कस्त्वां न बहु मन्यते' (भट्टि १२) अपने मित्र के लिए प्रयत्नशील तुम्हारी कौन नहीं पूजा करता? 'मुक्तावुत्तिष्ठते'—मोक्ष के लिए उठता है। (किरात०११।१३ तथा शिशुपाल० १४।१७ देखिए)। परन्तु 'पीठादुत्तिष्ठति' 'ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति'—गाँव से सौ प्राप्त होता है।

३२२—'उप'[2] पूर्वक 'स्था' धातु धार्मिक विधि से सेवा करने अथवा देवता की भाँति पूजा करने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'ये

१—उदोऽनूर्ध्वकर्मणि। (१।३।२४)
२—उपान्मन्त्रकरणे। (१।३।२५)

सूर्यमुपतिष्ठन्ते मन्त्रैः' (भट्टि० १३) जो मंत्रों द्वारा सूर्य की उपासना करते हैं।' 'न त्र्यंबकादन्यमुपास्थितासौ' (भट्टि० १।३)।

विशेष—इस धातु का प्रयोग साहित्य में 'सेवा करने' या 'पूजा करने' के अर्थ में साधारणतया उभयपदी के रूप में होता है। जैसे—'उपतस्थुर्महात्मानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरं' (महाभारत २।४।७)। 'स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती' (रघु० ४।६)[1]

३२३—'उप'[2] उपसर्ग पूर्वक 'स्था' धातु निम्नलिखित अर्थों में भी आत्मनेपदी होती है—

(१) संयुक्त होने, मिलने अर्थ में—जैसे—'गंगा यमुनामुपतिष्ठते'—गंगा यमुना से मिलती हैं।

(२) किसी से मित्रता करने—जैसे—'रथिकानुपतिष्ठते' (महाभाष्य) सारथियों से मित्रता करता है।

(३) ले जाने के अर्थ में। जैसे—'अयं पन्थाः साकेतमुपतिष्ठते' (महाभाष्य)—यह मार्ग साकेत की ओर ले जाता है।

(अ) उप पूर्वक 'स्था' धातु का अर्थ जब किसी वस्तु को प्राप्त करने की 'अभिलाषा' व्यक्त हो तब उभयपदी होती है। जैसे—'भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा' (महाभाष्य)—भिखारी कुछ पाने की अभिलाषा से ब्राह्मण के निवास स्थान पर जाता है। जब अकर्मक के रूप में प्रयुक्त होती है तब आत्मनेपदी होती है। जैसे—'भोजनकाले उपतिष्ठते' = भोजन के समय में तैयार होकर खड़ा हो जाता है।

१—इस पर महाभाष्य का कथन है—

बहूनामप्यचित्तानामेको भवति चित्तवान्।
पश्य वानर सैन्येऽस्मिन्यदर्कमुपतिष्ठते॥
मैवं मंस्थाः सचित्तोयमेषोऽपि हि यथा वयम्।
एतदप्यस्य कापेयं यदर्कमुपतिष्ठति॥

२—उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्।

३२४—[1]अनु पूर्वक 'हृ' धातु लगातार अभ्यास करने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'पैतृकमश्वा अनुहरन्ते' घोड़े सदा अपनी पैतृक गति का अनुसरण करते हैं। परन्तु 'अनुहार', 'समता' के अर्थ में यह परस्मैपदी होती है। जैसे—'रामभद्रमनुहरति (उत्तर० ४)—आर्य राम की अनुहार का है।

३२५—'आ' पूर्वक 'ह्व'[2] धातु 'स्पर्द्धा' या 'ललकारने' के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'कृष्णश्चाणूरमाह्वयते' (सिद्धान्त कौमुदी) 'आह्वयत चेदिराट् मुरारिम्' (शिशुपालवध २०।१)। परन्तु 'इत एवाह्वायै-नमप्यायुष्मन्तम्' (उत्तर० ६)—इस चिरञ्जीवी बालक को भी यहाँ बुलाओ।

अभ्यास

१—राज्यं नाम शक्तित्रयायत्तम। शक्तयश्च मन्त्रप्रभावोत्साहाः परस्परानुगृहीताः कृत्येषु क्रमंते। (दशकु० २।८)

२—असौ पापः क्रमेण शाखांतरैः संचरमाणः कोटरमागत्य तातमपगतासुमकरोत्। (कादम्बरी०३३)

३—एवं भोः संततिविच्छेदनिरवलंबानां मूलपुरुषावसाने संपदः परमुपतिष्ठंति। (शाकुन्तल०६)

४—उषसि स्नात्वा कृतमंगलो मंत्रिभिः सह समगच्छे। (दशाकु०२।३)

५—अये वनदेवतेयं फलकुसुमपल्लवार्घ्येण मामुपतिष्ठते। (उत्तर०२)

६—विजयेतां रामलक्ष्मणौ कुंभकर्णमेघनादौ। (अनर्घराघव०६)

७—ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम्। (रघु० ४।६६)

---

(१) हरतेर्गतताच्छील्ये (वार्तिक)

(२) स्पर्धायामाङः। (१।३।३१)

८—वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः । (मेघदूत १०१)

९—बलिर्बबंधे जलधिर्ममंथे जह्रेऽमृतं दैत्यकुलं विजिग्ये ।
कल्पांतदुःस्था वसुधा तथोहे येनैष भारोऽतिगुरुर्न तस्य ॥
(भट्टि० २।३९)

१०—उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता ।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यंतावामयः स च ॥ (शिशु० २।१०)

११—अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता-
मनुवदति शुकस्ते मंजुवाक् पंजरस्थः । (रघु० ५।७४)

१२—यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानु-
रह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम् । (रघु० ५।७१)

१३—अथ सर्वस्य धातारं ते सर्वे सर्वतोमुखम् ।
वागीशं वाग्भिरर्थ्याभिः प्रणिपत्योपतस्थिरे ॥ (कुमार० २।३)

१४—स मानसीं मेरुसखः पितृणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः ।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ॥
(कुमार० २।१८)

१५—पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे
निकृंतन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति । (उत्तर० ४)

१६—फलान्यादत्स्व चित्राणि परिक्रीडस्व सानुषु ।
साध्वनुक्रीडमानानि पश्य वृंदानि पक्षिणाम् ॥ (भट्टि० ८।१०)

१७—किंचिन्नोपावदिष्टासौ केनचिद् व्यवदिष्ट न ।
शृण्वन् संप्रवदमानाद्रावणस्य गुणान् जनात् ॥ (भट्टि० ८।२८)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—एते भगवत्यौ भूमिदेवानां मूलमायतनमंतर्वेदिं पूर्वेण कृष्णागरुमलयजरस-
मंगरागमन्योन्यस्य कुर्वाणे कलिंदकन्यामंदाकिन्यौ संगच्छेते ।
(अनर्घ राघव ७)

२—इत्युक्त्वा शुकनासो हेमंतकालोत्पलिनीमिवोद्बाष्पां दृष्टिमुद्वहन्नुद्वेपिताधरश्च बहिर्लब्धनिर्गमेण स्फुटन्निर्वांतमन्युपूरेण निश्वसन्नेवावतस्थे ।
(कादम्बरी २८६)

३—वयोवेषविसंवादि रामस्य च तयोस्तदा ।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाक्षिकंपं व्यतिष्ठत ॥ (रघु० १५।६७)

४—तत्रैनं हेमकुंभेषु संभृतैस्तीर्थवारिभिः ।
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपीठोपवेशितम् (रघु० १७।१०)

५—इति दर्शितविक्रियं सुतं मरुतः कोपपरीतमानसम् ।
उपसांत्वयितुं महीपतिर्द्विरदं दुष्टमिवोपचक्रमे ॥ (किरात० २।२५)

६—पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी (रघु० ४।६०)

७—विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥ (रघु० ४।६५)

८—श्रुतमप्यधिगम्य ये रिपून् विनयन्ते न शरीरजन्मनः ।
जनयंत्यचिराय संपदामयशस्ते खलु चापलाश्रयम ॥ (किरात० २।४१)

९—प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥ (उत्तर० २)

१०—क्षणं भद्रावतिष्ठस्व ततः प्रस्थास्यसे पुनः ।
न तत्संस्थास्यते कार्यं दक्षेणोरीकृतं त्वया ॥ (भट्टि० ८।११)

११—द्रष्टुं प्रक्रममाणोसौ सीतामंभोनिधेस्तटम् ।
उपाक्रंस्ताकुलं घोरैः क्रममाणैर्निशाचरैः ॥ (भट्टि० ८।२५)

१२—जल्पितोत्क्रुष्टसंगीतप्रनृत्तस्मितवल्गितैः ।
घोषस्यान्ववदिष्टेव लंका पूतक्रतोः पुरः ॥ (भट्टि० ८।२६)

१३—व्यरमत्प्रधनाद्यस्मात्परित्रस्तः सहस्रदृक ।
क्षणं पर्यरमत्तस्य दर्शनान्मारुतात्मजः ॥ (भट्टि० ८।५३)

१४—यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः ।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः ॥ (शिशु० २।१३)

१५—विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा ।
अनीत्वा पंकतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते (शिशु० २।३४)

१६—संमगध्वं पुरः शत्रोर्मोदयध्वं रघूत्तमम् ।
नोपयध्वं भयं सीतां नोपायंस्त दशाननः ।
ततः प्रास्थिषताद्रीन्द्रं महेंद्रं वानरा द्रुतम्
सर्वे किलकिलायंतो धैर्यं चाधिषताधिकम् ॥ (भट्टि० ७।१०१-१०२)

———

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१—आधी रात के समय में जब मैं अपने बिछौने पर गाढ़ी निद्रा में सो रहा था, परस्पर लड़ते हुए व्यक्तियों की ओर से आए हुए शोरगुल से जाग उठा ।

२—कुटुम्ब का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर वृद्ध पुरुष तीर्थयात्रा के लिये चल पड़ा (प्र + स्था) ।

३—अपने योग्यतम सेनाध्यक्ष द्वारा आज्ञा पाकर फ्रान्सीसियों ने गढ़ी पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया (उप + क्रम्), परन्तु चीनियों ने उनको आसानी से पराजित कर दिया (परा + जि) ।

४—जोर से चिल्लाते हुए दोनों युवक घूँसेबाजी करने लगे और दोनों में से अधिक उग्र स्वभाव वाले ने दूसरे को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारा (आ + ह्वे) ।

५—उन लोगों को धिक्कार है जो केवल धन की लिप्सा से धनियों की सेवा तथा चाटुकारी करते हैं (उप + स्था)।

६—यमुना प्रयाग में गंगा से मिलती हैं (सम + गम्) और इस स्थान को हिन्दू लोग बहुत ही पवित्र मानते हैं।

७—क्रोध को रोको (वि + रम्) और लालसा का त्याग करो; अपनी ओर से किसी भी प्रकार का अनिष्ट करने का प्रयास न करो।

८—जब परशुराम जी एक उग्रसाहसी टट्टू पर चढ़ कर घूम रहे थे (सम् + चर) तो घोड़ा एक तालाब देखकर चौंक पड़ा और घोड़सवार शीघ्रता से नीचे गिर पड़ा।

९—इंगलैंड के युवराज ने डेनमार्क की राजकुमारी से विवाह कर लिया (उप + यम्)।

१०—जो बालक का यज्ञोपवीत संस्कार (उप + नी) कराता है और उसे ब्रह्मविद्या की शिक्षा देता है, वह आचार्य कहलाता है।

११—यह मार्ग सीधे नदी तक जाता है और दूसरा बिलकुल टेढ़ा-मेढ़ा है, इनमें से जिसे चाहो चुन लो।

१२—जब धूप इतनी प्रचण्ड है (उत् + तप) तो तुम बिना छाता के बाहर कैसे जाओगे ?

१३—ब्राह्मण की प्रकृति स्वभावतः कोमल होती है, चाहे वह कुछ समय के लिए क्षुब्ध भी हो जाय, परन्तु शीघ्र ही वह प्रकृतिस्थ (उप + स्था) हो जाता है।

१४—अनुकूलता प्राप्ति के इच्छुक हम लोगों ने बहुत काल तक दुष्ट के व्यंग्यों को और घमंडियों द्वारा तिरस्कार को विनम्रता पूर्वक सहन किया। तो, हे आशे तू अपना व्यापार कब बन्द करेगी।

१५—शुकनास चन्द्रापीड के पास गया (उप + स्था) और उसको कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर सम्मति देकर बहुत प्रसन्न चित्त होकर घर लौटा।

————

पाठ ३०

अदादिगण की धातुएँ

३२६—'विद्' धातु (जानना) 'सम्' उपसर्ग पूर्वक पहिचानने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'पितरावपि मां न प्रतिसंविदाते' (दशकुमार० २।३)—मेरे माता-पिता भी मुझको नहीं पहिचानते।

(अ) अकर्मक के रूप में 'जानने' के अर्थ में भी इस धातु का प्रयोग 'सम्' पूर्वक आत्मनेपदी में होता है। जैसे—'के न संविदन्ते वायोर्मैनाकाद्रिर्यथा सखा' (भट्टि० १७)—कौन नहीं जानते कि मैनाक पर्वत वायु का सखा है?

३२७—'आ' पूर्वक 'शास्' धातु आशीर्वाद देने के अर्थ में और 'प्र' पूर्वक 'शास्' धातु प्रार्थना करने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'ऋक्छंदशासास्ते' (शाकुन्तल० ४) ऋक् छन्द द्वारा आशीर्वाद देता है। 'इदं प्रशास्महे' (उत्तर० १) हम लोग यह प्रार्थना करते हैं।

३२८—'हन्' धातु साधारणतया परस्मैपदी है, परन्तु अकर्मक के रूप में प्रयुक्त 'आ' उपसर्ग पूर्वक 'हन्' धातु किसी के अपने ही अंग से सम्बन्ध होने पर आत्मनेपदी होती है। जैसे—आघ्नान इव संदीप्तैरलातैः सर्वतो मुहुः' (भट्टि० १५)—चारों ओर प्रज्वलित आग के अंगारों से मारते हुए की भाँति। परन्तु, 'परस्य शिर आहन्ति' (सिद्धान्त कौमुदी)

विशेष—यह प्रतिबन्ध सदैव मान्य नहीं रहा है। जैसे—'आजघ्ने विषम विलोचनस्य वक्षः' (किरात १७।६३)।

जुहोत्यादि, दिवादि तथा स्वादि गण की धातुएँ

३२९—'दा' धातु (देना) स्वतः उभयपदी है, परन्तु 'आ' उपसर्ग पूर्वक 'दा' धातु लेने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'नादत्ते भवतां

स्नेहेन या पल्लवम्' (शाकुन्तल० ४)—जो स्नेह के कारण आप लोगों (वृक्षों) के पत्तों को नहीं तोड़ती थी। परन्तु 'मुखं व्याददाति' मुख फैलाता है। और भी—'विपादिकां व्याददाति' फुंसी को फोड़ता है। 'नदी कूलं व्याददाति'। परन्तु 'व्याददते पिपीलिकाः पतंगस्य मुखम्' (महाभाष्य)।

३३० - 'सं' पूर्वक 'वह्' धातु तैयार होने या तैयार करने के अर्थ में आत्मनेपदी है। जैसे—'छेत्तुं वज्रमणीन् संनह्यते' (भर्तृ० २।६)—वज्र मणियों को काटने के लिए तैयार है। 'युद्धाय संनह्यते' (महाभाष्य) युद्ध के लिए सन्नद्ध होता है।

३३१—'सं' पूर्वक 'श्रु' धातु सकर्मक के रूप में परस्मैपदी है। जैसे— मद्वचनं न संशृणोति'—मेरे वचन को नहीं सुनता है। परन्तु अकर्मक के रूप में प्रयुक्त आत्मनेपदी होती है। जैसे—'संशृणुष्व कपे' (भट्टि० १६) ऐ बन्दर, सुन।

तुदादिगण की धातुएँ

३३२—'अप' उपसर्ग पूर्वक 'कॄ' धातु (विक्षेप, बिखेरना) फैलाना अर्थ में और 'प्रसन्नता में खरोंचने' (अपना निवास स्थान बनाने के लिए) अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'छायापस्किरमाणविष्किर' (उत्तर० २)— छाया में भोजन के लिए जमीन को खरोंचते हुए जानवर। इसी प्रकार— 'अपस्किरते कुक्कुटो भक्ष्यार्थी, श्वा आश्रयार्थी। परन्तु 'अपकिरति कुसुमम्'— फूलों को बिखेरता है।

३३३—'अव' उपसर्ग पूर्वक 'गॄ' (निगल जाना) धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—'अवगिरते ग्रासम्'—ग्रास निगलता है।

(अ) 'सम्' पूर्वक 'गॄ' धातु 'प्रतिज्ञा करने' अर्थ में आत्मनेपदी होती

है। जैसे—'संगिरते शब्दम्' अपने वचन की प्रतिज्ञा करता है। परन्तु 'संगिरति ग्रासम्'।

३३४—'आ' उपसर्ग पूर्वक 'प्रच्छ्' धातु 'विदा होने' अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'आपृच्छस्व प्रियसखममुम्' (मेघदूत १०) उस प्रिय अपने मित्र से विदा होना।

३३५—'नि' उपसर्ग पूर्वक—'विश्' धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—'किष्किन्धाद्रिं न्यविशत' (भट्टि० ६।१४३)—किष्किन्धापर्वत पर गये।

(अ) 'अभि' के योग में भी आत्मनेपदी होती है। जैसे—'भयं तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनम्' (मुद्रा० ४)—सब से पहिले तो सेवक के हृदय में स्वामी का भय समा जाता है।

रुधादिगण की धातुएँ

३३६—"भुज्"[1] धातु रक्षणार्थ के अतिरिक्त आत्मनेपदी होती है। जैसे—'ओदनंभुंक्ते' भात खाता है। 'सदयं बुभुजे स मेदिनीम्' (रघु० ८।७) उसने दया भाव से पृथ्वी का उपभोग (शासन) किया। 'वृद्धो जनोदुःखशतानिभुंक्ते' बुड्ढे लोग सैकड़ों कष्ट भोगते हैं। परन्तु, 'भुनक्ति स्वराज्यम्' (अनर्घ्यराघव ३) अपने देश का शासन प्रबन्ध करता है।

३३७—'युज्'[2] धातु यज्ञपात्रों के अतिरिक्त 'प्र' और 'उप' अथवा साधारणतया किसी भी स्वरान्त या स्वरादि उपसर्गपूर्वक आत्मनेपदी होती है। जैसे—'प्रयुञ्जानः प्रिया वाचः' (भट्टि० ३६)—प्रिय वचनों का प्रयोग करता हुआ। 'आश्रम धर्मे नियुंक्ते' (शाकुन्तल० १) 'तमन्वयुंक्त' ('रघु०

१—भुजोऽनवने। (१।३।६६) २—प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु। (१।३।६४) स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम् (वार्तिक)

८।१८)। 'पणबन्धमुखान् गुणानजः षडुपायुंक्त' (रघु० ८।२१) अज ने सन्धि आदि छःहों गुणों का प्रयोग किया।

तनादिगण की धातुएँ

३३८—'कृ'[1] धातु स्वतः उभयपदी है। परन्तु उपसर्ग युक्त 'कृ' धातु साधारणतया निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी होती है :—

(१) किसी को आघात पहुँचाना। जैसे—'उत्कुरुते'—किसी के विरुद्ध सूचना देता है।

(२) दोष लगाना, निन्दा, विजय। जैसे—श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते'—बाज पक्षी बटेर को दबोच लेता है।

(३) सेवा या परिचर्या करना। जैसे—'हरिमुपकुरुते'—हरि की परिचर्या करता है।

(४) बलात्कार करना। जैसे—'परदारान् प्रकुरुते'—पराई स्त्रियों के साथ बलात्कार करता है।

(५) तैयार करना, सजाना। जैसे 'एधोदकस्योपस्कुरुते'—ईंधन पानी को तैयार करता है, उबालता है।

(६) कहना या वर्णन करना। जैसे—'गाथाः प्रकुरुते' कहानियाँ कहता है।

(७) लगाना, कार्य में लगाना। जैसे—'शतं प्रकुरुते'—एक सौ लगाता है (किसी काम में)। इसी प्रकार 'उपकुर्वन्तमत्यर्थं प्रकुर्वाणोऽनुजीविवत्' (भट्टि० १८)।

(अ) 'उप' पूर्वक 'कृ' धातु उपकार अर्थ में उभयपदी होती है। जैसे—'नहि दीपौ परस्परस्योपकुरुतः' (शांकरभाष्य)—दो दीपक आपस में एक दूसरे का उपकार नहीं करते। 'किं वां भूयः प्रियमुपकरोमि' (मुद्रा० ७)।

१—गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्य प्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः। (१।३।३२)

'सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्' (किरात० ७।२८)—लक्ष्मी उसे कहते हैं जिससे (कोई) दूसरे का उपकार करता है।

(ब) 'अनु'[1] और 'परा' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु परस्मैपदी होती है। जैसे—'पराकरोति दानम्'—दान को अस्वीकार कर देता है। 'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य' (कादम्बरी ६)।

३३९—'अधि'[2] पूर्वक 'कृ' धातु सहन करना, वश में करना अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'शत्रुमधिकुरुते'—शत्रु को क्षमा अथवा अभिभूत कर देता है। परन्तु 'मनुष्यानधिकरोति शास्त्रम्' शांकर भाष्य) शास्त्र मानवों को अधिकार प्रदान करता है।

३४०—'वि'[3] पूर्वक 'कृ' धातु 'बोलने' अर्थ में 'शब्द'कर्मक होती हुई आत्मनेपदी होती है। जैसे—'स्वरान् विकुरुते'—स्वर करता है (बोलता है)। परन्तु 'चित्तं विकरोति कामः'—काम चित्त में विकार उत्पन्न करता है।

(अ) 'वि' उपसर्ग पूर्वक अकर्मक के रूप में 'कृ' धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे 'विकुर्वे नगरे तस्य' (भट्टि० २१)—उसके नगर में मैं इच्छा पूर्वक आचरण करूँगा। 'विविधं (चेष्टे)'।

क्र्यादि गण की धातुएँ

३४१—[4] परि, वि और अव उपसर्ग पूर्वक 'क्री' (खरीदना) धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—'कृतेनोपकृतम् वायोः परिक्रीणानम्' (भट्टि० ८)

---

१ अनुपराभ्यां कृञः (परस्मैपदं) (१।३।७९)

२ अधेः प्रहसने (१।३।३३)।

३ वेः शब्द कर्मणः। अकर्मकाच्च (१।३।३४-३५)।

४ परिव्यवेभ्यः क्रियः। (१।३।१८)

—वायु के उपकारों का प्रतिकार कार्यद्वारा करते हुए को। 'यस्तानि विक्रीणीते' (याज्ञवल्क्य० २)—जो उनका विक्रय करता है।

३४२—'ज्ञा'[1]—धातु स्वतः उभयपदी है। जैसे—'जानासि विनोदयितुम्' (उत्तर० १) 'जानीते हि भवान्' (विक्रमो० २) 'अप' पूर्वक 'ज्ञा' धातु 'अस्वीकार करना' 'छिपाना' अर्थों में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'शतमपजानीते' एक सौ छिपाता है।

(अ)—'सम्' और 'प्र' पूर्वक 'ज्ञा' धातु 'किसी के विषय में सोचने' के अर्थ के अतिरिक्त आत्मनेपदी होती है। जैसे—'शतं संजानीते'—सौ के विषय में सोचता है। 'हरचापारोपणेन कन्यादानं प्रतिजानीते' (प्रसन्न राघव ४)—शंकर के पिनाक को चढ़ा देने पर कन्यादान करने को सोचता है। परन्तु-'मातरं मातुर्वा संजानाति'—माता के विषय में सोचता है।

(ब) 'अनु' पूर्वक 'ज्ञा' धातु उभयपदी होती है। जैसे—'अनुजानीहि मां गमनाय' (उत्तर० ३) 'ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य' (भट्टि० ३।२३)—तब पुत्र को जाने की आज्ञा दे दी।

(स) 'ज्ञा' धातु का सन्नन्त रूप सदैव आत्मनेपदी होता है। जैसे—'जिज्ञासमानानुचरस्यभावम्' (रघु० २।२६)—अपने सेवक (दिलीप) का भाव जानने की इच्छा करती हुई।

चुरादिगणी और प्रेरणार्थक धातुएँ

३४३—चुरादिगणी और प्रेरणार्थक धातुएँ साधारणतया उभयपदी होती हैं। परन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं।

(अ)[2] सकर्मक धातुओं के प्रेरणार्थक रूप अथवा मूल रूप के कर्म का

१—अपह्नवे ज्ञः। सं प्रतिभ्यामनाध्याने (१।३।४४,४६)।

२—णेरणौ यत्कर्मणौ चेत्स कर्ताऽनाध्याने। (१।३।६७)

प्रेरणार्थक में कर्त्ता होने की परिस्थिति में आत्मनेपद का प्रयोग होता है, केवल उत्कण्ठित होकर स्मरण करने के अर्थ में नहीं। जैसे—'भक्ता भवं पश्यन्ति' भक्त भव (शिव) को देखते हैं। 'भवो भक्तान् दर्शयते'-भव (शिव) भक्तों को दिखाते हैं। 'दर्शयसे नित्यं मनुष्यान्' (महाभारत २।५।८६) परन्तु 'स्मरयति वनगुल्मः कोकिलम् = 'उत्कण्ठापूर्वकस्मृतौ विषयो भवति' (सिद्धान्त कौमुदी)—इससे यह स्पष्ट है कि प्रेरणार्थक के सामान्य प्रयोग से उक्त प्रयोग सर्वथा भिन्न है। 'भक्तान् भवं दर्शयति देवदत्तः'।

(ब) सामान्यतया प्रेरणार्थक क्रिया, जब क्रिया का फल कर्त्ता पर रहता है, आत्मनेपदी होती है। जैसे—कटं कारयते' अपने लिए चटाई बनवाता है। 'स्वार्थं कारयमाणाभिः' (भट्टि० ४८) अपना स्वार्थ सिद्ध कराने वाली नारियों से।

३४४—[1] बुध्, युध् नश्, जन्, अधि + ई, प्रु, द्रु, स्रु, धातुओं का प्रेरणार्थक रूप परस्मैपद में होता है। जैसे—'बोधयति पद्मं, नाशयति दुःखं, जनयति सुखम् इत्यादि'।

(अ) भक्षण, निगिरण (निगलना) और कम्पन अर्थ वाली धातुएँ परस्मैपदी होती हैं, केवल अद् धातु अपवाद है, जब 'अद्' धातु की क्रिया कर्त्ता के लिए की जाती है तब।

३४५—पा (पीना), दम्, आ + यम्, आ + यस्, परि + मुह, रुच्, नृत् और अभि + वद् धातुओं का फल जब कर्त्ता पर होता है, तब आत्मनेपदी होती हैं। जैसे—'पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः' (रघु० १३।६)।

(अ) आ + मन्त्र धातु सम्बोधित करने अथवा विदा करने या विदा होने अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—'आमन्त्रयस्व सहचरम्' (शाकुन्तल० ३)—अपने मित्र से विदा लो।

---

(१) बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः (१।३।८६)।

अभ्यास

१—सा दूरस्थितैव पाणिना वेणुलतामादाय नरपतिप्रबोधनार्थं सकृत्सभाकुट्टिममाजघान। (कादम्बरी० १)

२—सखे सीरध्वज हृदयमेवामंत्रयस्व किमर्थं कृतार्थमसीति। (अनर्घ राघव १३)

३—सखे सैव धन्या गणिकादारिका यामेवं भवन्मनोभिनिविशते। (दशकु० २।२)

४—इयमतिक्रम्य स्वकुलधर्ममर्थनिरपेक्षा गुणेभ्य एव स्वं यौवनं विचिक्रीषते। (दशकु० २।२।)

५—राज्ञा च तथानुशिष्टा सत्यप्यनाश्रवैव सा यदासीत्तदास्याः स्वसा माता च निर्बंधेन राज्ञे समगिरेताम्। (दशकु० २।२)

६—मानी मानसारो महेश्वरं समाराध्यास्माद्भयदां गदां लब्ध्वा आत्मानमप्रतिभटं मन्यमानो महाभिमानो भवंतमभियोक्तुमुद्युंक्ते। (दशकु० १।१)

७—ततः प्रवृत्तासु प्रतिसंकथासु सुहृदां वृत्तांतं श्रोतुं कृतप्रस्तावस्तांश्च तदुक्तावन्वयुंक्त। (दशकु०७।१)

८—तथास्मासु प्रतिविधाय तिष्ठत्सु राजापि विज्ञापितोदन्तो जातानुतापः पारग्रामिकान् प्रयोगान् प्रायः प्रायुंक्त। (दशकु०२।४)

९—मदसिक्तमुखैर्मृगाधिपः करिभिर्वर्तयते स्वयं हतैः।
लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः॥
(किरात० २।१८)

१०—उज्झत्सु संहार इवास्तसंख्यमह्नाय तेजस्विषु जीवितानि।
लोकत्रयास्वादनलोलजिह्वं न व्याददात्याननमत्र मृत्युः॥
(किरात०१६।१६)

११—मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते ।
प्रदीपः स्नेहमादत्ते दशयाभ्यंतरस्थया ॥ (शिशु०२।८५)
१२—षाड्गुण्यमुपयुंजीत शक्त्यपेक्षो रसायनम् ।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवंति च ॥ (शिशु०१।९८)
१३—कृतसीतापरित्यागः स रत्नाकरमेखलाम् ।
बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम् ॥ (रघु०१५।१)
१४—कुलभार्यां प्रकुर्वाणमहं द्रष्टुं दशाननम् ।
यामि त्वरावान् शैलेंद्र मा कस्यचिदुपस्कृथाः ॥
योऽपचक्रे वनात्सीतामधिचक्रे न यं हरिः ।
विकुर्वाणः स्मरानद्य बलं तस्य निहन्म्यहम् ॥ (भट्टि० ८।१९,२०)
१५—आत्मानमपजानानः शशमात्रोऽनयद्दिनम् ।
ज्ञास्ये रात्राविति प्राज्ञः प्रत्यज्ञास्त क्रियापटुः ॥ (भट्टि०८।२६)
१६—संजानानान् परिहरन् रावणानुचरान् बहून् ।
लंकां समाविशद्रात्रौ वदमानोऽरिदुर्गमाम् ॥ (भट्टि०८।२७)



अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१—अथ कुपितोऽर्थपतिर्व्यवहर्तुमर्थगर्वादभियोद्यते । तं च भूयश्चित्रैरुपायैः कौपीनावशेषं करिष्यावः । (दशकु० २।२)

२—प्रजाभिस्तु बन्धुमन्तो राजानो न ज्ञातिभिः । तदुत्तिष्ठ कुरुष्व पुरेव सर्वाः क्रियाः। कृताहारे त्वय्यहमपि सुखमुपभोक्ष्ये पथ्यमित्येवमभिहितस्यास्य दिधक्षन्निव हृदयमतितरां शोकानलः संदुधुक्षे । (हर्ष० ५)

३—सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुंक्ते । (रघु० १३।४३)

४—स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संश्रृणुते स किंप्रभुः ।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः ॥ (किरात० १।५)

५—सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः समानमानान् सुहृदश्च बंधुभिः ।
स संततं दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ॥
(किरात० १।१०)

६—मदमानसमुद्धतं नृपं न वियुंक्ते नियमेन मूढता ।
अतिमूढ उदस्यते नयान्नयहीनादपरज्यते जनः ॥ (किरात० २।४६)

७—स राजलोकः कृतपूर्वसंविदारंभसिद्धौ समयोपलभ्यम् ।
आदास्यमानः प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ ॥ (रघु० ७।३१)

८—असंविदानस्य ममेश संविदां तितिक्षितुं दुश्चरितं त्वमर्हसि ।
विरोध्य मोहात्पुनरभ्युपेयुषां गतिर्भवानेव दुरात्मनामपि ॥
(किरात० १८।४२)

९—तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं प्रेक्ष्य शांतिमधिकृत्य कृत्यवित् ।
अन्वयुंक्त गुरुमीश्वरः क्षितेः स्वंतमित्यलघयत्स तद्व्यथाम् ॥
(रघु० १९।६२)

१०—नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा ।
परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम् ॥ (रघु० ८।१८)

११—समनद्ध किमंग भूपतिर्यदि संधित्सुरसौ सहामुना ।
हरिराक्रमणेन सन्नतिं किल विभ्रीत भियेत्यसंभवः ॥ (शिशु० १६।३४)

१२—न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां कार्त्स्न्येन गृह्णाति लिपिं न यावत् ।
सर्वाणि तावच्छ्रुतवृद्धयोगात् फलान्युपायुंक्त स दंडनीतेः । (रघु० १८।४३)

१३—नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसंते समितिषु सुराः सक्तवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ॥ (शाकुन्तल० २)

१४—यन्मां विधेयविषये स भवान्नियुंक्ते
स्नेहस्य तत्फलमसौ प्रणयस्य सारः । (मालती० १)

१५—अवाद्वायुः शनैरस्यां लतां नर्तयमानवत् ।
नायासयंत संत्रस्ता ऋतवोऽन्योन्यसंपदः ॥
ज्योत्स्नामृतं शशी यस्यां वापीर्विकसितोत्पलाः ।
अपाययत संपूर्णः सदा दशमुखाज्ञया ॥
प्रादमयंत पुष्पेषु यस्यां बन्द्यः समाहृताः ।
परिमोहयमाणाभी राक्षसीभिः समावृताः ॥
यस्यां वासयते सीतां केवलं स्म रिपुः स्मरात् ।
न त्वरोचयतात्मानं चतुरो बुद्धिमानपि ॥ (भट्टि० ८।६१ से ६४ तक)

१६—उत्क्षिप्तगात्रः स्म विडंबयन्नभः समुत्पतिष्यन्तमृगेन्द्रमुच्चकैः ।
आकुंचितप्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम् (शिशु० १२।५)

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१—ऋष्यशृंग ने सीता जी को वरदान दिया (आ + शास्) कि तू वीरपुत्र-प्रसविनी बने ।

२—जब इस सांवातिक द्वन्द्व युद्ध की तैयारी करना (सं + नह्) तब अपने उत्तम शस्त्रों को अपने साथ ले लेना (आ + दा)।

३—महाराज सुनिये, आप मेरा अपकार कर सकते हैं, मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति को मुझसे अलग कर सकते हैं, परन्तु सत्य के प्रति हमारी निष्ठा को आप मुझसे नहीं छीन सकते ।

४—व्याघ्रचर्म से आवृत गदहे ने मैदान में चरते हुए पशुओं को भयभीत कर दिया ।

५—छः साधनों में से 'साम' को सर्व प्रथम प्रयोग में लाना चाहिए (प्र + युज्) यदि वह असफल हो तब अन्य साधनों का प्रयोग करना चाहिए ।

६—चरवाहे ने गायों को सरोवर के स्वच्छ जल को पिलाया (पा) और तब उनको घर ले गया, क्योंकि सूर्य अस्तप्राय था।

७—जब किसी मनुष्य को दूर जाना होता है तब वह गुरुजनों से आज्ञा लेता है (आ + प्रच्छ्) और अपने कुल देवताओं को नमस्कार करता है।

८—सूर्य की प्रचण्ड धूप से तप्त हाथी तुरन्त अगाध जलयुक्त सरोवर में कूद पड़ा (नि + विश्)।

९—सन्तान की भाँति अपनी प्रजा का पालन करने वाला (भुज्) राजा स्वयं अनन्त सुख का उपभोग (उप + भुज्) करता है और शासन के प्रति प्रजा की श्रद्धा को प्राप्त करता है।

१०—एक जलपात्र के ऊपर लटकती हुई मछली के प्रतिविम्ब को नीचे की ओर देखकर, उसका लक्ष्यवेध करने वाले को द्रुपदराज ने अपनी कन्या का दान करने की प्रतिज्ञा की।

११—यज्ञ के घोड़े का अन्वेषण करते हुये सगर के पुत्र कपिल मुनि से मिले और उनके ऊपर अश्व के अपहरण का अभियोग लगाया (अभि + युज्)।

१२—दुर्भाग्यवश अत्यन्त हड़बड़ाहट की दौड़ में शीघ्रता में अन्धी-सी माता ने अपने प्रिय शिशु के सिर को एक पत्थर की चट्टान से टकरा दिया (आ + हन्) और मार डाला।

१३—कौआ रोटी अथवा अन्य खाद्यपदार्थों के टुकड़ों को चुनता है (अप + कृ) और इस प्रकार अपनी जीविका चलाता है।

१४—फारस के बादशाह ने एक बार एक दार्शनिक से पूछा (अनु + युज्) कि आप राजा में किस चीज को मूल्यवान समझते हैं। 'तृष्णा का अभाव' उसका उत्तर था।

१५—इस कलियुग में अपनी लड़कियों को माँ बाप प्रायः धन के लिए बेंच देते हैं (वि + क्री) और बुढ़ाई के कारण अधिक झुके हुये लोगों के साथ उनका विवाह कर देते हैं। क्या यह दानवी कृत्य नहीं है?

भाग ४

वाक्य-विश्लेषण तथा वाक्य-संकलन

३४६—प्रथम तीन भागों में हमने वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के संबंध-निर्धारण के नियमों पर विचार किया है। हमने मुख्य-मुख्य व्याकरणात्मक शब्द रूपों तथा उपयोगी संयोजक शब्दों के अर्थों और उनके प्रयोगों की भी व्याख्या की है, जिनको प्रो० बेन ने निम्न प्रकार से समझाया है—"सभी विषयों तथा शैलियों से समान रूप से सम्बद्ध (ये व्याकरणात्मक रूप एवं संयोजक शब्द) निबन्ध-रचना के चूल (मूल सिद्धान्त) हैं।" ऐसे रूपों तथा शब्दों की व्याख्या संस्कृत में अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि उपलब्ध संस्कृत-व्याकरण-ग्रन्थों में इन विषयों पर बहुत कम अथवा अधूरा विचार किया गया है, यद्यपि इस प्रकार की व्याख्या करने पर लेखक का यह कार्य 'शब्द-कोश-संकलयिता' के क्षेत्र का समझा जायेगा।

वाक्य-रचना-प्रकार अथवा कारक-प्रक्रिया के नियमों को सरल तथा समझने योग्य बनाने के लिए 'वाक्य-विश्लेषण' पर विचार करना आवश्यक है। इससे छात्रों को वाक्य के विभिन्न विभागों और उनके परस्पर सम्बन्धों को निश्चित करने की क्षमता प्राप्त होगी। वाक्य-विश्लेषण द्वारा संस्कृत-निबन्ध-रचना सुगम हो जायेगी और इससे विद्यार्थियों को संस्कृत से अन्य भाषाओं और अन्य भाषाओं से संस्कृत भाषा में अनुवाद करने में बहुत सहायता प्राप्त होगी।

विभाग १

वाक्य-विश्लेषण

३४७—पूर्ण विचार को व्यक्त करनेवाले शब्द-समूह को वाक्य कहते हैं। जिसमें केवल एक विचार की अभिव्यक्ति हो उसे पद कहते हैं। उद्देश्य और विधेय से रहित दो या दो से अधिक पद-समूह को 'पद-समुच्चय' कहते हैं, और परिमित तथा पूर्ण-विचार युक्त शब्द-समूह को वाक्य कहते हैं। जैसे—रामः, सुवर्णं, नीतिः (पद), राम विवासनं, अग्नितप्तं सुवर्णं, जनहितावहानीतिः (पदसमुच्चय) और राम विवासनं कैकेय्या अभिमतं, अग्नितप्तं सुवर्णं विलिनाति, जनहितावहा नीतिः राज्ञा अनुरुध्यते—(वाक्य)।

नोट—साधारण, आज्ञात्मक, आशीर्वादात्मक तथा प्रश्नवाचक सभी प्रकार के वाक्य निष्कर्ष रूप में एक ही हैं।

३४८—प्रत्येक वाक्य में दो भाग होते हैं—उद्देश्य और विधेय। जिसके विषय में कुछ कहा जाता है, वह उद्देश्य है और उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाता है वह विधेय है। जैसे—'सविता उदेति'—सूर्य उदय होता है। यहाँ 'सविता' उद्देश्य है और 'उदेति' विधेय है।

३४९—वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—१—साधारण, २—मिश्रित और ३—संयुक्त।

साधारण वाक्य में एक उद्देश्य और एक समापिका क्रिया होती है अथवा समापिका क्रिया के स्थान पर जो भी विधेय हो (आगे देखिए)। जैसेः—'अहं पापकारिणी महाभागमद्राक्षम्' (कादम्बरी १६६), 'धिक् ताम्' (भर्तृ० २।२)।

जिस वाक्य में एक मुख्य उद्देश्य और एक मुख्य विधेय हो और दो या दो से अधिक समापिका क्रियाएँ हों उसे मिश्रित वाक्य कहते हैं। (मिश्रित वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य होता है और अन्य आश्रित उपवाक्य होते

हैं)। जैसे—'यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता' (भर्तृ० २।२), 'यदि गर्जति वारिधरो (स) गर्जतु' (मालविका० ५)।

जिसमें दो या दो से अधिक स्वतन्त्र उपवाक्य (मुख्य उपवाक्य) हों उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं। जैसे—'दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मघवा दिवं' (दुदोह च) (रघु० १।२६)।

साधारण वाक्य

३५०—साधारण वाक्य में केवल एक उद्देश्य और एक समापिका क्रिया होती है। यह साधारण वाक्य का बिलकुल प्रारम्भिक स्वरूप है, इसी साधारण वाक्य से बढ़े हुये और पेचीदे वाक्यों के स्वरूपों को आगे वर्णित विधियों में देखा जा सकता है।

३५१—साधारण वाक्य के प्रारम्भिक तत्वों—उद्देश्य और विधेय—में गौण तत्वों अथवा विशेषणों को जोड़कर उन्हें बढ़ाया जा सकता है और ये गौण तत्व भी बढ़ाये जा सकते हैं।

उद्देश्य

३५२—कोई भी साधारण संज्ञापद अथवा संयुक्त संज्ञापद अथवा सर्वनाम पद उद्देश्य हो सकता है।

'आत्मा' तपस्यायोजितः (कादम्बरी १७३); 'शुकनासः' सविस्तरमुवाच (कादम्बरी १०२); 'भरतशत्रुघ्नौ' द्वन्द्वं बभूवतुः (रघु० १०।८१); 'त्रैलोक्यं' अपि पीडितं'; 'पटुत्वं' कथायोगेन बुध्यते (हितो०१); 'मरणं' प्रकृतिः शरीरिणाम् (रघु०८।८७); 'सोऽप्याचचक्षे' (दशकु०२।८)।

नोट—(अ)—क्रिया की विभक्ति स्वतः कर्त्ता के वचन और पुरुष का बोध कराती है अतः प्रायः इसका प्रयोग (कर्त्तापद का उल्लेख) नहीं किया जाता। जैसेः—(भवान्) अपनयतु नः कुतूहलं (कादम्बरी १८); 'कथं मन्दभाग्यः करोमि (अहं) (उत्तर०३); (त्वं) ब्रूहि रामचरितं (उत्तर०२)

(ब)—विशेषण का प्रयोग प्रायः बिना विशेष्य के भी होता है। जैसे—'विद्वान्' सर्वत्र पूज्यते; 'द्वावपि' आगमिनौ (मालविका० ३)।

(स)—संख्यावाचक शब्दों का प्रयोग प्रायः वाक्य के उद्देश्य के रूप में होता है। जैसे—शरदाम् 'अयुतं' ययौ (रघु० १०।१), 'शतं' अनूच्यमायुष्कामस्य।

३५३—संज्ञा और सर्वनाम के विशेषणों के विभिन्न साधनों द्वारा कर्त्ता का विस्तार किया जा सकता है—

(१) सार्वनामिक अथवा कृत्प्रत्ययान्त, गुणबोधक अथवा परिमाण बोधक विशेषणों द्वारा—'स' राजा किमारम्भः सम्प्रति (उत्तर० २)—का 'इयमन्या' विभीषिका (उत्तर० ४); 'व्रजंश्च' (स) समर्थयामास (कादम्बरी १३२), एवं 'अभिधीयमानः' स प्रत्यवादीत् (कादम्बरी १४७); पदपंक्तिर्दृश्यते 'अभिनवा' (शाकुन्तल० ३); चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीम कर्मणां हतानि (उत्तर० ८)।

(२) षष्ठी विभक्ति युक्त संज्ञा अथवा सर्वनाम पद द्वारा—जैसे—'रामस्य करुणोरसः (उत्तर० ३); अपिकुशली 'ते' गुरुः (रघु० ५।४); अन्यविषया न तु दृष्टिः 'अस्याः' (शाकुन्तल० ३)

(३) समानाधिकरण संज्ञा द्वारा—जैसे—तस्मिन् 'भोजवंशभूषणं' 'सम्भावयिता बुधान्', पुण्यवर्मा नामासीत् (दशकुमार० २।८)

विशेष—सकर्मक क्रिया द्वारा निष्पन्न कृदन्तीय विशेषण कर्म कारक की भी विशेषता प्रकट करते हैं। जैसे—

'आसेदिवान्' रत्नवत् 'आसनं' सः गुहेनोपमेयकान्तिरासीत् (रघु० ६।४); 'अनुयास्यन् मुनितनयां' (अहं) विनयेन वारितप्रसरः (शाकुन्तल० १); 'रसिकमनांसि समुल्लासयन्' वसन्तसमयः समाजगाम (दशकुमार १।५)।

नोट—संस्कृत में भूतकालिक कृत्प्रत्ययान्त, जिनका रूप नहीं बदलता, कालवाचक क्रिया विशेषण अव्यय के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इन पर विधेय-प्रस्तार के प्रकरण में विचार किया जायेगा।

३५४—संस्कृत में वाक्यों का विस्तार साधारणतया समासों पर आश्रित है। समास संस्कृत के सार (निष्कर्ष) हैं और समस्त-पद-रहित अनुच्छेदों का

प्राप्त होना बड़ा कठिन है। वैयाकरणों ने इन समासों की लम्बाइयों की कोई सीमा नहीं निर्धारित की है और संस्कृत के लेखकों द्वारा इस अधिकार का प्रयोग कितनी स्वतंत्रता-पूर्वक (कहीं-कहीं तो बिलकुल भद्दे रूप में) किया गया है, इसको दण्डी, सुबन्धु, बाण और भवभूति की भी कृतियों में देखा जा सकता है। (मालती माधव के तृतीय अंक में लवंगिका के वक्तव्य और पाँचवें अंक के प्रसिद्ध दण्डक छन्द को देखिए)। उचित लम्बाई के समासों से वाक्य का सौन्दर्य बढ़ जाता है और शब्दों के प्रयोग में बहुत कमी हो जाती है।

३५५—संज्ञा और सर्वनाम पदों के विस्तार के लिए सबसे अधिक प्रयोग तत्पुरुष और बहुव्रीहि समासों का होता है।

(१) साधारण विशेषण के स्थान पर व्यधिकरण तत्पुरुष, कर्मधारय, उपपद तत्पुरुष और बहुव्रीहि का प्रयोग होता है। "लपिता 'तद्विटपाश्रिता' लता" (रघु० ८।४७)। 'अबलाविप्रयुक्तः कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः स कामी' (मेघदूत २)। 'उटजद्वारविरूढं' नीवारबलिम्' (शाकुन्तल० ४)। 'ताम्बूलकरंकवाहिनी तरलिका' (कादम्बरी १४८)। 'ग्रहीतप्रतिमुक्तस्य तस्य' (रघु० ४।४३) 'कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः' (शाकुन्तल० १)।

'षष्ठी तत्पुरुष' का प्रयोग प्रायः सम्बन्ध कारक के लिए होता है। 'कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः' (रघु० ५।१)। 'नष्टाशंका हरिणशिशवः चरन्ति' (शाकुन्तल० १)।

३५६—ऊपर की विधियों की पुनरावृत्ति से अथवा दोनों को मिलाकर उद्देश्य का विस्तार और भी अधिक किया जा सकता है और यदि विस्तृत किये जाने वाले पद संज्ञा अथवा सर्वनाम हैं तो उनका विस्तार और भी अधिक किया जा सकता है।

'एकदा तत्रस्थ एव मृगयानिर्गतो विचरन् (विशेषण) काननं किन्नर-मिथुनमद्राक्षीत्' (कादम्बरी ११६)। 'तनयश्च (षष्ठीतत्पुरुष) हारीतनामा (विशेषण) तापसकुमारकः (समानाधिकरण संज्ञा) सनत्कुमारइव सर्वविद्याव-दातचेताः (विशेषण, बहुव्रीहि समास) सिस्नासु (विशेषण) उपागमत्'

(कादम्बरी ३७)। 'ताभिरष्टाभिः प्रत्यक्षाभिः (तनुभिः का विशेषण) तनुभिः प्रपन्नः (कर्त्ता का विशेषण) ईशो वः अवतु' (शाकुन्तल० १)। 'मदम्बा पूर्णभद्र बोधितार्था (विशेषण) तादृशेऽपि व्यसने (क्रिया विशेषण) नातिविह्वला (विशेषण) कुलपरिजनानुयाता (विशेषण) मत्पितुरुत्तमांगं उत्संगेन धारयन्ती (कर्मयुक्त कृदन्तीय विशेषण तथा क्रिया विशेषण) राज्ञे समादिदेश' (दशकु० २।४)। इसी प्रकार 'तस्य' 'त्रयः' पुत्राः' 'परमदुर्मेधसो' 'वसुशक्तिरुग्र शक्तिरनेकशक्तिश्चेति नामानो' बभूवुः (पंचतंत्र १)। 'दुःखेन तप्यन्ते' 'त्रयो' 'नः' पितरः 'अपरे' (उत्तर० ५)।

विशेष—संज्ञा पदों के इस प्रकार के विस्तार में बाण, दण्डी, सुबन्धु जैसे लेखकों ने व्यक्तियों, स्थानों, नदियों, नगरों आदि के वर्णन में पराकाष्ठा कर दी है। विस्तार उतना ही होना चाहिए जिससे अर्थ में जटिलता और दुरूहता न आवे। जब अर्थ की जटिलता की आशंका उपस्थित हो तो सम्पूर्ण वाक्य को दो या दो से अधिक उप वाक्यों में तोड़ देना चाहिए।

कर्म अथवा विधेय का पूरक

३५७—यदि विधेय एक सकर्मक क्रिया हो अथवा गत्यर्थक क्रिया हो या कोई क्रिया जो उपसर्ग के बल से सकर्मक क्रिया हो जाती हो, तो उसकी पूर्त्ति कर्म द्वारा की जाती है। वह कर्म या तो संज्ञा होगा या सर्वनाम अथवा संज्ञास्थानीय अन्य पद।

'जाबालिं अपश्यम्' (कादम्बरी ४२)। 'आखण्डलः काममिदं बभाषे' (कुमार० ३।११)। 'याति अस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्' (शाकुन्तल० ४) 'विचचार दावं' (रघु० २।८)। 'पत्तिः पदातिं अभ्यपतत्' (रघु० ७।३७)

३५८—कर्त्ता की भाँति कर्म का भी विस्तार किया जा सकता है। (अनुच्छेद ३५३, ३५६ देखिए)। 'त्र्यम्बकं संयमिनं ददर्श' (कुमार० ३।४४) 'विलपन्तं कपिञ्जलमश्रौषम्' (कादम्बरी २६५)। 'तं तस्थिवासं नगरोपकण्ठे

(क्रिया विशेषण)। 'प्रत्युज्जगाम कथकैशिकेन्द्रः' (रघु० ५।६१) 'प्रकृतिवक्रः स कस्य अनुनयं प्रतिगृह्णाति' (शाकुन्तल० ४)। 'इदमव्याजमनोहरं वपुः तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति' (शाकुन्तल० १) 'मेघं आश्लिष्टसानुं वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श' (मेघदूत० २)। 'अवनिपतिस्तु प्रतीहार्या निर्दिश्यमानां तां प्रावृषमिव घनकेशजालां अलकोद्भासिनीं अचिरोपरूढयौवनां अतिशयरूपाकृतिं अनिमेषलोचनो ददर्श' (कादम्बरी ११)।

३५९—बनाना, नामकरण करना, बुलाना, सोचना, विचारना, नियुक्त करना आदि अर्थ को व्यक्त करनेवाली धातुओं के मुख्य कर्म के अतिरिक्त पूरक कर्म भी होते हैं। जैसे—'तमात्मजन्मानं अजं चकार' (रघु० ५।३६)। 'आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते, दर्शनप्रदानमपि अनुग्रहं गणयन्ति' (कादम्बरी १०८)। 'प्रत्याख्यानमपि ईर्ष्यां संभावयति, आक्रोशमपि परिहासम् आकलयति, दोषसंकीर्तनमपि स्मरणोपायं अवगच्छति, अवज्ञानमपि अनियन्त्रणं प्रणयम् उत्प्रेक्षते' (कादम्बरी २३५)।

३६०—दुह, याच्, शास् और नी आदि जैसी धातुएँ द्विकमर्क होती हैं; इनमें एक मुख्य कर्म होता है दूसरा गौण अथवा एक प्रत्यक्ष कर्म होता है दूसरा अप्रत्यक्ष कर्म (अनुच्छेद ४० देखिए)।

३६१—अर्थ की दृष्टि से सकर्मक समझी जाने वाली धातुओं के योग में कभी-कभी विशेष-नियम के कारण चतुर्थ्यन्त, पंचम्यन्त, षष्ठ्यन्त अथवा सप्तम्यन्त संज्ञा या सर्वनाम पदों का प्रयोग होता है। ऐसी परिस्थिति में इन पदों को विधेय का पूरक समझना चाहिए, क्योंकि बिना इनके प्रयोग के अर्थ में पूर्णता नहीं आती। स्पृहयामि दुर्ललिताय 'अस्मै' (शाकुन्तल०७)। 'कुप्यन्ति हितवादिने' (कादम्बरी १०८) 'असूयन्ति मह्यं प्रकृतयः' (विक्रमो० ४)। 'पापात् जुगुप्सते' (महाभाष्य)। 'स्मरसि वा तस्य प्रदेशस्य' (उत्तर०६) 'स' स्निह्यति आवयोः' (उत्तर०६)।

३६२—देना, कहना, प्रतिज्ञा करना, भेजना आदि अर्थों को व्यक्त करने वाली धातुओं के योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है और जिस

को कुछ दिया जाता है, कुछ कहा जाता है, जिससे प्रतिज्ञा की जाती है अथवा कुछ भेजा जाता है, उसे चतुर्थी में रखते हैं। इस चतुर्थ्यन्त पद को अप्रत्यक्ष कर्म समझना चाहिए।

'विप्राय गां प्रतिश्रृणोति,' 'भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः' (रघु०५।३०)। 'तस्मै प्रस्तुतमाचचक्षे' (रघु०५।१६)।

विशेष—दूसरे दृष्टिकोण से ये विधेय के विस्तार समझे जा सकते हैं। उनसे 'किसको'? 'कहाँ'? का उत्तर मिलता है।

विधेय

३६३—विधेय में केवल एक प्रधान क्रिया-मात्र रक्खी जा सकती है। जैसे—'आज्ञापयतु भवान्' (शाकुन्तल० ४)। 'त्वया सह गौतमी यास्यति' (शाकुन्तल० ४)।

३६४—कोई ऐसा विशेषण पद या विशेष्यपद भी विधेय हो सकता है जिनमें 'अस्' धातु का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप में हो या गम्यमान हो। जैसे—'अविवेकः परमापदां पदम्' (किरात०२।३०) 'त्वं असि महसां भाजनम्' (मालती०१)। 'वत्से किं एवं कातरा असि' (शाकुन्तल०४)। गृहीतः सन्देशः' (शाकुन्तल०४)। 'अवहितोऽस्मि' (शाकुन्तल०७)। 'तेन हि श्रेयांसि 'अनतिक्रमणीयानि' (शाकु०७) 'दूषिताः स्थ परिभूताः स्थ रामहतकेन' (उत्तर०१)। 'व्यावर्तिततुरगश्च पुनः चिन्तितवान्' (कादम्बरी १२१)।

(अ) 'अस्' अपूर्णार्थक है, इसलिये इस धातु को पूर्ण अर्थ व्यक्त करने के लिए एक संज्ञा अथवा सर्वनाम पद की अपेक्षा होती है, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों में है। परन्तु जब इसका अर्थ 'अस्तित्व' अथवा 'सत्ता' होता है, तब इसका प्रयोग अकेले भी होता है। जैसे—'हिमालयो नाम नगाधिराजः अस्ति' (कुमार०१।१)।

इसी प्रकार 'भू' धातु भी 'अस्तित्व' अर्थ में अकेली प्रयुक्त होती है, परन्तु 'होना' अर्थ में अपूर्णार्थक रहती है। जैसे—'बभूव' योगी किल कार्तवीर्यः' (रघु०६।३८)।

(ब) कभी-कभी अस, विद्, वृत् धातुएँ विधेय के रूप में बिलकुल ही व्यक्त (प्रकट) नहीं रहतीं।

'मातले, कतमस्मिन्प्रदेशे मारीचाश्रमः' (शाकुन्तल०७), इसमें अस्ति या विद्यते आदि छिपा है।

३६५—कुछ अन्य अपूर्ण विधेयक क्रियाएँ भी हैं। जैसे—भू, वृत् (होना) जन् (होना, उत्पन्न होना), 'भा' दृश् या लक्ष् (कर्मवाच्य) (मालूम पड़ना, ज्ञात होना) इत्यादि, जो विधेय को पूरा करने के लिए संज्ञा अथवा विशेषण पद की अपेक्षा रखती हैं।

तेऽपि 'यथोक्ताः' 'संवृत्ताः' (पंचतंत्र१)। तव प्रजासु विडौजाः 'प्राज्य-वृष्टि र्भवतु' (शाकुन्तल०७) (तुम्हारे राज्य में इन्द्र प्रभूत वर्षा करने वाले हों) 'ईदृशानां विपाकोऽपि 'परमाद्भुतो' जायते' (उत्तर०३)। 'स्वात्यां सागरशुक्ति संपुटगतं (पयः) 'सन्मौक्तिकं' जायते' (भर्तृ०२।६७)। (बहुत अच्छा मौक्तिक उत्पन्न होता है)। 'अय' पांड्यः 'अद्रिराजः' इवाभाति' (रघु० ६।६०)। 'मदन क्लिष्टा' इयमालक्ष्यते' (शाकुन्तल०३) (यह मदनातुर दिखाई पड़ती है)।

(अ) मन् (सोचना, समझना), कृ (परिवर्तन करना) धातुओं का भी कर्म वाच्य में इसी प्रकार प्रयोग होता है। जैसे—'नलिनी पूर्व निदर्शनं मता' (रघु०८।४५)। 'व्याघ्रः कुक्कुरः कृतः' (हितो०४)। इसी प्रकार 'स सेनापति-र्नियुक्तः'।

इसलिए विधेय के रूप में संज्ञा अथवा विशेषण पद उसी विभक्ति में रहते हैं जिस विभक्ति में कर्त्ता होता है अथवा कर्त्ता कारक की परिस्थिति में होते हैं।

३६६—कभी-कभी जब उद्देश्य और विधेय दोनों व्यक्त नहीं रहते—

गम्यमान रहते हैं—तब अव्ययों के प्रयोग द्वारा उन्हीं अव्ययों से ही वाक्य संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जाता है। जैसे—

'धिक्' तां च तं च = 'सा' च 'स' च 'निन्द्यौ' स्तः। 'शिवाय नमः' = शिवः प्रणम्यते। 'अलं' प्रयत्नेन—प्रयत्नेन न 'किमपि' साध्यम् इत्यादि।

२६७—प्रायः अव्यय पद विधेय के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—विषवृक्षोऽपि छेत्तुं 'असाम्प्रतम्' (कुमार० २।५५) = न युज्यते। पवनः आलिंगितुं 'शक्यम्' (शाकुन्तल० ३), = शक्यते। 'कष्टं' खलु अनपत्यता (शाकुन्तल० ६)। 'मनसिज रुजं सा वा दिव्या मम 'अलम्' अपोहितुम्' (विक्रमो० ३)।

विधेय का विस्तार

२६८—विधेय का विस्तार क्रियाविशेषण अव्यय द्वारा अथवा क्रिया विशेषण-की-सी क्षमता रखने वाले पद अथवा क्रिया-विशेषण के समान किसी पद द्वारा किया जा सकता है।

काल-वाचक, स्थान-वाचक, प्रकारवाचक क्रियाविशेषण अव्यय, विस्मयादि बोधक अव्यय, बहुत से विभक्त्यन्त पद (प्रथमा, द्वितीया, षष्ठी और सम्बोधन को छोड़कर), विधेय के विस्तार के साधन हैं। संज्ञापदों के साथ विभक्तियों (परसर्गों) अथवा क्रिया विशेषणों के योग से भी विधेय का विस्तार होता है। जैसे—मया सार्धम्, रामात् विना, वृक्षाणामधः, राज्ञः समक्षम् आदि।

२६९—विधेय के विस्तार को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) समय सम्बन्धी

(२) स्थान सम्बन्धी

(३) प्रकार सम्बन्धी

(४) कार्य तथा कारण सम्बन्धी

———

समय सम्बन्धी विस्तार

३७०—कालवाचक क्रिया विशेषणात्मक विस्तार द्वारा निम्नलिखित बातें व्यक्त होती हैं :—

(१) 'कब' इस प्रश्न वाचक शब्द का उत्तर देते हुए समय का अन्तराल। जैसे—'द्वयं गतं 'सम्प्रति' शोचनीयताम्' (कुमार० ५।७१) 'ततः' प्रविशति कंचुकी' (शाकुन्तल० ५)। 'यास्यति 'अद्य' शकुन्तला' (शाकु० ४) आषाढस्य 'प्रथम दिवसे' मेघं ददर्श' (मेघदूत २)। 'अनुदिवसं परिहीयसे अंगैः' (शाकु० ३)। 'गिरिशमुपचचार 'प्रत्यहं' सा सुकेशी' (कुमार० १।६०)। 'अस्मात्परं' को नः कुले निवपनानि नियच्छति' (शाकुन्तल० ६)

विशेष—(अ) भावे सप्तमी से निष्पन्न पद साधारणतया काल-वाचक क्रियाविशेषण अव्यय की भाँति माने जा सकते हैं। 'अन्तर्हिते शशिनि' सैव कुमुद्वती में दृष्टिं न नन्दयति' (शाकु० ४) अर्थात् चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर आदि।

'गते च केयूरके' चन्द्रापीडमुवाच' (कादम्बरी १८१)।

(ब) इसी प्रकार 'क्त' और 'ल्यप्' प्रत्ययान्त शब्द भी कालवाचक क्रिया विशेषण अव्यय हैं। यदि सकर्मक क्रिया से निष्पन्न होते हैं तो उनका कर्म भी होता है। जैसे—'प्रतिनिवृत्य तं प्रदेशं व्यलोकयम्' (कादम्बरी १२५)। 'महाश्वेता तच्छ्रुत्वा' सुचिरं 'विचार्य' केयूरकम् प्राहिणोत्' (कादम्बरी१८१)। 'अचिरात् पावनं तनयं प्रसूय' मम विरहजां शुचं न गणयिष्यसि' (शाकुन्तल० ४)।

(२) समय का अन्तराल व्यक्त करने के लिए 'कब तक'? इस प्रश्न के उत्तर के रूप में। जैसे—'इयन्ति दिवसानि' प्रजागरकृशो लक्ष्यते' (शाकु० ३)। 'दत्तदृष्टिः 'सुचिरं' व्यचरम्' (कादम्बरी १५२)। 'क्रोशं' कुटिला नदी' (सिद्धान्त कौमुदी)। 'स्तन्यत्यागं यावत् अवेक्षस्व' (उत्तर० ४)।

(३) समय की पुनरावृत्ति, 'कितनीबार'? प्रश्न के उत्तर के रूप में।

जैसे—'वारं वारं तिरयति दृशोरुद्गमं बाष्पपूरः' (मालती० १) 'अह्नः 'द्विः' भुंक्ते' (सिद्धान्त कौमुदी) । 'ताम्यन्मूर्त्तिः श्रयति 'बहुशः' चन्द्रपादान्' (मालती० ३) ।

स्थान सम्बन्धी विस्तार

३७१—स्थान सम्बन्धी क्रिया विशेषणविस्तार से तीन बातें सूचित होती हैं :—

(१) किसी जगह में रहना । 'कहाँ' प्रश्न के उत्तर के रूप में—जैसे—'अस्ति 'अवन्तीषु' उज्जयिनी नाम नगरी' (कादम्बरी ४८) । 'कस्मिंश्चिदधिष्ठाने' कौलिकरथकारौ प्रतिवसतःस्म' (पंचतंत्र १।५) 'एष कण्वस्य महर्षेः 'उपमालिनीतीरं' आश्रमो दृश्यते' (शाकु० १) 'अस्ति 'उत्तरस्यां दिशि' नगाधिराजः' (कुमार० १।१) 'निर्मलनखलग्नमूर्त्तिः 'पादयोः' पतति' (कादम्बरी १६३) ।

(२) किसी स्थान की ओर जाना—'किस ओर ?' प्रश्न के उत्तर के रूप में—जैसे—'सा तरलिका 'क्व' गता' ? (कादम्बरी १७६) । 'नीचैः गच्छति 'उपरि' च दशा' (मेघदूत ११२) । 'गृहाभिमुखं' प्रतस्थे' (हितो० ४) 'मदोद्धताः 'प्रत्यनिलं' विचेरुः' (कुमार० ३।३१) ।

(३) किसी स्थान से अलगाव—'कहाँ से ?' प्रश्न के उत्तर के रूप में—(सामान्यतया अपादान के अर्थ में) जैसे—'यदि मे 'दर्शनपथात्' नापयाति' (कादम्बरी १३२) । 'वनस्पतिभ्यः' कुसुमान्याहरत' (शाकुन्तल० ४) । 'कुतः' इदं सौधमागतं' (दशकुमार० २।५) ।

विशेष—इस सम्बन्ध द्वारा कार्य अथवा अभिप्राय के अतिरिक्त अपादान के सभी अर्थ व्यक्त किये जाते हैं । जैसे—'तीक्ष्णात्' उद्विजते' (मुद्रा० ३) । 'दिवाकरात्' अन्धकारं रक्षति' (कुमार० १।१२) ।

प्रकार सम्बन्धी विस्तार

३७२—प्रकार वाचक क्रियाविशेषण सम्बन्धी विस्तार से निम्नलिखित सम्बन्ध व्यक्त होते हैं :—

(१) किसी कार्यव्यापार का प्रकार (किस प्रकार ?)—'चन्द्रापीडः 'सविनयं' अवादीत्' (कादम्बरी १३४)। 'माधवः 'सलज्जं' अधोमुखस्तिष्ठति' (मालती० १)। 'को वा दुर्जनवागुरासु पतितः 'क्षेमेण' यातः पुमान्' (पंचतंत्र १।२)। 'तदिदं 'कणशो' विकीर्यते' (कुमार० ४।२७) 'त्वरितं' अपसर्पतां तरुगहनेन' (उत्तर० ४)। 'अथवा 'कथं' भवान् मन्यते' (मालविका० १)। 'अयत्नेनैव' उपहासास्पदतामीश्वरो नयति जनं' (कादम्बरी १५१)। 'प्रकृत्या यद्वक्रम्' (शाकुन्तल०)।

(२) मात्रा—'तमवेद्य सा 'भृशं' रुरोद' (कुमार० ४।२६)। 'स—राज्यं गुरुणादत्तं प्रतिपद्य 'अधिकं' बभौ' (रघु० ४।१) 'यावच्छक्यं' सुहृदसवो रक्षणीयाः' (कादम्बरी १५१)।

विशेष—तुलनात्मक अपादान को भी इसी नियम के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है। जैसे—'मोहात्' प्रबोधः कष्टतरोऽभूत्' (रघु० १४।५६)। 'गृहं 'कान्तारात्' अतिरिच्यते' (पंचतंत्र ४।१)।

(३) किसी कार्य का साधन—जैसे—'संचूर्णयामि 'गदया' न सुयोधनोरु' (वेणी० १)। 'क्वचित् 'पथा' संचरते सुराणां' (रघु० १३।१९)। 'विसृजति 'हिमगर्भैर्मयूखैः' अग्निमिन्दुः' (शाकुन्तल० ३)

विशेष—सभी क्रियात्मक (प्रयोगात्मक) कार्यों के लिए किसी क्रिया के कर्त्ता को व्यक्त करने वाले साधन को इस नियम में रक्खा जा सकता है। जैसे— 'जनहितकर्त्ता त्यज्यते 'पार्थिवेन' (पंचतंत्र १।२)। 'त्वया' 'चन्द्रमसा' च अतिसंधीयते कामिजनसार्थः' (शाकुन्तल० ३)। 'इदं 'अशरणैः' अद्याप्येवं रुद्यते' (उत्तर० ३)।

अथवा किसी क्रिया के कर्त्ता का बोध कराने के कारण इसको कर्त्ता के वर्ग में रक्खा जा सकता है।

(४) सहयोगी परिस्थितियाँ—जैसे—'त्वया सह' निवत्स्यामि (उत्तर० २)। 'रत्नं समागच्छतु 'काञ्चनेन' (रघु० ६।७६)। 'जटाभिः' तापसः (भवति अथवा ज्ञायते)। 'महत्या सेनया' निर्जगाम। 'स्मरः क्षणमप्युत्सहते न 'मां विना' (कुमार० ४।३६)।



प्रयोजन सूचक क्रियाविशेषण विस्तार

३७३—इस प्रकार के क्रियाविशेषण विस्तार निम्नलिखित सम्बन्ध व्यक्त करते हैं :—

(१) किसी क्रिया का कारण अथवा प्रयोजन (करण अथवा अपादान कारक के अर्थ में)। जैसे—'दौर्मन्त्र्यात्' नृपतिः विनश्यति' (भर्तृ० २।४२)। 'भर्तृगतचिन्तया' आत्मानमपि नैषा विभावयति' (शाकुन्तल० ४)। 'आवेगस्खलितयागत्या' प्रभ्रष्टं मे पुष्पभाजनम्' (शाकुन्तल० ४)। 'का-पुरुषः 'स्वल्पकेनापि' तुष्यति' (पंचतंत्र १।१)। 'लज्जेऽहं 'अनेन प्रागल्भ्येन' (कादम्बरी १८७)। 'त्वया' जगन्ति पुण्यानि' (उत्तर० १)। 'नाथवन्तः 'त्वया' लोकाः' (उत्तर० १)।

(२) 'तुमुन्' प्रत्ययान्त अथवा चतुर्थी द्वारा व्यक्त की भाँति किसी क्रिया का अन्तिम कारण अथवा प्रयोजन। जैसे—'समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्' (शाकुन्तल० १)। 'श्रयति बहुशो 'मृत्यवे' चन्द्रपादान्' (मालती० ३)। 'प्रवर्तताम् प्रकृतिहिताय' पार्थिवः' (शाकुन्तल० ७)। 'अमीषां प्राणानां कृते' किं नास्माभिर्व्यवसितम्' (भर्तृ० ३।३६)। 'तद्गच्छ 'सिद्ध्यै' (कुमार० ३।१८)। 'लोकान्दग्धुं' तत् तपोऽलम्' (कुमार० २।५६)। 'यावद्यते

साधयितुं तवार्थम्' (रघु० ५।२५)। 'छेत्तुं' बज्रमणीन् शिरीषकुसुमप्रान्तेन संनह्यते' (भर्तृ० २।६)।

(३) शर्त, स्वीकृति—जैसे—'तथापि' घटिष्ये' (मालविका० १)। 'नन्दा हताः 'पश्यतो राक्षसस्य' (मुद्रा० ३)।

३७४—पाठ २१ से लेकर पाठ २८ तक में निरूपित अव्ययों में से कुछ विस्मय सूचक के रूपमें हैं, जैसे—एवं, खलु, किल, हंत, अहो, बत, नूनं नाम। वाक्य विश्लेषण में या तो वे छोड़ दिये जाते हैं या प्रकार सूचक क्रियाविशेषण-विस्तार के रूप में ग्रहण किये जाते हैं।

३७५—उपर्युक्त बताई गई चार विधियों में से दो या दो से अधिक को एक में मिलाकर विधेय का विस्तार किया जा सकता है। इन विस्तारों का और भी विस्तार, अनुच्छेद ३५३ से ३५६ में वर्णित विधियों में से किसी एक विधि के द्वारा किया जा सकता है। 'दिष्ट्या' धर्मपत्नी समागमेन' 'पुत्रमुखदर्शनेन' चायुष्मान्वर्धते' (शाकुन्तल० ७)। 'अयं च 'मन्दाकिनी चित्रकूटवनविहारे' सीतादेवीमुद्दिश्य' रघुपतेः श्लोकः' (उत्तर० ६)। 'नियतं' 'स्वयमेव' इयं 'अतिविनीततया' 'कतिपयैरेव दिवसैः' कुमारमाराधयिष्यति' (कादम्बरी १०१)। 'प्रत्यूषे' 'उत्थाय' 'तेनैवक्रमेण' 'अनवरतप्रयाणकैः' 'प्रति प्रयाणकं उपचीयमानेन सेनासमुदायेन' जर्जरयन्वसुन्धरां प्रातिष्ठत' (कादम्बरी ११८)। 'अथ' राजवाहनः 'पुष्पोद्भवेन सह' 'स्वमन्दिरमुपेत्य' 'सादरं' 'बालचन्द्रिकामुखेन' 'निजवल्लभायै' 'संगमोपायं वेदयित्वा' कौतुकाकृष्टहृदयः अतिष्ठत्' (दशकुमार० १।५)।

साधारण वाक्यों का वाक्य विश्लेषण

३७६—साधारण वाक्यों का वाक्यविश्लेषण करने के लिए निम्नलिखित विधि है :—

१—सर्वप्रथम वाक्य में कर्त्तापद ढूँढ़िए।

२—तब कर्त्ता के विस्तारों को ढूँढ़िए।

३—विधेय लिखिए।

४—यदि विधेय की क्रिया सकर्मक है तो कर्म ढूँढ़िए।

५—कर्म के विस्तारों को रखिए।

६—अन्त में विधेय की प्रधान क्रिया के क्रियाविशेषण-विस्तारों को लिखिए।

उदाहरण

(१) विश्वंभरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गङ्गादेव्यां विमुंचति॥ (उत्तर० ७)

(२) एवं क्रमेण समारूढयौवनारंभं परिसमाप्तसकलकलाविज्ञानमवगम्यानुमोदितमाचार्यैश्चन्द्रापीडमानेतुं राजा बलाधिकृतं बलाहकनामानं बहुतुरगबलपदातिपरिवृतं प्राहिणोत्। (कादम्बरी ७७)

(३) पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी।
प्राप तालीवनश्याममुपकंठं महोदधेः॥ (रघु० ४।३४)

(४) पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मुखसमीरिता।
प्रवृत्तिरासीच्छब्दानां चरितार्था चतुष्टयी। (कुमार० २।१७)

(५) एवं गते मंत्रिणि राजनि च कामवृत्ते चंद्रपालितोऽभ्येत्य विविधाभिः क्रीडाभिर्विहारभद्रमात्मसादकरोत्। (दशकु० २।८)

(६) कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशांतये काकपक्षधरमेत्य याचितः। (रघु० ११।१)

(७) धिक् सानुजं कुरुपतिं। (वेणी० ३)

उपर्युक्त वाक्यों का वाक्यविश्लेषण आगे तालिका में देखिए—

वाक्य-विश्लेषण का रूप

कर्ता	कर्ता का विस्तार	प्रधान क्रिया	कर्म	कर्म का विस्तार	विधेय का क्रिया-विशेषण विस्तार
१. देवी.	विश्वंभरात्मजा, राज्ञा महावने त्यक्ता (विशे०)	विमुंचति	आत्मानं	प्रासप्रसवं	गङ्गादेव्यां (स्थान)
२. राजा.		प्राहिणोत्	बलाधिकृतं	बहुतुरंगबलपदाति परिवृतं (विशेषण) बलाहकनामानं	एवं क्रमेण समा-विज्ञानमवगम्य (काल), आचार्यैरनुमोदितं चंद्रापीडमानेतुं (अभिप्राय)
३. जयी.	तांस्तान् पौरस्त्यान् जनपदानेवमाक्रामन्	प्राप	उपकंठं	तालीवनश्यामं (विशे०) महोदधेः (सम्बन्धे षष्ठी)	
४. प्रवृत्तिः	शब्दानां, चतुष्टयी, तस्य पुराणस्य कवेश्चतुर्मुख-समीरिता (विशे०)	चरितार्था आसीत्			
५. चंद्र-पालितः		आत्मसात् अकरोत्	विहारभद्रं		एवम् अभ्येत्य (काल) विविधाभिः क्रीडाभिः (साधन)
६. क्षितीश्वरः कौशिकेन (कर्ता)	स (सार्वनामिक विशेषण)	याचितः	रामं (गौण कर्म)	काकपक्षधरं	एत्य (काल), किल (प्रकार), अध्वर विघातशांतये (अभिप्राय)
७. कुरुपतिः	सानुजः	धिक्—निंद्यः			

मिश्रित वाक्य

३७७—मिश्रित वाक्य में एक मुख्य कर्ता और विधेय के अतिरिक्त दो या दो से अधिक मुख्य क्रियाएँ होती हैं।

"'यस्यार्थाः' तस्य मित्राणि" (हितो० १)। 'इतश्चेतश्च निर्गतो युवराज इति' आकर्ण्य आचकम्पे मेदिनी। (कादम्बरी ११३)

मुख्य कर्त्ता और विधेय से युक्त वाक्य को प्रधान उपवाक्य कहते हैं, शेष को आश्रित उपवाक्य कहते हैं।

३७८—आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—संज्ञा-उपवाक्य, विशेषण-उपवाक्य और क्रिया-विशेषण उपवाक्य।

वास्तव में मिश्रित वाक्य साधारण वाक्य का एक विस्तृत रूप है, जिसमें संज्ञा-उपवाक्य संज्ञा का प्रतिनिधित्व करता है, विशेषण-उपवाक्य विशेषण का और क्रिया-विशेषण-उपवाक्य क्रियाविशेषण अथवा विधेय के विस्तार का प्रतिनिधित्व करता है।

संज्ञा उपवाक्य

३७९—संज्ञा-उपवाक्य संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होता है, अर्थात् वह

(१) प्रधान क्रिया का कर्त्ता

(२) प्रधान क्रिया का कर्म

(३) प्रधान उपवाक्य-स्थित किसी संज्ञापद का समानाधिकरण

(४) प्रधान उपवाक्य में आई हुई किसी क्रिया का कर्म हो सकता है।

जैसे :—

(१) 'अयं पुनरविरुद्धः प्रकार इति' वृद्धेभ्यः श्रूयते (उत्तर० ४)—('श्रूयते' का कर्त्ता)। 'स स पापादृते तासां दुष्यंतः' इति घुष्यताम् (शाकुन्तल ६)—('घुष्यताम्' का कर्ता)।

(२) प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि 'कियदवशिष्टं रजन्यः इति' (शाकुन्तल० ४)—('अवलोकयामि' का कर्म)।

(३) 'अप्रतिष्ठे रघुज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः'।

इति दुःखेन तप्यन्ते त्रयो नः पितरोऽपरे॥ (उत्तर० ५)—(दुःखेन

का समानाधिकरण)। तस्य कदाचित् चिन्ता समुत्पन्ना 'यदर्थोत्पत्युपायाश्चिन्तनीयाः' (पंचतंत्र १।१)—(चिन्ता का समानाधिकरण)।

(४) 'तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्तितो निवारणीय इति' मनसा अवधार्य अब्रवम् (कादम्बरी १५५)—(अवधार्य का कर्म)।

३८०—संज्ञा उपवाक्य मुख्यतया 'इति' के द्वारा व्यक्त किया जाता है अथवा 'यथा', 'यद्' से आरम्भ करके 'इति' से या 'इति' के बिना समाप्त किया जाता है। जैसे—

'अकथितोऽपि ज्ञायत एव 'यथायं तपोवनस्याभोग' इति (शाकुन्तल० १)। 'सत्योऽयं जनप्रवादो 'यत्सम्पत्संपदमनुबध्नातीति' (कादम्बरी ७३)। 'अविज्ञात-मदन वृत्तान्ता 'क्व गच्छामि इति' नाज्ञासिषम्' (कादम्बरी १४७)।

विशेष—कभी-कभी 'इति' का प्रयोग नहीं होता जैसे—कथय 'सत्संगतिः पुसां किं न करोति' (भर्तृ० २।२८)। 'एतत्कल्याणाभिनिवेशिनः श्रुतिविषयमापतितमेव 'यथा विबुधसद्मन्यप्सरसो नाम कन्यकाः सन्ति' (कादम्बरी १३६)।

विशेषण-उपवाक्य

३८१—विशेषण-उपवाक्य विशेषण की भाँति किसी संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता प्रकट करता है। इस उपवाक्य का प्रारम्भ सम्बन्ध वाचक सर्वनाम 'यत्' (यावत्, यादृश्) आदि से होता है।

विशेषण-उपवाक्य का प्रयोग निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है:—

(१) कर्त्ता के विशेषण के रूप में, जैसे—'यदालोके सूक्ष्मं' व्रजति सहसा तद्विपुलताम्' (शाकुन्तल० १)। 'तत्तस्य किमपि द्रव्यं योहि यस्य प्रियोजनः' (उत्तर० २) 'अहेतुः पक्षपातो यः' तस्य नास्ति प्रतिक्रिया' (उत्तर० ५) (कर्त्ता के विस्तार 'तस्य' की विशेषता प्रकट कर रहा है)।

(२) कर्म के विशेषण के रूप में—जैसे—'यस्यागमः केवलजीविकायै' तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति' (मालविका० १)। 'स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु। यावतैषां समाप्येरन् यज्ञाः' पर्याप्त दक्षिणाः॥ (रघु० १७।१७)

(३) विधेय में आए हुए विस्तारों (संज्ञापदों के रूप में) के विशेषण के रूप में—जैसे—'युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत। तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः' ॥ (शिशु० १।२३)

'ममुः' के विस्तार शब्द 'तनौ' की विशेषता प्रकट करता है।

विशेष—विशेषण-उपवाक्य की स्थिति पर ध्यान दीजिए। यह प्रधान उपवाक्य के या तो पहिले आता है या बाद में नकि उस स्थान पर जहाँ अंग्रेजी के who, which (कौन), where (कहाँ) प्रयुक्त होते हैं।

३८२—विशेषण-उपवाक्य प्रायः विशेषणवत् प्रयुक्त समस्त (समास युक्त) पदों द्वारा सूचित किए जाते हैं। अर्थात् व्यधिकरण और समानाधिकरण तत्पुरुष और बहुब्रीहि द्वारा तथा क्त, क्तवतु, कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों द्वारा भी। जैसे—'तन्नन्दिनीं सुवृत्तां नामैतस्मात् दीपादागतो रत्नोद्भवो नाम रमणीय-गुणालयो भ्रान्तभूवलयो व्यवहारी उपयेमे।' (दशकुमार० १।१)। इसमें 'आगतः' और 'भ्रान्तभूवलयः' दोनों क्रम से विशेषण उपवाक्यों ('यो द्वीपा-दागच्छत्' और 'यो भूवलयं बभ्राम') का प्रतिनिधित्व करते हैं।

क्रिया विशेषण उपवाक्य

३८३—क्रिया-विशेषण उपवाक्य क्रिया-विशेषण के समकक्ष होता है और क्रियापद की विशेषता प्रकट करता है। इसका प्रयोग क्रियाविशेषण के स्थान पर होता है और उसी की भाँति इसकी रचना भी होती है। क्रिया-विशेषण ही की तरह यह भी काल, स्थान, प्रकार, कारण और प्रयोजन व्यक्त करता है।

३८४—जिसके द्वारा काल का बोध हो ऐसा क्रियाविशेषण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की क्रिया का काल द्योतित करता है। जैसे—सत्वरं निवेदय 'यावद् दंष्ट्रान्तर्गतो न भवसि' (पंचतंत्र १।८)। अत्रैव तावद्रथं स्थापय 'यावदवतरामि' (शाकुन्तल० १)। 'यदा हरः पार्वतीं परिणेष्यति' तदा स्मरं स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति। (कुमार० ४।४२)। 'यावदसौ पान्थः सरसि स्नातुं प्रविशति' तावन्महापंके निमग्नः (हितो० १)।

विशेष—कालवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य प्रायः भावेसप्तमी के प्रयोग से अथवा अव्यय और क्रिया को प्रत्यय में परिवर्तित करके संक्षिप्त किये जा सकते हैं।

३८५—स्थान वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य केवल सम्बन्ध व्यक्त करते हैं, अर्थात् किसी स्थान में स्थिति अथवा किसी स्थान की ओर गति। जैसे—'यत्र यत्र धूमः' तत्र तत्र वह्निः।

३८६—प्रकार वाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्यों द्वारा निम्नलिखित बातें व्यक्त होती हैं—

(१) इव, यथा (तथा, तद्वत् के अन्योन्यसम्बन्धी) के द्वारा व्यक्त समानता—जैसे—पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं 'भवन्तमीड्यं भवतः पिता इव' (अलभत) (रघु० ५।३४)। 'आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः' (अस्ति) (उत्तर० ४)। 'यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ समेत्य च व्यपेयातां तद्वत्भूतसमागमः (हितो० ४)

विशेष—'यथा' अथवा 'इव' से प्रारम्भ उपवाक्य प्रायः संक्षिप्त रहते हैं।

(२) मात्रा अथवा सम्बन्ध (समता, घनत्व, तीव्रता आदि)—जैसे—'वितरतिगुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव' तथा जडे (वितरति) (उत्तर० २)। 'यथा यथा अम्बुधाराभिराहन्यते' तथा तथा स्फुरति मदनपावकः (कादम्बरी २५२)।

३८७—प्रकार वाचक क्रियाविशेषणात्मक उपवाक्य प्रायः क्रियाविशेषण अव्यय की भाँति कर्मधारय अथवा बहुव्रीहि समासों द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। जैसे—राजा 'सविलक्षस्मितं' आह = 'यथा विलक्षस्मितं स्यात्' तथा आह। 'उद्योतिताम्बरदिगन्तरं अंशुजालैः' शक्तिः पपात हृदि तस्य महासुरस्य' (कुमार० १७।५१)।

३८८—कारण तथा प्रयोजन व्यक्त करने वाले क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नलिखित सम्बन्धों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होते हैं :—

(१) कारण—(क्योंकि, जैसे)—'वत्से कठोरगर्भेति' नानीताऽसि (उत्तर० १)। ममापि तर्हि धर्मतस्तथैव 'यतः प्रियवयस्य इत्यात्थ' (उत्तर० ५)। इत्यादि

नन्विह निरर्थकमेव 'यस्मात्कामो जृम्भितगुणः' (मालती० १)। कमपरमवशं न विप्रकुर्युः 'विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः' (कुमार० ६।६५)। कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके 'त्वं हि तस्य प्रियेति' (मेघदूत ८८)।

(२) शर्त अथवा अनुमान—जैसे—श्रूयतां 'यदि कुतूहलम्' (कादम्बरी० ४६)। 'अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मनः' पतिगृहे तव दास्यमपि क्षमम्' (शाकुन्तल० ५)। 'जात्या चेदवध्योऽहं' एषा सा जातिः परित्यक्ता (वेणी० ३)।

(३) स्वीकृति (Concession)—जैसे—'काममनुरूपमस्या वपुषोवल्कलं' न पुनरलंकारश्रियं न पुष्यति (शाकुन्तल० १)। 'नेत्रे पुनर्यद्यपि रक्तनीले' तथापि सौभाग्यगुणः स एव (उत्तर० ६)।

(४) प्रयोजन—जैसे—दोषं तु मे कञ्चिद् कथय 'येन स प्रतिविधीयेत' (उत्तर० १)। 'तदागच्छ यथा दर्शयामि' (पंचतंत्र १।८) भो धीरं गच्छ 'मा खलु तत्रभवती धारिणी विसंवदिष्यति' (मालविका० १)। 'अस्य शरीरस्य मा विनाशो भूदिति' मयेदमुत्क्षिप्य समानीतम् (कादम्बरी ३२०)।

(५) परिणाम, फल—जैसे—कुमार, तथा प्रयतेथाः 'यथा नोपहस्यसे जनैः' (कादम्बरी ११०)। स ऋत्विजस्तथानर्च 'यथा साधारणीभूतं नामास्य धनदस्य च' (रघु० १७।८०)। सा वेणुलतामादाय सभाकुट्टिममाजघान 'येन सकलमेव तद्राजकं तदभिमुखमासीत्' (कादम्बरी १०)।

३८६—मिश्रित वाक्य का विस्तार संज्ञाउपवाक्यों, विशेषण उपवाक्यों तथा क्रियाविशेषण उपवाक्यों की पुनरुक्ति द्वारा किया जा सकता है। इस दशा में सम्पूर्ण वाक्य वास्तव में संयुक्त वाक्य हो जायेगा, जिसके प्रत्येक आंशिक उपवाक्य मिश्रित वाक्य होंगे। जैसे—

'कथं स त्वया दृष्टः' किं 'किमभिहितासि तेन' 'कियन्तं कालमवस्थितासि तत्र' 'कियदनुसरन्नस्मानसावागतः' इति पुनः पुनः पर्यपृच्छम् (कादम्बरी १५०)। 'यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति' 'यः पश्यति वा' 'श्रुतमवधारयति वा' स खलूपदेशमर्हति (कादम्बरी १५६)।

३६०—तथाच, एक ही मिश्रित वाक्य में दो या दो से अधिक आश्रित उपवाक्य प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे—'क्रोधं प्रभो संहर संहरेति (संज्ञा) यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति (क्रियाविशेषण) तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार' (कुमार० ३।७२)। 'राष्ट्रमुख्यमाहूयाख्यातवान्। योऽसौ अनन्तसीरः प्रहारवर्मणः पक्ष इति (क्रिया विशेषण) विनाशयिषितः (विशेषण) सोऽपि पितरि मे प्रकृतिस्थे किमिति नश्येतेति (संज्ञा) (दशकुमार० २।३)।

आश्रित उपवाक्यों के निर्माण में प्रयुक्त अव्यय पद या शब्द

१—संज्ञा उपवाक्य में—'इति', 'यथा', इति-युक्त अथवा इति रहित 'यद्'।

२—विशेषण उपवाक्य में—'यद्' शब्द के रूप।

३—क्रिया विशेषण उपवाक्य में—
- कालवाचक— यदा, यावत्, यावन्न...... तावत्, यदा यदा।
- स्थानवाचक— यत्र, यत्र यत्र।
- प्रकारवाचक— इव, यथा......तथा या तद्वत्, यथैव....तथैव, यथा-यथा।
- कारण और प्रयोजन वाचक—
  - (१) इति यतः....ततः, यद्, यथा..... तथा, हि।
  - (२) यदि....तर्हि, तद्, ततः, चेद्, अथ।
  - (३) यद्यपि, कामं (तु, पुनः)।
  - (४) येन, इति, यथा, मा (भविष्यत् काल और आज्ञा (लोट्) के साथ)।
  - (५) यथा, येन।

मिश्रित वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण

३९१—मिश्रित वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण सर्वप्रथम प्रत्येक आश्रित उपवाक्य को एक स्वतंत्र शब्द अथवा वाक्यांश मान कर करना चाहिए। इसके बाद आश्रित उपवाक्यों का वाक्य-विश्लेषण साधारण वाक्यों की भाँति करना चाहिए।

उदाहरण

(१) अथ स निःश्वस्य लज्जाविशीर्यमाणविरलाक्षरं सखे कपिंजल विदितवृत्तांतोपि किं मां पृच्छसीति कृच्छ्रेण शनैः शनैरवदत्। (कादम्बरी १५५)

(२) एष नामानुगृहीतः यः शूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः।
—(शाकुन्तल० ६)

(३) अन्वेषमाणश्च यथा यथा नापश्यं तं, तथा तथा सुहृत्स्नेहकातरेण मनसा तत्तदशोभनमाशंकमानो निपुणमितस्ततो दत्तदृष्टिः सुचिरं व्यचरम्।
(कादम्बरी १५२)

उपर्युक्त वाक्यों का वाक्य विश्लेषण आगे तालिका में देखिए।

वाक्यविश्लेषण की विधि

कर्ता	कर्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म	कर्म का विस्तार	विधेय का क्रियाविशेषणात्मक विस्तार
१. स		अवदत्	सखे कपिंजल ···पृच्छसीति (अ)		अथ (काल), निःश्वस्य (काल) लज्जाविशीर्यमाणविरलाक्षरम् (प्रकार), कृच्छ्रेण शनैः शनैः (प्रकार)
(अ) (त्वं) कपिंजल सखे कर्ता के साथ	विदितवृत्तांतोपि (विशेषण)	पृच्छामि		मां (मुख्य) किं (गौण)	
२—एष	यः—प्रतिष्ठापितः (अ)	अनुगृहीतः			नाम (प्रकार)
(अ) यः		प्रतिष्ठापितः			हस्तिस्कंधे (स्थान) शूलादवतार्य (काल)
३—(अहं)	सुहृत्स्नेह-शंकमानः (शानजन्त विशेषण) निपुणं इतस्ततो दत्तदृष्टिः (विशेषण)	व्यचरम्			तथातथा (मात्रा) यथायथा अन्वेषमाणो नापश्यं तं (मात्रा) (अ) सुचिरं (काल)
(अ) अहं	अन्वेषमाणः (शानजन्त विशेषण)	अपश्यं (न)	तं		यथायथा (मात्रा)

संयुक्त वाक्य

३९२—संयुक्त वाक्य में दो या दो से अधिक साधारण अथवा मिश्रित वाक्य होते हैं, जो एक दूसरे के समानपदी होते हैं। संयुक्त वाक्य में प्रयुक्त आंशिक वाक्य (१) साधारण वाक्य अथवा (२) कुछ साधारण और कुछ मिश्रित वाक्य अथवा (३) सभी मिश्रित वाक्य हो सकते हैं।

(१) तथाप्येष प्राणः स्फुरति न तु पापो विरमति। (उत्तर०६)
मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति च किमप्यालिखति च। (मालती०१) (इसमें प्रत्येक साधारण वाक्य है)

(२) दाक्षिण्यं नाम बिम्बौष्ठि बैम्बिकानां कुलव्रतम्।
तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानिबन्धनाः॥ (मालविका०४)
(इसमें द्वितीय अंश मिश्रित वाक्य है)

(३) यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपिक्षमम्॥
(शाकुन्तल०५)

(इसमें दोनों अंश मिश्रित वाक्य हैं)

इन उदाहरणों में जितने अलग-अलग वाक्य हैं वे किसी भी प्रकार से एक दूसरे के आश्रित नहीं हैं। प्रत्येक वक्तव्य दूसरे से स्वतंत्र है। मिश्रित वाक्य को स्वतंत्र अर्थ वाले उपवाक्यों में तोड़कर नहीं लिखा जा सकता।

३९३—किसी संयुक्त वाक्य के आंशिक वाक्य परस्पर तीन मुख्य सम्बन्धों द्वारा व्यक्त किए जा सकते हैं:—

(१) समूह बोधक सम्बन्ध-समूह बोधक अव्ययों (च, तथा, अपि च इत्यादि) द्वारा व्यक्त किया जाता है, इसमें दो या दो से अधिक वक्तव्य जुड़े रहते हैं।

(२) विरोध बोधक सम्बन्ध विरोध बोधक अव्ययों (वा, तु, पुनः, परन्तु) द्वारा व्यक्त किया जाता है, इसमें पर-वाक्य पूर्व-वाक्य का विरोधी होता है।

(३) और अनुमेय सम्बन्ध—इस सम्बन्ध की अभिव्यक्ति अतः, तत्

ततः शब्दों द्वारा होती है, जिसमें पूर्व कथित घटना से किसी परिणाम को सूचित किया जाता है।

समूह बोधक सम्बन्ध

३९४—समूह बोधक सम्बन्ध में वक्तव्यों का परस्पर सम्बन्ध तीन प्रकार के विभिन्न अर्थों में हो सकता है :—

(१) जब वक्तव्यों के ऊपर समान बल दिया जाय, जैसे-तटस्थः स्वानर्थान् घटयति 'च' मौनं 'च' भजते। (मालती०१) त्रिलोचनस्तां प्रतिग्रहीतुमुपचक्रमे 'च' पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं वाणं समधत्त 'च' (कुमार०३।६६)। तृणमिव वने शून्ये (सा) त्यक्ता न 'चाप्य'नुशोचिता। (उत्तर०३)।

(२) जब दूसरे उपवाक्य पर अधिकतर बल दिया जाय—जैसे—न केवलं तातनियोग एव 'अस्ति' मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु। (शाकुन्तल०१) पुण्यानि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां 'किं पुनर्दर्शनानि'। (कादम्बरी ३३)

(३) जब भावों में उत्तरोत्तर विकास दिखाया जाय—जैसे-उदेति पूर्वं कुसुमं 'ततः' फलम्। (शाकुन्तल०५) जगज्जीर्णारण्यं भवति हि विकल्पव्युपरमे। कुकूलानां राशौ 'तदनु' हृदयं पच्यत इव॥ (उत्तर०६)।

विशेष—इस सम्बन्ध में बहुत से समानाधिकरण वाक्य एक दूसरे के बाद बिना किसी जोड़ने वाले शब्द के आते जाते हैं और वे जोड़ने वाले शब्द अन्तर्हित रहते हैं। जैसे—शुश्रूस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नी जने, भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने, भाग्येष्वनुत्सेकिनी। (शाकुन्तल०४)

(इसमें चार वक्तव्य हैं)

जाड्यं धियो 'हरति', 'सिंचति' वाचि सत्यम्। मानोन्नतिं 'दिशति' पापम् 'अपाकरोति'। चेतः 'प्रसादयति' दिक्षु 'तनोति' कीर्तिं (सत्संगतिः) भर्तृ०२।-२३) दारिद्र्याद् ह्रियमेति, ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो, निस्तेजाः परिभूयते,

परिभवान्निर्वेदमापद्यते । निर्विण्णः शुचमेति, शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते, निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो, निधनता सर्वापदामास्पदम् ॥ (मृच्छकटिक०१)

विरोध सूचक सम्बन्ध

३९५—विरोध सूचक सम्बन्ध तीन प्रकार से व्यक्त किया जाता है—

(१) अलगाव सूचित करने वाले समुच्चय बोधक अव्ययों द्वारा, जिसमें प्रथम दशा का अलगाव व्यक्त होता है । जैसे—प्रज्ञाहीनोऽयं राजा 'नोचेत्' नीतिशास्त्रकथाकौमुदीं वागुल्काभिः कथं तिमिरयति । (हितो०३) व्यक्तं नास्ति कथं 'अन्यथा' वासन्त्यपि तां न पश्येत् । (उत्तर०३) अद्यापि हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलति, 'अन्यथा' त्वं भस्मावशेषः कथमित्थमुष्णः । (शाकुन्तल०३)

(२) यथाक्रमिक अव्ययों द्वारा । जैसे—'वा...वा', 'किं ... अथवा', उत, आहो, आहोस्वित् ।

तदेषा भवतः कान्ता त्यजैनां 'वा' गृहाण 'वा' । (शाकुंतल० ५) सूतो 'वा' सूतपुत्रो 'वा' यो 'वा' को 'वा' भवाम्यहम् (वेणी० ३) किं धर्मोपदेशांगमिदम् 'उत' मोक्षप्राप्तिरियम् 'आहोस्वित्' अन्यः कश्चित् नियमप्रकारः। (कादम्बरी१५०)

(३) वियोजक अव्ययों (तु, किन्तु, परं (तु), पुनः, तथापि और (कभी-कभी) केवलं) द्वारा—जैसे—दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं 'तु' पौरुषम् (वेणी०३) । (अयं कथाप्रविभागः) प्रणीतो 'न तु' प्रकाशितः (उत्तर०४) । सखे पुण्डरीक, सुविदितमेतन्मम 'किन्तु' इदमेव पृच्छामि (कादम्बरी१५५) । न च न परिचितो न चाप्यगम्यः चकितमुपैमि 'तथापि' पार्श्वमस्य (मालती०१) । लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते । ऋषीणां 'पुनः' आद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति (उत्तर०१) । अनुदिवसं परिहीयसे अंगैः 'केवलं' लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति (शाकुन्तल०३) ।

अनुमान सूचक सम्बन्ध

३९६—यह सम्बन्ध नीचे लिखे हुए शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है:—अतः, तस्मात्, ततः, तद्, अनेन हेतुना, एवं च तेन हि ।

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां भर्त्तृमतीं जनोन्यथा विशंकते 'अतः' प्रमदा स्वबन्धुभिः परिणेतुः समीपे इष्यते (शाकुन्तल० ५) । भो उपस्थितं नयनमधु संनिहिता च मक्षिका । 'तत्' अप्रमत्त इदानीं पश्य (मालविका० २) । जनकोथ गतो विदेहान् । 'ततो' विमनसो देव्याः परिसांत्वनाय नरेन्द्रो वासगृहं विशति (उत्तर० १) । अत्यद्भुतादपि गुणातिशयात्प्रियोसि 'तस्मात्' सखा त्वमसि (उत्तर० ५) । मध्यस्था नौ गुणदोषतःपरिच्छेत्तुमर्हति । 'तेन हि' प्रस्तूयतां विवादवस्तु (मालविका० १) ।

३९७—प्रायः अंग्रेजी की भाँति संस्कृत में भी जब संयुक्त वाक्य में समानाधिकरण वाक्यों का एक ही कर्त्ता अथवा एक ही क्रिया (विधेय) होती है या कोई भी अंश उभयनिष्ठ होता है तो उभयनिष्ठ अंश दुहराया नहीं जाता और इस प्रकार वाक्य संक्षिप्त हो जाता है ।

(१) तटस्थः स्वानर्थान् 'घटयति च मौनं च भजते' (मालती० १) ।
हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षैः
'अपहृतं' 'अपविद्धं' 'पीतं' 'उन्मूलितं' च (मालती० १) ।

(२) दिष्ट्या न केवलं 'उत्संगः' चिरात् 'मनोरथोऽपि' मे 'पूर्णः' (उत्तर० ४) न मां त्रातुं 'तातः' 'प्रभवति' न 'चाम्बा' न 'भवती' (मालती० २) ।

समानाधिकरण वाक्यों को संयुक्त करने वाले शब्दों का वर्गीकरण

१—समूह बोधक सम्बन्ध
- (i) च, च-च, तथाच, अपि, अपि च, अपरंच, अन्यच्च ।
- (ii) केवलं-अपि, किमुत, किंपुनः ।
- (iii) अथ, तदनु, पूर्वं-ततः, अनन्तरं-ततः परं, ततश्च, अनन्तरं च

२—विरोध सूचक सम्बन्ध
- (i) अन्यथा, न (नो) चेत् ।
- (ii) वा, वा-वा, न वा ।
- (iii) तु, किन्तु, परं (तु), तथापि, पुनः, केवलं ।

३—अनुमान सूचक सम्बन्ध { तत्, तस्मात्, अतः, ततः, तथा, एवं च, एवं, तेन हि।

संयुक्त वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण

३९८—संयुक्त वाक्यों के वाक्य-विश्लेषण में सर्वप्रथम विभिन्न समानाधिकरण वाक्यों का सम्बन्ध स्पष्ट करना चाहिए। इसके बाद साधारण अथवा मिश्रित वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण करना चाहिए।

उदाहरण

(१) वर्ष वा गर्ज वा शक्र मुञ्च वा शतशोऽशनिम्। (मृच्छकटिक० ५)

(२) उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं बहवः खण्डनहेतवो हि दृष्टाः।
उपचार विधिर्मनस्विनीनां न तु पूर्वाभ्यधिकोऽपिभावशून्यः॥
(मालविका० ३)

(३) दृष्टा खलु मया तत्रभवत्या मालविकायाः प्रियसखी वकुलावलिका श्राविता च तमर्थं भवता यः संदिष्टः। (मालविका० ३)

(१) शक्र (त्वं) वर्ष वा (अ) प्रधान उपवाक्य
(त्वं) गर्ज वा (ब) द्वितीय प्रधान उपवाक्य (अ) का समानाधिकरण
(त्वं) शतशोऽशनिं 'मुञ्च' वा (स) तृतीय प्रधान उपवाक्य, (अ) और (ब) का समानाधिकरण

(विरोध सूचक सम्बन्ध है)

कर्त्ता	क्रिया	कर्म	क्रिया विशेषण-विस्तार
(अ) (त्वं) शक्र	वर्ष (वा)		
(ब) (त्वं)	गर्ज (वा)		
(स) (त्वं)	मुञ्च (वा)	अशनिं	शतशः (प्रकार)

२—उचितः प्रणयो विहन्तुं वरं बहवः खंडनहेतवो दृष्टाः हि (अ)

न तु पूर्वाभ्यधिकोऽपि भावशून्यो मनस्विनीनामुपचार विधिः वरं । (ब)
(विरोध सूचक सम्बन्ध है)

(अ) का वाक्य-विश्लेषण जो मिश्रित वाक्य है—

कर्त्ता	क्रिया	कर्म	क्रियाविशेषण-प्रसार
(अ) प्रणयः	वरं		विहन्तुं (अभिप्राय)
उचितः (विशेषण)			बहवः दृष्टाः (अ) (कारण)
(अ) खण्डनहेतवः			
बहवः (विशेषण)	दृष्टाः		हि (कारण)

(ब) उपचारविधिः
मनस्विनीनाम् (षष्ठी)
पूर्वाभ्यधिकोऽपि न (वरं)
भावशून्यः (विशेषण)

(३) पहिला साधारण वाक्य है। दूसरा मिश्रित वाक्य है जिसका वाक्य विश्लेषण ऊपर की भाँति किया जा सकता है।
(समूह सूचक सम्बन्ध है)

अभ्यास के लिए विविध उदाहरण

निम्नलिखित वाक्यों का वाक्यविश्लेषण उपर्युक्त विधि के अनुसार कीजिए। यह भी स्पष्ट कीजिए कि साधारण अथवा मिश्रित अथवा संयुक्त वाक्य हैं।

१—महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शाकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि । (शाकुन्तल०२)

२—कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि । (शाकुन्तल०५)

३—प्रमाणादधिकस्यापि गंडश्याममदच्युतेः ।
पदं मूर्ध्नि समाधत्ते केसरी मत्तदंतिनः ॥ (पंचतंत्र१)

४—लघुहृदयां मां लोकः कलयिष्यतीति निर्ह्रीकया मया नाकलितम् । (कादम्बरी १७७)

५—दर्शनादारभ्य शरीरस्याप्ययमेव प्रभुः किमुत भवनस्य विभवस्य वा । (कादम्बरी १९६)

६—स चानुयुक्तो धूर्तः सविनयमावेदयत् । विदितमेव खलु वो यथाहं युष्मदाज्ञया पितृवनमभिरक्ष्य तदुपजीवी प्रतिवसामि । (दशकु० २।६)

७—यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः । (भर्तृ० २।८)

८—अहमतिमृदुनि पुलिनवति सरस्तीरेऽवरोप्य सस्पृहं निर्वर्णयंस्तां मत्प्राणैकवल्लभां राजकन्यां कंदुकावतीमलक्षयम् ।
(दशकु० २।६)

९—एवमेतत् । किंतु न कदाचिदार्यस्य निष्प्रयोजना प्रवृत्तिरित्यस्ति नः प्रश्नावकाशः । (मुद्रा० ३)

१०—विचिंतयंती यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ॥ (शाकुन्तल० ४)

११—अये महाराजेति निष्प्रणयमामंत्रणपदं सौमित्रिमात्रे च वाष्पस्खलिताक्षरः कुशलप्रश्नः । तथा मन्ये विदितसीतावृत्तांतेयमिति । (उत्तर० ३)

१२—वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने।
(कुमार० ५।७५)

१३—तद् ब्रूत वत्साः किमितः प्रार्थयध्वं समागताः।
मयि सृष्टिर्हि लोकानां रक्षा युष्मास्ववस्थिता॥
(कुमार० २।२८)

१४—कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः। तथापि भवद्गुणसंतोषो मामेवं मुखरीकृतवान्॥
(कादम्बरी १०९)

१५—वध्ये मयि मत्तहस्ती मृत्युविजयो नाम हिंसाविहारी राजगोपुरोपरितलाधिरूढस्य पश्यतः उत्तमामात्यस्य शासनाज्जनकंठरवद्विगुणितघंटारवो मंडलितहस्तकांडं समभ्यधावत्। (दशकु० २।४)

१६—यज्ञोपवीतं नाम
अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम्।
देवतानां पितॄणां च भागो येन प्रदीयते॥ (मृच्छ० १०)

१७—अत्रांतरे ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुत्क्षिप्य राजद्वारे सोरस्ताडनमब्रह्मण्यमुद्घोषितम्। ततो न राजापराधमन्तरेण प्रजास्वकालमृत्युश्चरतीत्यात्मदोषं निरूपयति करुणामये रामभद्रे सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत्। (उत्तर० २)

१८—अथ कदाचित् पिंगलको नाम सिंहः सर्वमृगपरिवृतः पिपासाकुल उदकग्रहणार्थं यमुनातटमवतीर्णः संजीवकस्य गंभीरतरशब्दं दूरादेवाशृणोत्। (पंचतंत्र १)

१९—यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोन्यतः प्रयातुम्।
अथ मरणावश्यमेव जंतोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे॥
(वेणी० ३)

२०—प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यांत्यापदः। (भर्तृ० २।९०)

२१—यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् ।
(भर्तृ० २।८८)

२२—यथा तिरश्चीनमलातशल्यं प्रत्युप्तमंतः सविषश्च दंशः ।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशंकुर्मर्माणि कृंतन्नपि किं न सोढः ॥
(उत्तर० ३)

२३—परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम् ।
संगतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम् ॥ (विक्रमो० ५)

२४—सर्वैरुस्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः ।
(मालविका० २)

२५—अस्त्वमर्षो मा भूद्वा । एतत्तु पृच्छामि, दांतं हि राघवं राजानं शृणुमः । स किल नात्मना दृप्यति न चाप्यस्य प्रजा ईदृश्यो जायन्ते । तत् किमस्य मनुष्या राक्षसीं वाचं वदंति । (उत्तर० ५)

२६—यथा नौ प्रियसखी बंधुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाह्य ।
(शाकुन्तल० ३)

२७—अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥ (रघु० ३।७०)

और अधिक अभ्यास करने के लिए छात्र पूर्व पाठों से वाक्यों को चुन लें और उनका वाक्य विश्लेषण करें ।

विभाग २
वाक्यों में शब्दों का क्रम

३९९—भाग १ के भूमिका विभाग में इसका उल्लेख पहिले ही किया गया है कि संस्कृत वाक्यों में शब्दों का क्रम विशेष महत्त्व नहीं रखता। संस्कृत में अव्ययों के अतिरिक्त प्रत्येक शब्द प्रत्ययान्त होता है और शब्दों में लगे हुए प्रत्यय स्वयं ही शब्दों के परस्पर सम्बन्ध को व्यक्त कर देते हैं। इस प्रकार व्याकरण की दृष्टि से वाक्य में शब्दों के क्रम का कोई ऐसा स्वरूप नहीं है जिस पर ध्यान दिया जाय। 'कथमपि तत्याज वने सीतां लक्ष्मणः कठोरगर्भाम्' ऐसा वाक्य देखने में बहुत भद्दा अवश्य मालूम पड़ता है, परन्तु व्याकरण की दृष्टि से इसमें कोई अशुद्धि नहीं है। किन्तु यद्यपि वाक्यों में शब्दों का कोई व्याकरणात्मक क्रम नहीं है, फिर भी उनमें भावों का एक ऐसा तार्किक क्रम रहता है, जिसमें एक सुनिश्चित विधि के अनुसार एक के बाद दूसरे भाव आते हैं। यदि हम किसी भी संस्कृत गद्य-साहित्य का अवलोकन करें तो उसमें शब्दों का कोई विशेष क्रम अवश्य मिलेगा। जैसे—पहिले प्रकट अथवा अप्रकट रूप में कर्त्ता अपने विशेषणों के साथ आता है, तब यदि कर्म रहता है तो वह आता है और अन्त में क्रिया अथवा विधेय पद रहता है। जैसे—

सा तु महाश्वेताया एव मुखमवलोकितवती। (कादम्बरी ३०७)

महीपतिस्तं विद्येश्वरं सबहुमानं विससर्ज। (दशकुमार० १।२५)

यहाँ तक कि काव्य और नाटकीय कविताओं में भी जो सामान्यतया गद्य के नियमों से मुक्त हैं, इस नियम का कड़ाई के साथ पालन किया जाता है। जैसे—

'रघूणामन्वयं वक्ष्ये' (रघु० १।८)

'तृष्णां छिन्धि पापे रतिं मा कृथाः' (भर्तृ० २।७७)। 'वदनकमलकं

शिशोः स्मरामि' (उत्तर० ४) । 'असिर्गात्रं गात्रं सपदि लवशस्ते विकिरतु' (मालती० ५) इत्यादि ।

अब हम वाक्यों में शब्दों के क्रम के विषय में कुछ नियम देंगे ।

४००—किसी गद्य में वाक्यों के शब्द-क्रम का सबसे अच्छा, छात्रों द्वारा अनुसरणीय, नियम यह है—

सर्वप्रथम कर्त्ता को अपने सभी विशेषणों और विशेषणात्मक वाक्यांशों के सहित रखिए, तब कर्म के विस्तारों के साथ कर्म को और सब से अन्त में विधेय (चाहे क्रिया से सम्बद्ध हो, चाहे संज्ञा अथवा विशेषण से सम्बद्ध) । क्रियाविशेषणों और क्रियाविशेषणात्मक वाक्यांशों को वाक्य के अन्त के अतिरिक्त वाक्य में कहीं भी रक्खा जा सकता है । समुच्चय बोधक अव्यय (कुछ को छोड़कर) कर्त्ता के पहिले प्रयुक्त होते हैं । इस प्रकार यदि कोई छात्र निम्नलिखित वाक्य कहे तो बहुत ही भद्दा मालूम पड़ेगा—

'सकाशं गुरोः आशिषं राज्ञे अग्रजन्मा प्रयुज्य प्रतीयायेत्थं' । इस वाक्य का क्रमिक रूप इस प्रकार होगा—'इत्थं राज्ञे आशिषं प्रयुज्याग्रजन्मा गुरोः सकाशं प्रतीयाय' (रघु० ५।३५) ।

४०१—जब किसी कविता का अन्वय किया जाता है, तब उपर्युक्त शब्द-क्रम का नियम सामान्यतया पालन किया जाता है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक लीजिए :—

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगंधमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥
(रघु० २।१)

इसका अन्वय इस प्रकार होगा—

अथ (समुच्चय० अव्यय) यशोधनः (विशेषण) प्रजानां (षष्ठी) अधिपः (कर्त्ता) प्रभाते (कर्म के विशेषण का विस्तार) जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्यां (विशेषण) पीतप्रतिबद्धवत्सां (दूसरा विशेषण) ताम् (कर्म का विस्तार) ऋषेः (कर्म का विशेषण) धेनुं (कर्म) वनाय गन्तुं (विधेय का विस्तार) मुमोच

(विधेय 'क्रिया') । इसी प्रकार—'अभिहन्ति हन्त कथमेष माधवं सुकुमारकाय मनवग्रहः स्मरः' (मालती० १) । हन्त, कथमेषोऽनवग्रहः स्मरः सुकुमारकायं माधवमभिहन्ति, अथवा हंत एष........कथमभिहन्ति ।

अब विशेष उदाहरणों में साधारण नियम को तोड़ कर लगाया जा सकता है और वाक्य में विभिन्न शब्दों के परस्पर सम्बन्ध को व्यक्त किया जा सकता है ।

४०२—साधारण नियम से सर्व प्रथम सिद्धान्त यह सीखना चाहिए कि शब्दों का क्रमिक रूप इस प्रकार रक्खा जाय कि विचार अपने स्वाभाविक रूप में एक के बाद एक आते जायँ; दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आश्रित शब्द सामान्य रूप से उन शब्दों के पहिले रक्खे जायँ जिन पर आश्रित हों अथवा जिनके द्वारा नियन्त्रित हों ।

इस प्रकार संस्कृत वाक्य में विशेषण और विशेष्य, सकर्मक क्रिया और उसका कर्म, क्रिया की विशेषता प्रकट करने वाले क्रियाविशेषण, अव्यय तथा उनके द्वारा नियंत्रित शब्द इत्यादि जहाँ तक सम्भव हो पास-पास रक्खे जायँ ।

४०३—जब किसी वाक्य में साधारण कर्त्ता और क्रिया पद होता है तो कर्त्ता पद पहिले रक्खा जाता है । जैसे—'रघुपतिस्तिष्ठति' (उत्तर० ६) । विशेषण कर्त्ता के पहिले आते हैं । जैसे—'देवो रघुपतिस्तिष्ठति' (उत्तर० ६) । 'उपात्तविद्यो' 'गुरुदक्षिणार्थी' कौत्सस्तं प्रपेदे (रघु० ५।१) । 'अपगतश्रमः' चाभिमतं दिगन्तरमयासीत् (कादम्बरी ३२) ।

(अ) विशेषणों का प्रयोग जब विधेय के रूप में होता है तब वे विशेष्य के बाद में आते हैं ।

(ब) जब सार्वनामिक और गुणवाचक दोनों विशेषणों का प्रयोग होता है तब सार्वनामिक विशेषण पहिले रक्खा जाता है । जैसे—'तस्यां अतिदारुणायां हतनिशायां' (कादम्बरी १६६)—उस अत्यन्त दारुण और हतभागिनी रात्रि में । परन्तु कभी-कभी गुणवाचक विशेषण के बाद में भी इसका प्रयोग होता है ।

जैसे—'विचक्षणो वर्णी सः' (रघु० ५।१६ पर मल्लिनाथ की टीका)। यूना 'अनेन पार्थिवेन सह' (रघु० ६।३२ पर मल्लिनाथ की टीका)।

४०४—समानाधिकरणपद का प्रयोग व्याख्येय के पूर्व में होना चाहिए। जैसे—आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः 'आदर्शः सर्वशास्त्राणां' 'उत्पत्तिः कुलानां' 'कुलभवनं गुणानां' राजा शूद्रको नाम (कादम्बरी ५)। अथ 'मीनकेतनसेनानायकेन' दक्षिणानिलेन मन्मथानलमुज्ज्वलयन् (दशकुमार० १।५)।

४०५—सम्बन्ध कारक का प्रयोग सम्बन्ध वान् के पूर्व होता है। जैसे—'जगतः' पितरौ वन्दे (रघु० १।१)। इसी प्रकार 'अर्थानां' ईशिषे (भर्तृ० ३।३०)।

(अ) जब विशेषण किसी संज्ञा की विशेषता प्रकट करता है तब शब्दों का क्रम साधारणतया विशेषण, षष्ठी और संज्ञा पद के रूप में होता है। जैसे—'अयं अस्या देव्याः सन्तापः' (कादम्बरी ६१) 'तस्य एवं विधस्य पद्मसरसः पश्चिमे तीरे' (कादम्बरी २३)।

४०६—सम्बोधन को वाक्य में सर्वप्रथम रखना चाहिए। जैसे—'तात' एष बालः (दशकुमार २।८)। 'सखे पुण्डरीक', नैतद्भवतोऽनुरुपम्' (कादम्बरी १५१)। 'आर्यपुत्र' इयमस्मि' (शाकुन्तल०)।

४०७—विधेय का प्रयोग (चाहे धातु-सम्पन्न हो चाहे नाम-सम्पन्न हो) वाक्य के अन्त में होता है। किसी वाक्य द्वारा व्यक्त भाव की समाप्ति इसी से होती है अतः उसका सर्वोत्तम स्थान अन्त में ही है।

(अ) वर्णनात्मक आख्यानों में 'अस्' धातु और कभी-कभी 'भू' धातु का प्रयोग 'वहाँ है', 'वहाँ था' के अर्थ में वाक्य के पहिले होता है। जैसे—

'अस्ति' गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः' (हितो० १) 'अस्ति' मगधदेश शेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी' (दशकुमार० १।१)। 'अभूत्' अभूतपूर्वो राजा चिन्तामणिर्नाम (वासवदत्ता ३)।

(ब) कभी-कभी बल देने के लिए विधेय का प्रयोग पहिले किया जाता है। जैसे—

'भवेयुः' तावत्प्राणादयः पञ्चजना माध्यंदिनानां (शांकरभाष्य ३७१)। 'आस्तां' तावत्सर्वमेवेदम् (कादम्बरी १८) 'उत्सर्पिणी' खलु महतां प्रार्थना (शाकुन्तल ०७)। 'कृतं' त्वया रामसदृशं कर्म (उत्तर०२)। 'विरलाः' तेषामुपदेष्टारः (कादम्बरी १०६)। 'भवितव्यमेव' तेन (उत्तर०४)

(स) प्रश्नवाचक चिह्नों के प्रयुक्त न होने पर प्रश्न वाचक वाक्यों में भी यही क्रम रहता है। जैसे—'जात' 'अस्ति' ते माता' 'स्मरसि' वा तात (उत्तर०४)। 'स्मरसि' च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि (उत्तर०१)।

४०८—उपसर्गों का प्रयोग धातुओं से पूर्व संयुक्त रूप में ही होता है। केवल कर्मप्रवचनीय के रूप में छोड़ कर उपसर्गों का प्रयोग स्वतंत्र अकेले नहीं होता। साधारणतया कर्मप्रवचनीय के रूप में इनका प्रयोग शब्दों के बाद में होता है। जैसे—इति मन्दमतीन् 'प्रति' भायात् (शांकर भाष्य)। अयोध्यां 'अनु' जलानि वहति (रघु० १३।६१)।

(अ) सह, ऋते, विना, अलं इत्यादि शब्द जो संज्ञा तथा सर्वनाम पदों पर नियंत्रण रखते हैं, प्रायः नियंत्रित शब्दों के बाद में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—रामेण सह, ईश्वरादृते, मां विना, संतोषायालम् आदि।

४०९—अँग्रेजी के क्रियाविशेषणों (Adverbs) की अपेक्षा संस्कृत में अव्ययों का क्षेत्र व्यापक है। इनके अन्तर्गत वे सभी शब्द आ जाते हैं जिनके रूप नहीं चलते, जैसे—क्रिया-विशेषण, उपसर्ग, समुच्चय बोधक, विस्मयादि बोधक। कर्त्ता और कर्म कारक को छोड़कर संज्ञाओं और सर्वनाओं की विभक्तियाँ क्रियाविशेषण मानी जा सकती हैं। कर्त्ता और कर्म की विभक्तियाँ क्रिया के कर्त्ता और कर्म का काम करती हैं। सम्बन्ध कारक की विभक्ति को भी क्रियाविशेषण नहीं माना जाता क्योंकि वह एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध व्यक्त करती है। क्रियाविशेषणों की परिस्थिति के विषय में निम्नलिखित नियम कारक-विभक्तियों में भी लागू होंगे।

४१०—कालवाचक, स्थानवाचक, प्रकारवाचक तथा कारण और परिमाण वाचक क्रियाविशेषणों का प्रयोग प्रायः उन शब्दों के सन्निकट होता है जिनकी वे विशेषता प्रकट करते हैं। जैसे—'हंसधवलशयनतले' निषण्णं पितरमपश्यम् (कादम्बरी ६२) यहाँ पर 'तले' पद 'निषण्णं' पद की विशेषता प्रकट करता है, इसलिए इसको 'निषण्णं' के पूर्व रखना चाहिए। इसी प्रकार—'आलोकमात्रेणैव' (कारणवाचक क्रियाविशेषण) अपगतश्रमो मनसि (स्थान वाचक क्रिया०)। 'एवं' (प्रकार वाचक क्रिया०) अकरोत् (कादम्बरी १२४)। 'इति मनसावधार्य' अब्रवम् (कादम्बरी १५५)। 'तमवेक्ष्य' (काल-वाचक क्रिया०) सा 'भृशं' रुरोद (कुमार० ४।२६)। यहाँ पर 'भृशं' का प्रयोग पहिले नहीं किया जा सकता, क्योंकि उससे अर्थ ही बदल जायेगा।

४११—जब क्रियाविशेषणपद विधेय पद की विशेषता प्रकट करते हैं तब उनका प्रयोग कर्त्ता के पूर्व और बाद में भी हो सकता है और यदि कोई कर्म है तो उसके बाद भी, परन्तु अन्त में नहीं रक्खा जा सकता। जैसे—

'अनेकवारं (काल) अपरिश्लथं (प्रकार) मां परिष्वजस्व' (उत्तर० ६)। 'प्रजानामेव भूत्यर्थम् (प्रयोजन) स ताभ्यो (स्थान) बलिमग्रहीत्' (रघु० १।१८)। 'सर्वं सौदामिन्यां (स्थान) संभाव्यते' (मालती० १)। 'दारिद्र्यात् (कारण) ह्रियमेति' (मृच्छ० १)। 'हरिणा (कर्त्ता) असुरास्तव शरव्यं कृताः' (शाकुन्तल० ६)। 'शिवाभ्यो (प्रयोजन, वास्तव में अकथित कर्म) मांसबलि-पिंडं अनुदिनं निशि (समय) समुत्ससर्ज' (कादम्बरी ६५)। 'गुरौभक्त्या मय्यनुकम्पया (कारण) च प्रीतास्मि' (रघु०२।६३)।

नोट—यदि कर्त्ता और कर्म के कोई विस्तार पद हों तो संदेह निवारण के लिए क्रियाविशेषण का प्रयोग कर्म के बाद करना चाहिए।

(अ) भावेप्रयुक्त उपवाक्य, कालवाचक और कभी-कभी कारण वाचक अर्थों को व्यक्त करने वाले अव्यय होने के कारण पहिले रक्खे जाते हैं। जैसे—

'चन्द्रिकायामभिव्यक्तायां' किं दीपिकापौनरुक्त्येन' (विक्रमो० ३)

'युष्माकं प्रेक्षमाणानां' एनं स्मर्तव्यशेषं नयामि (वेणी० ४)

विशेष—काल वाचक और स्थान वाचक क्रिया विशेषणों का प्रयोग समुच्चय बोधक अव्ययों (यदि कोई है तो) के सन्निकट, वाक्य के प्रारम्भ में होता है।

४१२—च, वा, तु, हि, चेत् अव्ययों का प्रयोग वाक्य के प्रारम्भ में कभी भी नहीं होता जबकि अथवा, अथ, अपिच, किंच का प्रयोग साधारणतया पहिले होता है। अन्योन्य सम्बन्धी संयोजक अव्यय—यथा-तथा, यावत्-तावत्, यद्-तद्, यतः-ततः—जोड़ने वाले उप वाक्यों के आदि में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए सम्बद्ध अनुच्छेदों को देखिए।

४१३—प्रश्न वाचक पदों का प्रयोग वाक्य के प्रारम्भ में होता है। जैसे—'अपि' एतत्तपोवनं। 'अपि' कुशली ते गुरुः। 'कथं' शास्त्राणां परिचयः। 'कियद्वा' वयः आदि (कादम्बरी १८)।

(अ) 'एव', 'नाम', 'किल', 'खलु', 'हि' आदि बल देने वाले शब्दों को उन शब्दों के साथ जोड़ दिया जाता है, जिन पर वे बल देते हैं। 'इव', 'तु', 'अपि' शब्दों का प्रयोग उन शब्दों के साथ होता है जिनकी ये विशेषता प्रकट करते हैं।

(ब) विस्मयसूचक अव्यय जैसे 'हा', 'हन्त', 'अहह' और सम्बोधन सूचक अव्यय जैसे अहो, अये, अयि प्रायः वाक्य के आदि में आते हैं।

४१४—दुबारा दुहराया हुआ शब्द अथवा वाक्य में प्रथम प्रयुक्त शब्द का सजातीय शब्द सामान्यतया जहाँ तक सम्भव हो समीप में ही रक्खा जाता है। जैसे—'गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः'

विभाग ३

वाक्य-संकलन

४१५—संस्कृत वाक्यों के वाक्य-विश्लेषण की व्याख्या करके और वाक्य में शब्दों के क्रम के विषय में कुछ नियम बताने के पश्चात् अब हम छात्रों को एक पग और आगे—वाक्यों के संकलन (निर्माण)—तक ले चलेंगे।

छात्रों ने यह पहिले ही देख लिया है कि वाक्य में कम से कम एक कर्त्ता और एक क्रिया (विधेय) का होना आवश्यक है। यह भी ज्ञात हो गया है कि कर्त्ता अथवा कर्म का विस्तार विशेषण, षष्ठी विभक्ति युक्त संज्ञा पद, समानाधिकरण पद, समास, अथवा इन सब साधनों को मिला करके इनके प्रयोग द्वारा किया जा सकता है। साथ ही यह भी ज्ञात हो गया है कि क्रिया का विस्तार काल वाचक, स्थान वाचक, प्रकार वाचक और परिणाम सूचक परिस्थितियों के प्रयोग द्वारा किया जा सकता है। अब उनको वाक्यों के संकलन का प्रयास करना चाहिए।

साधारण वाक्य

४१६—'राम' और 'गम्' शब्दों को लीजिए। इन दोनों शब्दों के योग से 'रामो जगाम' वाक्य बनाया जा सकता है। 'रामो जगाम' वाक्य अब अपने प्रथम स्वरूप में है। कर्त्तापद 'रामो' का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) दशरथस्य पुत्रः अथवा दशरथपुत्रो रामो जगाम।

(२) कौसल्यानन्दवर्धनः अखिलजनप्रियो दशरथपुत्रो आदि।

(३) भरताग्रजः कौसल्यानन्दवर्धनः आदि।

(४) भरताग्रजः कौसल्यानन्दवर्धनः अखिलजनप्रियो दशरथ पुत्रो रामः ससीतालक्ष्मणो रम्याणि उपवनानि पश्यन् जगाम।

यह देखना चाहिए कि अन्तिम वाक्य किस प्रकार दो साधारण शब्दों—'राम' और 'गम्'—से इतना बड़ा हुआ है।

अभ्यास १

अर्जुन, हनुमान्, गंगा और हरि शब्दों को कर्त्ता पद पर रखकर वाक्यों का निर्माण कीजिए।

अभ्यास २

रु, रुच्, पत्, रम् धातुओं का विधेय के रूप में प्रयोग करके वाक्यों का निर्माण कीजिए और किन्हीं भी दो विधियों द्वारा कर्त्ता का विस्तार कीजिए।

अभ्यास ३

निम्नलिखित शब्द-युगलों को लीजिए और कर्त्ता का विस्तार षष्ठ्यन्त विशेषणपदों और संज्ञा पदों का प्रयोग करके, वाक्यों का निर्माण कीजिए—'शुक' और 'डी'; 'अंगना' और 'या'; 'सैनिक' और 'युध्'; 'गज' और 'हन्' (कर्मवाच्य); 'भृत्य' और 'तड्' (कर्मवाच्य)।

अभ्यास ४-५

'रावणः सीतां जहार' और 'सारमेयोऽम्रियत' वाक्यों को लीजिए और विस्तार की सभी विधियों के द्वारा कर्त्ता का विस्तार कीजिए।

४१७—क्रिया यदि सकर्मक है तो उसका कर्म संज्ञा या सर्वनाम रख कर वाक्यों को पूर्ण किया जा सकता है और कर्म का विस्तार कर्त्ता के विस्तार की भाँति किया जा सकता है। जैसे—

'अहं विशालं प्रासादमपश्यम्'। 'अहं वंगाधिपस्य विशालं प्रासादमपश्यम्'। 'अहं सौख्यनिकेतनं नगरभूषणं च अनेकरत्निपरिवृतं वंगाधिपस्य विशालं प्रासादमपश्यम्'। उसी विधि से—'राजा अमात्यं प्रोवाच' वाक्य विस्तृत किये जाने पर इस प्रकार होगा—'राजा शास्त्राध्ययनकठोरधियं अनुरंजितसकलप्रजाजनं सुरगुरोः प्रत्यादेशं स्वममात्यं प्रोवाच'।

अभ्यास ६

विशेषणों द्वारा बढ़ाये हुए कर्त्ता और क्रियापदों को लीजिए और ऐसे वाक्य बनाइए जिनमें निम्नलिखित शब्दों में से प्रत्येक शब्द कर्म रूप में प्रयुक्त हो—

अ (क) तूनां शतं, अजाकुलं, मद्गात्रं, सभृंगाणि कमलानि, स्वं नाम, शुष्कपर्णानि, महागजं, तण्डुलकणान्, हिमाद्रेः शिखरम् और विपुल-धनम्।

अभ्यास ७

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करके और कृदन्त प्रत्ययों द्वारा निष्पन्न कर्मों का उपयोग करके वाक्यों का निर्माण कीजिए—

श्रु, ग्रह्, सृज्, चुर्, पा (पीना), अद्, प्र पूर्वक दा, व्यध्, रुध्, और नी।

अभ्यास ८

निम्नलिखित शब्दों को कर्त्ता के रूप में ग्रहण कीजिए और कर्त्ता पदों और कर्म पदों का विस्तार करके वाक्यों को पूरा कीजिए—

सर्प, धृतराष्ट्र, कंचुकिन्, यति, पथिक, इन्द्र, राज्ञी, पाठशाला, पुत्र और पितृ।

अभ्यास ९–१०

नीचे दी हुई धातुओं में से प्रत्येक धातु का उपयुक्त कर्त्ता और कर्म दीजिए और कर्त्ता तथा कर्म का किन्हीं दो विधियों द्वारा विस्तार करके वाक्यों का निर्माण कीजिए—

तॄ, अभि पूर्वक लिह्, परि पूर्वक भ्रम्, आप्, प्रच्छ्, पिष्, कृ, मन् और तड।

अभ्यास ११

छः वाक्यों का निर्माण इस प्रकार कीजिए कि जिनमें कर्त्ता का विस्तार कृदन्तीय विशेषणों द्वारा हो और विधेय की पूर्ति कृदन्तीय विशेषणों द्वारा विस्तारित कर्म के प्रयोग से हो।

अभ्यास १२

छः वाक्यों का निर्माण इस प्रकार कीजिए कि जिनमें कर्त्ता और कर्म दोनों का विस्तार षष्ठ्यन्त संज्ञा अथवा सर्वनाम पद द्वारा और कृदन्तीय विशेषणों द्वारा हो।

४१८—विधेय का विस्तार कालवाचक, स्थान वाचक, प्रकार वाचक और परिणाम सूचक परिस्थितियों द्वारा किया जा सकता है। 'त्वं यासि' वाक्य को लीजिए। इसके विधेय का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है—

त्वं 'अधुना' यासि (काल)। त्वं अधुना 'कुत्र' यासि (काल और स्थान)। त्वं अधुना 'सत्वरं' कुत्र यासि (काल, स्थान और प्रकार)। त्वम् अधुना 'समिदाहरणाय' सत्वरं किमिति पद्भ्यामेव यासि (काल, प्रकार, प्रयोजन, कारण)। त्वमधुना समिदाहरणाय गुरुमपृष्ट्वा सत्वरं किमिति आदि यासि। इसी प्रकार —'सखे मां प्रतिपालय' वाक्य का विस्तार विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। सखे 'विरचितायां प्रयाणसंविधायां पितारावापृच्छ्य द्वारे क्षणं' मां प्रतिपालय। स 'निशितेन शरेण मध्याह्नाहारार्थं' कमपि विलोल नेत्रं हरिणशिशुं 'नितम्बदेशे' विव्याध। 'पश्यतोऽपि पितुः' त्वं 'ह्यः स्ववेश्मनः निष्क्रम्य किंकरेण सार्धं अतिचटुलया गत्या कुत्र खलु' अगच्छः।

अभ्यास १३

निम्नलिखित वाक्यों में क्रियाओं के साथ उपयुक्त कालवाचक और प्रकार वाचक क्रिया विशेषणात्मक विस्तारों को लगाइए :—

(१) विहगा डयन्ते (२) पुस्तकं वाचय (३) अहं गामानयम् (४) गुरून-

नुरुध्यस्व (५) त्वया रुद्यते (६) आपणं याति (७) सैनिकाः युयुधिरे (८) कृषीवलः क्षेत्रमकृषत् (९) प्रमदा उद्यानं जग्मुः (१०) संपदुद्यममनुगच्छति ।

अभ्यास १४

निम्नलिखित क्रिया विशेषणात्मक विस्तारों का प्रयोग करके ऐसे वाक्यों का निर्माण कीजिए जिनमें कर्त्ता का विस्तार दो से अधिक विधियों द्वारा किया गया हो :—

सहसा, वारंवारं, त्रीन् संवत्सरान्, सपदि, कदा, पुनः, कल्याणाय, पूर्वं (अपादानयुक्त), तदानीं, प्रत्यनलं, प्रतिदिनं, उपनदि, द्विक्रोशं, रात्रिंदिवम् ।

अभ्यास १५

निम्नलिखित वाक्यांशों का प्रयोग ऐसे वाक्यों में कीजिए जिनमें कर्त्ता का विस्तार विशेषण अथवा सम्बन्ध कारक द्वारा किया गया हो :—

सेनया सह, श्मादृते, अनेन हेतुना, कस्य हेतोः, मित्रं सान्त्वयितुं, जठरस्यार्थे, अपवाद श्रवणात्, तथानुष्ठिते, पाठमधीत्य, गृहस्योपरि, मामन्तरेण, दुर्दैवात्, अरण्ये, प्रबलवेदनया, अनुगंगम् ।

अभ्यास १६

निम्नलिखित शब्दयुगलों को लीजिए और विधेय का विस्तार काल वाचक और स्थान वाचक क्रियाविशेषणात्मक विस्तारों द्वारा कीजिए :— 'मुनि' और 'वस्', 'राजन्' और 'रक्ष्', 'पुत्र' और 'सेव्' 'कोकिल और विपूर्वक 'रु', 'हरि' और 'क्रुध्', 'शिष्य' और प्र पूर्वक 'नम्' ।

अभ्यास १७

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करके ऐसे वाक्यों का निर्माण कीजिए जिनमें विधेय का विस्तार प्रकार वाचक, कारण वाचक और परिणाम सूचक क्रियाविशेषणात्मक विस्तारों द्वारा किया गया हो—

मृ, प्र पूर्वक या, प्रपूर्वक स्था (आत्मनेपद), मृज्, उत् पूर्वक वह्, याच्, पा (रक्षा करना), स्निह्, ईश्, अधि पूर्वक इ ।

अभ्यास १८

निम्नलिखित कर्त्ता पदों को लीजिए और विधेय का विस्तार 'क्त्वा' अथवा 'ल्यप्' अथवा 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्दों द्वारा कीजिए :—

भृंगाः, नरः, देवाः, अमी, राक्षसैः (कर्त्ता पद), भीमः, सामाजिकाः, दूतः अधिराजः, अश्वत्थामा, सुभद्रा और यवनाः।

अभ्यास १९

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करके, भावे प्रयुक्त वाक्यांशों द्वारा विधेय (क्रिया) का विस्तार कीजिए :—

भाष्, दह्, प्रच्छ्, कृ ('क्त' प्रत्ययान्त), स्पृह्, वद्, हन् ('क्त' प्रत्ययान्त), पठ्, सं पूर्वक मंत्र् और या।

अभ्यास २०

काल वाचक और प्रकार वाचक क्रियाविशेषणात्मक विस्तारों द्वारा और निम्नलिखित धातुओं के 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्दों द्वारा विधेय (क्रिया) का विस्तार कीजिए :—

बंध्, कथ्, चुद्, शास्, ज्ञा, स्तु, ग्रह्, आ पूर्वक दा, वि पूर्वक श्वस्, उप पूर्वक आस्, सू और परि पूर्वक नी।

अभ्यास २१

बारह वाक्यों का निर्माण इस प्रकार कीजिए कि जिनमें विधेय (क्रिया) का विस्तार काल वाचक, स्थान वाचक, प्रकार वाचक, कारण वाचक और परिणाम सूचक क्रियाविशेषणात्मक विस्तारों द्वारा किया गया हो।

४१९—जब विधेय (क्रिया) के साथ-साथ कर्त्ता और कर्म (यदि कोई है तो) का भी विस्तार किया जाता है, तब वाक्य अपने पूर्ण रूप में होता है। 'रविरुदगच्छत्' एक साधारणस्वरूप का वाक्य है। इसके कर्त्ता और विधेय (क्रिया) का विस्तार करने पर वाक्य इस प्रकार होगा—

'अरुणपुरः सरो' रविः 'तमोजालं निरस्य जनक्रियाप्रवृत्तये प्राच्यां दिशि झटिति' उदगच्छत् । इसी प्रकार साधारण वाक्य 'स पदवीमन्वयात्' का जब विस्तार किया जाय तो इस प्रकार होगा—'गुरुभिरुपदिष्टः' स 'प्रथमे वयसि वर्तमानोऽपि संसारादुद्विजमानः' 'अनेकयतिप्रतिपन्नां परमसुखदायिनीं' साधु-पदवीं 'निवारयतोऽपि पितुः पारत्रिकसुखावाप्तये प्रशांतचेतसा' अन्वयात् । इसी प्रकार 'पान्थः भुजगं ददर्श' वाक्य विस्तृत होने पर इस प्रकार होगा—अथ 'असौ, पान्थो 'ग्रामान्तरं गच्छन् अध्वश्रमार्त्तः कथमपि पदानि न्यस्यन्' 'अनाक्रान्ते एवार्धपथे' 'कञ्चिद् वृहत्कायं प्रसारितफणं श्यामदेहं' भुजंगम् यदृच्छया तरुतले' ददर्श । अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं—इति परिकलय्य किंचि-दुन्नमितकंधरो भयचकितया दृशा दिशोवलोक्य तृणेऽपि चलति पुनः प्रति-निवृत्तं तमेव पदे पदे पापकारिणमुत्प्रेक्षमाणो निष्क्रम्य तस्मात्तमालतरुमूलात्स-लिलसमीपमुपसर्तुं प्रयत्नमकरवम्' (कादम्बरी ३५)। 'अनुबध्यमानश्च तया तां सर्वामतिथिसपर्यामतिदूरावनतेन शिरसा सप्रश्रयं प्रतिजग्राह' (कादम्बरी १३३)। 'किंनिमित्तं वा अनेक सिद्धसाध्यसम्बाधानि सुरलोकसुलभान्यपहाय दिव्याश्रमपदानि एकाकिनी वनमिदममानुषमधिवससि' (कादम्बरी १३५)

अभ्यास २२

छः ऐसे वाक्यों का निर्माण कीजिए जिनमें कर्त्ता और विधेय (क्रिया) का विस्तार सभी प्रकार की विधियों से किया गया हो। धाव्, प्रकाश्, उत् पूर्वक स्था, यत्, आस् और भ्रम् धातुओं का प्रयोग कीजिए।

अभ्यास २३

छः वाक्यों का निर्माण इस प्रकार कीजिए कि जिनमें विधेय (क्रिया) और कर्म का विस्तार किया गया हो। भृ, स्तु, मन्, दुह्, चि और विद् (प्राप्त करना) धातुओं का प्रयोग कीजिए।

अभ्यास २४

छः ऐसे वाक्यों का निर्माण कीजिए जिनमें कर्त्ता, विधेय (क्रिया) और कर्म सभी का विस्तार एक से अधिक विधियों द्वारा किया गया हो।

४२०—साधारण वाक्यों में बिना अर्थ परिवर्तन के क्रिया का वाच्य परिवर्तन करके विभिन्न प्रकार से वर्णन किया जा सकता है। जैसे—'दासी पुष्पाण्यानयत्' का वही अर्थ है जो 'दास्या पुष्पाण्यानीयन्त' का है। कभी-कभी वाक्यांशों के परिवर्तन द्वारा अभिव्यक्ति के प्रकार को बदला जा सकता है। 'कस्माद्धेतोरत्र निवससि, 'पिता सपुत्रो ग्रामंगतः' और 'किमर्थमत्र निवससि' और 'पिता पुत्रेण सह (सहितः) ग्रामं गतः' दोनों वाक्य अर्थ की दृष्टि से एक ही हैं। परन्तु संस्कृत में उसी भाव को विभिन्न शब्दों द्वारा व्यक्त करके वाक्यों में शब्दों को बदल सकते हैं। 'उद्यमात् विभवः प्रभवति' वाक्य को लीजिए। बिना अर्थ-परिवर्तन के इस वाक्य को विभिन्न प्रकार से इस प्रकार लिखा जा सकता है—

उद्यमाद्विभव उत्पद्यते-संजायते।

उद्यमो विभवाय कल्पते-भवति-जायते।

उद्यमो विभवस्य कारणं-हेतुः।

उद्यमप्रभवो विभवः।

उद्यमेन नरो विभवं याति-विभवयुतो भवति।

उद्यमी नरो विभवसम्पन्नो भवति।

उद्यममवलम्ब्य नरो विभवं याति।

उद्यमपरेण नरेण (प्रायः) विभव युतेन भाव्यम्।

अथवा आलङ्कारिक रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है—

उद्यमबीजाद्विभवांकुरः प्ररोहति।

अभ्यास २५

उपर्युक्त वाक्य को आदर्श मान कर निम्नलिखित वाक्यों के भावों को भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त कीजिए :—

(१) निर्धनता सर्वापदामास्पदम् (२) अस्य कोपः सनिमित्तः (३) मूर्खाणामुपदेशः प्रकोपाय भवति (४) अविवेकः आपदां परं पदम् (५) न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते (६) विद्वान् सर्वत्र पूज्यते । (७) देवपरा नरा विनश्यन्ति (८) सुतो लालनाद्विनश्यति (९) त्वमेव नः परमा गतिः (१०) पराभवोऽपि मानिनामुत्सव एव ।

मिश्रित वाक्य

४२१—मिश्रित वाक्य की रूपरेखा से स्पष्ट है कि इस वाक्य में एक मुख्य वक्तव्य रहता है और कम से कम एक आश्रित वक्तव्य । मुख्य उपवाक्य स्वतंत्र होता है जबकि आश्रित उपवाक्य विन्यास की दृष्टि से मुख्य उपवाक्य के आश्रित रहते हैं । अब इस वाक्य को लीजिए—'दूतो राज्ञे वार्तां न्यवेदयत्' । यह एक साधारण वाक्य है और तीन प्रकार के आश्रित उपवाक्यों में से किसी एक उपवाक्य को इसमें जोड़कर इसको मिश्रित वाक्य बनाया जा सकता है । जैसे—'सामंता महाराजमभिद्रोग्धुमहर्निशं यतन्ते इति वार्तां दूतो राज्ञे न्यवेदयत्' (संज्ञा उपवाक्य) ।

'यः पौरजानपदानपसर्पितुं प्रयुक्तः स दूतो आदि' (विशेषण उपवाक्य)
'काले उपायश्चिन्त्येतेति हेतोः दूतो आदि' (क्रिया विशेषण उपवाक्य)

४२२—अब हम मिश्रित वाक्यों के निर्माण के लिए कुछ अभ्यास देंगे । जहाँ तक सम्भव हो छात्रों को विचारों और अभिव्यक्ति-प्रकार में भी विभिन्नता रखनी चाहिए । छात्रों को चाहिए कि अनुच्छेद ३९० के वाक्य विश्लेषण की तालिका को देख लें, जिसमें आश्रित उपवाक्यों में प्रयुक्त वाक्यांश दिये गये हैं ।

अभ्यास २६—२८

पाँच ऐसे मिश्रित वाक्यों का निर्माण कीजिए जिनमें संज्ञा उपवाक्य (१) कर्त्ता अथवा कर्म हो (२) मुख्य उपवाक्य के कर्त्ता अथवा कर्म का समानाधिकरण हो (३) मुख्य उपवाक्य के किसी शब्द द्वारा शासित हो ।

अभ्यास २९

निम्नलिखित में से प्रत्येक को लेकर एक मिश्रित वाक्य का निर्माण कीजिए :—

सुवर्णकार, गुरु, विद्या, सुशिष्य, बाजीनृप और शिवराज।

अभ्यास ३०

चार ऐसे मिश्रित वाक्यों का निर्माण कीजिए जिनमें विशेषण उपवाक्य क्रमशः कर्त्ता, कर्म, कुछ क्रिया विशेषणात्मक विस्तार और कर्त्ता, कर्म अथवा विधेय के विस्तार की विशेषता प्रकट करें।

अभ्यास ३१–३४

छः ऐसे मिश्रित वाक्यों का निर्माण कीजिए जिनमें—

(१) काल वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य हो।

(२) स्थान वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य हो।

(३) प्रकार वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य हो।

और (४) कारण, परिस्थिति सूचक और अभिप्राय सूचक क्रियाविशेषण उपवाक्य हो।

निम्नलिखित धातुओं का उपयोग कीजिए—'स्वप्', उप पूर्वक 'स्था', 'हन्', 'लभ्', 'पत्', आ पूर्वक 'राध्' (प्रेरणार्थक)।

अभ्यास—३५

छः ऐसे मिश्रित वाक्यों का निर्माण कीजिए जिनमें क्रमशः कालवाचक, स्थान वाचक, समानतासूचक, प्रकारवाचक, परिणाम सूचक और प्रतिज्ञा सूचक क्रिया विशेषण उपवाक्य का प्रयोग हो।

४२३—अभी तक ऐसे मिश्रित वाक्यों के अभ्यास दिये गये जिनमें एक ही प्रकार के आश्रित उपवाक्य प्रयुक्त थे। अब हम ऐसे वाक्यों को लेंगे जिनमें दो या अधिक ऐसे उपवाक्यों का समावेश होगा। इस वाक्य को लीजिए—'वृषलः समाज्ञापयति'। य एष क्षपणको जीवसिद्धिर्नाम राक्षस-प्रयुक्तो विषकन्यया पर्वतकं घातितवान् स एनमेव दोषं प्रख्याप्य सनिकारं नग

रात् निर्वास्यतामिति' (मुद्रा० १)' इसमें 'समाज्ञापयति' का कर्म 'स···· इति' उपवाक्य है। इस उपवाक्य के कर्त्ता की विशेषता 'य····घातितवान्' यह विशेषण उपवाक्य प्रकट कर रहा है। इसी प्रकार—'यदैव मयायं देवस्योज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदितस्तदैव सनिर्वेदमेवमेतदित्युक्त्वा उत्थाय महाश्वेता पुनस्तपसे स्वमाश्रमपदमाजगाम'—इस वाक्य में प्रधान विधेय (क्रिया) की विशेषता एक कालवाचक क्रिया विशेषण उपवाक्य—'यदैव···· निवेदितः'—प्रकट कर रहा है और इसके एक विस्तार के साथ एक संज्ञा उपवाक्य सम्बद्ध है ('एवमेतत्' 'उक्त्वा' का कर्म है)। इस प्रकार एक मिश्रित वाक्य में दो या दो से अधिक आश्रित उपवाक्य के भेदों को रक्खा जा सकता है। 'यदा अतितृष्णा नराणां हृदये पदं करोति तदा ते यदीश्वरेणात्मने स्थित्यनुरूपं दत्तं तेनापरितुष्टाः संतस्ततोधिकतरमीहमाना यत्तैः सुखेन भोक्तुं शक्यं तदपि तृष्णातिरेकात् प्रायो हापयन्तीति असकृद्वयमस्मिञ्जगति प्रतीमः' इस मिश्रित वाक्य में एक क्रियाविशेषण उपवाक्य 'यदा····करोति' है जो 'हापयन्ति' की विशेषता प्रकट करता है, दो विशेषण उपवाक्य 'यत्···· दत्तं' और 'यत्····शक्यं' हैं और एक संज्ञा उपवाक्य 'तत्ते····हापयन्ति' है।

अभ्यास ३६-४०

पाँच ऐसे मिश्रित वाक्यों का निर्माण कीजिए जिनमें प्रत्येक—

(१) एक विशेषण उपवाक्य और एक संज्ञा उपवाक्य हो।

(२) एक क्रिया विशेषण उपवाक्य और एक विशेषण उपवाक्य हो।

(३) एक संज्ञा उपवाक्य और एक क्रियाविशेषण उपवाक्य हो।

(४) एक क्रियाविशेषण उपवाक्य और एक संज्ञा उपवाक्य हो जिनमें प्रत्येक की एक विशेषण उपवाक्य विशेषता प्रकट करे।

(५) सभी तीनों उपवाक्यों का साथ-साथ प्रयोग हो।

संयुक्त वाक्य

४२४—जैसा कि पहिले कहा जा चुका है कि संयुक्त वाक्य में दो या दो

से अधिक मुख्य वक्तव्य रहते हैं। ये सभी वक्तव्य साधारण वाक्य अथवा मिश्रित वाक्य अथवा साधारण और मिश्रित दोनों वाक्यों से संयुक्त हो सकते हैं। यह वाक्य सामूहिक, विरोध सूचक और अनुमेय तीनों सम्बन्धों में भली-भाँति व्यक्त किया जा सकता है।

'यात्रिकः काशीमगच्छत्' इस साधारण वाक्य को लीजिए। तीनों सम्बन्धों को व्यक्त करते हुए इस वाक्य को संयुक्त वाक्य के रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

(१) यात्रिकः काशीमगच्छत्, गंगायाः पावने सलिलेऽस्नात्, सकलानि च तत्रत्यानि तीर्थानि दृष्ट्वा स्वं ग्रामं न्यवर्तत।

(२) यात्रिकः काशीमगच्छत् किन्तु गंगासलिले स्नानार्थमवतीर्णः, केनचिन्महानक्रेण सहसा गृहीत्वाऽभक्ष्यत।

(३) यात्रिकः काशीमगच्छत् तेनात्मानं परिपूतं मेने।

यहाँ इस संयुक्त वाक्य के सभी उपवाक्य साधारण वाक्य के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। आवश्यकता पड़ने पर उनको मिश्रित वाक्य बनाया जा सकता है। उपर्युक्त (२) वाक्य को लेकर इस प्रकार वाक्य बनाइए—

'यात्रिकः काशीमगच्छत् किन्तु यावत्स्नानार्थं गंगासलिलेऽवतरति तावत्केनचिन्महानक्रेण सहसा गृहीत्वा भक्षितः' इस वाक्य में द्वितीय उपवाक्य मिश्रित है और प्रथम उपवाक्य साधारण है, जिसको मिश्रित वाक्य के रूप में इस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है—'श्री विश्वेश्वर दर्शनेनात्मानं निधौतकल्मषं करोमीति यदा गाढाभिलाषो मनसि पदं चकार तदा स यात्रिकः' आदि।

अभ्यास ४१-४२

उपर्युक्त आदर्श पर—(१) पाँच ऐसे संयुक्त वाक्यों का निर्माण कीजिए जिनमें साधारण उपवाक्य हों (२) पाँच ऐसे संयुक्त वाक्यों का निर्माण कीजिए जिनमें मिश्रित उपवाक्यों का प्रयोग हो।

अभ्यास ४३

एक ऐसा संयुक्त वाक्य लिखिए जिसमें निम्नलिखित में से प्रत्येक का वर्णन हो :—

(१) वर्षाकालः (२) पाणिनिः (३) अराजको जनपदः (४) राजधर्मः (५) घनं और (६) कालिदासः।

४२५—संस्कृत में साधारण वाक्यों के संकलन के लिये कृत् प्रत्ययों और कृदन्तीय वाक्यांशों के प्रयोग में बड़ी उदारता से काम लिया जाता है और इस विषय में तत्पुरुष और बहुव्रीहि समासों से बड़ी सहायता मिलती है। इन समासों की सहायता से कई साधारण वाक्यों को एक वाक्य में सुगठित किया जा सकता है, जो या तो साधारण वाक्य होगा या मिश्रित वाक्य या संयुक्त वाक्य।

'एकदा सा गंभीरध्वनिं शुश्राव। तमाकर्ण्य तस्याः कुतूहलमुपजातम्। अतः सा तस्यां दिशि दृष्टिं प्रेरितवती महान्तं च शबरगणं ददर्श।' इन सभी वाक्यों को एक साधारण वाक्य में इस प्रकार ग्रथित किया जा सकता है :— 'एकदा श्रुते गंभीरे ध्वनौ सा तदाकर्णनोपजातकुतूहला तद्दिशि प्रेरितदृष्टिः महान्तं शबरगणं. ददर्श।' इसी प्रकार—'अथैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमियाय। तं तस्य सैनिका अमात्याश्चानुजग्मुः। वने स बहून् मृगाञ्जघान। एकं मृगं पलायमानं अनुससार। मार्गे दिव्याश्रमपदं ददर्श'। इन वाक्यों को निम्नलिखित मिश्रित वाक्य के रूप में इस प्रकार ग्रथित किया जा सकता है— 'सैनिकैरमात्यैश्चानुगतो यदैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमियाय तदा स तत्र बहून् मृगान् हत्वैकं मृगं पलायमानमनुसरन् मार्गे दिव्याश्रमपदं ददर्श।' अथवा इससे भी संक्षिप्त—'ससैनिकामात्यो राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनंगतः बहून् मृगान् आदि'।

अभ्यास ४४

निम्नलिखित वाक्य समूहों को एक वाक्य में सुगठित करके साधारण, मिश्रित अथवा संयक्त वाक्य के रूप में परिवर्तित कीजिए :—

(१) एवं महाश्वेता आहारं परिसमाप्य सांध्योचिताचारान्निर्वर्तयामास। पश्चात् सा एकस्मिन् शिलातले विश्रब्धमुपाविशत्। तथास्थितां तां चन्द्रापीडो निभृतमुपससार। मुहूर्तमिव स्थित्वा च तां स सविनयमवादीत्।

(२) तस्मिन्दिव्याश्रमपदे दुष्यन्तः कामपि कन्यकामपश्यत्। सा कन्या चारुसर्वांगी आसीत्। स कण्वमुनेराश्रमः। तं राजा प्राविशत्। तदा तत्सत्कारार्थं शकुन्तला आश्रमाद्बहिराजगाम। शकुन्तला कण्वस्य कृतिका दुहितासीत्। सा सप्रश्रयं दुष्यन्तं स्वागतं व्याजहार।

(३) पेशवे इति ख्यातानां महाराष्ट्राधिकारिणाम् मध्ये चरमो बाजीराज इत्येको बभूव। स पुण्यपत्तनमधितस्थौ। स किल बहुगुणोपपन्न आसीत्। किन्तु तस्य राजकार्यावेक्षणविषये अतीव मंदादर आसीत्। अतः कर्मसचिवस्थाने बहवो नर्मसचिवा एव तं पर्यवारयन्। तैस्तस्य मनो विषयभोगेषु सुतरामाकृष्यत। एवं कामाधीने राजनि तच्छन्दानुवर्तिनि चामात्यगणे महाराष्ट्र देशोऽनायासेनैव रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां शत्रूणामामिषतां गतः।

४२६—पिछले अनुच्छेदों में हम यह दिखा चुके हैं कि दिये गये कई साधारण वाक्यों को किस प्रकार एक वाक्य के रूप में सुगठित किया जा सकता है। अब छात्रों के अभ्यास के लिए हम यह दिखायेंगे कि किसी दिये हुये वाक्य को किस प्रकार कई वाक्यों में विभक्त करके लिखा जा सकता है। इसके द्वारा छात्र को मूल संस्कृत की व्याख्या संस्कृत में ही करने का अच्छा अभ्यास हो जायेगा। इस पद्धति से व्याख्या करने में कार्य अर्द्ध संक्षिप्त हो जायेगा। यदि छात्र किसी संस्कृत मूल को विभिन्न वाक्यों में तोड़कर शब्दों और भावों के स्थान पर अन्य पर्यायवाचक शब्दों को रखता है तो मानो मूल अंश का स्वतन्त्र अनुवाद अथवा व्याख्या करता है। उदाहरण के रूप में यह श्लोक लीजिए—

'गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कंठे नियच्छति॥'

इसकी व्याख्या इस प्रकार विभिन्न वाक्यों द्वारा की जा सकती है—

'शिवः इन्दुं विषं च द्वावपि स्वीकरोति किन्तु इन्दुं शिरोधारणपूर्वकं प्रशंसति विषं च स्वं कण्ठे नियच्छति। एवं प्राज्ञो नरः कस्यचिन्नरस्य गुणं दोषमुभावपिगृह्णाति। किन्तु गुणं ग्रीवान्दोलनपूर्वकं श्लाघते दोषं तु स्वकण्ठे नियम्य तन्नाममात्रमपि विलोपयति।

इसमें सन्देह नहीं कि यह मूल श्लोक की स्वतंत्र व्याख्या है, परन्तु इससे अर्थ का पूर्ण स्पष्टीकरण हो जाता है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए—

"संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूपः।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्तवीर्यः॥"

इसको निम्नलिखित रूप में कई वाक्यों में विभक्त किया जा सकता है।—'पुरा किल कार्तवीर्यो नाम योगी समजायत। तस्य युद्धेषु (एव) बाहुसहस्रं परैरनुभूतम् (अन्यत्र स द्विभुज एव)। तेन अष्टादशसु द्वीपेषु यज्ञस्तम्भाः स्थापिताः। तथा च तस्य राजशब्दो नान्यसामान्य आसीत्। इसीप्रकार—'श्रुतिसुभगं गीतध्वनिं श्रुत्वा संजातकुतुको ध्वनिप्रभवजिज्ञासया कृतगमन-बुद्धिर्दत्तपर्याणभिन्द्रायुधमारुह्य प्रियगीतैः प्रथमप्रस्थितैर्वनहरिणैरुपदिश्यमान वर्त्मा पश्चिमया सरस्तीरवनलेखया निमित्तीकृत्य तं गीतध्वनिमभिप्रतस्थे' इस अंश की इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है—'यदा स सुखश्रवं गीतशब्दमशृणोत् तदा संजातकुतूहलः तत्प्रभवमुपलब्धुं स ऐच्छत्। तदनुरोधात् गमनाय मतिं विधाय इन्द्रायुधपृष्ठे पर्याणं समारोप्य तमारुरोह। तन्मार्गोपदेशाय इव सदाप्रियगीतरवा वनहरिणास्तस्मात्पूर्वमेव तदभिप्रेतां दिशं प्रस्थिताः।ताननुसरन् स पश्चिमेन सरस्तीरप्रान्तेन तं गीतध्वनिमुद्दिश्य ययौ।'

उपर्युक्त आदर्श पर और अनुच्छेद ४२० की सहायता से छात्र संस्कृत लेखकों से अंश उद्धत करके उनकी व्याख्या कर सकते हैं।

विभाग ४

पत्र-लेखन-प्रणाली

४२७—पत्र-लेखन ऐसा विषय नहीं है जिस पर संस्कृत-लेखकों ने अधिक ध्यान दिया हो। विद्यमान संस्कृत कृतियों में हम बहुत कम पत्रों का उदाहरण पाते हैं, सम्भवतः इसलिए कि हमारे पूर्वज इस प्रणाली का अधिक आश्रय नहीं लेते थे। इसलिए स्वभावतः संस्कृत में पत्र-लेखन में वे कठिनाइयाँ नहीं उपस्थित होतीं जो प्रायः अँग्रेजी में उपस्थित होती हैं, क्योंकि अँग्रेजी में व्यक्तिगत, व्यापारिक, कार्यालय सम्बन्धी आदि पत्र विभिन्न प्रकार के लिखे जाते हैं। संस्कृत में लिखे गये पत्र प्रायः एक ही प्रकार के हैं। पत्र-प्रणाली में कुछ निश्चित नियम होते हैं, जिनके अनुसार वे प्रारम्भ किये जाते हैं। सम्बोधित व्यक्ति की विभिन्नता के अनुसार पत्रों की विधियों में भी भिन्नता होती है। परन्तु इस अन्तर के अतिरिक्त ऐसी कोई भी बात नहीं रहती जिससे यह ज्ञात हो सके कि अमुक व्यक्तिगत पत्र है (जैसे पिता द्वारा पुत्र को), अमुक कार्यालय सम्बन्धी पत्र है (जैसे किसी मंत्री द्वारा राजा को) अथवा अमुक पत्र किसी दूसरे प्रकार का है (एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को)। हम इस विभाग में उदाहरणों सहित कुछ संस्कृत पत्रों का सामान्य रूप देंगे।

४२८—सर्व प्रथम दो उदाहरण देंगे और तब छात्रों से उनके विवरण के अध्ययन के लिए कहेंगे।

१—स्वस्ति। महेन्द्रद्वीपात्परशुरामो लंकायाममात्यं माल्यवन्तमभ्यर्हयति। अत्रैव परममाहेश्वरं लंकेश्वरमभिनंद्य ब्रवीति। विदितमेतद्वो यस्माभिर्दण्डकारण्यतीर्थोपासकेभ्यस्तपोधनेभ्यः प्रतिज्ञातमभयम्। तत्र विराधदनुकबंधप्रभृतयः केप्यभिचरन्तीति श्रुतम्। तत्तान्प्रतिसिध्य सद्वृत्तिमस्मद्धितां च माहेश्वरप्रीतिमनुरुध्यन्तां भवन्तः।

ब्राह्मस्यातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये।
जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥ इति

आजकल हिन्दी पत्रों के रूप में उपर्युक्त को इस प्रकार लिखेंगे—

महेन्द्रद्वीप

प्रिय माल्यवत,

× × ×

शुभेच्छु
परशुराम

लंकाधिपति को मेरा नमस्कार कहिए

श्री,
मान्यवर माल्यवत जी
प्रधानामात्य
श्री लंकाधिपति रावण

(२) और भी आधुनिक प्रणाली का नमूना :—

स्वस्ति । श्रीमत् संस्कृताद्यनेकविद्याविनयविराजमाना राजमान्याः[१] श्रीयुत गोखले उपनामधारिणः कृष्णरावाख्याः शतशः साष्टाङ्गप्रणाम-पुरस्सरं विज्ञाप्यन्ते। यत्काशीतो भवदर्थं आनीतस्य मानवधर्मशास्त्र ग्रन्थस्य वार्ताहरदेयभागेन सहितं मूल्यं सार्धदशरूपकपरिमितमिमां पत्रिकां भवद्धस्तं प्रापयतो गोविन्दस्य हस्ते दीयतामिति एषा विज्ञप्तिः।

पुण्यपत्तने, } पटवर्धन कुलोत्पन्नस्य हरिसूनो-
मार्गशीर्षसुदि १५, १८०७ संवत्सरे } नारायणस्य

४२९—अब हम छात्रों का ध्यान निम्नलिखित बातों की ओर आकर्षित करते हैं :—

---

(१) ये विशेषण केवल प्रशंसात्मक हैं। फिर भी साधारणतया कृतज्ञता व्यक्त करने के रूप में एक अथवा दो विशेषण रखना ही पड़ता है। विशुद्ध व्यापारिक पत्रों में इनको छोड़ा जा सकता है।

(१) प्रत्येक पत्र 'स्वस्ति' शब्द से प्रारम्भ होता है।

(२) अंग्रेजी की भाँति संस्कृत में भी जिस स्थान से पत्र लिखा जाता है उसका उल्लेख पहले[1] किया जाता है और उसे प्रधान क्रिया (विधेय) से अन्वित करके पंचमी विभक्ति में रक्खा जाता है। कभी-कभी स्थान का उल्लेख सप्तमी विभक्ति में किया जाता है। जैसा कि उदाहरण सं० २ में है।

(३) सम्बोधनशब्द (प्रिय, प्रियमहोदय आदि) वास्तव में प्रत्यक्ष नहीं लिखे जाते, किन्तु उन उन सम्बन्धों को व्यक्त करने वाले शब्दों द्वारा उन्हें व्यक्त किया जाता है। जैसे—'आयुष्मत्' किसी छोटे सम्बन्ध को व्यक्त करता है; 'मित्र' सौहार्द्र को व्यक्त करता है।

(४) लेखक का नाम, अंग्रेजी की भाँति, अन्त में नहीं दिया जाता; किन्तु प्रथम परिचयात्मक वाक्य के कर्त्ता के रूप में लेखक और प्रापक के सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले किसी शब्द के साथ, पत्र के पहले ही दिया जाता है। सन्बन्ध के स्वरूप की मात्रा विधेय (क्रिया) द्वारा व्यक्त की जाती है। जैसे ('अभ्यर्हयति' क्रिया श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का भाव व्यक्त करती है। इससे व्यक्त होता है कि लेखक और प्रापक में मैत्री है)। 'विज्ञाप्यन्ते' से व्यक्त होता है कि लेखक और प्रापक में सामान्य परिचय मात्र है। 'परिष्वज्य दर्शयति' से व्यक्त होता है कि लेखक प्रापक का घनिष्ट सम्बन्धी (पिता, पति आदि) है।

नोट—आधुनिक पत्रों में लेखक का नाम षष्ठी विभक्ति में अन्त में रक्खा जाता है, जैसे (उदाहरण संख्या २ में)। इसका सन्बन्ध 'विज्ञप्तिः' 'प्रार्थना' जैसे शब्दों के साथ पत्र में होता है। इसको ध्यान में रखना चाहिए कि पत्र की यह शैली अधिक व्यावहारिक है और इसका प्रयोग उसी परिस्थिति में करना चाहिए जब प्रापक व्यक्ति अपरिचित अथवा अज्ञात हो

---

(१) जब एक ही स्थान में रहने वालों में पत्र-व्यवहार हो तो सामान्यतया 'स्थान' का नाम और तिथि को छोड़ दिया जाता है।

(५) पत्र के आदि में अन्यपुरुष का प्रयोग होता है, यद्यपि पत्र के मध्य भाग में दूसरे पुरुष भी प्रयुक्त हो सकते हैं।

(६) अँग्रेजी आदि पत्रों में प्रापक का जो नाम कभी-कभी पत्र के अन्त में बायें किनारे पर कोने में लिखा जाता है और लिफाफे के ऊपर पूर्ण पता के रूप में रहता है, वह संस्कृत में लेखक के निवासस्थान के साथ पत्र के आदि में ही क्रिया के कर्त्ता अथवा कर्म के रूप में या किसी अन्य प्रकार से क्रिया से सम्बद्ध होकर (जैसे उदाहरण संख्या २) आता है। यही पत्र का पता होता है।

(७) संस्कृत में पत्र लिखने की तिथि नहीं दी जाती। परन्तु जब आवश्यकता पड़ती है तब विधेय (क्रिया) के क्रियाविशेषणात्मक विस्तार के रूप में सप्तमी विभक्ति में अथवा पत्र के अन्त में बाईं ओर कोने में लिख दिया जाता है। जैसे-"सुभानु संवत्सरे वैशाख वदि १३ भौमे"।

४३०—सुविधा के अनुसार पत्रों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१—घरेलू पत्र अथवा परिवार के व्यक्तियों में परस्पर लिखे गये पत्र।

२—दूसरे पत्र जो किसी व्यक्ति द्वारा अपने मित्र को, किसी शिष्य द्वारा अपने गुरु को, किसी मंत्री द्वारा अपने राजा को अथवा सामान्यतया किसी भी व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को लिखे जाते हैं। इन पत्रों को हम 'विविध पत्र' कह सकते हैं।

१ — घरेलू पत्र

४३१—पिता द्वारा पुत्र को, अथवा किसी बड़े द्वारा छोटे को अथवा पति द्वारा पत्नी को लिखे गये पत्रों में सम्बन्ध की घनिष्टता को स्नेहात् परिष्वज्य, उत्तमाङ्गेचुम्बन्, सस्नेहमालिंग्य आदि द्वारा व्यक्त किया जाता है।

हम कुछ उदाहरण उपस्थित करेंगे।

(अ) पिता की ओर से पुत्र को पत्र—

(अ) स्वस्ति । यज्ञशरणात्सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मंतमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्य अनुदर्शयति । विदितमस्तु । योसौ राजसूययज्ञे दीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य निरर्गलस्तुरगो विसृष्टः स सिंधोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनानां प्रार्थितः । ततः उभयोः सेनयोर्महानासीत्संमर्दः । किंतु वसुमित्रेण प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तितः सोहमिदानीं पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये । तदिदानीमकालहीनं विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह यज्ञसंदर्शनायागंतव्यमिति ।

(ब) स्वस्ति । उज्जयिनीतः परममाहेश्वरो महाराजाधिराजो देवस्तारापीडः सर्वसंपदामायतनं चन्द्रापीडमुत्तमांगे चुम्बन्नंदयति । कुशलिन्यः प्रजाः । किंतु कियानपि कालो भवतो दृष्टस्य । बलवदुत्कंठितं नो हृदयम् । देवी च सहांतःपुरैर्ग्लानिमुपनीता । अतो लेखवाचनविरतिरेव प्रयाणकालतां नेतव्येति ।

(स) और भी आधुनिक शैली का पत्र इस प्रकार का होगा—

स्वस्ति । पंचवटीतो गोविंदशर्मा पुण्यपत्तने पुत्रं विश्वनाथं (अथवा आयुष्मंतं विश्वनाथं) सोत्कंठं सस्नेहं निर्भरमालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा । कार्यं च । कुशलमिहास्माकं सर्वेषाम् भवदीया कुशलवती वार्ता सर्वदा प्रहेया । अद्यैव भवदर्थेस्मिन्मित्रस्य परशुरामस्य हस्ते विंशती रूपका दत्ताः । तेषां विनियोगः कथं कृत इति यथावसरं निवेदनीयमिति ।

शाके १८०७ मार्गशीर्षवदि १४ भौमेऽहनि ।

४३२—पिता अपने पुत्र को, बड़ा अपने छोटे को, तथा बड़ा सम्बन्धी अपने छोटे सम्बन्धी को भी पत्र लिखने में निम्नलिखित ढंग का अवलम्बन करेगा—

स्वस्ति । श्रीमच्चिरंजीविषु अमुकशर्मसु प्राणाधिकतरेषु अमुकस्य

(पितुः, भ्रातुः आदि जैसा भी हो) सस्नेहा आशिषः कोटिशः स्फुरंतु। विदितमस्तु आदि; या,

स्वस्ति। अमुकस्थानात् अमुकस्थानवासिनं चिरंजीविनम् अथवा आयुष्मंतम् अमुकशर्माणम् अमुकशर्मा सस्नेहमाशीःसहस्रपूर्वकं कुशलं वार्तयति; अथवा सोत्कंठं सस्नेहं समालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा। आदि,

(अ) पति की ओर से पत्नी को—

स्वस्ति। अमुकस्थाने पालितपरमपतिव्रतगुणां सौभाग्यशालिनीं भार्यामुकनाम्नीम् अमुकः सस्नेहं समालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा। कार्यं च। कुशलमिहास्माकम्। तत्रत्यसमस्तमानुषाणां कुशलवती वार्ता प्रहेया। अथवा एवंगुणासु प्राणेभ्योपि प्रियतरासु नितांतालिंगनपूर्वकस्नेहसमूहाः आदि।

४३३—जब छोटा अपने बड़े को अथवा पत्नी अपने पति को पत्र लिखे तो निम्नलिखित शैली का प्रयोग होना चाहिये—

पुत्र की ओर से पिता को:—

(१) स्वस्ति। अमुकस्थाने अनेकगुणालंकृतस्नेहगुणभूषितपुत्रवत्सलपूज्यपितृपादारविंदान् अमुकस्थानात्सदाविनीतः सुतः (अथवा सदाज्ञाविधायी पितृभक्तितत्परः सुतः) अमुको महाभक्त्या सबहुमानं क्षितितलनिहितमौलिना साष्टांगं प्रणम्य सविनयं विज्ञापयति। × × × सर्वाभ्यो मातृप्रभृतिभ्यो मदीयः प्रणामो वाच्यः। कार्यादिकं च सदादेष्टव्यमिति।

(२) स्वस्ति। श्रीमत्पितृचरणेषु अकिंचित्करकिंकरस्य सुतस्य (कभी-कभी मम) बद्धकरसंपुटं प्रणतिततिसहस्रमजस्रम्। कार्यं च इत्यादि

(३) स्वस्ति श्रीजन्मकर्मार्थयज्ञेषु जनकेष्वितः।
स्नेहार्द्रभावसहिताः स्फुरन्तु नतयः पराः॥

नोट—जब छोटा भाई बड़े भाई को अथवा पुत्र अपनी माता को पत्र लिखे तो उसे आवश्यक परिवर्तन कर लेना चाहिए।

पत्नी की ओर से पति को :—

स्वस्ति । यथास्थाने सकलपूज्यतमगुणालंकृतभर्तुः पादान् (कभी-कभी नाम दे दिया जाता है) अमुकस्थानात्सदाज्ञाविधायिनी अमुका पतिसेवातत्परा कंठश्लेषपूर्वकं सस्नेहं सोत्कंठं सविनयं प्रणम्य विज्ञापयति यथा । कार्यं च ।

२—विविध पत्र

४३४—अब हम **"विविध"** पत्रों को लेंगे। मित्र को लिखते समय लोग प्रायः सम्मानसूचक शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे—अमुकम् अर्हयति, अभिनन्दयति, अभिनन्द्य ब्रवीति, सस्नेहम् अनुदर्शयति, प्रणतिपुरःसरं निवेदयति इत्यादि।

इस प्रकार के एक पत्र का उदाहरण प्राचीन ग्रन्थ से पहिले ही दे दिया गया है (उदाहरण सं० १ देखिए)। मित्र को पत्र लिखते समय छात्र उस पत्र को नमूना मान सकता है।

नीचे कुछ आधुनिक नमूने दिए जाते हैं—

(१) **स्वस्ति । यथा स्थाने विद्वत्वदाक्षिण्यौदार्यादिगुणालंकृतशरीरं परमप्रेमनिधानं वयस्यम् अमुकम् अमुकस्थानादमुकः सोत्कंठं सस्नेहं गाढमालिंग्य कुशलं वार्तयति । कार्यं च ।**

(२) **स्वस्ति । अस्मदेकाश्रयीभूतेषु विद्याविनयादिमंडितेषु पूज्यतमेषु अमुकस्थाननिवासिषु अमुकशर्मसु अमुकस्थानवासिनः अमुकस्य प्रणतिसहस्रमजस्रम् ।**

४३५—अपरिचित लोग निम्नलिखित साधारण शैली का अवलम्बन कर सकते हैं :—

स्वस्ति । अमुकस्थाननिवासी अमुकनामकः श्रीमतः सकलविद्या-

वशीतचेतसः अमुकान् अनेकप्रणामपूर्वकं विज्ञापयति । अथवा, अमुकाः एवंगुणोपेताः (कुछ प्रशंसात्मक विशेषण) अमुकेन प्रणामपुरःसरं विज्ञाप्यन्ते निवेद्यन्ते वा । इस शैली में उपसंहार उदाहरण सं० २ की भाँति होगा । अथवा, श्रीमताम् अमुकनाम्नां—(संनिधौ) अमुकस्थानवासिनः अमुकनाम्नः सविनया विज्ञप्तिः । इत्यादि

इस नमूने का अवलम्बन करके किसी भी लेखक को पत्र लिखकर प्रार्थना की जा सकती है कि अमुक पुस्तक की एक प्रति डाक द्वारा भेज दें ।

स्वस्ति । आंग्लभौमगीर्वाणादिभाषासु परां प्रतिष्ठां गताः कलिकातानगरस्थमहापाठशालाधिकृताः श्रीतर्करत्नवागीशाख्याः प्रणामपुरःसरं विज्ञाप्यन्ते । यत् भवत्प्रणीतम् अलंकारदर्पणाख्यं ग्रंथम् अधिकृत्य काचित् विज्ञप्तिपत्रिका मया मित्रहस्ते अद्य दृष्टा । तदवलोकनेन तं ग्रंथं क्रेतुं मन्मनसि बलवतीच्छा प्रादुर्भवति । तदनुरोधात् राजशासनपत्रद्वारेण वार्ताहरभागसहितं मूल्यं सार्धचतुष्टयरूपकम् इतः प्रेषितम् । तद्यावच्छक्यं सत्वरं तद्ग्रंथस्य प्रेषणेनानुग्राह्यमात्मानमिच्छामि । ग्रंथश्च निम्नलिखितवाह्यनामा प्रेषणीय इति विज्ञप्तिः ।

पुण्यपत्तने संस्कृतपाठशालायाम्
संवत् १६३५ श्रावणवदी ११ शनौ

अभ्यंकरोपनामकस्य गोविंदसूनोः
रामशास्त्रिणः

नोट :—इन सभी पत्रों में प्रायः प्रापक व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं कुशल के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर दी जाती है । यह अन्त में इस प्रकार रक्खी जाती है —शमिह भावत्कं भव्यमनुदिनमेधमानमाशास्महे अथवा अत्यन्त संक्षेप में 'इति शम्' ।

४३६—शिष्य अपने गुरु को इस प्रकार पत्र लिखेगा :—

स्वस्ति । अमुकस्थाने (यदि अन्यत्र हों तो) अनेकतीर्थावगाहन पवित्रीकृतमानसान् परमाराध्यपरमपूज्यश्रीगोविंदाचार्यपादारविंदाद् अमुकस्थानात्सदादेशवर्ती अमुकनामकः परमभक्त्या क्षितितलनिहितमौलिना साष्टांगं प्रणम्य सविनयं विज्ञापयति; अथवा एवंगुणोपेताः

श्रीमदुपाध्यायपादा भक्तितत्परेण अमुकनाम्ना शिष्येण सविनयप्रणाम-पूर्वकं विज्ञाप्यन्ते; इति विज्ञप्तिः अमुकशर्मणः इत्यादि ।

इस ढंग के अनुसार शिष्य अस्वस्थता अवकाश के लिए गुरु को इस प्रकार लिख सकता है :—

स्वस्ति । सकलविद्यावगाहनविशदीकृतमानसाः परमपूज्याः गोपालरावाख्याः अनेकप्रणामपूर्वकं सविनयं विज्ञाप्यन्ते । यन्मम गेहेद्य मातापितरावुभावपि ज्वरपीडितौ संतौ शय्याग्रस्तौ । तौ तथा परित्यज्य पाठशालां गंतुं नाहमुत्सहे । मामपि च बलवती शिरोबाधा पीडयति । अतः अद्य मम अनुपस्थितिं मर्षयितुमर्हंति आचार्यपादाः इति सविनया विज्ञापना सदा भवदादेशवर्तिनः शिष्यस्य ।

खिस्ताब्दे दशममासस्य द्वादशवासरे
१८८५ } कालेकुलोत्पन्नस्य गोविंद-
सूनोर्हरेः

४३७—कुछ और नमूने देकर हम इस विभाग की समाप्ति करेंगे । ("स्वस्ति" प्रत्येक नमूने में प्रयोग किया जा सकता है)

(१) मंत्री अथवा अन्य राज-पुरुष द्वारा राजा को :—

श्रीसमस्तसामंतसेनानिर्वाहकेषु परोपकारसत्कारनिपुणेषु निजकीर्तिधवलितदिगंतरेषु महाराजाधिराज चरणेषु, आदेशवर्तिनो महाराजकिंकरस्य समस्ताशीराशीःसहस्रमजस्रम्; अथवा° काः °णाः, °राः, °णाः आशीः स-हस्रपूर्वकं निवेद्यन्ते अथवा अमुकस्थाने देवं विनयनतशिराः अमुकः पादद्वंद्वारविंदे भक्त्या मूर्ध्नि अंजलिं रचयति । कार्यं च लिख्यते इत्यादि ।

(२) बड़े की ओर से छोटे को :—

अमुकस्थानात् अमुकः अमुकस्थाने अमुकं सप्रसादं समादिशति यथा (कार्यं च) इत्यादि

(३) छोटे की ओर से बड़े को :—

पूज्यपरमाराध्यस्वामिअमुकपादान् अमुकस्थानात्सदादेशकारी अमुकः साष्टांगप्रणामपूर्वकं विज्ञापयति ।

(४) संन्यासी को—

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यदेवभूदेवनरदेवपूजितेषु श्रीपादेषु अमुकस्य प्रपंचविस्मरणपूर्वकं नारायणस्मरणप्रणामसहस्रमजस्रं विज्ञप्तिश्च ।

४३८—अब हम छात्रों से पूर्व पृष्ठों में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार पत्रों को लिखने के लिए कहेंगे। उक्त नियमों का अवलम्बन करके छात्र किसी भी प्रकार का पत्र लिखने में समर्थ हो सकेंगे। विषय में पर्याप्त विभिन्नता हो सकती है, परन्तु उपर्युक्त पत्र-प्रणालियाँ सभी में काम देंगी।

अभ्यास ४५-५२

१—स्कूल में अपनी प्रगति के विषय में अपने पिता को एक पत्र।

२—कुछ पुस्तकें और उपहार भेजते हुए पिता का पुत्र को पत्र।

३—किसी प्रीतिभोज अथवा धार्मिक उत्सव में सम्मिलित होने के लिए अपने मित्र को एक पत्र।

४—अपनी मनोवांछित पुस्तक भेजने के लिए किसी पुस्तक-विक्रेता को एक पत्र।

५—किसी व्यक्तिगत कार्य के सम्बन्ध में छुट्टी के लिए अपने गुरु के पास एक पत्र।

६—कुछ आर्थिक सहायता के लिए अपने मित्र को पत्र।

७—अपनी संस्कृत-व्याकरण की पुस्तक को कुछ दिनों के लिए दे देने को अपने मित्र सहपाठी को एक पत्र।

८—किसी पाठशाला के प्रधानाचार्य द्वारा जिला के किसी शिक्षाधिकारी के पास कुछ अधिक सहायक अध्यापकों की याचना के लिए पत्र।

टिप्पणी

पाठ १ पृष्ठ १०

अभ्यास २—पुरुरवा की विदूषक के प्रति उक्ति जब कि विदूषक चन्द्रमा की एक लड्डू से उपमा देता है। किसी भुक्खड़ व्यक्ति के लिए सदैव भोजन ही एक उपयुक्त क्षेत्र हुआ करता है, अर्थात् यहाँ तक कि उसकी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ भी भोजन-विषयक ही हुआ करती हैं।

३—कौन यह विश्वास करेगा कि यह (कौसल्या) वही है। इसकी मुखाकृति में इतना अधिक परिवर्तन हो गया है !

४—'अर्थपति' व्यक्तिवाचकसंज्ञा है (कुबेर)। अर्थ यह है कि विमर्दक मानो अर्थपति का बाहरी स्वरूप है। वह उसको अपने प्राणों के समान प्रिय समझता है, क्योंकि 'प्राणाः अन्तश्चराः' हैं।

५—यह एक प्रश्नसूचक के रूप में है। क्या पाण्डव भयकारक हैं ?

७—भीम सहदेव से कहते हैं—न मेरे पूज्य भाई (धर्म), न तो अर्जुन और न तो तुम दोनों ही कारण हो इत्यादि, 'मम शिशोरेव'—मुझ जैसे केवल शिशु का ही।

८—'द्वितीयं हृदयं'—दूसरा हृदय, तू मेरे जीवन का ही अंश है।

६—'निस्तेजाः'—तेज रहित, वीरता रहित तथा अग्नि रहित, जिसमें जलाने की शक्ति न हो। इसका अर्थ 'भस्मचय' से भी है, जो बहुत अधिक होते हुए भी पैरों तले रगड़ा जा सकता है, क्योंकि उसमें अग्नि नहीं रहती।

११—'आहितलक्षणः'—'काकुत्स्थ' ऐसा विलक्षण नाम रक्खा गया,—'काकुत्स्थ' नाम से प्रसिद्ध हुआ अथवा (अमरकोश के अनुसार) अपने सद्गुणों के कारण प्रसिद्ध।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'जो तुम्हारे ही समान मेरे मन की दूसरी ग्रन्थि है।' कामन्दकी की मालती के प्रति उक्ति है, जब कि कामन्दकी ने मालती से माधव का परिचय दिया।

२—'पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य'—अपनी अन्तिम वृद्धावस्था में वर्तमान, जो अवस्था में बहुत अधिक बड़ा था।

पृष्ठ ११

३—'शुकमादाय' अपने साथ एक तोता लिए हुए। 'आश्चर्यभूतः'—विस्मय कारक, एक कौतुक। 'इति कृत्वा'—ऐसा सोचकर, इस विचार से। 'देवपादमूलमागता'—श्रीमान् के चरणों में उपस्थित है।

४—'गर्भस्थस्यैव'—जब वह गर्भ में ही रहता है अर्थात् ये सभी पाँचों उसके साथ ही पैदा होते हैं।

६—'भूपतेः' = भूपतिना—उसके लिये केवल तीन चीजें अदेय थीं, क्योंकि वे आवश्यक राज-चिह्न थीं।

७—इस पंक्ति का अर्थ यह है कि यद्यपि लक्ष्मी और सरस्वती अपने स्वभाव के कारण भिन्न-भिन्न आश्रय ग्रहण करती हैं, परन्तु फिर भी इस राजा में वे साथ-साथ रहती हैं। लक्ष्मी और सरस्वती का संयोग, जो बहुत दुर्लभ है, इस राजा में प्राप्त है। 'एकसंस्थं' = एका संस्था यस्य।

८—'व्यतिकरितदिगन्ताः'—जो दिशाओं में (सभी ओर) पूर्णतया व्याप्त हैं। 'सुकृत इत्यादि'—जो सत्कार्यों के विलास-स्थल हैं अर्थात् जिन्होंने अनेक पुण्य कार्यों का विधान किया है।

पाठ २ पृष्ठ १७

अभ्यास २—'चन्द्रसरोरक्षकाः'—चन्द्रसरोवर के रक्षक अर्थात् खरगोश।

३—जिसके ऊपर राजा अधिक दृष्टि रखता है अर्थात् जो दूसरों की अपेक्षा अधिक कृपा-दृष्टि से देखा जाता है।

४—अर्थ यह है कि—दैत्य आपके बाणों के उपयुक्त लक्ष्य हैं, इसलिए अपने धनुष को इनके विरुद्ध झुकाइए।

पृष्ठ १८

८—उसी प्रकार राजा और मागधी (सुदक्षिणा) जो उनके (शिव और उमा तथा इन्द्र और शची के) समान थे, अपने पुत्र से प्रसन्न थे जो उनके (कार्तिकेय और जयन्त के) समान था।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'बहुमन्यते'—बहुत समादृत है, बहुत आदर की दृष्टि से देखी जाती है। 'आशानिबन्धनं इत्यादि'—समस्त जीव-लोक की आशा की ग्रन्थि हो गयी। श्री सीता जी के कहने का भाव यह है कि—'वास्तव में वह स्त्री धन्य है जिसने मेरे पतिदेव का मनोरंजन करके सभी लोगों की अभिलाषाओं को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है।'

२—सीता जी द्वारा प्रेमपूर्वक पालित हाथी के बच्चे (कलभ) को लक्ष्य करके कही गई श्रीराम की उक्ति। 'यत्कल्याणं इत्यादि'—वह युवावस्था के गुणों का आश्रय हो गया है अर्थात् युवावस्था की स्फूर्त्ति और पौरुष से युक्त है।

३—पृथ्वी के कहने का अभिप्राय यह है कि श्री सीताजी के त्यागने में श्री रामचन्द्र इनके द्वारा किंचित् भी प्रभावित नहीं हुए थे, जिनमें एक के भी अनुसार राम के विरुद्ध कुछ कहा जा सकता।

५—दूषण, खर और त्रिमूर्धा ये उन राक्षसों के नाम हैं जो राम द्वारा मारे गये थे।

६—वास्तव में उसका जीवित रहना मृत्यु के समान है और मृत्यु उसके लिए विश्राम है। अर्थात् ऐसे मनुष्यों का संसार में रहना जीवित मृत्यु के समान है और वास्तविक मृत्यु उनके लिए अन्तिम विश्राम है।

७—यह एक संदेहास्पद पंक्ति है। इसका भाव यह प्रतीत होता है—'जो

हर्ष और विषाद दोनों में उपयुक्त विषय हो वह दुर्लभ है अर्थात् सुख और दुःख दोनों परिस्थितियों में समान रूप से साथ देने वाला मित्र के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। 'ये.........मिलन्ति' इस पंक्ति की तुलना 'सैम्सन एगोनिस्ट्स' की इस उक्ति से कीजिए—'सम्पत्ति के समय में वे सब घेरे रहते हैं और विपत्ति के काल में अपना मुँह फेर लेते हैं तथा ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते'। 'तत्वनिकष' इत्यादि—परन्तु विपत्ति उनकी कसौटी है (जिस समय उनके वास्तविक चरित्र की परीक्षा हो सकती)।

पृष्ठ १९

९—हिंसाशून्यं'—क्षति के बिना, किसी को कष्ट पहुँचाए बिना प्राप्त। तुलना कीजिए—'और पार्वत्य हरितप्रदेश से एक निर्दोष भोज्य ले आ रहा हूँ' —गोल्डस्मिथ। 'अशनं' का अन्वय 'व्यालानां समाप्तिं प्रयान्ति' के साथ होगा। अपनी जीविका के प्रयत्न में बिलकुल सूख गये हैं।

१०—विष्णु भगवान के प्रति सम्बोधन। हमारी वाणी आपकी महिमा का वर्णन करने से रुक जाती है या क्षीण हो जाती है, इसलिए या तो मुझमें वर्णन करने की शक्ति नहीं है, या हमारी असमर्थता है न कि इसलिए कि आपके गुण सीमित हैं।

पाठ ३ पृष्ठ २७

२—'विन्दूत्क्षेपान्' घूमती हुई पहिया के द्वारा फेंकी हुई जल की बूँदें।

५—प्रियंवदा के कहने का अभिप्राय यह है कि दुष्यन्त के अतिरिक्त उसके जीवन की रक्षा कौन कर सकता है, जिसने उसके प्रति अपना प्रगाढ़ प्रेम प्रदर्शित किया है।

६—'प्रावृषा संभृतश्रीः' जिसकी सुषमा वर्षा ऋतु के कारण और भी बढ़ जाती है।

१०—'कृतकार्य'—वनं का विधेय है। भाव यह है कि जिसकी अभिलाषा पूर्ण हो चुकी है। 'यद्' 'अध्यास्ते' का कर्म है।

११—अधिष्ठाय—नेता अथवा 'नायक' होकर, पथप्रदर्शक होकर।

पृष्ठ २८

१४—'अमी' का अन्वय 'वह्नयः' के साथ है। 'क्लृप्तधिष्ण्याः' जिसके स्थान निर्दिष्ट कर दिये गये हैं।

१५—मण्डप का विस्तार (लम्बाई-चौड़ाई) दीजिये। 'शतमध्यर्द्धम्' एक सौ पचास।

१६—'रघुप्रतिनिधिः'—रघु के प्रतिनिधि (पुत्र) अर्थात् अज! कामदेव की भाँति बाल्यकाल को छोड़कर किसी भी अवस्था[1] को प्राप्त करके।

१७—'सम्प्रति आवसत्'—अभी-अभी रह चुका है।

१८—उसके (नन्दिनी के) सो जाने पर वह सोता था और प्रातःकाल उसके सोकर उठने पर उठता था।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'अयं जनः'—सामान्यतया इसका सम्बन्ध वक्ता से है। दुष्यन्त के कथन का अभिप्राय है कि 'इस व्यक्ति ने (मैंने) एक बार उससे (हंस पदिका से) प्रेम किया और इसीलिए रानी वसुमती के विषय में मुझको तीक्ष्ण व्यंग्य सहने पड़े।

पृष्ठ २९

४—'दोषं विवक्षता त्वया—' दोष को व्यक्त करने की इच्छा वाले आपके द्वारा।

६—क्रियान्तरान्तरायमन्तरेण'—आपके अन्य कर्त्तव्यों में विघ्न उपस्थित किए बिना अर्थात् उस समय जब कि आपको अन्य कोई और कार्य न करना रहे।

१— अथवा बाल्यावस्था के बाद ही दूसरी अवस्था (अर्थात् युवावस्था)।

९—'कल्पितशस्त्रगर्भं'—जिसके मध्य भाग में शस्त्र सुसज्जित रक्खे हुए थे।

१०—'चतुरस्रयानं'—एक चतुष्कोण सवारी अर्थात् पालकी। चतस्रः अश्रयो यस्य तत्।

'मञ्चान्तर राजमार्गं—'—मंचों की पंक्तियों द्वारा निर्मित राज मार्ग।

'क्लृप्तविवाहवेषा'—वैवाहिक वेशभूषासे सुसज्जित।

११—यह सीता के प्रति रावण की उक्ति है।

१२—'कष्टसंश्रया'— कष्टों से परिपूर्ण।

१३—'यत्'—चूँकि। इसका अर्थ यह है पागल कुत्ते के विष की भाँति सीता-सम्बन्धी यह प्रवाद सर्वत्र फैल गया है, यद्यपि इस प्रवाद का निराकरण अद्भुत उपायों द्वारा किया जा चुका था।

१४—'प्रियासहचरः'—मेरी प्रिया के 'सहचर अर्थात् मेरी प्रिया के साथ।

'गोदावरीपरिसरस्य'—जिसके सन्निकट गोदावरी नदी है।

पृष्ठ ३०

१५—'दंष्ट्राइत्यादि'—दाँत, नाखून और पूँछ ही जिसके अस्त्र हैं। 'तृष्णां-छिनत्ति'—पिपासा को शान्त करता है।

१६—'अजातशत्रु'—'धर्मराज', जिसके शत्रु नहीं थे। 'लिखितैरिव'—चित्रलिखित की भाँति—मानों हम सभी चित्रवत् थे जो गति-हीन और प्रतिशोध की भावना से रहित होते हैं।

१७—'जालानि इत्यादि'—यह (सरयू नदी) जिसके तट पर यज्ञस्तम्भ स्थापित है, राजधानी अयोध्या के सन्निकट से अपना जल प्रवाहित करती है।

१८—'वाच्यदर्शनात्'—कलङ्क को देखकर। 'नृपतिःसन्'-राजा होता हुआ।

पाठ ४ पृष्ठ ३४

१—'अचिरप्रवृत्तोपदेशं'—उपदेश जिनको प्रारम्भ हुए बहुत दिन नहीं हुए क्योंकि वह अभी ही अपने स्वामी को समर्पित की गई थी।

'कीदृशी मालविका'—मालविका का क्या समाचार है ? उसने कितनी योग्यता प्राप्त कर ली है ?

२—'सुखं प्रष्टुं'—यह पूछने के लिए कि वह कैसा कर रही है ।

पृष्ठ ३५

४—'पृथूपदिष्टां'—महाराजपृथु द्वारा निर्दिष्ट । अनेक बहुमूल्य पदार्थों को दुहने (प्राप्त करने) में समर्थ हुए ।

५—इन्द्र द्वारा अपने अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए जिसने अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर दिया था, जो अपने अभीष्ट-कार्य की सिद्धि की क्षमता प्रदर्शित कर चुका था ।

६—'सोऽहं'—अतः मैं ।

७—जिस समय महाराज रघु ने कुबेर द्वारा आकाश से सम्पत्ति की वर्षा कराई उस समय कौत्स की रघु के प्रति यह उक्ति है । 'वृत्तेस्थितस्य'—राजाओं के कर्त्तव्यों में दत्तचित्त के । 'मनीषितं' इत्यादि—आकाश ने भी आपके अभीष्ट की सिद्धि की है ।

८—'ज्येष्ठां'—हिमालय की ज्येष्ठ कन्या को । 'त्रिपथगा'—आकाश, पृथ्वी और पाताल इन तीन मार्गों से बहने वाली (गंगा) ।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'राज्याश्रममुनिं'—राज्य रूपी आश्रम में मुनि की भाँति राजा से ।

पृष्ठ ३६

३—'काकपक्षधरं'—काकपक्ष (घुँघराले बाल) को धारण करने वाले को अर्थात् बालकरूप (राम) को ।

'तेजसां इत्यादि'—तेजस्वियों के विषय में अवस्था का विचार नहीं होता । देखिए—'न खलु वयस्तेजसोहेतुः'—भर्तृहरि ।

४—'कृपयाविष्टम्'—करुणा की भावना से युक्त को ।

५—यहाँ पर शरद ऋतु की उपमा एक ऐसी चतुर दूती से दी गई है जो

अपनी सहेली (गंगा) को उसके प्रिय (सागर) के पास पूर्ण प्रसन्नमुद्रा में (पूर्ण स्वच्छ जल से युक्त) बड़ी कठिनाई से उचित मार्ग पर (सामान्य मार्ग पर) ले आई है, जो सहेली (गंगा) अत्यन्त क्षीण (संकीर्ण) हो गई है और जो अपने प्रिय से, अधिक पत्नियों को रखने के कारण अत्यन्त रुष्ट हो गई है (वर्षा ऋतु में पानी गन्दा हो जाता है, सागर भी नदी रूपी बहुत सी पत्नियों को रखता है)।

६—'ममवचनात्'—मेरी ओर से। 'पूर्वाभाष्यं' इत्यादि—विपत्तिग्रस्त लोगों के (कुशल प्रश्न) वार्तालाप का एकमात्र यही रूप है।

७—'सः'—राम। 'याचमानः शिवं सुरान्'—देवताओं से आशीर्वाद की याचना करता हुआ, सीता के कल्याणार्थ देवताओं से प्रार्थना करता हुआ। 'यथास्थितं सर्वं'—सभी चीजें यथापूर्व हैं। 'भिक्षमाणो वनं प्रियां'—वन से अपनी प्रिया के विषय में पूछता हुआ। 'प्राणान्दुहन्निवात्मानम्'—अपने शरीर से प्राणों को निचोड़ते हुए उसने शोक को अपने मस्तिष्क में सीमित कर दिया, अर्थात् वह अपने जीवन से निराश हो गया, अतः हृदय से बहुत दुःखी था। 'आ यत्र तापसान्'—कल्पना करता है। 'आ' एक अव्यय पद है, जिसका अर्थ है हाँ सम्भवतः ऐसा ही है।

पाठ ५ पृष्ठ ४४

२—'अनाययत्'—अर्थात् हारीतः। उन्होंने जब तोते के बच्चे को उस असहाय दशा में देखा। 'मुक्तप्रयत्नं'—जिसने हिलना-डुलना (छटपटाना) बन्द कर दिया था।

३—'येन इत्यादि'—जिसने उस झूठी प्रतिज्ञा करने वाले के ऊपर मेरी सखी को विश्वास दिलाया।

४—'आसनं प्रतिग्राहितः'—तुमसे आसन (गुरु का) ढोवाया गया।

५—'धात्रीकर्मवस्तुतः परिगृह्य'—एक दाई के काम से लेकर उनके पालन-पोषण का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व वहन करते हुए अर्थात् उन सभी कार्यों

को करते हुए जिनको एक दाई उस परिस्थिति में करती। सम्भवतः यह वाक्य इस प्रकार पढ़ा जा सकता है—'धात्रीकर्म वस्तुतः परिगृह्य'—वस्तुतः एक दाई के कर्त्तव्य का पालन करते हुए। 'वृत्तचूडौ'—मुण्डन संस्कार सम्पन्न। 'त्रयीवर्जम्'—तीनों वेदों को छोड़कर।

पृष्ठ ४५

७—शुकनास के प्रति चन्द्रापीड की उक्ति, जिसमें उसने शुकनास से प्रार्थना की है कि वैशम्पायन को पुनः लौटा ले आने के लिए पिता जी से मुझे (चन्द्रापीड को) जाने की आज्ञा प्रदान करा दीजिए।

१०—वे दोनों, विलाप करके, अपने बच्चे का वध करने वाले से छाती में गड़े हुए बाण को निकलवाने लगे।

११—'साङ्गम्'—अंगों सहित। वेदों के अंग छः हैं—शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष। 'उत्क्रान्तशैशवौ,—जो शैशव काल पार कर चुके थे। 'कविप्रथमपद्धतिम्'—कवियों द्वारा अनुसरणीय प्रथम मार्ग, जिसने कवियों का सर्वप्रथम मार्गप्रदर्शन किया। वे 'आद्यः कविः' हैं, इसलिए इनको यह विशेषण दिया गया।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'भावेन'—आप श्रीमान् जी के द्वारा, सूत्रधार की ओर संकेत है

पृष्ठ ४६

४—शिव के द्वारा भस्म कर दिये जाने पर कामदेव के प्रति रति की उक्ति है। 'रजनी''''मार्गे' को केवल सप्तम्यन्त अथवा भावे सप्तमी माना जा सकता है। 'रात्रि के घने अन्धकार से आच्छादित'।

५—'तां कुलप्रतिष्ठां प्रणमय्य'—जो कुल की प्रतिष्ठा थी अर्थात् कुल के अस्तित्व का कारण थी उस कन्या से कुल देवताओं को प्रणाम करवाकर।

'कारयितव्यदक्षा'—जो कुछ भी अन्य से कराया जाना चाहिए, उसको अच्छी प्रकार से जानती हुई। 'सतीनां पादग्रहणमकारयत्'—उसके द्वारा सती (पतिव्रता) स्त्रियों के चरणों का स्पर्श करवाया।

६—'एकोन्मीलनपेशलः'—स्मरण किया।

७—'उत्सव संकेतान्'—एक व्यक्ति का नाम। 'जयोदाहरणं'—अपनी विजय-घोषणा। अर्थात् अपनी सेवा की विजय से सम्बद्ध गाथा।

८—'अथ'—दशरथ की मृत्यु के पश्चात्। 'अनाथाः'—राजा की मृत्यु हो जाने के कारण स्वामी-विहीन प्रजा।

९—सीता के प्रति राम की उक्ति है। 'रक्षसा'—रावण द्वारा।

१०—युधिष्ठर के प्रति द्रौपदी की उक्ति है। आपके अतिरिक्त अन्य कौन राजा होगा जो सभी प्रकार के उपयुक्त साधनों के रहते हुए और अपने वंश पर गर्व करने वाला, गुणों के कारण पति में अनुरक्त रहने वाली, उच्च वंश में उत्पन्न पत्नी-स्वरूप-सम्पत्ति का शत्रुओं द्वारा अपहरण करायेगा ! 'क इव'—सम्भवतः किसके समान ?

११—'यः पयो दोग्धि'—ये चार पंक्तियाँ और आगे की दो पंक्तियाँ रावण द्वारा सीता जी से उस समय कही गई हैं, जब वह सीता को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न कर रहा था। "जो पाषाण से दूध निकालता है वही राम से ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है" तात्पर्य यह कि बिल्कुल ही सम्भव है। 'बोधयन्तं हिताहितम्'—जो (रावण) तुमसे हित एवं अहित की बातें कह रहा है। 'किं विलापयसे'—मुझसे क्यों अधिक कहलवाती हो ?

'आज्ञां कारय इत्यादि'—राक्षसों द्वारा अपनी आज्ञाओं का पालन कराइये और मुझसे प्रिय कार्य कराइए। हाथ जोड़कर और उसे सिर से लगा कर इन्द्र द्वारा किये गए प्रणाम को कौन न चाहेगा ? अर्थात् मेरे द्वारा पराजित मेरा दास इन्द्र जिस प्रकार मुझको प्रणाम करता है उसी

प्रकार वह मेरी प्रिया तुझ को भी प्रणाम करेगा । मूर्धानमधिगतः अथवा अधिगतो मूर्धा येन तमधिमूर्धानम् ।

पृष्ठ ४७

१२—'एनं' अर्थात् रामं । 'रक्षोगणं क्षिप्तुम्'—राक्षसों के समूह को विनष्ट करने के लिए । गाधिसुतः—विश्वामित्र ।

पाठ ६ पृष्ठ ५३

१—'अधरोत्तर व्यक्तिर्भविष्यति'—यह स्पष्ट हो जायेगा कि कौन घटिया है और कौन बढ़कर है ?

२—अहं—अयं-गणदास, जिसने राजा से हरदत्त की शिकायत की ।

३—'शापितासि इत्यादि'—सिर हिलाकर उत्तर देती हुई मालती के प्रति माधव की यह उक्ति है । यदि शब्दों द्वारा उत्तर न दोगी तो मैं तुमको अपने प्राणों की शपथ दिलाता हूँ ।

पृष्ठ ५४

८—'जरद्द्रविड धार्मिकः'—एक वृद्ध द्रविड सन्यासी । 'इच्छया' का सम्बन्ध 'निसृष्टैः' के साथ है और इसका तात्पर्य है 'स्वेच्छापूर्वक' । 'अभिमतं' का सम्बन्ध 'मनोरथं' के साथ है और इसका अर्थ है 'अभीष्ट' 'मनोवाञ्छित'

१०—'किंवहुना'—अधिक कहने से क्या लाभ ? अर्थात् संक्षेप में ।

११—'स्वहृदयेनापि····जिह्रेमि'—सम्पूर्णवृत्तान्त को जानने वाले अपने इस हृदय से मैं इस समय लज्जित हूँ ।

१४—'दूरीकृताः······वनलताभिः'—शोभा सौन्दर्य में वनलताओं ने उद्यानलताओं को पराभूत कर दिया है । अर्थात् साजसज्जा रहित प्रकृति अधिक शोभाकर होती है ।

१५—'शरीरसादादिति'—गर्भवती सुदक्षिणा की दशा का वर्णन है । 'असमग्र-भूषणा'—सुदक्षिणा अपने सम्पूर्ण आभूषणों को नहीं धारण किये हुए

हैं, किन्तु अत्यन्त आवश्यक कुछ थोड़े ही आभूषणों को धारण किये हुए थीं, जैसे मंगलसूत्र, कंकण इत्यादि। 'मुखेन' —मुखेनोपलक्षिता। 'तनुप्रकाशेन'—धुँधले प्रकाश युक्त। 'विचेयतारका'—उषाकाल होने के कारण विरलतारका रात्रि।

१६—'मर्त्येषु असंमूढः'—मनुष्यों में ज्ञानी ही (मुझे जानते हैं)।

अतिरिक्त अभ्यास पृष्ठ ५५

१—'अकथ्यमाने' अर्थात् पुण्डरीकवृत्तान्ते।

३—'अवधूतप्रणिपाताः इत्यादि'—यद्यपि मानवती स्त्रियाँ अपने प्रिय के प्रणाम को ठुकरा देती हैं फिर भी अन्त में पश्चात्ताप से पीड़ित होती हैं और प्रिय को मनाने के कारण अन्तःकरण में मन ही मन लज्जित होती हैं अर्थात् वे खुलकर अपने प्रिय को मनाना पसन्द नहीं करतीं।

४—"कष्टं जनः कुलधनैरनुरंजनीयः"—जैसे ही लक्ष्मण जी ने कहा कि 'यावदार्यायाः हुताशने विशुद्धिं' अर्थात् आर्या (सीता जी की अग्नि परिशुद्धि तक, उसी समय की रामचन्द्र जी की यह उक्ति है—'हाः दुःख का विषय है! विशुद्ध वंश ही जिनका धन है उन्हें भी प्रजा को प्रसन्न रखना पड़ता है और इसलिए वह अग्नि परिशुद्धि-क्रिया केवल प्रजा को प्रसन्न करने के लिए ही की गई थी, अतः जो कुछ भी खराब बातें मैंने तुमको कही हैं वे तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं हैं।

'नः' = अस्माभिः।

५—'अविनयबहुलतया'—सभी तृतीयान्त पद आगे आने वाले संज्ञा पदों से सम्बद्ध हैं। चढ़ती जवानी सभी प्रकार के अविनयपूर्ण कार्यों से युक्त होती है। 'तमपि' = पुण्डरीकम्।

६—'स्पृशति····पदं'—(उन्नति के) पद को प्राप्त कर लेता है। ऐसे गुणों से सम्बद्ध जो कुत्तों में नहीं पाये जाते।

७—इतः = मयि।

पृष्ठ ५६

८—'विनय प्रधानैः'—विनयः प्रधानः येषां—जिनमें विनम्रता सर्वप्रधान है।

१०—'नन्दमौर्यनृपयोः' का सम्बन्ध 'अस्तोदयौ' के साथ है। 'अविभिन्नकालं' =साथ ही साथ। इन पंक्तियों द्वारा सूर्य की अपेक्षा चाणक्य की उत्कृष्टता व्यक्त होती है। 'जो अपने तेज के कारण सहस्रकिरणधारी सूर्य को भी तिरस्कृत कर देता है, जो प्रकाश सर्वव्यापक नहीं है और समय समय पर (अन्तर से) शीतलता और उष्णता पैदा करता है। (चाणक्य की तरह एक ही साथ शीतलता और उष्णता नहीं पैदा करता)।

१३—'न तेन सज्जं' इत्यादि—दुर्योधन के गुणों का वर्णन है। 'उद्यतं'—शत्रुओं के विरुद्ध खींचा गया। उसकी आज्ञाओं का पालन राजाओं द्वारा बड़े सम्मान के साथ किया जाता है। 'गुण' का अर्थ 'डोरा' भी होता है।

१५—विष्णु से शिशुपाल के प्रति नारद मुनि की उक्ति है। 'बालः'—बालक होते हुए भी। 'मुखेन इत्यादि'—पूर्णचन्द्र के समान मुखाकृति से वह भगवान शंकर की भाँति था। 'युवा इत्यादि'—अब पूर्ण युवक होने के कारण उसने सभी राजाओं को कर देने के लिए बाध्य कर दिया है और वास्तव में वह सब प्रकार से सूर्य के समान है (जो अपनी किरणों से समस्त पर्वतों को आक्रान्त कर लेता है)।

पाठ ७ पृष्ठ ६५

२—'सर्वज्ञस्य'—में तृतीया विभक्ति का भाव है। एक व्यक्ति द्वारा निर्णय, चाहे वह सर्वज्ञ ही क्यों न हो, दोषपूर्ण हो सकता है।

४—'अस्मै' = बालकाय।

५—'साधोः'—सज्जन को दिया हुआ।

६—अपनी पुत्री सीता का राम द्वारा परित्याग करने पर पृथ्वी के प्रति गंगा जी की यह उक्ति है। 'शरीरमसि संसारस्य'—तुम तो सम्पूर्ण जीवों की अधिष्ठात्री (आधारभूत शरीर) हो।

७—'मिथ्या' 'निर्भराः'—मिथ्या महिमा के गर्व से परिपूर्ण । 'आत्मप्रज्ञा इत्यादि' वे मंत्री की सम्मति का तिरस्कार करते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि मंत्री की राय मानना उनकी अपनी बुद्धि का अपमान है ।

९—'महाश्वेताप्रणामपुरःसरं'—सर्वप्रथम महाश्वेता को प्रणाम करके ।

१०—'अवाङ्मनसगोचरम्'—जो मन और वाणी से परे है । अर्थात् जिसका न वर्णन हो सकता है और न चिंतन हो सकता है ।

पृष्ठ ६६

११—चन्द्रमा की ओर संकेत है । अमावास्या तिथि उस समय आती है जब चन्द्रमा सूर्यमण्डल में प्रवेश करता है, जिससे निषिद्ध दिवस होने के कारण साधु जन उस समय कोई पवित्र कार्य नहीं करते । 'सुधया' इत्यादि—'पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः' (रघु० ५।१६) से इसकी तुलना कीजिए । चन्द्रमा की कलाएँ जो प्रतिदिन क्षीण होती जाती हैं, उसका तात्पर्य यह है कि उसका अमृत देवताओं और पितरों द्वारा बूँद-बूँद प्रतिदिन पान किया जाता है (अतः क्षीण होता हुआ भी शोभित ही होता है) ।

१२—हिमालय के प्रति सप्तर्षियों की यह उक्ति है, जिस समय उन लोगों ने उमा का विवाह शिव के साथ करने के लिये कहा । 'त्वत्कुल' इत्यादि—आप के वंश की उन्नति के लिए यह परिस्थिति (उमा-शिव सम्बन्ध) पर्याप्त है ।

१३—'तृणविन्दोः परिशंकितः'—तृणबिन्दु घोर तपस्या कर रहे थे, अतः इन्द्र उनसे भयभीत हो उठे । जब कोई भी व्यक्ति घोर तपस्या करता है तब देवता लोग—विशेषकर इन्द्र—बहुत ही भयभीत हो जाते हैं । शकुन्तला नाटक के प्रथम अंक में देखिए—'अस्त्येतदन्यसमाधि-भीरुत्वं' ।

'हरिणी'—एक अप्सरा का नाम है ।

१५—रघु को निर्धन देखकर वहाँ से चलते हुए कौत्स की उक्ति है ।

'निर्गलिताम्बुगर्भं'—जलहीन होने के कारण शरद् कालीन बादल से चातक भी कुछ नहीं माँगता।

१६—'ताभ्यामिति'—राजा (दशरथ) ने एकलौते पुत्र वाले (श्रवण के माता-पिता) के पास जा कर उसकी (श्रवण की) दशा को और अज्ञानता में किये हुये अपने कृत्य को बताया। 'उपेत्य'—कुछ लोगों के मत से इसका अर्थ 'उद्दिश्य' है।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'दण्डवत्प्रणम्य'—पृथ्वी पर दण्डाकार गिर कर प्रणाम करके।

२—'रामस्य दर्शनं सुहृदाम्'—राम का अपने मित्रों का दर्शन करना।

पृष्ठ ६७

३—'कुलपांशवः'—कुलकलंक, जो अपने वंश की मर्यादा को कलंकित करते हैं।

५—'स' = दिलीपः। 'यज्ञाय'—यज्ञों के लिए, जिससे देवता लोग संतुष्ट होते हैं। अन्न की उत्पत्ति के लिए इन्द्र वर्षा करते हैं। (शब्दार्थ-आकाश को दुहते थे)। इस प्रकार वे दोनों (दिलीप और इन्द्र) परस्पर सेवा करते थे और दोनों लोक का पोषण करते थे। 'गां दुदोह'—पृथ्वी को दुहा 'कर वसूल किया'।

६—'ब्रह्म' को संबोधित किया गया है। 'केवलात्मन्'—जो एक और अविभाज्य है। 'गुणत्रय'—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। सृष्टि के समय में ब्रह्म विभक्त हो गया—स्रष्टा, पालक और विनाशक के रूप में।

६—'दुःखात्सुखमुपनतम्'—दुःख के बाद जो सुख प्राप्त होता है।

११—'अरुणाय कल्पते' अरुण का स्वागत करने के योग्य है। 'अरुण' सूर्य के अग्रदूत हैं, जो रात्रि की समाप्ति की सूचना देते हैं।

१४—'अनुहुंकुरुते'—प्रतिगर्जन करता है, दूसरे की गर्जना सुनकर गर्जता है ।

पृष्ठ ६८

१५—'तथेति'—'हाँ' कह करके । 'संतानकामाय'—सन्तान की इच्छा रखने वाले के लिए ।

१७—'तस्याः' का अन्वय 'प्रसादं' के साथ है । अपनी आकृति से ही व्यक्त उसकी (नन्दिनी) प्रसन्नता को अपनी प्रिया सुदक्षिणा से वाणी द्वारा सूचित किया ।

१८—'पुराणशोभामधिरोपितायाम्'—अपनी पूर्व शोभा को प्राप्त । 'न स्पृहयांबभूव'—किंचित् भी स्पर्द्धा नहीं करते थे, क्योंकि वे उसका उपभोग पहिले ही अपनी राजधानी में कर चुके थे ।

१६—'सानुनीतिः'—सानुनयः, विनम्रतापूर्वक ।

१८—'दिदृक्षु'—'त्वं शुभा नवेति द्रष्टुमिच्छन्तम्' 'ईक्षितव्यं·····अयम्'—पराई स्त्रियों के विषय में पूछ-ताछ करना राक्षसों का स्वभाव है । 'नमस्कुर्याः'—यदि त्वं नमस्कुर्याः ।

पाठ ८, पृष्ठ ७६

१—'सत्क्रियाविशेषात्'—एक विशेष सत्कार के कारण । राजा के कथन का अभिप्राय यह है कि मैंने ऐसा कोई भी कार्य नहीं किया है कि इन्द्र के द्वारा ऐसा सत्कार प्राप्त करूँ ।

२—'सूर्योपस्थानात् प्रतिनिवृत्तं'—सूर्य की उपासना करके (सूर्योपस्थान करके) लौटे हुए को ।

७—'उज्जिहानजीवितां'—जिसके प्राण उसको त्याग रहे थे, उसको ।

८—'अलं उत्तरोत्तरेण'—बस बस, और अधिक बातें न करो ।

६—'तासां'—अप्सरसाम् ।

१०—पुरूरवा की हंस के प्रति उक्ति है। 'तावत्'—सर्व प्रथम किसी अन्य कार्य को करने के पूर्व।

'स्वार्थात्...प्रणयक्रियैव'—सज्जनों के विचार से किसी प्रार्थी का कार्य अपने स्वार्थ की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

पृष्ठ ७७

११—'तपसे कृतोद्यमां'—जिसने तपस्या करने के लिए अपने मन में निश्चय कर लिया। 'मुनिव्रतं'—तपश्चरणरूपम्।

१२—'तदभावे'—उसके (रक्षा के) अभाव में सत् (विद्यमान) पदार्थ भी असत् (अविद्यमान) हो जाता है। अर्थात् किसी पदार्थ अथवा व्यक्ति के विषय में कुछ सुरक्षा नहीं रह जाती।

१३—स = रघुः। 'अस्त्रं'—अस्त्रविद्यां, रघु के पिता दिलीप स्वयं रघु के गुरु थे।

१४—'तस्मात्'—विजयी रघु से। 'आत्मा संरक्षितः'—सुह्मों ने अपनी रक्षा की है। 'वैतसींवृत्तिमाश्रित्य'—बेंतों का-सा आचरण अपना करके, जो तीव्र धारा के सामने झुक जाते हैं; प्रबल शत्रु के सामने विनम्र होकर।

१६—'मध्य देश' की स्थिति का वर्णन है।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'जन्मकर्मतो मलिनतरजनं'—जहाँ लोग अपने जन्म और कर्म की अपेक्षा अधिक गन्दे थे। 'निर्घृणतरं'—जिनके सम्पूर्ण कर्म उनके हृदयों की अपेक्षा अधिक घृणित थे।

२—'कुसुमघटित इत्यादि'—वह प्रमोदवन को कामदेव का धनुष समझती है, जो पुष्प-बाणों से रमणीक लगता है और उद्यान भी रमणीक लगता है, क्योंकि उसमें भ्रमर पुष्पों से चिपके हुए हैं। शिलीमुख = बाण और भ्रमर। पीतरक्ताः—पीताश्चते रक्ताश्च, चम्पक और

अशोक क्रमशः पीले और लाल होते हैं। रजनिचर पक्ष में 'पीतं रक्तं यैस्ते' विग्रह होगा।

पृष्ठ ७८

३—'आत्मसम्पद्'—अपनी श्रेष्ठता। 'अभिजनात्प्रभृति'—उत्तमकुल से लेकर।

४—'लब्धप्रसरा'—स्वतंत्र आचरण के लिए अवसर-प्राप्त, 'उत्कृष्टता को प्राप्त'। 'दुःखोपचर्या'—कष्टसाध्य; कठिनाई से स्वीकृत कराने योग्य।

६—'विनयाधानम्'—सदाचरण की शिक्षा देना, नैतिकता का उपदेश देना।

७—'नवः = अजः; नवेतरः = रघुः। दृढ़-संकल्प महाराज अज ने तब तक अपनी तपस्या का कार्य नहीं समाप्त किया जब तक उन्होंने परमेश्वर का साक्षात्कार नहीं कर लिया।

६—'स्वनुष्ठित'—भलीभाँति किया हुआ।

११—सः = मारुतिः। तां = सीतां। प्रीतेः पराजयमानां = जो रावण के सम्बोधन को असह्य समझती थीं।

पृष्ठ ७९

१३—'एकाक्षरं'—एक अक्षर (ॐ)। 'सावित्र्यास्तु परं नास्ति'—प्रसिद्ध गायत्री मंत्र (जिसका मौन जप होता है) अर्थात् सावित्री से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है।

पाठ ९, पृष्ठ ८६

१—'वर्तमानकविः'—जीवित अथवा समकालीन कवि।

३—'बद्धभाव'—तुम्हारे ऊपर आसक्त। 'इतोगतं'—त्वयि आहितम्।

४—'एष देवो……सन्निकर्षस्य'—कुश के प्रति लव की उक्ति है।

पृष्ठ ८७

११—'संसर्गमुक्तिः खलेषु' = खल संसर्गमुक्तिः—दुर्जनो के संसर्ग से दूर ।
१२—'सन्तानार्थाय विधये'—सन्तानप्राप्त्यर्थं किसी विधान के लिए ।

अतिरिक्त अभ्यास, पृष्ठ ८८

१—किसी बड़े कार्य-भार को सौंपते हुए इन्द्र की कामदेव के प्रति उक्ति है । 'आत्मसमम्'—मेरे ही समान तुम । 'भूधरतामवेक्ष्य'—पृथ्वी-धारण की क्षमता को देखकर ।

२—'कृत्स्न गोत्रमंगलम्'—सीता, जिन्होंने दोनों वंशों का मंगलविधान किया था ।

५—'ईशम्'—उनके स्वामी अर्थात् श्रीराम । 'नितान्त इत्यादि'—जो सीता के प्रति एक निष्ठुर धारणा रखते थे अर्थात् (परित्याग करने का विचार रखते थे) ।

६—'परकर्मापहः'—अपने शत्रुओं के कृत्यों को विनष्ट करते हुए । 'आवृणोदात्मनो......रिपून्'—शत्रुओं के छिद्र को जानकर उनके ऊपर प्रहार करके अपने छिद्रों को छिपाया ।

७—'भगवति कमलालये ......'—राक्षस की लक्ष्मी के प्रति उक्ति है । जिस समय लक्ष्मी ने नन्द के गुणों का सत्कार न करके उसको त्याग दिया और चन्द्रगुप्त में अनुरक्त हो गई, उसी समय का कथन है ।

८—'साक्षात्प्रियाम्....'—यद्यपि जब शकुन्तला व्यक्तिगत रूप में दुष्यन्त के पास आई थी तब उसने उसे त्याग दिया था, परन्तु जब चित्रांकित शकुन्तला को दुष्यन्त ने देखा तब विदूषक के प्रति उसकी उक्ति है ।

पृष्ठ ८९

१०—'प्रतिपत्ति पराङ्मुखी'—जब सीता ने रावण की सभी प्रार्थनाओं को भर्त्सना पूर्वक ठुकरा दिया, उस समय की सीता के प्रति रावण की

उक्ति है।—मुझको अपना पति स्वीकार करने के लिए तू उद्यत नहीं है।

१२—सः = जनकः। 'आप्तवचनात्'—विश्वसनीय ऋषि के वचन से। ऋषि के इस कथन को सुनकर जनक जी को यह विश्वास हो गया कि राम में सचमुच पुरुषार्थ है, यद्यपि वे बालक ही प्रतीत होते थे। 'त्रिदशगोपमात्रके'—इन्द्रबधूटी के समान, इतना छोटा जितना एक बीरबहूटी कीट होता है।

पाठ १०, पृष्ठ १००

५—'विश्रम्भातिशयप्रसंगसाक्षिणः'—हम दोनों के बीच में अत्यन्त विश्वसनीय घटनाओं के साक्षी।

६—'एवमवस्थिते'—इन परिस्थितियों में। 'तत्र प्रभवति देवी'—ऐसा करने का आपको पूर्ण अधिकार है।

८—'अयं जनः'—अर्थात् मालती। 'न खलु'—जिसका प्रिय उसको स्मरण करे निश्चय ही वह प्राणी मृत नहीं है।

१३—'समरशिरसि'—समर सम्मुख, घनघोर युद्ध में।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'सर्वदेवमयस्य' सर्वदेवमय नाराय ! के समान। नारायण 'सर्वदेवमय' इसलिए कहे जाते हैं कि वे सभी देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। (उसी प्रकार उसमें भी सभी गुण विद्यमान थे)। मन में धर्म के समान था अर्थात् वह धर्म ही के समान न्यायप्रिय तथा स्पष्टवक्ता था।

पृष्ठ १०३

२—'नियतमिह······इत्यादि'—निश्चय ही धर्म यहाँ पूर्णरूप से निवास करते हैं। कलियुग के कृत्यों को (उससे प्रभावित न होने के कारण) ठुकरा देते हैं और सतयुग का (जो धर्म के लिये अत्यन्त उपयुक्त

है) स्मरण नहीं करते। इस आश्रम में निवास करनेवालों का जीवन इतना अच्छा है।

३—'तवप्रसादस्य' इत्यादि—'कारण-कार्य' के सामान्य नियम के विरुद्ध आपके प्रति, आपकी कृपा के पूर्व ही सम्पत्तियाँ प्रादुर्भूत हो गईं।

४—'शीर्षच्छेद्यः'—सिर काट लेना चाहिए। ते = त्वया।

५—'अकामयेताम्'—दोनों माताएँ, कौसल्या और सुमित्रा।

६—श्री राम द्वारा निर्दयता पूर्वक निर्वासित कर दिये जाने पर सीता की लक्ष्मण के प्रति उक्ति है। 'मद्वचनात्'—मेरी ओर से।

७—'द्वादशः परिवत्सरः'—महारानी सीता द्वारा शून्य इस संसार को बारह वर्ष हो गये। अर्थात् वनवास हुए जानकी जी को बारह वर्ष हो गए।

८—'मैथिल्यभिज्ञानम्'—मैथिलि अभिज्ञानम्।

९—'सा'—सीता। 'पुरः इत्यादि'—लंका-जैसी कठिनता से प्रवेश होने योग्य नगरी में बन्दर (हनुमान) के प्रविष्ट हो जाने को एक आश्चर्य पूर्ण घटना जानकर।

१०—अशोक वन में सर्व प्रथम हनुमान जी को देखकर सीता जी सोचती हैं। सर्व प्रथम वे हनुमान जी को रावण समझती हैं। क्या कारण है कि सीता जी हनुमान जी को राम द्वारा प्रेषित नहीं समझतीं? 'इस सागर के उत्तर में रहने वाले राम जी द्वार समुद्र के दक्षिण में बसी हुई नगरी के विषय में किस प्रकार जान सकते थे?'

पाठ ११, पृष्ठ १११

१—'अलमलमुपालम्भेन'—यह परिव्राजिका की उस समय की उक्ति है जब उससे दो नर्तकों के बीच में उपस्थित विवाद का निर्णय करने के लिए कहा गया। 'पत्तने विद्यमानेऽपि······'—यह एक प्रश्न है। जब नगर बिलकुल सन्निकट में ही है तब रत्न की परीक्षा क्या गाँव

में होती है? तात्पर्य यह कि जिस कार्य के सम्पादन के लिए मुझसे कहा गया है वह केवल राजा द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है।

३—'मा तावत्'—अरे, ऐसा न करो, ऐसा न करो।

४—'किं दीपिकापौनरुक्त्येन'—अधिक दीपकों की क्या आवश्यकता? वे आवश्यकता से अधिक हैं।

५—'किं वृत्तम्'—फिर उसका (सीता का) क्या हुआ?

६—'रघुकदंबकेषु'—रघुवंशियों में श्रेष्ठ।

७—'स्मर्तव्यशेषं नयामि'—उसको केवल स्मरण किए जाने योग्य बना देता हूँ अर्थात् वध कर डालता हूँ।

९—'बीजम्'—सीता जी स्वयं गर्भावस्था में परित्यक्त हुई थीं।

१०—सा = पृथ्वी। 'मामेति व्याहरत्येव'—न ले जाओ, न ले जाओ ऐसा कहते ही।

अतिरिक्त अभ्यास, पृष्ठ ११२

४—'पतनाय वल्लरी'—वृक्ष के आश्रित लता अवश्य गिरती है।

६—'दर्शित भये....'—स्थिरचित्त वाले व्यक्ति आपत्ति को देखकर विचलित नहीं होते।

८—'सन्तानवाहीनि'—सतत प्रवाहित, निरन्तर कार्य करते हुए। 'स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते'—मानो सहस्रों धाराओं में होकर प्रवाहित होते हैं, अर्थात् अनेक मार्गों से प्रकट होते हैं।

९—'पंचभिः'—पंच तत्त्वों द्वारा (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) 'पंचत्वंगते'—पाँचों तत्वों में मिल जाने पर अर्थात् मर जाने पर।

११—'तस्मिन्' = अस्त्रे। अपना स्वर्ण कंकण पुनःप्राप्त करने के लिए कुश ने वासुकि के ऊपर जो अस्त्र चलाया था। 'समाविद्ध इत्यादि'—क्षुब्ध होकर तरंग रूपी हाथों को ऊपर उछालते हुए।

'रोधांसि निघ्नन्'—तटों को विदीर्ण करते हुए।

पृष्ठ ११३

१३—राक्षस मलयकेतु से कहता है कि आक्रमण की सभी तैयारियाँ हो गई हैं और सभी परिस्थितियाँ उसके अनुकूल हैं। 'त्वद्वाञ्छांतरितानि'—आप की अभिलाषाओं से अवरुद्ध की गई। अर्थात् आप आगे आक्रमण करने की इच्छा करें और सभी तैयारियाँ ठीक हैं। सभी भावे सप्तम्यन्त पद अनुकूल परिस्थितियों की सूचना देते हैं। 'चलिताधिकार-विमुखे'—तटस्थ; अपने अधिकार-पद से अलग। 'मार्ग इत्यादि' जिसका कार्य केवल मार्ग प्रदर्शनमात्र है। 'योग' पद अनावश्यक है।

१४—'अस्त्रज्वाला—....'—अश्वत्थामा की उक्ति है। प्रयुक्त (संचालित) बाण रूपी ज्वाला से लेलिह्यमान (चाटी गई) समुद्र की भाँति शत्रु की सेना, जिस शत्रु-सैन्य-रूपी समुद्र के भीतर बाडवाग्नि के समान दृष्टि गोचर अर्थात् पराक्रमी।

पाठ १२, पृष्ठ १२१

३—इन चारों पंक्तियों में 'वः-नः' के संक्षित रूपों का प्रयोग करण कारक के रूप में हुआ है। तुम लोगों अथवा हम लोगों द्वारा किए जाने योग्य।

५—'कार्यवशात्'—अपने काम के कारण, जिससे मैं उस समय की घटनाओं को समझ सकूँ।

६—यह सीता जी की उक्ति है। 'जातनिर्विशेषाः'—बिलकुल अपने बच्चों के समान।

७—'वाग्विषयीभूतः'—जो हमारी बातचीत का विषय था।

११—'संदिशन्ति'—प्रणय-सन्देश भेजती हैं। 'समुपसर्पन्ति'—अपने प्रिय के पास जाती हैं।

पृष्ठ १२२

१२—'एकः—अपरः' अज और रघु। 'प्रभुशक्तिसम्पदा'—अपनी राज-

सम्पत्ति की उत्कृष्टता द्वारा। 'प्रभुशक्ति' के अन्तर्गत कोष, दण्ड और बल (सेना) है। 'प्रणिधानयोग्यया'—ध्यान (तपस्या) के अभ्यास द्वारा। 'शरीर गोचरान्'—शरीर में दृष्टि-गोचर (व्याप्त)।

१३—श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं। अपने स्वभाव से प्रेरित और उन-उन भोगों की कामना द्वारा, जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, वे लोग उस-उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को पूजते हैं'।

अतिरिक्त अभ्यास

२—'लक्ष्म्योन्मादिता'—जो लोग धन के मद से उन्मत्त हो जाते हैं उनका वर्णन है। 'व्यसनशत इत्यादि'—यद्यपि शतशः विपत्तियों के लक्ष्य हो जाते हैं, फिर भी बल्मीक (बेमौर) में उगे हुए तृण के अग्रभाग पर स्थित जल बिन्दु की भाँति अपने अधःपतन को सन्निकट नहीं देखते।

३—'मणिदर्पणमिव इत्यादि'—अपने स्वच्छ एवं पारदर्शक जल के कारण त्रैलोक्यलक्ष्मी के मुख के अवलोकन के लिए दर्पण का काम करता था।

४—'नरपतिः' राजा चेदि (शिशुपाल)। 'आविश्चकार' = प्रदर्शित किया।

५—'अर्थोष्मणा विरहितः'—धन-मद से रहित (निर्धन)।

पृष्ठ १२३

१०—'चित्राचन्द्रमसोरिव'—शिशिर ऋतु के समाप्त होने पर चित्रा नक्षत्र में चित्रा और चन्द्रमा की भाँति दर्शनीय।

११—'कर्णे परं स्पृशति हंति परं समूलं'—चुगली करने वाले की यह विशेषता होती है कि वह किसी अन्य के कान को भरता (विषाक्त करता) है और दूसरे को समूल नष्ट करता है।

१२—'रूपं तदोजस्वि ……'—अज के गुणों का वर्णन है। राजकुमार अज अपने उत्पत्तिकर्त्ता (पिता) से भिन्न नहीं थे, जैसे एक दीपक

से प्रज्वलित दूसरा दीपक अपने जनक दीपक से लपक और प्रकाश में भिन्न नहीं होता।

पाठ १३, पृष्ठ १३०

६—'ते गतिं ज्ञास्यन्'—तुम्हारे भाग्य को जानने का इच्छुक।

७—'वारितप्रसरः'—अग्रसर होने से अवरुद्ध।

८—'श्रुतमृषेः'—महर्षि से सीखा गया। 'उन्मनाः ...... राघवः'—यद्यपि रामचन्द्र जी अपने पूर्वावतार वामन के कृत्यों को भूल गये थे, फिर भी वे उत्तेजित हो उठे।

अतिरिक्त अभ्यास

१—यह महाश्वेता की उक्ति है, जिस समय कामदेव से प्रेरित उसका मन पूतात्मा साधु पुण्डरीक की ओर आकृष्ट हुआ था।

पृष्ठ १३१

३—यह गणदास की उक्ति है, जिस समय धारिणी अपनी शिष्या मालविका के समक्ष उसको अपनी कला को प्रदर्शित करने की अनुमति नहीं दे रही थी। 'क्रियासंक्रान्ति'—अपनी कला दूसरे को हस्तान्तरित करना।
६—'क्षेमाय'—सुरक्षा के लिए। शत्रून् हन्ति इति शत्रुघ्नः—और यही उनके नाम की सार्थकता है।

८—'क्रथकैशिकेन्द्रः' = भोजः, विदर्भराज। 'चन्द्रः इत्यादि'—उत्ताल तरंगों के साथ चन्द्रमा से मिलने के लिए उत्थित समुद्र की भाँति।

पाठ १४, पृष्ठ १३७

१—'अत्रभवतोः'—हरदत्त और गणदास का। 'ज्ञानसंघर्षः' = शास्त्रार्थ, शास्त्रों से सम्बद्ध वाद-विवाद।

२—विदूषक के प्रति अग्निमित्र की उक्ति है। जब विदूषक ने अग्निमित्र से पूछा कि उसने माधविका को मालविका और बकुलावलिका दोनों की इच्छा पर कैसे छोड़ दिया था?

४—जब अपने स्वामी इन्द्र की आज्ञा का पालन करने के लिए चित्रलेखा और उर्वशी पुरूरवा के पास गईं, उसी समय की पुरूरवा की चित्रलेखा और उर्वशी के प्रति उक्ति है।

पृष्ठ १३८

७—'अवश्यकर्त्तव्यतापतितम्'—अत्यन्त आवश्यक कार्य हो गया।

८—'दक्षिणाक्षि—इत्यादि'—दाहिनी आँख दबाकर दिये गये संकेत को समझने के लिए कहा जाना चाहिए। तुम उन लोगों से इस प्रकार आँख का संकेत करो कि वे शीघ्र ही तुम्हारे तात्पर्य को समझ जायँ।

१०—आपदि·········पर मन्ये'—आपत्ति में जो उपकार करता है अथवा विपत्ति की दशा में जो उपहास करता है, इन दोनों के प्रति जो क्रमशः कृतज्ञ होता है और प्रतिकार करता है, ऐसे व्यक्ति को हम सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

अतिरिक्त अभ्यास

१—राजा का कर्त्तव्य है कि वह अपने राज्य में स्थित पीड़ित व्यक्तियों के कष्टों का निवारण करे।

२—'उत्क्रान्तमिवासुभिः'—उनके प्राणों ने मानों उन्हें त्याग दिया।

४—जिस समय राक्षस से किसी ने आकर कहा कि कोई व्यक्ति अत्यन्त आवश्यक कार्य से आपसे मिलना चाहता है, उस समय राक्षस ने कहा।

पृष्ठ १३९

५—'आःदुरात्मन्·······'—तुम्हारे द्वारा इस प्रकार मर्यादा का उल्लंघन किये जाने पर पाण्डवों का क्रोध केवल एक निमित्तमात्र होगा।

७—'शोक क्षोभं ... धार्यते'—शोक से क्षुब्ध हृदय को शान्ति केवल रोने से ही मिलती है।

८—'पृष्ठतः कृत्वा'—पीछे करके, दबा करके।

६—रघु की प्रसिद्धि का वर्णन है। 'अनुबन्धि'—शाश्वत, निरन्तर। 'इयत्तया परिच्छेत्तुं नालं'—जो सीमित नहीं किया जा सकता, निःसीम, उसकी कोई निश्चित सीमा नहीं की जा सकती।

१०—'हसितं मुदा प्रसितं'—अह्लाद पूर्वक हँसी चलती रही।'विलसितं इत्यादि'—प्रेमयुक्त प्रसन्नता से परिपूर्ण कीड़ाएँ कम हो गईं। 'हतसंमदाः'—जिनका मद कम हो गया है। 'पुरहितं'—जो कुछ भी नगर के हित के लिए वाञ्छित था, वह नहीं किया गया।

११—दुष्यन्त को समाचार भेजते हुए कण्व की उक्ति है। 'संयमधनान्'—जिनका धन केवल संयम-मात्र है। 'कथमप्यबान्धवकृतां'—किसी भी प्रकार अपने बान्धवों से अलग। 'सामान्य ... त्वया'—सम्मान पूर्वक आप इसको अपनी स्त्रियों में से एक मानना। 'भाग्यायत्तम्-बन्धुभिः'—शेष भाग्याधीन है। बधू के घर वालों को ऐसा नहीं कहना चाहिए।

पाठ १५, पृष्ठ १४९

१—'मिथ्यावार्ता सन्देशकैः'—झूठे समाचारों तथा संदेशों द्वारा।

५—'इष्टिपशुमारं मारितः'—यज्ञ पशु-बलि की भाँति मार डाला गया। सः = मातलिः।

६—'चित्रलेखाद्वितीया'—सहचरी चित्रलेखा के साथ।

पृष्ठ १५०

१०—'क्रोधविह्वला' = (शूर्पणखा)। 'भातरौ' = खर और दूषण।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'लतानुपातं'—बारबार लताओं को झुकाकर ।'नद्यवस्कन्दं'—नदी के जल का मन्थन करके पीता था । 'चारुशिलोपवेशं'—सुन्दर शिला पर बैठता हुआ ।

३—'विश्वासप्रतिपन्नानां'—विश्वस्त व्यक्तियों का ।

४—'लज्जां''''''उन्मथ्य'—लज्जा को जीतकर, विनम्रता को त्यागकर और धैर्य उत्पाटन करके । 'मन्थरविवेकं'—मन्दबुद्धि ।

पृष्ठ १५१

७—'अमन्दलीलया'—सुन्दर चंचलता द्वारा ।

८—'स्थितेऽर्ध रात्रे'—आधी रात के समय में ।

६—विप्रदर्श''''यत्ना'—जिसको ब्राह्मण समझती थी, उसको मारने का प्रयत्न करती थी । 'जिघांसुवेदं''''—जिसको घातक समझता था उसके वध के लिए तेज पूर्ण अस्त्र ग्रहण करता था ।

१०—विद्युतप्रणाशं''''गुरूणाम्'—कष्ट-साध्य कार्यों में जो अपने बड़ों की आज्ञा पर दृढ़ नहीं रहता, उसका मर जाना अच्छा है ।

११—मलयकेतु के चरित्र को निराधार समझकर राक्षस मलयकेतु पर दोषा-रोपण करता है । वह कहता है—'उसकी बुद्धि में यह क्यों नहीं आया कि जो अपने स्वामी के मर जाने पर भी उसकी सेवा में तत्पर है, वह स्वस्थ एवं सुरक्षित रहते हुए शत्रु के साथ मैत्री नहीं कर सकता ।

पाठ १६, पृष्ठ १५८

१—'नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुं'—हम लोगों के गुणों तथा दोषों की परीक्षा करके निर्णय करने के लिए ।

२—'समयपूर्वं'—प्रतिज्ञा के साथ

३—पिता द्वारा पूर्ण राज्य-शासन-भार का उत्तरदायित्व प्रदान करने पर पुरूरवा का पुत्र कहता है ।

५—'का गणना'—कहने की क्या आवश्यकता ?

६—'अचिराधिष्ठितराज्यः'— जिसने अभी राज्यभार सभाला है। जो अभी राजगद्दी पर बैठा है। 'अरूढमूलत्वात्'—जिसकी जड़ अभी प्रजावर्ग में नहीं जम पाई है, जो उस तुरन्त जमे हुये पौधे की भाँति है, जिसकी जड़ जमीन में अभी स्थिर नहीं हो पाई है।

९—'वृत्तं रामस्य'''शृण्वताम्'—राम का चरित्र वर्णित है। एक तो राम का चरित्र वर्ण्य-विषय,दूसरे वाल्मीकि जैसे कवि की कृति, तीसरे किन्नर-कण्ठ कुश-लव-द्वारा प्रगीत; यदि सुनने वालों का मन आकर्षित न हो तो फिर क्या कहा जाय। (अर्थात् बहुत ही सरस है)।

अतिरिक्त अभ्यास, पृष्ठ १५९

१—'अनुभवसमां वेदनां'—अनुभूत वेदना की भाँति कष्ट, अर्थात् वैसा ही दुःख जिसका अनुभव किया गया हो। 'स्मरण इत्यादि'—अतः पूर्व घटनाओं के स्मरण से उत्पन्न शोकाग्नि का इन्धन अपने जीवन को न बनाइए।

३—भीम की आक्षेपपूर्ण उक्ति है।

४—'वेगोदग्रं'—तीव्रता से घूमने के कारण भयानक। 'अयं.....भरः'—यह उत्कर्षता उनमें स्वाभाविक रूप से विद्यमान है (जात्या)।

५—वटु वेशधारी शिव की उक्ति है। 'बहुक्षमा'—अपार क्षमा-शक्ति (सहनशीलता) को धारण करने वाली।

६—हिमालय के प्रति सप्तर्षियों की उक्ति है। 'शब्द के साथ अर्थ की भाँति' अपनी कन्या (पार्वती) का सम्बन्ध शिव के साथ कीजिए।

७—'शुचो वशं गन्तुं नार्हसि'—आप शोक के वशीभूत होने के योग्य नहीं हैं (अर्थात् शोक न करें)।

८—'यमौ'—जुड़वाँ अर्थात् नकुल और सहदेव 'कथैव नास्ति'—किसी भी प्रकार की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। 'विस्फुरित'—

जिसने अपने मण्डलाकार धनुष को ताना, अथवा अपने धनुष और चक्र को उठाया।

पाठ १७, पृष्ठ १६९

५—'भर्त्तुः' का अन्वय 'प्रतीपं' के साथ है। 'यान्त्येवं.....'—ऐसा आचरण करने वाली युवतियाँ 'गृहिणी' पद प्राप्त करती हैं, जो इसके विरुद्ध आचरण करने वाली हैं वे अपने कुल का अभिशाप हैं।

अतिरिक्त अभ्यास, पृष्ठ १७०

२—'अनन्यभाजं'—अन्य किसी में अनुरक्त न होने वाली। 'तथ्यमेव'—पूर्व वर्णित गुणों से युक्त 'हर' जो पति के रूप में उनको मिले, ये उसी प्रकार (गुणों से युक्त) थे। 'न हि.....अर्थम्'—इस लोक में ईश्वर द्वारा कथित वाणी अन्यथा नहीं हो सकती अर्थात् कथन झूठा नहीं हो सकता।

३—रावण की शक्ति का वर्णन है। जो रावण नन्दन वन को छिन्न-भिन्न करे, रत्नों को छीने, देवांगनाओं का अपहरण करे, इस प्रकार सारी स्वर्ग पुरी (अमरावती) को दिन रात विनष्ट करे। पुरी = अमरावती।

४—'घनवद्ध'—लोग अपने इष्ट-मित्रों एवं बन्धु-बान्धवों के साथ एकत्र होकर प्रसन्नता पूर्वक आनन्द मनावें।

६—'नीचैः......'—मनुष्य की भाग्यदशा चक्र की भाँति ऊपर-नीचे आती-जाती रहती है।

पाठ १८, पृष्ठ १७८

३—चन्द्रापीड के चरित्र की निर्दोषता बताते हुए शुकनास की उक्ति।

५—जो लक्ष्मी को प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है, हो सकता है कि वह उसे प्राप्त करे अथवा न करे; परन्तु लक्ष्मी स्वयं जिसे प्राप्त करना चाहती है, वह भला क्यों नहीं प्राप्त किया जा सकता ?

६—'कार्यहन्तारं'—कार्य को विनष्ट करने वाले को।

८—इस श्लोक में श्री कृष्ण जी धर्म की प्रधानता का वर्णन करते हैं।

६—'कथं भवेत्'—कैसी दशा होगी? 'तत्तुल्य' = भीष्म-द्रोणतुल्य।

अतिरिक्त अभ्यास, पृष्ठ १७९

१—राजा कुछ पदार्थों को गिनाता है जिनको वह उर्वशी द्वारा किये जाने की आशा करता है। 'गूढा'—स्वयं अदृश्य होने के कारण। 'बलादानीयेत पदात्पदं'—धीरे-धीरे हठात् ले आई जा सकती है। डर के कारण वह आगे बढ़ने में इतना भयभीत होती है।

२—'ध्रुवेच्छां'—अटल अभिलाषा वाली को। 'क...प्रतीपयेत्'—जो अपना अभीष्ट प्राप्त करने के लिए मन स्थिर कर चुका है उसको और निम्नस्थल की ओर प्रवाहित जल-धार को कौन लौटा सकता है?

६—'दंष्ट्रान्तरात्'—तीक्ष्ण दाँतों के बीच से।

पृष्ठ १८०

७—'भूतये' का अन्वय दूसरी पंक्ति के 'नृपतेः' के साथ है। 'ते भृत्या ...'—वे ही राजा के सच्चे सेवक हैं, अन्य स्त्रियों की भाँति हैं, जो पति का अनुसरण केवल अपने स्वार्थ के लिए करती हैं।

१—'जीवितापहा'—प्राणों का अपहरण करने वाली, प्राणघातक।

पाठ १९ पृष्ठ १८२

४—'आविर्भूत ज्योतिषां'—जिनको अध्यात्मज्योति स्वतः प्राप्त हो गई है।

अतिरिक्त अभ्यास, पृष्ठ १८६

१—'प्राणैः' 'प्राणों से रहित नहीं किया, मारा नहीं।

२—'प्रसेदुः'—प्रसन्न हो गईं। 'प्रदक्षिणार्चिः'—अग्निदेव ने अपनी लपक को दक्षिणाभिमुख करके हवन को स्वीकार किया।

३—'परिमेय पुरःसरौ'—सीमित सेवकों सहित। 'अनुभाव विशेषात्'—अपनी उत्कृष्ट ज्योति के कारण।

४—"अत्यगादाश्रमम्'—आश्रमवासियों की तपस्या में किसी प्रकार का विघ्न न पड़े इसलिए 'आश्रम के पास से निकल गये।'

पाठ २०, पृष्ठ २००

३—'तौ चेद्राजपुत्रौ······'—यदि वे दोनों राजकुमार बिना किसी विघ्न-बाधा के बढ़े होंगे तो इस समय तुम्हारी अवस्था के हो गये होंगे।

पृष्ठ २०१

५—हिमालय के प्रति सप्तर्षियों की उक्ति है। यदि रसातल के मूल से ही आप पृथ्वी को सहारा न दिये होते तो शेषनाग अपने सुकोमल फणों पर इसे किस प्रकार धारण कर सकते?

७—'असौ' = कपालकुण्डला। 'पापं'—मालती का वध।

८—'सिध्यन्ति······'—सेवक जो बड़े-बड़े कार्यों में सफलता प्राप्त करते हैं, उसका कारण यह है कि उनके स्वामी उनके कर्त्तव्यों के पालन में उनकी प्रतिष्ठा करते हैं।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'अन्यल्लिखितं'—उसके द्वारा लिखा हुआ कोई अन्य पत्र।

३—'स्पृहणीयशोभं'—जिसकी सुन्दरता स्पृहणीय थी। 'परस्परेण' का अन्वय 'द्वन्द्वं' के साथ होगा।

पृष्ठ २०२

४—'मोहकलिलं'—अज्ञानता से उत्पन्न व्याकुलता। 'निर्वेदं गन्तासि'—जो कुछ तुमने सुना है और आगे सुनोगे उन सबकी ओर से तुम विरक्त (तटस्थ) हो जाओगे 'श्रुतिविप्रतिपन्ना'—जो कुछ सुना है उसी से व्याकुलता को प्राप्त।

५—श्री कृष्ण जी अर्जुन से कहते हैं—महारथी लोग तुमको भय के कारण

युद्ध से विरत मानेंगे। जिन लोगों में तुम्हारी बहु ख्याति है उन्हीं लोगों में तुम तुच्छ समझे जाओगे।

पाठ २१, पृष्ठ २१०

२—'कान्तमात्मीयं पश्यति'—सभी लोग अपनी चीज को सुन्दर समझते हैं।

६—'द्वन्द्व संप्रहारम्'—परस्पर संघर्ष। 'प्रत्युपस्थिते'—जब ऐसी परिस्थिति आ गई।

७—'अलमप्रभुः'—अत्यन्त अशक्त। 'अन्धकारतामुपयाति'—प्रकाशहीन हो जाता है, ज्योति मन्द हो जाती है।

पृष्ठ २११

१२—'उत्कर्षनिकषः'—उत्कृष्टता की कसौटी।

१३—वाल्मीकि के प्रति राम की उक्ति है। 'ताः' = प्रजाः।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामि'—कुछ बधाई के शब्द कहलवाऊँगा।

४—'अथ······महदेनो भवेत्'—महाश्वेता के कहने का तात्पर्य यह है कि इसके बाद धर्म के अनुरोध के कारण किसी भी पक्ष का अवलम्बन करने के कारण मैं मृत्यु को प्राप्त होऊँगी। पहिले तो स्वयं आये हुए पूज्य कपिंजल का प्रणय भंग होगा, दूसरे मेरे द्वारा निराश किये जाने पर यदि उनके प्राणों पर कुछ विपत्ति आई तो मुनि-वध जनित महान् पाप होगा।

५—'अगृहीते राक्षसे'—जब तक राक्षस बन्दी नहीं बना लिया जाता।

६—क्रुद्ध शार्ङ्गरव ने शकुन्तला से उस समय कहा है जिस समय उसको ज्ञात हुआ कि राजा दुष्यन्त ने यह अस्वीकार कर दिया कि उसने इसके साथ कभी भी विवाह किया है। 'तथा त्वमसि' अर्थात् जारिणी।

पृष्ठ २१२

१—'क्रियार्थे'—धार्मिक कृत्यों के लिए।

१०—'एनं' = आत्मा को। 'नित्यजातं-नित्यंमृतं'—सदा उत्पन्न और सदा मृत।

११—'लक्ष्मीं तनोति'—शोभा को बढ़ाता है।

पाठ २२, पृष्ठ २२०

१—'स्वरसंयोगः'—शब्द, स्वर का संयोग।

पृष्ठ २२१

३—'अतिभूमिं गतेन'—अपनी चरम सीमा तक पहुँचे हुए, उच्चतम स्थान पर पहुँचे हुए।

७—'अहो जाने'—अहाः ऐसा प्रतीत होता है मानो।

८—बुद्धिमान लोग सावधानी पूर्वक परीक्षण के पश्चात् अपने लिए किसी एक पक्ष को स्वीकार करते हैं, मूर्ख लोगों की बुद्धि दूसरों के विश्वास पर ही आश्रित रहती है।

९—'चिन्ताविषघ्नः'—चिन्ता रूपी विषको नष्ट करने वाला।

१२—'लिम्पतीव....गता'—निबिड़ अन्धकार के कारण, असत् पुरुष की सेवा की भाँति दृष्टि विफल हो गई।

अतिरिक्त अभ्यास, पृष्ठ २२२

२—'न वेद्मि'—वह जमीन पर गिर पड़ा, प्रेमाधिक्य की तीव्रता के कारण अथवा इत्यादि....मैं नहीं जानता। 'सद्योविपाकस्य'—जिसको तुरन्त फल प्राप्त हुआ।

३—'पात्रविशेषन्यस्तं'—किसी विशेष पात्र में रक्खी हुई अथवा योग्य व्यक्ति को प्रदत्त। 'गुणान्तर'—उच्चतर गुण।

६—'स सखा'—कामदेव, तुम्हारा मित्र। 'दीप इव....'—असह्य विपत्ति रूपी धूम से आवृत मानो दीप-शिखा की भाँति मैं हूँ।

७—'स्वशरीर......'—जब किसी व्यक्ति की आत्मा और शरीर दोनों संयोग और वियोग के विषय होते हैं तब भला बाह्य पदार्थों (पुत्र, कलत्र आदि) का वियोग बुद्धिमानों को कैसे कष्ट पहुँचा सकता है ?

६—यह श्री राम की उक्ति है। श्री राम चन्द्र जी की चित्तवृत्ति इस सन्देह में पड़ गई कि वे अपनी प्रवाद विषयक वार्ता की उपेक्षा करें या दोष रहित पत्नी का परित्याग करें। 'एक पक्षाश्रय विक्लवत्वात्'—किसी एक पक्ष को ग्रहण करने का निर्णय न कर सकने के कारण उनका मन सन्देह-दोल पर झूल रहा है।

पाठ २३, पृष्ठ २२९

३—'भर्तृगतया'—अपने पति के विषय में। गतया = संबन्धिन्या।

४—उन्नमितोपदेशः' = गणदासः, गणदास के उपदेश उत्तम सिद्ध हुए।

६—'देवस्य' = दुष्यन्त का। कण्व के शिष्यों के आगमन की सूचना देने के लिए जाते हुए कञ्चुकी की उक्ति है। 'उपरोधकारि'—विघ्न उपस्थित करने वाला।

११—'निवार्यतामालि.......'—पार्वती अपनी सखी से कहती हैं। 'स्फुरितोत्तराधरः' = स्फुरण भूयिष्ठः अधरो यस्य सः। जिसके ओष्ठ कुछ बोलने के लिए स्फुरित हो रहे थे, (कुछ बोलने ही वाला था)। और अधिक अच्छा अनुवाद होगा—जिसके नीचे और ऊपर के दोनों ओष्ठ फड़क रहे थे। 'तस्मात्' = महतोऽपभाषणात्।

पृष्ठ २३०

१५—'परोक्षमन्मथः'—जिसको प्रेम का कुछ भी अनुभव न हो, जो प्रेम के प्रभाव की पहुँच से दूर हो। 'परिहास........'—हे मित्र, हँसी में कही गई बात को सत्य न मानिये।

अतिरिक्त अभ्यास

३—जब दुष्यन्त ने कहा कि मैं शकुन्तला के वचनों पर विश्वास नहीं कर सकता, उस समय शार्ङ्गरव ने कहा था। 'शाठ्यमशिक्षितः' = शठता मेंअशिक्षित। 'अप्रमाणं'—जो प्रमाण नहीं माना जाता, जो विश्वास

पात्र नहीं माना जाता। 'विद्या इति'—इसको विद्या की एक सुनिश्चित शाखा मानकर।

४—'त्वं यस्य नेत्रयोः पथि स्थिता'—जिसके दृष्टि-पथ में तुम अचानक आ गई और इसलिए जिसकी आँखें अबन्ध्य हो गईं (अपना फल प्राप्त कर लिया)।

'रूढसौहृदः'—घनिष्ट मित्रता वाला।

५—सप्तर्षियों से हिमालय की उक्ति है। 'रजसोऽपि परं' = रजोगुण से भी श्रेष्ठ।

पृष्ठ २३१

६—'न केवलं····'रघु के पिता एक अद्वितीय सम्राट ही नहीं थे, किन्तु इस पृथ्वी पर एक अद्वितीय धनुर्धर भी थे।

७—'सुखश्रवा'—श्रुति-सुखद। 'दिवौकसां पथि' = आकाशे।

६—'अन्यथावृत्ति'—क्षुब्ध, परिवर्तित। 'कण्ठाश्लेषप्रणयिनि'—गले से लगाकर गाढ़ालिंगन करने वाले के प्रति।

११—'अशिक्षित पटुत्वं'—अशिक्षित चातुरी (धूर्तता)।

१२—अग्निमित्र के कहने का तात्पर्य यह है कि हे कामदेव, तुम्हारा अस्त्र जो कोमल होता हुआ भी अत्यन्त तीक्ष्ण कहा गया है, वह केवल तुम्हीं में देखा जाता है। (सुकोमल पुष्प का होता हुआ भी इतना मर्मभेदी होता है, यह आश्चर्य है)।

१३—'······दर्शनाश्वासि'—केवल दर्शन-मात्र से ही (क्योंकि प्रिया सुलभ तो है नहीं) आश्वासन मिल जाता है। 'रतिं'—परस्पर प्रेम का विचार ही सुख के अनुभव का कारण होता है। केवल यह विचारमात्र कि हम दोनों परस्पर प्रेम करते हैं, मुझे प्रसन्नता प्रदान करता है।

पाठ २४, पृष्ठ २४०

५—सूत्रधार अपनी स्त्री से कहता है। आने वाले चन्द्रग्रहण के उपलक्ष्य

में जिस समय वह ब्राह्मणों के लिए एक बृहद्भोज का आयोजन कर रही थी, उसी समय में सूत्रधार ने कहा था। चन्द्रग्रहण के विषय में उसको ज्ञात था कि उस समय में नहीं पड़ेगा।

९—'तिष्ठतुपुरस्तात्'—पहिले थोड़ी देर तक रुके।

१०—'भवितव्यं च····'—ग्रीष्म के अभाव में निश्चित रूप से समय बहुत ही रमणीक होगा।

११—'प्रणयिप्रियत्वात्'—अपने प्रेमी भक्तों के ऊपर प्रेम रखने के कारण। तां = मालां।

अतिरिक्त अभ्यास, पृष्ठ २४१

१—'अत्रभवत्या····'—जिस समय राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला को पत्नी के रूप में स्वीकार करना अस्वीकार कर दिया, उस समय कुल पुरोहित ने यह सुझाव दिया। 'अत्रभवती' = शकुन्तला। 'उपदिष्टः' = अनागत कथित, भविष्य कथित। 'तल्लक्षणोपपन्नः'—चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त। 'विपर्यये'—विपरीत फल होने पर।

४—जब अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी राजमहल में प्रविष्ट हो गई, यद्यपि राजमहल पूर्णतया बन्द था, उसी समय कुश ने देवी से कहा था।

६—'बाहूत्क्षेपं'—भुजाओं को ऊपर फेंकती हुई। 'स्त्री संस्थानं ज्योतिः'—स्त्री के आकार में एक ज्योति-पुञ्ज। 'अप्सरस्तीर्थं'—एक तीर्थ स्थान का नाम है।

पृष्ठ २४२

९—'निशित निपाताः'—तीक्ष्णता से प्रयुक्त (गिरने वाले)।

१०—'च-च'—प्रत्येक पंक्ति में इसका अर्थ है कि 'ऐसा हुआ नहीं कि उसी समय'। 'घनाघनः'—अच्छी प्रकार से घनीभूत।

पाठ २५ पृष्ठ २४६

१—'ज्ञानवृद्धभावे'—ज्ञान में वृद्ध होने के कारण अर्थात् यद्यपि दोनों समान

विद्वान् हैं। 'पुरस्कारमर्हति'—अग्रसर होने का पात्र है, पुरस्कार का पात्र है।

३—'अनियंत्रणानुयोगः'—बिना किसी रुकावट के पूछा जा सकता है।

६—'तत्पाटवात्'—काममंजरी के प्रभाव के कारण, जिसने उसके मस्तिष्क को पूर्णतया प्रभावित कर लिया है।

७—'बद्धकलकले'—कोलाहल करते हुए। 'प्रदीप्तशिरसम्'—अपना फण फैलाये हुए। 'भीतोनाम'—भयभीत की तरह।

पृष्ठ २५०

८—'घुणाक्षरन्यायेन'—'घुन' नामक कीड़ा द्वारा लकड़ी अथवा पुस्तक आदि में काटकर बनाये गये चिह्न जो कभी-कभी किसी अक्षर के समान दिखाई पड़ते हैं; अप्रत्याशित रूप में, एक शुभ अवसर द्वारा, अकस्मात्।

१०—सीता के शीतल करस्पर्श का अनुभव करके राम ने कहा है।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'प्रयोगेणाधिक्रियताम्'—प्रयोग किया जाय अर्थात् रंगमंच पर अभिनीत किया जाय।

४—'ननु रामभद्र इत्येव....'—नव वृद्ध कंचुकी पूर्व अभ्यास के कारण नव राज्याधिष्ठित राजा रामचन्द्र जी को 'रामभद्र' कह कर कुछ रुक जाता है और अपनी असावधानी का अनुभव करता है, उस समय रामचन्द्र जी उस वृद्ध कंचुकी से कहते हैं। 'तात परिजनस्य'—पिता जी के सेवकों का। क्योंकि वे इतने बूढ़े हैं कि 'महाराज' की अपेक्षा 'राम' अथवा 'रामभद्र' ही अच्छा लगता है। 'यथाभ्यस्तं'—जैसा प्रयोग करने का अभ्यास हो (जैसी तुम्हारी आदत पड़ी है)।

५—'अष्टादशवर्षदेशीयः'—लगभग १८ वर्ष का, जिसकी अवस्था १८ वर्ष के लगभग पहुँच गई है।

पाठ २५१

६—'अनुज्झितक्रमः'—मर्यादा का बिना परित्याग किए हुए, मर्यादित रूप में।

७—'आत्तदण्डः'—दण्ड को प्राप्त करके। 'अतनुषु....'—सम्पत्ति में तो सभी सम्बन्धी बनते हैं, परन्तु आप में तो अपने प्रजावर्ग के प्रति सभी परिस्थितियों में बन्धुत्व का भाव निहित है।

८—'करणोज्झितेन'—स्पर्शादिक सभी इन्द्रियों से रहित (संज्ञा-रहित)। 'तैलनिषेकबिन्दुना'—टपकती हुई तैल-बिन्दुओं द्वारा।

६—'कान्तिप्रदः'—कान्ति प्रदान करने वाला। 'मासो.......'—वैशाख का महीना, वसन्त ऋतु, जिस समय सभी वृक्ष पुष्पों से लदे रहते हैं।

पाठ २६, पृष्ठ २५५

१—'कुब्जलीला' टेढ़ी गति, नृत्य गति।

पृष्ठ २५६

२—'प्रत्युत्पन्नमति'—तत्काल बुद्धि सम्पन्न।

४—'खलीकरोति'—दुष्ट बना देता है।

७—'यदणीयसि'—यह सज्जनों द्वारा अनुसृत पद्धति है कि वे तुच्छ से तुच्छ के प्रति भी महान् आदर प्रकट करते हैं।

८—'अलमन्यथा गृहीत्वा'—मुझे गलत न समझिये। 'प्रायःसमान—' सामान्यतया समान विद्या वाले एक दूसरे की प्रसिद्धि से ईर्ष्या करते हैं।

१०—'चीयते'—सफल होती है।

अतिरिक्त अभ्यास, पृष्ठ २५७

५—'कल्याणी'—पवित्र गाय (नन्दिनी)।

६—जिस समय इन्दुमती के वक्षःस्थल पर स्वर्गीय माला के गिरने से उसके

प्राण निकल गये और अज को कुछ भी क्षति नहीं हुई, उस समय अज ने कहा।

पाठ २७, पृष्ठ २६४

१ –'अभिनिवेश्य'—मन को विषयों की ओर आकृष्ट करके। 'कालान्तरक्षमो न भवति'— उसके लिए विलम्ब असह्य है।

पृष्ठ २६५

७—'ईदृशः....'—तुम्हारी उत्पत्ति की यह दशा हो गई।

६—'यथा यथेयं.......—'धन-लिप्सा जितनी ही बढ़ती जाती है उतना ही यह मनुष्यों को दुश्चरित्रता की ओर बढ़ाती है। इसकी उपमा एक दीप शिखा से दी गई है जो जितनी ही बढ़ती जाती है उतनी ही कालिमा उगलती जाती है।

१२—'भस्मावशेषं चकार'—राख बना दिया, भस्म कर दिया।

१३—'यथैव.....'—जिस प्रकार गंगा विष्णुपद से उत्पन्न होने के कारण श्लाघनीय हैं, उसी प्रकार अपने द्वितीय उत्पत्तिस्थल-आप--के कारण भी प्रशंसनीय हैं। 'उच्छिरसा'—गगन स्पर्शी उन्नत शिखरों के कारण।

१६—'अभिषेकान्ते'—राज्याभिषेक के अन्त में। इतना पर्याप्त धन दिया कि उससे उन लोगों ने भी अपने यज्ञों को पूर्ण किया।

अतिरिक्त अभ्यास, पृष्ठ २६६

१—'विरलजन सम्पाते'—जहाँ बहुत कम लोगों का आना-जाना होता है। 'विमानोत्संग'—राजा के महल का नाम।

५—'लोकयात्रा सिद्धा'—ऐसी जीवन-यात्रा निश्चित ही है।

६—उत्पन्न होते ही अनित्यता प्राणी को अपनी गोदी में ले लेती है उसी प्रकार पीछे से दाई की तरह माता भी रहती है, फिर शोक का क्या कारण है? अर्थात् जब जीवन क्षणभंगुर है तब शोक करना व्यर्थ है)।

पृष्ठ २६७

११—उभयोः = कुशलवयोः । लोग उनकी संगीत-निपुणता पर उतना आश्चर्यान्वित नहीं होते थे जितना राजा द्वारा प्रसन्नतापूर्वक दिये गए दान के प्रति उनकी उपेक्षा को देख कर आश्चर्य व्यक्त करते थे ।

१२—इस श्लोक में ऐसे लोगों को शिक्षा दी गई है जो सिर पर आ जाने पर काम करने का प्रयत्न करते हैं ।

पाठ २८, पृष्ठ २७४

७—शुकनास ने चन्द्रापीड से कहा है । 'सुखं विशन्ति'—आसानी से प्रवेश करती हैं ।

८—'सर्वतोमुखी'—'अपरिमित', प्रत्येक दशा में ।

९—'यस्य'—हिमालय के प्रति संकेत है ।

१०—इन पंक्तियों का आशय बहुत ही उत्कृष्ट है । संगठन में ही शक्ति है ।

अतिरिक्त अभ्यास, पृष्ठ २७५

१—मनोरमा से चन्द्रापीड की माता ने उस समय कहा जिस समय चन्द्रापीड को आदेश दिया कि वैशम्पायन को जाकर ले आओ ।

२—'असंशयं'—शकुन्तला की ओर संकेत है । दुष्यन्त कहता है कि मेरा निष्कपट मन जो इसमें (शकुन्तला में) आसक्त हुआ है, इससे स्पष्ट है कि यह क्षत्रिय द्वारा ग्राह्य है, क्योंकि संदिग्ध स्थलों पर सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृत्ति ही प्रमाण मानी जाती है ।

३—शकुन्तला के प्रति दुष्यन्त की उक्ति है । प्रायः मोहाच्छन्न व्यक्तियों के आचरण ऐसे शुभ अवसरों पर इसी प्रकार हुआ करते हैं ।

४—'एवमादिभिः'—अर्थात् उपायैः । सा = उर्वशी । 'तदाश्रयिणी'—उसके विषय की, तत्सम्बन्धिनी ।

५—वे आपको एक दूसरे स्थावर विष्णु की उपमा देते हैं, यह उपयुक्त ही है,

क्योंकि विष्णु की ही भाँति आपका भी उदर चराचर को अपने में आत्मसात् किये हुए है।

६—इसमें मेघदूत की उस दशा का वर्णन है जब वह 'यक्षपत्नी' को देखेगा। 'भावगम्यं'—चिन्तन योग्य।

पृष्ठ २७६

६—'मखजं'—विश्वजित् महायज्ञ से उत्पन्न, जिस यज्ञ में रघु ने अपना सर्वस्व दान कर दिया था।

१०—'इयं' = मालविका। 'प्रेष्यभावेन'—सेवक के रूप में। 'वा' = समान।

११—'पंक्तिरथः' = दशरथः। पंक्ति = दस। दस वर्जित नियमों का उल्लंघन दशरथ ने किया था, जो किसी राजा को नहीं करना चाहिए। फिर उन्होंने बुद्धिमान होते हुए भी ऐसा क्यों किया? क्योंकि मदान्ध होने पर विद्वान् लोग भी कुपथ पर चले जाते हैं।

१२—जब कूटनीतिज्ञ चाणक्य द्वारा राक्षस के विरुद्ध षडयंत्र रचा गया, उस समय की राक्षस की उक्ति है। 'शकटेन'—शकटदासेन, उसके अभिन्न मित्र द्वारा।

पाठ २९, पृष्ठ २८८

१—'शक्ति'—राजशक्ति, इसके तीन अंग हैं—(१) प्रभाव-शक्ति—स्वयं राजा का अपना प्रभुत्व। (२) मंत्र-शक्ति—मंत्रिमण्डल (मंत्रणा देने वाले) की शक्ति। (३) उत्साह-शक्ति—बुद्धि-वैभव, शौर्य।

३—'एवं भोः'—सन्तान विहीन पुरुषों की सम्पत्ति मूल पुरुष के अवसान हो जाने पर दूसरों की हो जाती है।

पृष्ठ २८९

६—विष्णु के प्रति कहा गया है। 'कल्पान्तदुःस्था'—कल्प के अन्त में संकटापन्न दशा में। कल्प—प्रलय काल। 'ऊहे'—उठा लिया, उद्धार किया।

१०—'परः'—शत्रु। उन्नति शील शत्रु और बढ़ते हुए रोग को बुद्धिमान् लोग एक समान समझते हैं (घातक मानते हैं) अर्थात् इनको यदि समय रहते रोक नहीं दिया जाता तो बड़े ही घातक सिद्ध होते हैं।

११—प्रातःकाल उठते समय मागधों ने अज से कहा है। 'त्वत्प्रबोध-प्रयुक्ताम्'—आपको निद्रा से जगाने में प्रयुक्त।

१३—'सर्वतोमुखम्'—जिनके मुख सभी ओर हैं; क्योंकि वे चतुर्मुख हैं।

१४—स = हिमालयः 'पितॄणां मानसीं कन्यां'—कन्या (पार्वती) अपने पिता की मानसी सृष्टि है (न कि सामान्य रूप से उत्पन्न की गई है)।

१५—'नव इव चिरेणापि'—यद्यपि इतने वर्ष (१२) व्यतीत हो गये फिर भी मेरा शोक मानो नया हो गया है।

१७—'असौ'—हनुमान्।

अतिरिक्त अभ्यास

१—यमुना और गंगा क्रमशः नील और श्वेत जल वाली होने के कारण एक दूसरी को कृष्णांगराग और श्वेतांगराग प्रदान करती हुई।

पृष्ठ २९०

२—'स्फुटन्निव'—आन्तरिक उद्वेगों की प्रबलता के कारण प्रस्फुटित।

३—राम और लव-कुश की समानता में केवल अवस्था और वेशभूषा का ही अन्तर था। 'नाक्षिकम्पं व्यतिष्ठत'—बिना पलक गिराये खड़ा था (एकटक देखता खड़ा रहा)।

५—'मरुतः सुतं'—भीम। 'दर्शित विक्रियं'—जिसके मस्तिष्क का विकार दिखाई पड़ा, अर्थात् क्रोध पूर्ण मुख-मुद्रा।

७—'तद्योधाः'—उसके योद्धा। (मृग-चर्म से आवृत एवं द्राक्षालता से घिरी हुई भूमि)।

८—'श्रुतमधिगम्य'—ठोस ज्ञान प्राप्त करके। 'शरीर जन्मनः रिपून्'—काम, क्रोध, लोभादिक छः शत्रु।

९—'प्रियप्राया'—सदैव दया से परिपूर्ण अर्थात् जो सदा समान रूप से मनोहर रहती है।

१०—'न संस्थास्यते'—रुकेगी नहीं अर्थात् पूर्ण होगी।

११—'सीतां'—द्रष्टुं का कर्म है। 'उपाक्रंस्त'—समुद्र-तट की ओर बढ़ा।

पृष्ठ २९१

१३—एक समय वायु-पुत्र रावण के दर्शन पर प्रसन्न हो गये थे, जिससे भयभीत होकर सहस्राक्ष इन्द्र ने युद्ध रोक दिया था।

१४—'यावदर्थपदां'—अर्थ को स्पष्टतया व्यक्त करने भर के लिए शब्द।

१५—'अखिलीकृत्य'—शक्तिहीन किये बिना।

१६—'नोपयध्वं भयं'—डरो न, भय को न प्राप्त हो। 'महेन्द्र'—एक पर्वत का नाम। 'धैर्यमाधिषत'—उनके हृदयों ने धैर्य धारण किया।

पाठ ३० पृष्ठ ३००

१—'नरपति प्रबोधनार्थं'—राजा को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए।

५—'अनाश्रवासीत्'—कुछ भी ध्यान नहीं दिया। 'समगिरेतां'—प्रतिज्ञा की।

८—'प्रतिविधाय तिष्ठत्सु'—राजा के संभाव्य विचारों के विरुद्ध कार्यवाही करके।

९—'वर्तयते'—अपना स्वयं जीवन निर्वाह-करता है। अपने ही द्वारा मारे गये हाथियों पर जीवन-निर्वाह करता है। महान् पुरुष, जो अपने ही पराक्रम से संसार को नतमस्तक कर देता है, अपनी जीविका के लिए दूसरों पर आश्रित नहीं रहता।

१०—'अस्तसंख्यं'—अगणित, असंख्य। 'अत्र'—इस युद्ध में।

पृष्ठ ३०१

१२—'शक्ति'—राज-शक्ति जो संख्या में तीन होती हैं। 'षाड्गुण्यं'—सन्धि विग्रह आदि छः गुण। 'अंगानि'—अवयव अथवा राज्य के अंग।

१४—'मा कस्यचिदुपस्कृथाः'—मेरे लिए किसी भी प्रकार के भोजन का प्रबन्ध न कीजिए (इष्यपेयभोज्यादिकं किमपि मा कुरु)

१६—'वदमानः'—चमकता हुआ (भासमानः)।

अतिरिक्त अभ्यास

१—'व्यवहर्तुमभियोद्यते'—न्यायालय में जाने का प्रयत्न करेगा। 'कौपीनावशेषं'—बिलकुल दरिद्र (फकीर) बना देंगे।

३—वाम हस्त सदा ऊपर किए हुए, दाहिने हाथ को मेरी ओर करके मेरा स्वागत कर रहे हैं।

पृष्ठ ३०२

५—वह सदा सेवकों के प्रति मित्रवत्, समान स्वभाव वाले मित्रों के प्रति बन्धुवत् व्यवहार करता है और अभिमान रहित होकर अपने अधीनस्थ लोगों के प्रति बन्धुता का भाव प्रदर्शित करता है।

७—'कृतपूर्वसंविद्.......'—जिन लोगों ने अपने विचारों की सिद्धि के लिए पहिले ही षड्यन्त्र रच रक्खा था। 'समयोपलभ्यं'—अज के जाने के समय उनसे भेंट करने वाला।

८—अर्जुन शिव से कहते हैं। 'संविदामीश'—शक्तियों के अधिष्ठाता। 'विरोध्य......'—मूर्खतावश शत्रुता करने वालों, किन्तु बाद में विनम्र लोगों का।

९—'शान्तिमधिकृत्य'—दुष्कृतों को दूर करने के लिए पुरोहित से कुछ धार्मिक कृत्यों का विधान करने के लिए कहा (शान्ति के विषय में)। 'स्वन्तम्'—शुभ परिणाम के लिए।

११—'भूपतिः'—चेदि राज (शिशुपाल) यह असम्भव है कि सिंह (कृष्ण) आक्रमण के भय से सरलता पूर्वक झुक जायँ।

१२—उनको लेखपट पर लिखित वर्णमाला कठिनाई से अभी ज्ञात हो पाई थी कि ज्ञान-वृद्धों के संसर्ग से उन्होंने सभी प्रकार की दण्ड-नीति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

१३—'उद्दिश्य श्यामसीमां'—समुद्र जिसकी श्याम-वर्ण की सीमा बनाता है अर्थात् समुद्र पर्यन्त। 'नगर'—नगर-द्वार की अर्गला की भाँति विशाल भुजाओं से युक्त, अर्थात् अपार शक्तिशाली।

पृष्ठ ३०३

१५—रावण की अशोक-वाटिका का वर्णन है। 'लतां नर्तयमानवत्'—मानो लताओं को वायु के वेग में नचाता हुआ। 'संत्रस्ताः'—रावण से भयभीत। 'नायासयन्त'—हस्तक्षेप नहीं किया। 'स्मरात्'—काम पीड़ा से।

१६—अपने शरीर को ऊपर आकाश में उठाकर पर्वतराज का भी मानो उपहास करते हुए गजराज ने अपने किंचित् झुकाये हुये पैर पर से महावत को स्वयं चढ़ा लिया।

परिशिष्ट—१

चुनी हुई सूक्तियाँ तथा मुहावरे

स दैवाधीनः कृतः, यद्भावि तद्भवतु इत्युक्त्वा परित्यक्तः—वह अपने भाग्य पर छोड़ दिया गया।

तव निर्णये स्थास्यामि, तव निर्णयः प्रमाणं—आप का निर्णय मुझे मान्य होगा। प्रतिज्ञाम्—अभिसंधां पालयति—अपनी प्रतिज्ञा का पालन करता है।

यथाशक्ति, यावच्छक्यं—अपनी शक्ति भर, जहाँ तक सम्भव हो।

बहुकौतुकः स देशः—वह देश कुतूहलों से परिपूर्ण है।

पंचवर्षदेशीयः—लगभग पाँच वर्ष का। मध्याह्नप्रायः-कल्पः समयः—प्रायः मध्याह्न है। किं कर्तुमुद्यतोसि, किंकार्यव्यग्रोसि, किमारम्भस्त्वम्—किस चक्कर में पड़े हो।

स सर्वेषां मूर्ध्नि तिष्ठति—वह सर्वोपरि है। अदत्तावकाशो मत्सरस्य—ईर्ष्या या डाह से परे।

सा दारुणा प्रतिज्ञा लोके प्रकाशतां गता-प्रकाशीभूता—वह भयंकर प्रतिज्ञा संसार भर में ज्ञात हो गई।

शून्यमनस्क, शून्यहृदय, हृदयेनासन्निहित, विगतचेतन—अन्यमनस्क। कृतमेतादृशेन असंगतेन प्रलापेन—इस तरह की असंगत बातें न करो। मनोरथानामगतिर्न विद्यते—मनोरथ के सामने कोई पदार्थ अगम्य नहीं। मरणं प्रकृतिः विकृतिर्जीवितमुच्यते—मृत्यु प्राकृतिक है और जीवन विकारमात्र है।

भावमनुप्रविश्—अपने आप को किसी की इच्छा के अनुकूल बनाना।

एकचित्तीभूय—एकाग्र होकर। **यदृच्छया, स्वयं, स्वेच्छातः**—अपनी इच्छानुसार। **तद्वचनानुसारेण-अनुरोधेन**—उसके कहने के अनुसार। **अनुज्येष्ठम्**—ज्येष्ठता के अनुसार।

राजेति का मात्रा गणना मम—मेरे लिए राजा कौन बड़ी चीज है, मैं राजा की कुछ भी परवाह नहीं करता।

दैवहतकम्, दग्धदैवम् हतदैवम्—अभाग्य, दुर्भाग्य।

बलवती शिरोवेदना मां बाधते—मैं सिरदर्द से बहुत पीड़ित हूँ।

भवतोऽविनयमन्तरेण परिगृहीतार्था कृता देवी—देवी को तुम्हारी धृष्टता से अवगत करा दिया गया।

ते स्वकर्म साधु निरवाहयन्-आचरन्—उन लोगों ने भली भाँति सद्व्यवहार किया।

शासने तिष्ठ भर्तुः—अपने पति के शासन में रहो। **लक्ष्मीभूमिकायां वर्तमाना**—लक्ष्मी का अभिनय करने वाली। **कुरु प्रिय-सखीवृत्तिं सपत्नीजने**—अपनी सौतों के प्रति प्रियसखी का-सा आचरण करना। **मनो-वाक्काय-कर्मभिः**—मनसा, वाचा, कर्मणा।

कुशाग्रबुद्धिः—तीव्र बुद्धि वाला।

यथाकालं व्यवहर—परिस्थितियों के अनुसार व्यवहार करो। **तस्यैकदेशः अभिनेयार्थः कृतः**—इसका एक अंश अभिनेय बना दिया गया है।

लक्ष्मीं तनोति—शोभा को बढ़ाती है। **गंडस्योपरि पिटिका संवृत्ता, अयमपरो गंडस्योपरि स्फोटः**—एक अनर्थ के ऊपर यह एक दूसरा अनर्थ आकर उपस्थित हो गया।

मधुरालाप, प्रियंवद—मधुर-भाषी। **अदत्तबाह्यनामा लेखः**—पता रहित पत्र। **दत्त-लिखित मद्बाह्य नाम पत्रं प्रेषय**—पत्र को मेरे पते से भेज देना।

आमंत्रयस्व-आपृच्छस्व सहचरम्—अपने मित्र से विदा हो लो, पूछ लो।

सर्वविश्रम्भेष्वभ्यन्तरीकरणीया—सभी गोपनीय विषयों में उसे सम्मिलित रखना चाहिये। **तस्या विकारो विलंबाक्षमः**—उसके रोग में देर करने का अवसर नहीं है।

वयोवृद्ध, प्रवयस्—अवस्था में बड़ा। **ज्ञान वृद्ध**—ज्ञान में बड़ा।

मम छिद्रेण लब्धावकाशः—मेरी कमजोरी से लाभ उठाकर।

वसन्तसमयावतारः, मधुप्रवृत्तिः—वसन्त ऋतु का आगमन।

क्लेशलेशैरभिन्नः—तनिक भी थकावट से अप्रभावित। **वेतालोपहतः**—पिशाच-ग्रस्त। **अनेकव्याध्युपसृष्टः**—अनेक रोगों से ग्रस्त। **न नः किञ्चिद् छिद्यते**—हमारी स्थिति इससे तनिक भी प्रभावित नहीं है। **कृतककलहं कृत्वा**—नकली झगड़ा करके। **मम वचसा तस्य हृदयं द्रवीभूतम्, मम वचस्तस्य हृदये दृढं पदं लेभे**—मेरे कथन का उसके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। **पंडितम्मन्योऽसौ**—वह अपने को पंडित लगाता है।

द्वौ नञौ प्रकृतार्थं गमयतः—दो निषेधवाचक पद स्वीकारात्मक अर्थ व्यक्त करते हैं।

इति वार्ता प्रसृता—ऐसी बात फैल गई।

अनुपूर्वशः—एक के अनन्तर दूसरा। **वृक्षं वृक्षं सिंचति**—एक-एक वृक्ष सींचता है। **स पितामहनाम्नाऽभिधीयते-आहूयते**—वह अपने पितामह के नाम से पुकारा जाता है। **प्राप्तव्यवहारदशः**—वयस्क हो जाने पर। **षोडशवर्षवयोवस्थामस्पृशत्**—सोलह वर्ष की अवस्था तक पहुँच गया।

अस्मिन्विषये सर्वेषां तेषामैकमत्यम्—इस विषय में वे सब एकमत हैं।

शरसंधानं कुर्वन्—बाण का लक्ष्य करता हुआ। **क्वानिर्दिष्टकारणं गम्यते**—बिना किसी निश्चित कारण के कहाँ जा रहे हो?

वातमासेव्—वायु सेवन करना। **प्रकाशतां गम्**—प्रकट हो जाना। **अवलेपमुद्रा**—अहंकार का रुख। **निकृतामिवात्मानं संदर्श्य**—क्रुद्ध-सा

होकर । **गगनकुसुमानि-खपुष्पाणि चि, मनोराज्यविजृम्भणं कृ**—मन के लड्डू खाना, हवाई किला बाँधना ।

अकस्मात्, सहसा, एकपदे—एकाएक । **एतावान्मे विभवो भवतं सेवितुम्**—आप की सेवा करने के लिये मुझमें इतनी ही शक्ति है । **जीवित-सर्वस्वं**—किसी के जीवन के लिए सब कुछ ।

एवं पिंडीकृत्य मह्यं विंशति रूप्यकान्देहि—इस प्रकार सब मिलाकर मुझे बीस रुपए दीजिए । **सर्वे मिलित्वा सप्त वयं**—सब मिलकर हम लोग सात हैं ।

इयं कथा मामेव लक्षीकरोति—यह कथा मेरी ही ओर संकेत करती है । **क्षीणभूमिष्ठायां क्षपायां**—जब रात लगभग समाप्त हो चुकी थी । **अधुना प्रभातप्राया-कल्पा रजनी**—इस समय लगभग उषा काल हो गया है । **मृतप्रायकल्प**—मरणासन्न । **अन्या गतिर्नास्ति, अन्यच्छरणं नालोक्यते**—दूसरा कोई चारा नहीं है ।

एष तव वचसो निष्कर्षः-पिंडितोऽर्थः—यह आपके भाषण का सारांश है । **अराजके जनपदे**—अराजक देश में ।

जन्मदिवसः—जन्म-दिन । **मृततिथिः**—निधन-तिथि ।

भवतु-तथा-इति स प्रत्युवाच—"बहुत अच्छा ऐसा ही हो" इस प्रकार उसने उत्तर दिया ।

इदं मे इष्टसिद्धये कल्पेत—इससे मेरा काम चल जायगा ।

चिंताविषघ्नोऽगदः—चिन्ता रूपी विष को नष्ट करने वाली दवा । **विषवैद्यः, जांगुलिकः**—विषाक्त औषधियों को बेचने वाला ।

व्याजस्तुतिः—निन्दात्मक प्रशंसा ।

अस्मिन्नर्थेऽत्रभवंतं प्रमाणीकरोमि, अत्र भवान् प्रमाणं—इस विषय में मैं आप से प्रार्थना करता हूँ ।

साक्षी नोपतस्थौ—गवाह उपस्थित नहीं हुआ । **शोभनाकृति, सुभगा-**

कृति, चारुदर्शन, प्रेक्षणीय—दर्शनीय। **तव कथा सत्येव प्रतिभाति-अवभासते**—तुम्हारी कथा सच्ची मालूम पड़ती है।

सुखार्थे 'विषय' शब्दं न प्रयुंजते—"विषय" शब्द सुख के अर्थ में नहीं प्रयुक्त होता। **द्वितीयगामी न हि शब्द एष नः**—हमारी यह उपाधि किसी दूसरे में लागू नहीं होती। **कोऽपरो नियोगोनुष्ठीयतामिति प्रार्थयामास**—अब दूसरी आज्ञा के लिए उसने प्रार्थना की। **वयं स्वकर्मण्यभियुज्यामहे**—हम लोग अपने-अपने काम में जुट रहे हैं।

देवि सामयिका भवामः—हे देवी, हम लोगों को समय का पालन करना चाहिये।

तीक्ष्णमति—तेज बुद्धि वाला। **मंदधी, स्थूलबुद्धि**—कुन्द बुद्धि। **प्रस्तावसदृशं, प्राप्तकालं कालोचितं, समयानुरूपं**—अवसर के अनुरूप।

न ते वचोऽभिनंदामि—मैं तुम्हारे कथन का समर्थन नहीं करता। **युवानो विस्मरणशीला**—नवयुवक लोग भुलक्कड़ हुआ करते हैं। (चीजों को भूल जाया करते हैं)। **अतिस्नेहः पापशंकी**—अतिस्नेह से पाप की शंका होने लगती है।

लोके गुरुत्वं विपरीततां वा स्वचेष्टितान्येव नरं नयंति—मनुष्य को अपने ही कार्य उसे बड़ा अथवा छोटा बना देते हैं।

बध्नाति मे चक्षुश्चित्रकूटः—चित्रकूट मेरे नेत्रों को आकृष्ट करता है।

अव्याजमनोहरम्-अकृत्रिमलावण्यं-निसर्गरमणीयं वपुः—स्वाभाविक रूप से सुन्दर शरीर।

गुणास्तावत्तस्य नैव विद्यन्ते—गुण तो उसमें बिलकुल ही नहीं हैं।

शीघ्रमिति सुकरं—रही शीघ्रता करने की, सो तो सरल है। **पितेति मां स मानयति**—'ये पिता हैं' ऐसा समझकर वह मेरा आदर करता है।

वेलोपलक्षणार्थम्—समय निश्चय करने के लिए।

कस्मिन् दोषं निक्षिपामि, कं दोषपक्षे स्थापयामि—किसको दोषी ठहराऊँ।

भस्मीकृ, भस्मसात्कृ—राख कर डालना। **भस्मीभू**—राख हो जाना।

तस्य वदनं हर्षोत्फुल्लं बभौ—उसका मुख मण्डल हर्ष से खिल उठा। **सर्वं विपर्यासं यातं**—सभी चीजें बदली हुई थीं।

उदगभिमुखं मे गृहम्—मेरा घर उत्तराभिमुख है। **कवि यशःप्रार्थी**—कवि के-से यश का इच्छुक।

दूरारूढाः-दूराधिरोहिणः-उत्सर्पिणः खलु एते मनोरथाः—वस्तुतः ये अभिलाषाएँ बहुत ऊँची हैं।

मृगा मृगैः संगमनुव्रजन्ति—सभी अपनी जाति का अनुसरण करते हैं।

कृतकं मौनम्, मिथ्या मौनम्—बनावटी मौन।

इति मे निश्चयः, दृढं मन्ये—मुझे पूरा विश्वास है।

उपचारातिक्रमं-प्रणिपातलंघनं-प्रमाष्टुं मयमारंभः—दण्डवत् प्रणाम का तिरस्कार करने का प्रायश्चित्त करने के लिए यह कार्य है।

लोकापवादो बलवान्मतो मे—मेरी समझ में लोक निन्दा प्रबल है। **नृपे सुदृढमनुरक्ताः प्रजाः**—प्रजावर्ग राजा में भलीभाँति अनुरक्त है।

युवतयोः गृहिणीपदं यान्ति—युवती स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद को प्राप्त करती हैं।

उदार-आर्य-नेपथ्यभृत्—राजसी वेशभूषा से सुसज्जित।

वैरभावः, विपक्षवृत्तिः—शत्रुता का भाव, विपक्षी का आचरण।

आत्मन्यारोपितालीकाभिमानाः—अपने को मिथ्या-गौरवशाली समझने वाले।

राजदर्शनं लेभे—राजा से भेंट की। **दर्शनानुगृहमिच्छामि**—दर्शन द्वारा अनुग्रहीत होना चाहता हूँ।

विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता—जातस्य हि ध्रुवोमृत्युः—जो उत्पन्न होता है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है।

चकितं नृपस्य पार्श्वमुपैमि—आश्चर्य चकित होकर मैं राजा के पास जाता हूँ।

परोक्षे-क्ष—किसी की अनुपस्थिति में। **उर्वशीप्रत्यादेशः श्रियः**—उर्वशी लक्ष्मी को पराभूत कर देती है।

सकलवचनानामविषयं-वर्णनविषयातिक्रान्तं-मोघवर्णनप्रयत्नं-तत्स्थानं—वह स्थान अवर्णनीय है।

ते कुलस्याधयः—वे कुल के लिए अभिशाप हैं।

इति समयः कृतः—ऐसी शर्त हुई थी। **अपिच, अपरंच**—और भी।

तस्मिन्नवसरे तेन धीरं विक्रान्तं—उस समय उसने धीरतापूर्वक आचरण किया।

चित्ते अवधृ, मनसि-कृ, अनुस्मृ—मन में रक्खो।

शोकवशं मा गमः—शोक मत करो।

गर्भेश्वरः—गर्भ से ही धनी है।

सीता देव्याः किं वृत्तं—सीता देवी का क्या हुआ?

आपतति हि संसारपथमवतीर्णानामेते वृत्तान्ताः—सांसारिक लोगों के ऊपर ऐसी घटनाएँ घटती ही रहती हैं।

अश्रुतपूर्वं—पहिले कभी भी न सुना गया।

लतान्तरित-लताव्यवहित विग्रहः—लताकुंज में अपने शरीर को छिपा कर।

भ्रूभंगं-कृ—भौंहो को टेढ़ी करना। **स पुनरपि स्वकार्ये मनो बबन्ध-न्यवेशयत्**—उसने फिर से अपने काम में मन लगाया।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः—वृक्ष फल-भार से झुक जाते हैं। **कृतनिश्चय, दृढनिश्चय, कृतसंकल्प, विहितप्रतिज्ञ**—तत्पर, कटिबद्ध। **परस्परवधोद्यतौ**—एक-दूसरे का वध करने के लिये उद्यत।

आनंदपरवशः, आनन्देन विगतचेतन इव भूत्वा—आनन्द के कारण अपने आपे में नहीं रह गया। **अप्रास्ताविकं, अप्रस्तुतं, अप्रासंगिकं, अप्रकृतम् एतत्**—यह तो अप्रासंगिक है।

अस्ति मे विशेषोऽद्य—आज मेरी तबियत अच्छी है। **अभिभू-अतिरिच्**—बढ़कर होना।

दुर्गम, दुर्ज्ञेय, दुर्बोध—समझ के बाहर। **आयाधिकं व्ययं करोति**—वह अपनी आय से अधिक व्यय करता है। **स श्रुतिपथम् अतिक्रातः-व्यतीतः**—जहाँ तक सुनाई पड़ सकता था, उसके आगे चला गया।

न मनागपि, न स्तोकांशेनापि—किंचित् मात्र भी नहीं।

मृत्पिंडबुद्धिः—काठ का उल्लू, बुद्धू।

समेत, संहत—सामूहिकरूप में। **आसन्नपरिचारकः**—अंगरक्षक।

भिन्नोऽष्टधा विप्रससार वंशः—कुटुम्ब आठ भागों में विभक्त हो गया।

साहसे श्रीः प्रतिवसति—लक्ष्मी वीर पुरुष के पास रहती है।

प्रभाता रजनी—दिन निकल आया। **विच्छेदमाप कथाप्रबंधः**—कथा में भङ्ग हो गया। **सभ्याः स्वं स्वं स्थानं प्रतिजग्मुः**—सभा विसर्जित हो गई। **तस्यादक्ष्णोः प्रभातमासीत्**—उसकी आँखों के सामने ही सबेरा हो गया।

किं बहुना—संक्षेप में, कहाँ तक कहा जाय।

हर्षरोमांचित, पुलकित, कंटकित-तनुः—प्रसन्नता के मारे उसके शरीर के रोंगटे खड़े हो गए।

तस्याः सहसा प्रावर्तताश्रुधारा—वह एकाएक फूट-फूटकर रोने लगी। **संभूय प्रशंसागिर उदतिष्ठन्**—(लोगों के मुँह से) प्रशंसा निकल पड़ी।

अप्रस्तुतं किमिति अनुसंधीयते—क्यों व्यर्थ की बातें करते हो? **ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवनिषेवणं नेष्टम्, अध्रुवाद् ध्रुवं वरं, वरमद्य कपोतो न श्वो मयूरः, वरं तत्कालोपनता तित्तरी न पुनर्दिवसांतरिता मयूरी**—नौ नकद न तेरह उधार।

अनुदिवसं-दिनं, दिने-दिने—प्रतिदिन। **शतशः**—सैकड़ों। **एकैकशः, आनुपूर्व्येण**—एक-एक करके।

प्रयत्नसंवर्धितः—बड़े यत्न से पोषित। **निपुणमन्विष्य**—भली-भाँति खोजकर। **अधुनाहं वीतचिंतः**—अब मैं निश्चित हूँ। **न कामवृत्तिर्वचनीय-मीक्षते**—स्वेच्छाचारी पुरुष कलंक से नहीं डरता। **प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः**—एक-एक की देख-भाल होनी चाहिए।

प्रस्तुतविषये, प्रकृते—इस विषय में। **तेन हि**—यदि ऐसी बात है, तो अच्छा है।

किं मिष्टमन्नं खरशूकराणाम्—भैंस के आगे बीन बजावे, भैंस बैठि पगुराय। खर को कहा अरगजा लेपन।

ज्वलनमुपगतं-अग्निदीप्तं-गृहम्—घर में आग लग गई। **कर्मगृहीत, रूपाभिग्राहित; लोप्त्रेण गृहीत**—रंगे हाथ पकड़ा गया।

किन्नरमिथुनं यदृच्छयाद्राक्षीत्—संयोगवशात् दो किन्नरों को देखा। **घुणाक्षरन्यायेन**—अकस्मात्, अनायास। **स मया समापत्तिदृष्टः**—मेरी उससे अकस्मात् भेंट हो गई।

स्वभावो दुरतिक्रमः—स्वभाव की कोई दवा नहीं। **क्षीरं दधिभावेन परिणमते अथवा दधिभावमापद्यते**—दूध दही में परिणत हो जाता है।

हस्ते निक्षिप् या समर्पय—हाथ में सौंपना। **अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः-निक्षिप्तः**—यह पुरुष (मैं) किसके हाथ में सौंपा गया है ?

समाश्वसिहि, धैर्यं निधेहि हृदये—धैर्य धारण करो।

इत्थम् अथवा एवं गते-सति—ऐसा होने पर। **दुर्गत, दुर्दशापन्न, दुःस्थित**—आपत्ति-ग्रस्त। **येन केनापि प्रकारेण**—जिस तरह से भी हो। **यथावसर, यथाकालं**—अवसर अथवा परिस्थितियों के अनुसार।

अतिभूमिं गतो रणरणकोऽस्याः—इस स्त्री की चिंता पराकाष्ठा को पहुँच गई है।

निमिमील नरोत्तमप्रिया—राजा की प्रिया चल बसी। **अद्यनिर्वातं नभः**—आज बड़ी उमस है, आज हवा बन्द है।

मृत्युमुखान्मुक्तः—काल के गाल से बचा हुआ।

यद्भावि तद्भवतु—जो होना हो सो हो। **यद्भावि तद्भवतु शुभमशुभं वा**—चाहे अच्छा हो चाहे बुरा, जो होना हो सो हो। **प्रकृतिमापद्, संज्ञां-चेतनां-लभ्-प्रतिपद्, प्रकृतौ स्था**—होश में आना। **आगामिनि सोमवासरे**—आगामी सोमवार को।

तां सुखशयितं पृच्छ—उससे पूछो कि नींद अच्छी आई या नहीं। **रात्रावपि निकामं शयितव्यं नास्ति**—रात में भी मैं सुख से नहीं सो सकता।

दीर्घिकावलोकनगवाक्षगता—खिड़की पर बैठकर एक कुआँ की शोभा देखना। **आकृतिविशेषेष्वादरः पदं करोति**—सुन्दर स्वरूप का आदर होता ही है। **पदं हि सर्वत्रगुणैर्निधीयते**—गुणों से सभी जगह लोग आकृष्ट हो जाते हैं। **तनुवाग्विभवोपि सन्**—यद्यपि मेरे पास भाषा-सम्पत्ति नहीं है। **तं वाग्वश्येवानुवर्तते**—भाषा उसकी अनुवर्तिनी है।

इदं वृत्तं लेख्यं-पत्रं आरोपय, पत्रे निवेशय—इसको लिपिबद्ध कर दो।

अस्माभिः सहैककार्याणां—हमारे सहयोगियों का।

सहाध्यायिन्—सहपाठी। **समदुःखसुखः**—सुख तथा दुःख का साथी।

अहमहमिकया प्रणामलालसाः—पहिले प्रणाम करने की होड़ में लगे हुए।

अभिनंद्य वक्ति—प्रणाम करके कहता है। **च्यवनाय मां प्रणिपातय, मदीयो नमस्कारो वाच्यः**—च्यवन जी से मेरा प्रणाम कहना। **उपचारपदं**—शिष्टाचार के वचन।

स नाद्यापि पर्यवस्थापयति-संस्तंभयति आत्मानम्—वह अब भी अपने को नहीं संभाल पा रहा है।

महदपि राज्यं न मे सौख्यमावहति—मेरा इतना बड़ा राज्य भी मेरे लिए सुख कर नहीं।

अपि रक्ष्यते त्वया रहस्यनिक्षेपः—क्या आप ने गोपनीय को अपने ही तक सीमित रक्खा है? **विश्वास-विश्रंभ-भूमिः स मम**—वह मेरा विश्वास-पात्र है। **विश्रंभस्थाने मन्**—विश्वास में ले आना।

प्रसवकालः, प्रसवावस्था—किसी स्त्री का प्रसवकाल। **प्रसूता या प्राप्त-प्रसवा तद्भार्या**—उसकी स्त्री सूतिका-गृह में है।

दिष्ट्या सुतमुखदर्शनेन आयुष्मान्वर्धते—पुत्र लाभ पर आप को बधाई है।

प्रसन्नः उपपन्नः-ते तर्कः—आप का अनुमान ठीक है।

अग्निसात्कुरु, ज्वलनाय समर्पय—आग में झोंक दो।

तस्याचरणं वचसा न विसंवदति—उसका आचरण उसकी बातों के विरुद्ध नहीं है। **स्वार्थाविरोधेन**—स्वार्थ का ध्यान रखते हुए। **अभिरूप-भूयिष्ठा परिषद्**—विद्वत्परिषद्, पंडितमंडली।

तस्यवचसि दुराशयं मा कल्पय-आरोपय—उसके कहने को बुरा न मानिए।

तत्परतयैव वेदांतवाक्यानि योजयंति—वेदान्त-वाक्यों को उसी से सम्बद्ध बताते हैं।

जनहितमपि तावत् त्वया चिंतनीयं-मनसि कार्यमेव-अवेक्षणीयं—आपको जनहित का भी ध्यान रखना चाहिए। **स्वहितपरायणो मा भूः**—स्वार्थी मत बनो। **सांवत्सरिकैः संवाद्यताम्**—ज्योतिषियों से परामर्श कर लिया जाय।

गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि, वपुषि न ममौ—उसकी खुशी समाती ही न थी।

तेन ह्यस्य गृहीतार्था भवामि—यदि ऐसी बात है तो मैं इसके भाव को समझूँगी।

यथावकाशं, कार्यान्तरांतरायमन्तरेण—सुविधानुसार।

अन्यकार्यातिपातमंतरेण-कार्यांतराविरोधेन-भवान् कदा मया द्रष्टव्यः—आपको मुझसे मिलने के लिए कब सुविधा होगी?

अनभ्यंतरा वयं मदनगतस्य वृत्तांतस्य—हम लोग कामदेव सम्बन्धी चर्चाओं से अनभिज्ञ हैं।

प्राणव्ययेनापि—प्राणों को देकर भी।

त्वद्वचनप्रत्ययात्—आप की प्रतिज्ञा पर विश्वास करके।

आ-समा-श्वस्—साहसी बनना। धैर्यं आस्था, धैर्यं अवलंब् अवष्टंभ्, धैर्यावष्टंभं कृ—धैर्य धारण करना।

कथाप्रसंगेन, कथायोगेन—वार्तालाप के सिलसिले में। कालक्रमेण, गच्छता कालेन, दिनेषु गच्छत्सु, गच्छति काले—कुछ समय में। गत्यंतराभावात्, अनन्यगतिकत्वात्—दूसरा कोई चारा न होने से।

स त्वत्तो लब्धोदयः—उसका अभ्युदय आप ही के कारण है।

एते संकल्पा मम प्रादुरासन् अथवा आसीत्-समभूत् मे मनसि—मेरे मन में ये विचार आए। मम दर्शनपथमागतः, नयन-विषयमवतीर्णः—वह मुझे दिखाई पड़ा। व्यत्यस्तभुजः—भुजाओं को एक दूसरे पर तिरछा रख कर। व्यत्यस्तपादः—पैरों को पैरों पर तिरछा रख कर।

सर्वेऽस्य प्रयत्नाः सफलतां ययुः-फलिताः—उसके सारे प्रयत्न सफल हो गए।

आचारपुष्पग्रहणार्थम्—लोकाचार के अनुसार फूलों को लेने के लिए। आचारं प्रतिपद्यस्व—लोकाचारानुसार प्रणाम करो।

मर्मच्छिद्, मर्माणि कृंतत्—मर्मस्पर्शी। मद्वचनमाक्षिप्य—मेरी बात को बीच ही में काटकर।

तस्योत्साहभंगं मा कृथाः—उसके उत्साह को भङ्ग मत करो।

आतुरो जीवितसंशये वर्तते—रोगी की दशा बहुत ही गम्भीर है।

अंधं तमः, सूचिभेद्यं तमः—घना अंधकार। संतमसं—चारों ओर छाया हुआ अन्धकार।

हाहानिनादेन दिशो बधिरयंतः—हाहाकार से दिशाओं को बहिरा करते हुए।

स्वासुभिर्भर्तुरानृण्यं गतः—प्राण देकर स्वामी से उऋण हो गया।

पश्चिमे वयसि-परिणतवयसि—वृद्धावस्था में।

दूरगतमन्मथा सा, अतिभूमिं गतोऽस्या अनुरागः—उसका बहुत अधिक प्रेम हो गया है।

मम विकारः परिच्छेदातीतः—मेरी मनोव्यथा वर्णनातीत है।

एकस्य मूल्येन व्ययः शुध्यति, सर्वा व्ययशुद्धिः संपद्यते—एक की आय से सारा खर्च चलता है।

वैद्ययत्नपरिभावी गदः—रोग असाध्य है।

दीर्घसूत्री विनश्यति—आलसी विनष्ट होता है।

वसुधां तस्य हस्तगामिनीमकरोत्—पृथ्वी उसके हाथों में सौंप दी। **लेखं तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि**—पत्र को उसके हाथ में दूँगा।

सर्वं दैवाधीनं-आयत्तं—सब भाग्याधीन हुआ करता है। **मया प्रायोपवेशनं कृतं विद्धि**—निश्चय समझिए मैं अनशन करके मर जाऊँगा। **असंशयं, नियतं, नूनं, खलु**—अवश्यमेव। **निमित्तसव्यपेक्ष**—किसी कारण पर आश्रित।

विषण्ण, मुक्तावयव—खिन्न, दुःखित, उदास।

सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति—सभी लोगों के हँसी के पात्र बनते हैं।

तस्य श्रीर्वचनानामविषया—उसकी शोभा अवर्णनीय है।

सविस्तरं, विस्तरेण, विस्तरतः-शः, सुविस्तरं—विस्तारपूर्वक।

सा पुपोष लावण्यमयान् विशेषान् अथवा मनोहरं वपुः, प्राचीयमानावयवा'—उसके सुन्दर अंग अवयव बढ़ते गए।

क्षुण्णाद्वर्त्मनो रेखामात्रमपि न व्यतीयुः—लीक से बाल भर भी बाहर नहीं गए।

नाहमात्मविनाशाय वेतालोत्थापनं करिष्यामि—अपने ही नाश के लिए मैं पिशाच को नहीं उठाऊँगा।

पुत्रसंक्रांतलक्ष्मीकाः, गुणवत्सुतरोपितश्रियः—पुत्रों को सम्पत्ति का सारा भार देकर।

लुप्तार्थवचनं—ऐसी बात जिसका नाम-निशान न रह गया हो। **अश्राम्यां**

वैरं—गहरी शत्रुता। **स लोष्ठघातं हतः**—वह ढेला ही ढेला मार डाला गया।

अव्यतिरिक्तेयमस्मच्छरीरात्—यह मेरे शरीर से भिन्न नहीं है।

विषमपदविमर्शिनी टीका—विषम पदों को स्पष्ट करने वाली टीका।

आत्मन्यप्रत्ययं चेतः—अपने आप में विश्वास नहीं है।

अलमप्रासंगिकेन अप्रसंगेन वा, प्रकृतमेवानुसंधीयतां—असम्बद्ध बातें न करो।

चक्षुर्विषयातिक्रांतेषु-नयनपथातीतेषु-अंतरितेषु-अदृष्टिगोचरेषु-अंतर्हितेषु-कपोतेषु—कबूतरों के आँख से ओझल हो जाने पर।

कर्तव्यानि दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि—पीड़ितों को अपनी पीड़ा शान्त करनी चाहिए।

शिष्य उपदेशं मलिनयति—शिष्य उपदेश की बदनामी कराता है।

प्रकृतं-प्रस्तुतं अनुसृ अथवा अनुसन्धा—प्रस्तुत विषय की ओर आना।

प्रस्तावः, प्रस्तुत-प्रकृत-विषयः:, प्रस्तुतं, प्रकृतं—विचाराधीन विषय।

तपस्विव्यंजनोपेताः तापसच्छद्मना, तापसरूपधारिणः—तापस वेषधारी।

निष्कारणो बन्धुः—निष्प्रयोजन बन्धु।

मम द्रव्यस्य कथं त्वया विनियोगः—मेरे धन को आपने किस प्रकार व्यय किया?

अहं त्वदधीनोऽस्मि— मैं आपके अधीन हूँ। **अयमर्थस्त्वदायत्तः, अत्र भवान् प्रभवति**—यह विषय आपके अधीन है। **कलहशील, कलहकाम**—झगड़ालू।

किं वो विवादवस्तु—आप लोगों के विवाद का क्या विषय है? **वादग्रस्तोऽर्थः**—विवादास्पद विषय है।

अतिथिविशेषः—सम्माननीय अतिथि।

एवं तावदाक्षिपामि, अन्यतः संचारयामि— मैं इस प्रकार उसके विचारों को दूसरी ओर मोड़ूँगा।

अंतर्भेदाकुलं गृहं— भीतरी कलह से युक्त घर।

अपि कुशलं-शिवं भवतः—आप का कुशल तो है? **त्वां सुखं-कुशलं पृच्छति**—आपका कुशल पूछता है। **देवीं सुखं प्रष्टुमागता**—वह आपका कुशल-समाचार पूछने आई है। **अलं निर्बंधेन**—हठ मत करो। **किमस्माकं स्वामिचेष्टानिरूपणेन**— स्वामी की चेष्टाओं का निरीक्षण करने से हमें क्या प्रयोजन?

मनो मे संशयमेव गाहते अथवा आशंकते—मेरा मन अब भी सशंकित है।

नतोन्नतभूमिभागः, उत्खातिनी भूमिः—ऊँची-नीची भूमि। **पातोत्पातः**—उत्थान-पतन। **नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण**—गाड़ी की पहिया की भाँति मनुष्य के जीवन में उत्थान-पतन हुआ करते हैं। **निपात्यतां-उच्छेद्यताम्—असौ प्रजापीडकः**—इस अत्याचारी का नाश कर दीजिये।

परिणतप्रायमहः—दिन ढल रहा है, सूर्यास्त होने वाला है।

त्वया स्वहस्तेनांगाराः कर्षिताः--तुमने तो अपने आप ही अपना सत्यानाश कर लिया।

द्वीपिचर्मपरिच्छन्नःगर्दभः—व्याघ्र की खाल से ढँका हुआ गदहा, कपटी।

चापलाय प्रचोदितः—चपलता के लिये प्रेरित। **अविरलवारिधारा-संपातः; पटुधारासारः**—निरन्तर जल-धारा। **किमुद्दिश्य भवान्भाषते**—आप किस बात की ओर लक्ष्य करके कह रहे हैं?

मा भवानंगानि मुंचतु—आप उत्साह न छोड़ें। **मुक्तैरवयवैरशयिषि**—अंग-अंग शिथिल हो जाने पर मैं सो गया। **स्रंसते देहबंधः**—सारा शरीर शिथिल हो रहा है।

जलबिंदुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः—बूँद-बूँद सो घट भरै, कन-कन जोरे मन जुरै।

संह्रियतामियं कथा—इस विषय को छोड़िए। **अवसन्नप्रायाणि मे-गात्राणि, सीदंति अंगानि**—मेरे अंग-प्रत्यंग शिथिलप्राय हो रहे हैं।

शिखी केकाभिस्तिरयति मे वचनं—मोर अपनी बोली से मेरे शब्द को दबा लेता है।

श्रवणगोचरे तिष्ठ—जहाँ से सुनाई पड़े वहाँ खड़े हो ओ।

महति प्रत्यूषे—ब्राह्ममुहूर्त्त में।

न परिहसामि, नायं परिहासस्य समयः—हँसी नहीं कर रहा हूँ। **परमार्थेनग्रह्**—सच मानना।

लब्धं स्वास्थ्यं मया, अहं निर्वृतः, बीतचिंतः—मैं स्वस्थ-चित्त हूँ। **जातो ममायं विशदःप्रकामं अन्तरात्मा**—मेरी आत्मा पूर्णतया स्वस्थ है। **यथाकामं, पर्याप्तं, प्रकामं**—स्वेछानुसार। **सुखसुप्त**—सुख-पूर्वक सोया हुआ। **दन्तहर्षः**—दाँत निकाल कर हँसना, ठहाका मारना।

फल्, मूर्च्छ्—प्रभाव डालना। **मारुतस्य रंहः शिलोच्चये न मूर्च्छति**—आँधी पर्वत के ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं कर सकती। **मूर्च्छंत्यमी विकारा ऐश्वर्यमत्तेषु**—धन से मदोन्मत्त पुरुषों के ऊपर ये विकार बहुत प्रभाव डालते हैं। **निशि मूर्च्छितां तमसां**—रात्रि का घना-अंधकार। **वज्रं तपोवीर्यमहत्सु कुण्ठम्**—तपोधनी लोगों पर वज्र कुछ भी प्रभाव नहीं डालता। **इति, एतदभिप्रायः अर्थतः वस्तुतः**—वास्तव में।

नृपस्तस्यां बद्धभावः, कृतानुरागः, प्रीतिं-भावं बबंध—राजा उससे प्रेम करने लगा।

शृणु मे सावशेषं वचः—मेरी बात अन्त तक सुनो। **कल्याणोदर्कं-स्वन्तं-भविष्यति**—इसका परिणाम अच्छा होगा।

अलमतिविस्तरेण—बहुत विस्तार मत करो। **अलं-कृतं-परिहासेन**—हँसी न करो।

कुतूहलेन तस्य चेतसि पदं कृतं—उसके हृदय में कुतूहल पैदा हो गया।

मानमर्हति, मान्यः, पूज्यः—वह सम्माननीय है। **स पुरस्कारमर्हति**—वह पुरस्कार के योग्य है।

परसुखासहिष्णु—दूसरों के सुख को न सहन करने वाला। **ते परस्पर-यशः-पुरोभागाः**—वे एक दूसरे की कीर्ति से ईर्ष्या करते हैं।

तुलया धृ—बराबर समझना। **तत्कार्यं साधयितुमलं सः**—वह इस कार्य को करने में समर्थ है।

प्रतिशासनम्—संदेश लेकर भेजना।

बंधनभ्रष्टो गृहकपोतश्चिल्लाया मुखे पतितः—एक विपत्ति से छूटा नहीं कि दूसरे में जा गिरा। **कथं कथमपि मुक्तः**—बाल-बाल बच गया।

सुरक्षितां तां प्रेषय—उसको सुरक्षित भेजो।

अत्यंतविलुप्तदर्शनः—सदा के लिए लुप्त हो गया। **एकांतनष्टः**—सदा के लिए नष्ट हो गया।

असन्निवृत्त्यै गतः, अत्यंतगः—सदा के लिए चला गया। **अप्रबोधाय सा सुष्वाप**—वह सदा के लिए सो गई।

अब्रह्मण्यं, अत्याहितं—महान् अनर्थ हो गया।

स सत्कारो मम मनोरथानामप्यभूमिः—स्वागत आशातीत हुआ, अनुमान से भी बढ़कर सत्कार हुआ।

उत्सर्गाः सापवादाः—नियमों में अपवाद हुआ करते हैं। **अपवादैरिवो-त्सर्गाः कृतव्यावृत्तयः**—सामान्य नियम अपवादों से सीमित रहते हैं। **अव्य-भिचारि तद्वचः, इति लोकवादः न विसंवादमासादयति**—इस उक्ति में अपवाद नहीं है। **प्रतिप्रसवः**—अपवाद का भी अपवाद।

शिरःशूलस्पर्शनमपदिशन्—सिर-दर्द का बहाना करता हुआ। **अनाम-यादेशेन**—बीमारी का बहाना करके।

स्वनियोगमशून्यं कुरु, अनुतिष्ठात्मनो नियोगं—अपने कर्त्तव्य का पालन करो।

असौ क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः—उसका शैशव धीरे-धीरे युवावस्था को

प्राप्त हो गया । **हर्षोत्फुल्लनयनः**—प्रसन्नता के कारण उत्फुल्ल नेत्रों वाला ।

भवतात्मा क्लेशस्य पदमुपनीतः—आपने स्वयं अपने को कष्ट में डाल दिया । **स कातर इति वाच्यतां गतः**—"वह कायर है" ऐसी बदनामी हुई । **सा तंडुलान् सूर्यातपे दत्तवती, आतपायोज्झितवती**—उसने चावलों को धूप में फैला दिया ।

कियताप्यंशेन, ईषत्, मनाक्—कुछ अंश तक । **सर्वथा**—सब प्रकार से ।

लोकदृष्ट्या—जनता की दृष्टि में । **अक्षिगतोऽहं तस्य**—मैं उसकी आँखों की किरकिरी हूँ ।

मुखामुखि, संमुखं—आमने-सामने । **पूर्वाभिमुखं गृहं**—पूर्व की ओर द्वार वाला घर ।

वस्तुतः, तत्त्वतः—वास्तव में । **वस्तुवृत्तेन, परमार्थतः, तत्वतः**—वास्तव में ।

संकटेष्वविषण्णधीः—संकट में जिसकी बुद्धि विकल न हो । **फले विसंवदति**—फल देने में विफल है । **रमणीयोऽवधिर्विधिना विसंवादितः**—भाग्य ने सुअवसर को विफल कर दिया ।

तस्य धैर्यं न हीयते, न स्खलति—उसका धैर्य क्षीण नहीं होता । **पुत्राभावे**—पुत्र के अभाव में । **तस्य स्मृतिलोपः संजातः**—उसकी स्मरण-शक्ति लुप्त हो गई । **सन्ततिविच्छेदः, लोपः**—सन्तानहीनता ।

अनिर्वेदः श्रियो मूलं—उद्योगी को लक्ष्मी प्राप्त होती है, कायर को लक्ष्मी नहीं मिलती ।

सुदिनं—अच्छा दिन ।

पातोत्पातौ, व्यसनोदयौ—उत्थान-पतन । **स लक्ष्यच्युतसायकोऽभूत्**—उसका बाण लक्ष्य से चूक गया । **तव महिमानमुत्कीर्त्य वचः संह्रियते**—आप की महिमा का वर्णन करने में वाणी असफल हो जाती है ।

लुप्तप्रतिज्ञ, असत्यसन्ध, भग्नप्रतिज्ञ—अपनी प्रतिज्ञा को न पालन करने वाला।

अतिपरिचयादवज्ञा—अत्यन्त घनिष्टता होने से अपमान होने लगता है।

को वृत्तांतस्तत्रभवत्याः—श्रीमती जी का क्या हाल है?

नात्र मुनिर्दोषं ग्रहीष्यति—मुनि जी इसमें दोष न निकालेंगे।

दृष्टदोषा मृगया—आखेट के दोष विदित हैं।

सहृदयः, सचेताः—सहृदय, भावुक। **सचेतसः कस्य मनो न दूयते**—किस सहृदय व्यक्ति का मन दुःखी नहीं होता।

आत्मानं मृतवत्संदर्शयामास—अपने को मरा हुआ-सा दिखलाया। **कृतककोपं कृत्वा**—बनावटी क्रोध करके। **प्रसुप्तलक्षण, व्याजसुप्त, लक्षसुप्त**—सोने का बहाना करके।

पर्याप्तमाचामति—भर-पेट पीता है।

तैः सोऽपराधी स्थापितः—उन लोगों ने उसे अपराधी ठहराया।

उदारः-प्रथमः-कल्पः—अच्छा प्रस्ताव है।

सुश्लिष्टमेतत्—यह समुचित प्रतीत होता है।

मन्मुखासक्तदृष्टिः—मेरे मुख की ओर आँख गड़ाये हुए। **आसक्त-बद्ध-दृष्टिः**—टकटकी लगाये हुए। **स्तिमित-अनिमेष-लोचन**—निश्चल दृष्टि से। **मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति**—निष्ठा रहित मन चंचल रहता है।

रंध्रान्वेषिन्, छिद्रान्वेषिन्—दोष ढूँढ़ने वाला।

सप्तभूमिकः प्रासादः—सात मंजिल वाला भवन।

हस्तौ समानीय, अंजलिं बद्ध्वा, कृतांजलिः, सां (प्रां) जलि—हाथ जोड़ कर। **भुजाभ्यां तामापीड्य**—दोनों भुजाओं से उसका आलिंगन करके। **महतां पदमनुविधेयम्**—बड़ों के पथ का अनुसरण कीजिये। **पदवीं प्रतिपद्य**—मार्ग का अनुसरण करके। **पुरस्कृतमध्यमक्रमः**—मध्यम मार्ग का अनुसरण करके। **दुःखं दुःखानुबंधि, विपद् विपदमनुबध्नाति**—

विपत्ति विपत्ति का अनुसरण करती है। **अतःकिं प्राप्नोति**—इससे क्या निष्कर्ष निकलता है। **परस्तादवगम्यते**—जो इसके बाद आयेगा, बस समझ लिया गया। **ततस्ततः**—आगे कहिए। **तद्यथाः**—वह इस प्रकार है।

शांतं पापम्, प्रतिहतम् अमंगलम्—ईश्वर न करे ऐसा हो।

स्वनामत्यागं करोमि—अपना नाम कहाना त्याग दूँगा।

तीर्ण-पूर्ण-प्रतिज्ञः, पालितसंगरः, सत्यप्रतिज्ञः, सत्यव्रतः, सत्य-संधः— प्रतिज्ञा का पालन करने वाला।

अधुना मुंच शय्याम्—अब बिस्तर छोड़ दीजिये।

युद्धाय संनद्धाः अथवा बद्धपरिकरास्ते—वे युद्ध के लिए कटिबद्ध हैं।

शुचो वशं मा गमः, शोकाधीनः मा भूः, वैक्लव्यं मावलंबस्व—शोक मत करो।

ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा—ब्रह्म तेज से देदीप्यमान हुआ-सा।

इति ख्यातः, कृतनामधेयः, दत्तसंज्ञः—वह इस नाम से प्रसिद्ध है। **उमाख्यां सा जगाम**—वह उमा नाम से प्रसिद्ध हुई।

किं तस्या दृष्टया, कोर्थस्तस्या दर्शनेन—उसका दर्शन करने के क्या लाभ? **अलं परिदेवनेन**—रोने से क्या लाभ, मत रोओ।

मृत्योर्मुखे वर्तते, कालालीढः, मृत्युगोचरं गतः,—वह मृत्यु के मुख में है। **इदं च अशेषविद्याग्रहणसामर्थ्यं**—समस्त विद्या को प्राप्त कर लेने की यह क्षमता। **ममाशयं सम्यग्गृहीतवानसि**—आपने मेरा अभिप्राय पूर्ण रूप से समझ लिया है।

आनन्दस्य परां कोटिं-काष्ठाम्-अधिगतः—वह प्रसन्नता की चरम सीमा पर पहुँच गया।

रोषात् दंतैर्दंतान्निष्पिष्य—क्रोध के मारे दाँतों को पीसता हुआ।

यौवनपदवीमारूढः, प्राप्तयौवनः, यौवनदशामापेदे—वह युवावस्था को प्राप्त हो गया। **वत्सतरः महोक्षतां स्पृशति, महोक्षभावं श्रयति**—बछड़ा साँड़ हो जाता है।

तस्याः आबद्धधारमश्रु प्रावर्तत; उद्बाष्पे नयने जाते—उसकी आँखों से आँसुओं की अजस्र धारा बह चली।

चौर्यवृत्ति—चोरी की आदत। **ज्ञातदुःख, दुःखशील, परिचित-क्लेश**—विपति भोगने में अभ्यस्त।

रेखामात्रमपि—बाल भर भी।

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पंडितः—सर्वस जाता देखि करि आधा लेय बँटाय।

नियुद्धं, बाहुयुद्धं—मल्ल-युद्ध। **एकतः-अन्यतः, एकं-अपरं च**—एक ओर यह तो दूसरी ओर वह। **तु, तावत्**—इसके विपरीत। **सर्वथा, सर्वत्र**—सर्वत्र। **दत्तहस्तावलंब**—हाथ बँटा कर। **परंपरया आगम्**—परंपरा से चला आना।

त्रिशंकुरिवांतरा तिष्ठ—त्रिशंकु की तरह अधर में ही लटके रहो।

आवेदयंति प्रत्यासन्नमानन्दं, अग्रजातानि शुभानि निमित्तानि—शुभ शकुन प्रसन्नता के सूचक होते हैं।

अहो दारुणो दैवदुर्विपाकः—हाय रे दुर्भाग्य! **प्रबलक्षुधावसन्न**—क्षुधा से पीड़ित।

तव मुखं कमलश्रयमुद्वहति-आहरति-कलयति—तुम्हारा मुख कमल की भाँति सुन्दर है।

संशयितजीवितः—अपने जीवन को संकट में डालने वाला।

धुरि कीर्तनीय, प्रतिष्ठापयितव्य—अग्रगण्य। **स सर्वेषां धुरि-मूर्ध्नि-तिष्ठति**—वह सब के ऊपर है। **वसिष्ठाधिष्ठिताः, वसिष्ठपुरःसराः-प्रमुखाः-पुरोगमाः**—जिसके अगुआ वसिष्ठ थे।

व्रणविरोपण तैलम्—घाव को भरने वाला तेल।

सुस्थोऽसौ, कुशलमस्य—वह सकुशल है। **पूर्ववत्-प्रकृतिस्थः समजायत**—पहले की तरह स्वस्थ हो गया।

किमस्मान् संभृतदोषैरधिक्षिपथ—हम लोगों पर दोषारोपण क्यों करते हो ?

इति कर्णपरंपरया श्रुतमस्माभिः—हम ने लोगों के मुँह से ऐसा सुना है।

सोत्साहं, सर्वात्मना—पूर्ण हृदय से। **सर्वात्मना तस्मिन्कर्मणि स व्यापृतः**—वह तन-मन से उस काम में तत्पर है। **यथेच्छं, पर्याप्तं, प्रकामं, निकामं**—इच्छानुसार।

दीर्घ-स्थूलस्थूलं निश्वस्य— बड़ी गहरी साँस लेकर।

भूस्वर्गायमानमेतत्स्थलं, भूलोकगतः स्वर्गः—यह पृथ्वी पर स्वर्ग है।

अहमनुपदमागत एव—मैं तुम्हारे पीछे ही पीछे आता हूँ।

जङ्घामवलंब्—नौ दो ग्यारह हो जाना, भाग जाना।

विना पुरुषकारेण दैवं न सिध्यति—उद्योग के बिना भाग्य भी नहीं साथ देता। **का गतिः, किमन्यच्छरणं**—दूसरा क्या चारा है।

हन्त, बीभत्समेवाग्रतो वर्तते—अरे, सामने ही बड़ा बीभत्स दृश्य है।

स त्वां बहुमन्यते—वह आप को बहुत मानता है।

इषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले—बाण चंचल लक्ष्य को बेध देते हैं।

का अथवा कियती मात्रा तेषां मम; तानहं तृणाय मन्ये अथवा तृणीकरोमि—मैं उनको तृण के बराबर समझता हूँ। **वाचंयमो भव, वाचं नियच्छ, तूष्णीं-जोषम् आस्स्व**—जबान सँभालो। **सर्वगामी-अव्यभिचारी अयं नियमः**— यह नियम सर्वत्र लग जाता है। **मुक्तग्रह**—छोड़ देते हुए। **रागः शुक्लपटे स्थायी भवति**—लाल रंग सफेद वस्त्र पर खूब चढ़ता है। **स लोकस्य मन आददे**—सर्व-साधारण जनता के मन पर उसका पूरा प्रभाव था। **लेभेऽतरं चेतसि नोपदेशः, अपलब्धपदो हृदि**—उसके हृदय पर उपदेश का कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

तद्वचः तस्य हृदयमर्मास्पृशत्—इस बात ने उसके अन्तःकरण के मर्म पर प्रभाव डाला।

चतुरः शशकान् विश्वासस्थाने धृत्वा—चार खरगोशों को जमानत के रूप में रखकर।

मानुषीं गिरमुदीरयामास—मनुष्य की-सी बोली बोला।

इति राज्ञां शिरसि वामपादमाधाय—इस प्रकार राजाओं को नीचा दिखा कर।

ब्रह्मसायुज्यं प्राप्तः, ब्रह्मलीनः, ब्रह्मभूयं गतः—ब्रह्म में लीन हो गया।

दुर्दैवं, दुर्भाग्यं मंदभाग्यं, दैवविपर्यासः, दुर्विपाकः—दुर्भाग्य।

अस्मार्तकालात्—युगों से, बहुत प्राचीन काल से।

स महति जीवितसंशये अवर्तत—वह बड़े भारी मौत के खतरे में था।

अलं सेवया (स्नेहभणितेन), मध्यस्थतां गृहीत्वा ब्रूहि—आपलूसी न करो, निष्पक्ष रूप से कहो।

उन्नमत्यकालदुर्दिनं—असमय का तूफान आ रहा है। **अनावृष्टिः संपद्यते लग्ना**—सूखा पड़ने वाला है।

निर्बन्धपृष्टः अथवा पुनः पुनश्चानुबध्यमानः स जगाद सर्वं—हठ-पूर्वक पूछे जाने पर उसने सब कुछ बता दिया।

जानकी करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव—जानकी करुण रस की साक्षात् मूर्ति अथवा शरीरधारिणी विरह व्यथा है।

वाच्यतां याति, दोषभाजनं-दोषभाक्-दोषपात्रं-भवति—वह दोष-भाजन बन रहा है।

किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य—उस दम्पती की शोभा अवर्णनीय है।

संभावनीयानुभावास्याकृतिः—उसकी आकृति से उसके प्रताप का अनुमान लगाया जा सकता है। **आकृतिरेवानुमापयत्यमानुषतां**—उसके आकार से ही उसके अमानुषेय कर्म का पता चलता है।

अधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति—स्पष्ट हो जायगा कि कौन बड़ा है, कौन छोटा है। **ओजस्वितया सा न परिहीयते शच्या**—तेज में वह शची से

कम नहीं है। **न प्रतिच्छन्दात्परिहीयते मधुरता**—उसका रूप-माधुर्य चित्र में कम नहीं है।

अमी विनोदनोपाया सन्दीपना एव दुःखस्य—ये आमोद-प्रमोद तो दुःख के उद्दीपक ही हैं।

दर्पाध्मात, मदोद्धत, उत्सिक्त—गर्वोन्मत्त।

निद्रावश, निद्रा-विधेय—निद्रालु। **मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः**—मूर्ख का मन दूसरों के विश्वास पर आश्रित रहता है।

पुरुषोत्तमे इति भणितव्ये—'पुरुषोत्तम' कहने के स्थान पर—**अध्ययने आरब्धव्ये किमिति क्रीडसि**—अध्ययन करने के बजाय तुम खेलते क्यों हो? **हर्षस्थाने अलं विषादेन**—हर्ष के स्थान पर विषाद न करो।

परोपकरणीकृत-भूत—दूसरों का साधन बन कर। **उपकरणीभावमायात्येवंविधो जनः**—ऐसे लोग सहायक साधन बन जाते हैं।

चक्रवृद्धिः—ब्याज दर ब्याज। **सरला वृद्धिः**—साधारण ब्याज। **पंचकेन शतेन, पंचोत्तरं शतं**—पाँच रुपया सैकड़ा दर से। **दृष्टं युष्माभिः कथारसस्याक्षेपसामर्थ्यम्**—आपने देखा कि कथा रुचि ने किस प्रकार मुझे दूसरी ओर मोड़ दिया। **स्वार्थपर, स्वार्थदृष्टि**—स्वार्थी। **अतिरमणीयं कथावस्तु**—कथा का विषय अत्यन्त रमणीक है। **पक्षपातिनौ आवामनयोः**—हम दोनों की दोनों में रुचि है।

न चेदन्यकार्यातिपातः—यदि इस से अन्य कर्तव्यों में विघ्न न पड़े। **अव्यापारेषु व्यापारं स करोति**—वह असम्बद्ध कार्यों में हस्तक्षेप करता है।

मैनमन्तरा प्रतिबध्नीत—उसे मत टोको।

काले काले, अंतरा अंतरा—समय-समय पर।

श्रमसहिष्णु, जितश्रम—परिश्रमी।

नायमेकांतो नियमः—यह अपरिवर्तनीय नियम नहीं है।

रामस्य दैवदुर्नियोगः कोपि—यह राम का कुछ दुर्भाग्य ही था।

परिहासविजल्पित, नर्मभाषित—हँसी में कहा गया।

अध्वसंजातखेदात्—यात्रा की थकावट के कारण। **उत्थाय पुनरवहत्**—वह उठ कर फिर चल पड़ा। **सप्ताहगम्योऽध्वा**—केवल एक सप्ताह का मार्ग।

स्वगृहनिर्विशेषमत्र वस—यहाँ अपने घर की तरह निवास करो।

स्वपुत्रनिर्विशेषं सम्वर्धित—अपने पुत्र के समान पालित।

जानुभ्यां अवनौ गम् अथवा पत्—घुटने टेकना। **जानुदघ्नद्वयसमात्र**—घुटने तक गहरा।

भ्रकुटिं बन्ध या रच्, भ्रुवौ संकुच् या भिद्—भौं सिकोड़ना।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य—बुद्धि ही बल है। **तदाख्यया भुवि पप्रथे, तदाख्यां जगाम**—उस नाम से विख्यात हुआ।

चिंताशतैर्बाध्यमान-अभिभूत—सैकड़ों चिन्ताओं से व्यग्र।

प्रतस्थे स्थलमार्गेण अथवा स्थलवर्त्मना—स्थल-मार्ग से प्रस्थान किया।

अलसेक्षण—अलसाई आँखों वाला।

एष ते जीवितावधिः प्रसादः—यह वार्ता तुम्हारे जीवन भर चलेगी। **कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्रीः**—युवावस्था की शोभा केवल थोड़े दिनों रहती है। **कालांतरक्षमा माला**—बहुत देर तक टिकने वाली माला।

अर्गलानिरुद्धं पक्षद्वारं—पक्षद्वार अर्गला से बन्द था।

किमिति चिरायितं त्वया, वेलातिक्रमः कृतः—तुमने देरी क्यों की ?

मुहूर्तं तत् आस्तां, तिष्ठतु तावत्—थोड़ी देर इसे रहने दो।

विषयसुखनिरतो जीवितमत्यवाहयत्—विषय-वासनाओं से रहित जीवन को बिताया। **चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि**—चित्रकूट जाने वाले मार्ग में। **अयं पंथा नदीमुपतिष्ठते**—यह मार्ग नदी को जाता है।

अनुदिवसं परिहीयसेऽङ्गैः—तुम प्रतिदिन क्षीण होते जा रहे हो। **मदलेखया दत्तहस्तावलंबा**—मदलेखा के हाथों का सहारा लेकर। **वामहस्तोपहितवदना**—अपना मुख अपने बाएँ हाथ पर रख कर।

त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः—कम से कम तीन गवाह होने चाहिए।

अस्मास्ववहीनेषु—हम लोगों के पिछड़ जाने पर। **शान्ते पानीय-वर्षे**—वर्षा शान्त हो जाने पर।

सुखमुपदिश्यते परस्य—पर उपदेश कुशल बहुतेरे।

लब्धावकाश, प्राप्तावकाश, निर्व्यापार, लब्धक्षण—फुरसत में।

परित्रायस्वैनां, मा कस्यापि तपस्विनो हस्ते पतिस्यति—इसकी रक्षा करो। कहीं ऐसा न हो कि यह किसी तपस्वी के हाथ में पड़ जाय।

भूमिसात्कृ—भूमि के बराबर कर देना। **दरिद्रसमानतां नीत-गमित**—दरिद्र बना दिया गया।

मनुष्याः स्खलनशीलाः—मनुष्यों से गलती होती ही है।

यदत्रावसरप्राप्तं तत्र प्रभवति भवती—अवसर के अनुरूप करने में श्रीमती जी पूर्ण स्वतन्त्रता है। **बन्धे मोक्षे चाधुना सा ते प्रभवति**—वह आप को रोकने अथवा छोड़ देने में पूर्णतः स्वतन्त्र है।

सर्वथा त्वमेवात्र दोषभाक्—इस में आप ही सब प्रकार से दोषी हैं। **सखीगामी अयं दोषः**—यह दोष मेरी सखी का है।

प्राणयात्रा-धारणं-रक्षणं—जीवन का अवलम्ब। **साधुवृत्त**—सदाचारी। **दशांतराणि**—भिन्न-भिन्न दशाएँ।

अनया दृष्ट्या—इस रूप में विचार करने पर।

एवमादि—इसी प्रकार की। **यस्ते छन्दः, यद्भवते रोचते**—जैसा आप को रुचे। **कामचार, स्वच्छन्द, स्वैरिन्, कामवृत्ति**—स्वेच्छानुसार व्यवहार करना। **कामरूपः**—इच्छानुसार रूप धारण करने वाला। **यथाभिलषितं क्रियताम्**—जैसा तुम्हारा मन हो वैसा करो। **स न तस्या रुचये बभूव**—वह उसकी रुचि का नहीं था।

अल्पविषय—संकुचित। **तस्य यश इयत्तया परिच्छेत्तुं नालम्**—उसकी ख्याति की कोई सीमा नहीं। **न गुणानामियत्तया**—गुणों की सीमा के कारण नहीं।

यावदहं ध्रियै—जब तक मैं जीवित हूँ। **वन्यफलैः शरीरवृत्तिं निर्वर्तयति**—जंगली फलों पर जीवन निर्वाह करता है। **स्मार्ते काले**—जहाँ तक स्मरण शक्ति जाती है।

राजकुले-राज्ञे-निविद्—मुकदमा दायर करना। **नयनैः-दृष्टिभिः पा, निध्यै**—किसी की ओर बड़े ध्यान से देखना। **जनन्या मे योगक्षेमं वहस्व, जननीमवेक्षस्व-चिंतय**—मेरी माता की देखभाल करना। **विगतासुर्बभूव, प्राणैरहीयत**—वह मर गया। **मित्रैर्वियुज्यते**—वह मित्रों से वियुक्त होता है। **उन्मार्गगामी अभूत्**—वह रास्ता भूल गया। **च्युताधिकारः अधिकारभ्रष्टः**—अधिकार से च्युत।

किंकर्तव्यता-प्रतिपत्तिमूढ—किंकर्त्तव्यविमूढ़।

उपनम्, उपस्था—भाग्य में बदा होना। **तव दुःखमुपनमेत्**—तुम्हारे भाग्य में दुःख ही बदा होगा। **कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं**—निरन्तर सुख किसके भाग्य में है?

दोषमपि गुणत्वमुपपादयितुं—दोष को भी गुण में परिवर्तित करना। **लक्ष्यभेदः**—लक्ष्य को बेधना, निशाना मारना।

अप्रभुरस्मि आत्मनः, न प्रभवाम्यात्मनः, गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः—मैं अपने आपका प्रभु नहीं रह गया। **सकलशास्त्रपारंगतः, शास्त्रपारदृश्वा**—सम्पूर्ण विद्याओं में पारंगत। **गतोऽसि सर्वास्त्रायुधविद्यासु परां प्रतिष्ठाम्**—आप ने सारी अस्त्रविद्याओं पर पूर्ण पांडित्य प्राप्त कर लिया है।

आवां प्रतिद्वंद्विनौ भवाव—आओ हम दोनों होड़ लगावें। **दैत्येभ्यो हरिरलं**—हरि दैत्यों के लिए समर्थ हैं। **अतीत्य-अतिक्रम्य वृत्**—उससे बहुत बढ़कर होना। **तुल्यप्रतिद्वंद्वि बभूव युद्धं**—बराबर का युद्ध था।

यत्किंचित्करमेतत्—कोई हर्ज नहीं। **किं तस्या वृत्तं, कस्तस्या वृत्तांतः**—उसका क्या समाचार है? **किं मम तेन कार्यं-कोऽर्थः**—मेरा इससे

क्या प्रयोजन । **सन्निधानस्य अकिंचित्करत्वात्**—सन्निकटता से कोई प्रयोजन नहीं ।

परिणतप्रज्ञ, कठोरधी—परिपक्व बुद्धि वाला । **साकूतं मां निर्वर्ण्य**—मेरी ओर अर्थ-पूर्ण दृष्टि से देखकर ।

प्रत्युद् या-व्रज्-गम-इ—स्वागत के लिए जाना । **प्रत्युत्था, अभ्युत्था**—मिलने के लिए उठना ।

आपःसंप्लवंते-संभिद्यंते—जल प्रवाहित होते हैं ।

तस्य हृदयं स्नेहार्द्रीभूतं, स्नेहेनाभ्यष्यंदत—उसका हृदय स्नेह से पिघल गया ।

मेधाविन्, धारणावत्—अच्छी धारणा-शक्ति वाला । **स्मृतिविषयतां-स्मृतिपथं-स्मर्तव्यशेषं-कथावशेषं गम् अथवा नी**—केवल स्मरण में रह जाना ।

एको दोषो गुणसन्निपाते निमज्जति—अच्छे गुणों के समूह में एक दोष कुछ नहीं मालूम पड़ता ।

चित्त-मनो-व्यापारः-वृत्तिः—मन की गति । **मनसि उत्-इ, उद्भू, बुद्धौ संजन्**—मन में आना । **आस्तां-तिष्ठतु तावत् प्रथमः प्रश्नः**—पहिली बात की कोई चिंता नहीं ।

उत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि—मुझे पश्चात्ताप-मिश्रित प्रसन्नता का अनुभव होता है ।

मार्गात् भ्रष्टः—रास्ता भूल गया ।

गोत्रस्खलितं—नाम लेने में गलती । **तस्माद् गर्दभात् व्याघ्रधिया-बुद्ध्या पशवः पलायंते**—पशु गदहे को बाघ समझकर भाग जाते हैं ।

अलमन्यथा गृहीत्वा—मेरे विषय में गलत धारणा न करो ।

आपातरमणीय—सद्यः रमणीय ।

खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति—

"निज गुन रज गिरिसम करि जाना। पर गुन गिरि-सम रज करि जाना॥"

तिले तालं पश्यति, अणुं पर्वतीकरोति—वह राई का पर्वत बना देता है।

अस्मात्स्थानात्पदात्पदमपि न गंतव्यम्—इस स्थान से एक पग भी आगे न बढ़ो।

कर्मणो गहना गतिः—कर्म की अद्भुत गति है।

अपि ज्ञायंते ते नामधेयतः—क्या उनको नाम से जानते हो?

अस्य मातरं नामतः पृच्छेयम्—मैं उसकी माता का नाम पूछूँगा।

नामग्राहं मामाह्वयति—वह मेरा नाम लेकर पुकारता है। **वचनेन, वचनात्**—किसी की ओर से।

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा—मेरी ओर से राजा से कह देना।

मामुद्दिश्य तस्मै सभाजनाक्षराणि पातय—मेरी ओर से नमस्कार कह देना।

मानुषतासुलभो लघिमा—मनुष्यमात्र में पाई जानेवाली कमजोरी।

दुर्जातबंधुः—दुर्दिन में मित्र। **स सुहृद् व्यसने यः स्यात्**—जो विपत्ति में मित्रता बनाए रक्खे, वही मित्र है।

मालती मूर्धानं चालयति—मालती अपना सिर हिलाती है।

ननु शब्दपतिः क्षितेरहं—मैं पृथ्वी का नाम-मात्र का स्वामी हूँ।

बहुलीभूतमेतत् वृत्तं—यह बात सब जगह फैल गई।

यत्नादुपचर्यतामसौ—सावधानी से उसका उपचार होना चाहिए।

स्नेहस्यैकायनीभूता—प्रेम का एक-मात्र पात्र।

किमुद्दिश्य, किंनिमित्तं, किमपेक्ष्य फलं—किस उद्देश्य से?

प्रत्यर्थिभूता सा समाधेः—समाधि में वह एक बाधा थी।

श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता—गृहिणी के सम्माननीय पद पर आरूढ़।

इति तस्य बुद्धौ न संजातं, इति तस्य हृदये नापतितम्—यह बात उसके मन में नहीं सूझी।

स्मृत्युपस्थितौ इमौ द्वौ श्लोकौ—ये दोनों श्लोक हमें स्मरण हो आये।

कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शकुन्तला—शकुन्तला ने किसी पूज्य पुरुष के प्रति अपराध कर दिया है। **तव न कदापि मया विप्रियं कृतं, प्रतिकूलमाचरितं**—मैंने कभी भी तुम्हारा अपराध नहीं किया है।

शीघ्रकोपिन्, सुलभकोप—जल्दी क्रुद्ध हो जाने वाला।

च्युत-भ्रष्ट-अधिकार—पद से च्युत।

प्रकाशं निर्गतः—खुल जाने पर, प्रकाशित हो जाने पर।

तवोपालंभे पतितास्मि, उपालंभपात्रं जाता—मैं तुम्हारे व्यंग्यों का लक्ष्य हो गई।

गृहीतावसर, लब्धावकाश—अवसर पाकर।

लोकाचारविरुद्ध, लोकविद्विष्ट—लोकाचार के विरुद्ध।

अत्र स्वरुच्या वर्ततां भवान्, यथाभिलाषं क्रियताम्—इस विषय में जैसा आप को रुचे, करें।

यथाज्ञापयति देवः—जैसी आपकी आज्ञा।

आनुलोम्यं—स्वाभाविक क्रम। **प्रातिलोम्यं, व्युत्क्रमः विपर्ययः, व्यत्यासः**—उलटा क्रम।

अपह्रिये परिश्रमजनितया निद्रया—थकावट की नींद से अभिभूत हूँ।

आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा—प्रसन्नतासूचक आँख से। **प्रथमं कुतूहलं सपरिवाहमासीत्**—पहिले तो मेरी उत्सुकता बढ़ चली।

विवर्णभावं प्रपेदे—पीली पड़ गई।

शरीरभूता मे शकुन्तला—शकुन्तला मेरे शरीर का अंग हो गई है।

भूमिकाकल्पनम्—आंशिक समर्पण।

तस्य नरस्य विशेषं ब्रूहि—उस व्यक्ति का पूरा-पूरा विवरण दो।

तेनाष्टौ परिगमिताः समाः कथंचित्—बड़ी कठिनता से उसने आठ वर्ष बिताए।

इदं धियः पथि न वर्तते—यह बुद्धिगम्य नहीं है।

आस्तां, तिष्ठतु तदधुना, यातु किमनेन—अब इसे रहने दो।

किमर्थमगृहीतमुद्रः कटकान्निष्क्रामसि—बिना टिकट लिये क्यों शिविर से बाहर जाते हो ?

अमुद्रालांछितः—बिना टिकट (मुहर) के ।

तया हृदयवल्लभोऽभिलिख्य कामदेवव्यपदेशेन सखीपुरतोऽपह्नुतः—उसने अपने प्रियतम का चित्र यह कह कर अपनी सखी को दे दिया कि यह कामदेव का चित्र है। **मध्यमांबावृत्तांतोऽतरित आर्येण**—श्रीमान् जी मझली माता का हाल छिपा गए ।

जालांतरप्रेषितदृष्टिरन्या—जँगले में से झाँकती हुई दूसरी ।

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया—बड़ों की आज्ञा पर विचार नहीं किया जाता ।

नाटकं न प्रयोगतो दृष्टम्, प्रयोगेणाधिकृतं न दृष्टं—नाटक को रंग-मंच पर अभिनीत नहीं देखा है ।

स्थिरप्रतिबन्धोभव—विरोध करने में दृढ़ रहो ।

आसन्न-शरीर-परिचारकः—अंग-रक्षक । **स्वानुभवः**—निजी अनुभव ।

यौवनमंगेषु सन्नद्धं—अंगों में यौवनावस्था व्याप्त हो गई है ।

ज्ञायतां कः कार्यार्थीति—पता लगाओ कौन-कौन प्रार्थी हैं ।

विरहोत्कंठं हृदयं—वियोग (अनुपस्थिति) में उत्कण्ठित रहने वाला हृदय ।

स गृहं गंतुमुद्ताम्यत्—वह घर के लिए उत्सुक था ।

अन्तःपुरविरहपर्युत्सुको राजर्षिः—राजर्षि अपनी रानियों के विरह के कारण क्षीण होते जा रहे हैं ।

पितृस्थाने, पितृभूमौ—पिता के स्थान पर । **प्रथमं, प्रथमतः, प्रथमं तावत्**—पहिले तो । **अपरंच, पुनः, पुनश्च**—और दूसरा, और भी ।

अर्थिन, वादिन्, अभियोक्तृ—प्रार्थी, वादी, यायि ।

प्रत्यर्थिन्, अभियुक्तः, प्रतिवादिन्—प्रतिवादी, स्थायि ।

द्वित्रीण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्—ऐ पूज्य, दो-तीन दिन प्रतीक्षा कीजिए ।

यदभिरोचते वयस्याय—मित्र को जैसा रुचे ।

हृदयंगमः परिहासः—सुखद परिहास । **सुखश्रव, श्रुतिसुख, श्रवणसुभग, मंजुलस्वन**—कानों को सुखद ।

विहितप्रतिज्ञःगृहीतक्षणः-अहं—मैं ने प्रतिज्ञा कर ली है ।

तव विरूपकरणे तेन सुकृतमंतरे धृतं—उसने अपने पुण्यकर्मों की शपथ खा कर कहा है कि (वह) तुम्हें हानि न पहुँचावेगा ।

मरणोन्मुख, आसन्नमृत्यु, मुमूर्षु—मरणासन्न । **प्रसवोन्मुखी, आसन्नप्रसवा**—बच्चा देने वाली ।

दासी महिषीपदं आहिता, देवीभावं गमिता—दासी रानी बना दी गई ।

तदुभयथापि घटते—यह दोनों प्रकार से सम्भव है ।

चिरप्रवृत्त—चिरकाल से चालू । **सदाचार, सद्वृत्ति, साधुवृत्त**—सदाचारी । **कां वृत्तिमुपजीवत्यार्यः**—आपका क्या व्यवसाय है ? **प्रयोगः**—क्रिया । **शास्त्रम्-आगमः**—सिद्धान्त, मत ।

शासनात् करणं श्रेयः, वाचः कर्मातिरिच्यते—कथनी से करनी भली ।

स कथयत्यागामिनमप्यर्थं—वह तो भविष्य की घटनाओं को भी बता देता है ।

वरं मृत्युः न पुनरपमानः—अपमान की अपेक्षा मृत्यु अच्छी है । **दौर्हृदलक्षणं दधौ**—उसकी गर्भावस्था के लक्षण दिखाई पड़े । **कठोरगर्भा** पूर्ण गर्भ वाली ।

त्वयोपस्थातव्यं, सन्निहितेन भाव्यं—आपको उपस्थित रहना चाहिये ।

समतीतं च भवच्च भावि च—भूत, वर्तमान तथा भविष्य । **अग्निं साक्ष्ये आधाय**—अग्नि को साक्षी बनाकर ।

तं वक्षसा परिरभ्य-क्रोडीकृत्य—उसको छाती से लगाकर ।

भावितविषवेगः—विष से प्रभावित होने का बहाना करके । **अश्रुतिमभिनयति**—न सुनने का बहाना करता है ।

आर्यध्वजिन्-लिंगिन्—न्याय-शील होने का बहाना करता हुआ।

साक्षी वाक्यभेदान् बहूनकथयत्—गवाह ने बहुत-सी विरुद्ध बातें कहीं। **प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं**—कीचड़ को धोने की अपेक्षा उससे दूर रहना ही अच्छा है।

द्विषामाभिषतां ययौ—शत्रुओं का शिकार बन गया।

प्रथमवयः, नव-अक्षत-यौवनं—नई जवानी।

ततस्ततः, ततः परं कथय—आगे कहो। **प्रस्तूयतां विवादवस्तु**—झगड़े वाला मामला बताओ। **प्रवर्त्यतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाकः**—पूज्य ब्राह्मणों के स्वागतार्थ भोजन की तैयारी करो। **किंनिमित्तं ते संतापः**—तुम्हारे दुःख का क्या कारण है?

क्षुद्बोधित—क्षुधा से उत्तेजित।

परमार्थतः प्रेम—सच्चा प्रेम। **स सदा प्रत्युत्पन्नमतिः, प्रबोधननिरपेक्षः**—उसे सिखाने की आवश्यकता नहीं, वह सदा सतर्क रहता है।

एष सनिकारं नगरान्निर्वास्यते—यह व्यक्ति अपमान-पूर्वक नगर से निकाला जाता है।

ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कंठेन निजोपयोगितां—सज्जन लोग अपनी उपयोगिता कार्यों से सिद्ध कर देते हैं, मुँह से कहते नहीं।

अनागतविधातृ—भविष्य के लिये व्यवस्था करने वाला। **आपदर्थे धनं रक्षेत्**—आपत्ति के दिनों के लिए धन को बचा रखना चाहिये।

स्तूयमाना नोत्सिच्यन्ते अथवा अनुद्धताः—प्रशंसा से फूल कर कुप्पा नहीं हो जाते। **दर्पाध्मात, उत्सिक्त, अवलिप्त, उद्धत**—गर्वोन्मत्त।

चौरदण्डेन दण्डयेत्—अपराधी को चोर की-सी सजा देनी चाहिए।

अनियंत्रणानुयोगस्तपस्विजनः—तपस्वियों से निःसंकोच प्रश्न करना चाहिए।

मन्दोऽप्यविरतोद्योगः सदा विजयभाग्भवेत्—धीरे-धीरे परन्तु निरन्तर कार्य करने वाला विजयी होता है।

तद्वचो मम हृदये शल्यं जातं—वे बातें मेरे हृदय में काँटे के समान चुभ गईं।

स प्रहारः करालतां गतः—प्रहार घातक हुआ है।

वृत्तांतेन श्रवणविषयप्रापिणा—जब यह बात उसके कानों में पड़ी।

इदं प्रायेण तव कर्णपथमायातम्, श्रुतिविषयमापतितमेव—सम्भवतः इसे तो आपने सुना ही होगा।

धनी उपगतं दद्यात् (धनं) स्वहस्तपरिचिह्नितं—महाजन को चाहिये कि अपने हाथ की लिखी हुई रसीद दे।

दर्शनप्रतिभुवं ददौ—उसने पहचान की जमानत दी।

तदहं विदधे तव स्तवं दमयन्त्याः सविधे—इसलिये मैं दमयन्ती के पास तुम्हारी प्रशंसा करूँगा।

नाद्यापि प्रसादं गृह्णासि, प्रसन्ना न भवसि—आप अभी तक प्रसन्न नहीं हो रही हैं। **वाक्यानि प्रतिसमादधाति**—कथनों का समाधान करता है।

कृतकालोपनेयः आधिः—निश्चित समय पर पूरी की जाने वाली प्रतिज्ञा।

आत्मवशं नी, वशीकृ—अपने अधीन कर लेना। **अस्थिमात्रावशेष, कंकालशेष**—जिसकी केवल हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह गईं हों, क्षीण-काय।

अत्र पुरावृत्तकथा अनुसन्धेया—यहाँ पौराणिक कथा का हवाला दिया गया है।

भर्तुः प्रतीपं मास्म गमः—पति के विरुद्ध न होना।

नार्हसि मे प्रणयं विहन्तुम्—कृपया मेरी प्रार्थना को न ठुकराना।

तस्य मनो मार्दवमभजत, कठिनतामजहात्—उसका हृदय कोमल पड़ गया।

स चानुनीतो मृदुतागमच्छत्—अनुनय-विनय करने पर उसका हृदय पिघल गया। **किमपि सानुक्रोशः कृतः**—वह कुछ-कुछ कोमल पड़ा।

दुःखविश्रामं ददाति—दुःख में आराम देता है।

हृदि एनां भारतीं उपधातुमर्हसि—कृपया इन शब्दों को भलीभाँति हृदय में धारण कीजिए।

पातालं मामद्य संस्मरयतीव भुजंगलोकः—शूरों का यह समूह मुझे पाताल का स्मरण-सा दिला रहा है।

अये सम्यगनुबोधितोऽस्मि—ओहो, मुझे अच्छी याद आई।

इति जनप्रवादः-किंवदंती-श्रूयते, इति प्रवादः—ऐसी जनश्रुति है।

विश्वासप्रतिपन्न—विश्वस्त।

दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयन्ति, गुणपक्षे स्थापयंति—दोषों को भी गुण ही बताते हैं।

संवदंत्यक्षराणि—अक्षर मिलते-जुलते हैं।

सागरे नद्यो विलीयन्ते-नदियाँ सागर में विलीन हो जाती हैं।

खुरत्रये भरं कृत्वा—तीन खुरों पर खड़ा होकर।

भाग्यायत्तमतः परम्—इसके आगे भाग्याधीन है।

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते—जिस पर तुम्हारे पुत्रों ने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की सारी आशा लगा रक्खी है।

हरः स्मरं स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति—हर कामदेव को उसका शरीर पुनः दे देंगे।

एवं सर्वतो निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मे—इस प्रकार जब सभी ओर मेरे कार्य बन्द हो जायँगे।

अपवादः उत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः—अपवाद किसी भी नियम को सीमित कर सकने में समर्थ होता है।

अतः परं पुनः कथयिष्यामि—इसके आगे फिर कहूँगा।

तस्य चार्थस्य सततं मनसि विपरिवर्तमानत्वात्—यह बात निरन्तर उसके मस्तिष्क में नाच रही थी।

गमिष्याम्युपहास्यताम्—मैं हँसी का पात्र बनूँगा।

अवितथमाह प्रियंवदा—प्रियंवदा ने ठीक कहा है। **न स्त्री स्वातंत्र्य-मर्हति**—स्त्री को स्वतंत्रता नहीं मिलनी चाहिए।

तत् देवीहस्ते निक्षिप्ता मया युक्तमेवानुष्ठितं—तो मैंने उसे महारानी के हाथों में सौंप कर उचित ही किया।

ते नाभ्युपतिष्ठन्ति गुरून्—वे अपने गुरुजनों का स्वागत नहीं करते। **उत्तिष्ठमानः शत्रुः**—उभड़ता हुआ शत्रु।

स्थाने खलु सज्यते दृष्टिः—नेत्रों की टकटकी ठीक जगह पर लगी है।

प्रथमं गुणितमिव तवोत्तरं—तुम्हारा उत्तर मानों पहिले से ही रटा हुआ-सा है।

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तंत्रयित्वा—प्रजा के ऊपर अपनी सन्तान की तरह शासन करके।

कियदवशिष्टं रजन्याः—कितनी रात शेष रह गई है?

सफलीकृतभर्तृपिंडः—वह स्वामी के प्रति नमक हलाल है।

का कथा-गणना (सप्तमी के साथ), **कथैव नास्ति** (प्रति के साथ)—क्या कहना है। **जनप्रवादः**—लोक-निन्दा। **तथा च लौकिकानामा-भाणकः**—लोकोक्ति इस प्रकार है; जैसी कहावत है।

मुद्रां परिपालयन् उद्घाट्य दर्शय—मुहर को बचाकर इसे खोलिए और मुझे दिखाइये।

प्रत्यक्षीकृ—अपनी आँखों देखना।

क्रय्य, क्रयार्थं प्रसारित—बिकाऊ।

कृतज्ञता, कृतवेदित्वं—कृतज्ञ होना। **जरालुप्तमानावमानचिंतः**—वृद्धावस्था के कारण मानापमान से परे। **यौगिकार्थ**—शब्दार्थ। **रूढार्थ**—प्रचलितार्थ।

अन्वर्थ, यथार्थ, परमार्थतः—वास्तविक अर्थ। **अन्यथा एषा वीप्सा न चरितार्था भवति**—नहीं तो इस पुनरुक्ति का कोई अर्थ नहीं।

एकैक, व्यस्त—अलग-अलग (सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतनं, तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने)

कोपोद्दीपनाय अलं अथवा पर्याप्तमिदं—उसके क्रोध को भड़काने के लिये यह पर्याप्त होगा। उपयोगं व्रज्, स्थाने-भूमौ भू—स्थानापन्न।

मरुतः परिवेष्टारः आसन्—देवता लोग भोजन परसने वाले थे।

इदं पादोदकं भविष्यति—यह जल पैर धोने के लिए काम देगा।

सर्वांगिका आभरणसंयोगाः—शरीर के अंग-प्रत्यंग में सुशोभित आभूषण। रत्नानुविद्ध, मणिप्रत्युप्त, रत्नखचित—रत्नजटित। पदं कृ—स्थान जमा लेना।

मनः धियं-चित्तं बंध् अथवा आ + धा अथवा सन्निविश (प्रेरणार्थक) या युज् (प्रेरणार्थक)—मन को किसी चीज में लगाना।

अनेन समयेन परिणतो दिवसः—अब तक सूर्य डूब चुका था।

आधीयतां धर्मे धीः—धर्म में बुद्धि लगाओ। विनाशधर्मसु विषयेषु मनो मा सन्निवेशय—नश्वर पदार्थों में मन मत लगाओ। अचिरप्रवृत्तो ग्रीष्म-समयः—तुरन्त प्रारम्भ होने वाला ग्रीष्म। गुणा विनयेन शोभन्ते—गुणों की शोभा नम्रता से होती है।

व्यवस्थापितवाक्, वाचं व्यवस्थाप्य—जो कहना है उसे निश्चय करके।

इति प्रतिपादितमाकुलीभवेत्—यह परिस्थिति डावाडोल हो जायगी।

स्निग्धजनसंविभक्तं दुःखं—सुहृदों द्वारा बँटाया गया दुःख।

केन वान्येन सह साधारणीकरोमि दुखं—अन्य किस व्यक्ति के साथ अपना दुःख बटाऊँ।

चर्मिन्, फलकपाणि—ढाल से सुसज्जित। खड्गचर्मधर—ढाल और तलवार से सुसज्जित।

नयनोपांतविलोकितं, साचिवीक्षणं, अपांगदृष्टिः, कटाक्षः—तिरछी चितवन।

विदूषकं संज्ञां लभयति—विदूषक को संकेत करता है। **अर्थवत्, सार्थ, चरितार्थ, अर्थयुक्त, अन्वर्थ**—अर्थ से भरा हुआ।

सीदति मे हृदयं—मेरा हृदय बैठा जाता है। **प्रबलपिपासावसन्नानि अंगकानि**—प्रबल प्यास के कारण अंग-अंग शिथिल पड़ रहे हैं।

तस्य धैर्यमहीयत, स लुप्तस्खलित-धैर्यः—उसका धैर्य टूट गया।

मया रथस्य मंदीकृतो वेगः—मैंने रथ के वेग को धीमा कर दिया.

शिथिलितप्रयत्नाः, श्लथोद्यमाः—प्रयत्न करने में शिथिल।

मंथरविवेक चेताः—मन्द विवेकी।

प्रत्यभिज्ञानमंथर—पहिचानने में मन्द।

पराभवो मम हृदि प्रत्युप्तं शल्यमिव, न्यक्कारो हृदि वज्रकील इव मे तीव्रं परिस्पन्दते—पराजय के कारण मैं व्यथित हो रहा हूँ।

बधिरान्मंदकर्णः श्रेयान्—जहाँ कुछ न मिल रहा हो, वहाँ थोड़ा मिल जाना अच्छा है।

वक्तुं सुकरमिदमध्यवसितुं तु दुष्करं—करने से कहना सरल होता है।

तंतुनाभः स्वत एव तंतून् सृजति—मकड़ी स्वयं अपने जाले को तानती है।

सोल्लास, प्रमुदितचित्त—प्रसन्नचित्त।

मिषतां नः आमिषं आच्छिनत्ति—हम लोगों के देखते-देखते शिकार छीन लेता है।

चारचक्षुर्महीपालः—राजा के नेत्र गुप्तचर हैं।

उपक्रोशमलीमसैः प्राणैः किम्—अपमान से कलंकित प्राणों को रखने से क्या लाभ ?

संशयस्थं जीवितं तस्य, स संशयितजीवित आसीत्, जीवितं संशय-दोलाधिरूढं—उसके प्राण संकट में हैं।

वचनीयमिदं व्यवस्थितं—यह मेरे जीवन में सदा के लिए लांछन लग जायगा।

कुंठित-प्रतिहत-रुद्ध-गति—ठप्प, शांत।

इदं सोपपत्तिकं न भाति—यह युक्ति-संगत नहीं प्रतीत होता।

लब्धप्रतिष्ठः—जिसने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। पुलकित, रोमांचित—रोंगटे खड़े हो गए।

यात्राभिमुख प्रवृत्—यात्रा के लिए प्रस्थान करना।

अभिन्नगतयः शब्दं सहंते मृगाः—सहज गति में भी मृग शब्द सुन लेते हैं। संचकितं—चौकन्ना होकर।

अविदितगतयामा रात्रिः—रात ऐसी बीती कि मालूम ही न पड़ा।

शनैर्निद्रा निमीलितलोचनं मामकार्षीत्—नींद के कारण धीरे-धीरे मेरी आँखें मुँद गईं।

ज्वलति चलितेंधनोऽग्निः—इन्धन के हिलाने-डुलाने से आग जल जाती है।

नैतावता पीडा निष्क्रामति—विपत्ति का अन्त यहीं नहीं हो जाता।

मुखे चपेटां दा—मुँह पर चाँटा मारना। चित्ते-भयं जनयति—मन में भय पैदा करता है।

बद्ध-प्ररूढ-मूल—जिसकी जड़ गहराई तक गई हो। तस्य हृदयं पस्पर्श विस्मयः—वह आश्चर्य-चकित हो गया।

तद्धि प्रसिद्धतरेण प्रयोगेण शीघ्रं बुद्धिमारोहति, प्रसिद्धिबलेन प्रथमतरं प्रतीयते—सामान्य अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण सरलता से बोधगम्य है।

जर्जरितकर्ण विवरः-जर्जरीकृतकर्णपुटः-नादः—कान के पर्दे को फाड़ देने वाली आवाज।

सा देवीशब्देनोपचर्यते—वह 'रानी' कह कर पुकारी जाती है।

पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान्समधिगम्य—उत्तर-कोशल प्रदेश को पिता के बाद प्राप्त करके।

यदि नावसीदति गुरुप्रयोजनं—यदि किसी बड़े कार्य की हानि न

हो। खलः करोति दुर्वृत्तं तद्धि फलति साधुषु—दुष्ट व्यक्ति अपराध करता है और सज्जन उसका फल भोगता है।

आतपलंघनात्—लू लगने के कारण।

पुनरुक्ततां नी—व्यर्थ कर देना।

अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां किं दीपिकापौनरुक्त्येन—जब स्पष्ट चाँदनी विद्यमान है तो मशाल की क्या आवश्यकता।

अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते-विशिष्यते—सत्य हजारों अश्वमेध यज्ञों से कहीं बढ़कर है।

कथं जीवितं धारयिष्यामि—मैं कैसे जिऊँगा? न ह्ययं मंत्रः स्वातंत्र्येण कंचिदपि वादं समर्थयितुमुत्सहते—यह मंत्र स्वतः किसी भी सिद्धान्त का समर्थन नहीं कर सकता।

नियम्य शोकावेगं—शोक के वेग को रोक कर।

विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता—मैं तो विकार से प्रभावित होने वाली बना दी गई। विकारी यौवनं—जवानी विकार का घर है।

धृतद्वैधीभावकातरं मे मनः—मेरा मन दुविधा में पड़ने के कारण चिंतित है।

विहगाः समदुःखा इव चुक्रुशुः—पक्षी मानों समवेदना के कारण चीख पड़े।

भिन्नरुचिर्हि लोकः—लोगों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है।

निर्गंतुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्तोऽस्मि—वेंतस कुंज से सहसा निकलने में असमर्थ हूँ। विललाप विकीर्णमूर्धजा—बालों को बिखेर-बिखेर कर विलाप किया।

गमयति रजनीं विषाददीर्घतरां—शोक के कारण लम्बी रात्रि को बिताता है।

शास्त्रे प्रयोगे च मां विमृश—शास्त्र में तथा व्यवहार में भी मेरी परीक्षा ले लो।

अनुगृहीतोस्मि, महानयं प्रसादः—मैं अनुगृहीत हो गया। मेरे ऊपर यह बड़ी कृपा हुई।

द्वावप्यागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च—दोनों शास्त्रज्ञ तथा व्यवहार-कुशल हैं।

नगरगमनाय मतिं न करोति--वह राजधानी में जाने की इच्छा नहीं करता।

सखीमुखेनोचे—सखी के द्वारा बोली।

अपत्यमन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः—सन्तान माँ-बाप का पारस्परिक बन्धन है।

अतिपिनद्धेन वल्कलेन नियंत्रितास्मि—मैं इस कसे हुए वल्कल-वस्त्र से जकड़ी हुई हूँ।

समयः स्नानभोजनं सेवितुं—स्नान और भोजन करने का समय है।

कालानुवर्तिन्—समयानुसार काम करने वाला। **नैवं वारांतरं विधास्यामि**—अब दूसरी बार ऐसा न करूँगा।

अनवसरग्रस्तोऽर्थिभावः—अब भीख माँगने की प्रथा नहीं रह गई।

अकालक्षेपेण, अविलंबितं, अकालहीनं—बिना समय खोए हुए।

अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी, समस्ता एव विद्या जिह्वाग्रेऽभवन्—सरस्वती तो उसकी जिह्वा के अग्र भाग पर नाचती थी।

धारासारैर्महती वृष्टिर्बभूव—मूसलाधार पानी बरसा।

शतसंख्या मामियं स्पृशति—यह १०० की संख्या मुझे स्पर्श करती है।

हृदयं संस्पृष्टमुत्कंठया—हृदय उत्कंठा से प्रभावित हो गया।

मित्राणां तत्त्वनिकषग्रावा विपत्—विपत्ति मित्रता की कसौटी है।

ग्राहकैर्गृह्यते चौरः पदेन—चोर अपने पैर के चिह्न से पकड़ा जाता है। **ब्रह्मशब्दस्य व्युत्पाद्यमानस्य**—जब ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है।

क्षुण्णाद्वर्त्मनः—उसी लीक पर।

परंतपो नाम यथार्थनामा—परन्तप उसका यथार्थ नाम है।

ध्रुवसिद्धेरपि यथार्थनाम्नः—सार्थक नाम वाले ध्रुवसिद्धि का भी।

उपकारः प्रत्युपकारेण निर्यातयितव्यः—उपकार का बदला उपकार से चुकाना चाहिए।

असमर्थित, अतर्कित, अतर्कितोपनत—अप्रत्याशित।

समवायो हि दुस्तरः, संहतिः कार्यसाधिका—संघ में शक्ति है।

ज्योतिःशब्दस्तेजसि प्रयुज्यते—"ज्योति"—शब्द "प्रकाश" के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

ज्योतिःशब्दो ज्वलन एव रूढः-"ज्योति" शब्द "अग्नि" के अर्थ में रूढ़ है।

अनुपभुक्तभूषण—आभूषण पहिनने में अनभ्यस्त।

रणधुरां वह, समरशिरसि वृत् सेना का अग्रणी होना।

वाचिकं, वार्चानिकं शब्दाख्येयं - मौखिक सन्देश।

वाग्व्यवहारः—मौखिक वाद-विवाद।

लोकव्यवहार दृष्ट्या—सांसारिक व्यवहार की दृष्टि से।

निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेहः—तुम्हारा सन्तान-प्रेम पूर्ण रूप से प्रकट हो गया।

कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यतां—थोड़ी देर तक प्रतीक्षा कीजिए।

सहस्व मासद्वयं—दो महीने तक प्रतीक्षा कीजिए।

स्फुलिंगावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थितः—चिनगारी की दशा में स्थित आग ईंधन की अपेक्षा कर रही है।

त्वत्तो न किमपि परिहास्यते—आप को कोई कमी न रहेगी।

न कामचारो मयि शंकनीयः—मेरे विषय में स्वेच्छाचारी की आशंका न कीजिए।

सूर्यातपं सेव्—घाम लेना, धूप का सेवन करना। **अग्न्यातपं सेव्**—आग तापना।

वृद्धिक्षयौ - उन्नति तथा अवनति।

अंतरा—रास्ते में। **परिपंथीभू**—विघ्न डालना। **किं स्वातंत्र्यमवलंबसे**—क्या तुम मनमानी कर रहे हो?

सर्वत्र नो वार्तमवेहि—हमारा सब प्रकार से कुशल जानो।

युज्यते, बाढं, तथा, इत्युक्त्वा—"बहुत अच्छा" कह कर।

छंदोऽनुवृत्तिः—दूसरे की इच्छा के अनुकूल आचरण करना।

ईश्वरेच्छा बलीयसी, प्रभवति भगवान् विधिः—ईश्वर की इच्छा प्रबल होती है।

बलात्, हठात्, अकामतः—अनिच्छया, जबर्दस्ती से।

अयशः प्रमृष्टम्—कलंक धुल गया।

कुंठितमतिः आसीत्, निरुत्तरीकृतः—वह निरुत्तर हो गया।

कष्टमभ्यापन्नः—विपत्ति में पड़ा हुआ।

नैतच्चित्रं, किमत्र चित्रम्—इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, इसमें क्या आश्चर्य है।

सत्य-पालित-संगरः-संधः—प्रतिज्ञा पालन करने वाला।

लघुसंदेशपदा सरस्वती—संक्षिप्त संदेश। **सम्यग्ग्रथित-साधुविन्यस्त-पद**—सुगठित शब्दावली।

करुणार्थग्रथित—करुणा जनक वाणी से परिपूर्ण।

त्वं मम जीवितसर्वस्वीभूतः—तुम मेरे जीवन के सर्वस्व हो।

लौकिकज्ञ—व्यवहार-कुशल।

न तर्हि प्रागवस्थायाः परिहीयसे—तो आप पहिले से बुरी दशा में नहीं हैं।

अनुरूपभर्तृगामिनी—अपने अनुरूप पति वाली।

वैरसाधनं-निर्यातनं—बदला लेना।

बाढम्, अथकिम्—हाँ। **तथेति उक्त्वा**—हाँ कह कर।

वैतसीं वृतिम् आश्रि—बलवान् शत्रु के सामने झुक जाना।

परिशिष्ट—२

शुद्ध करने के लिए वाक्य

१—अरण्येऽधिवस्तुं यतय इच्छन्ति ।
२—संन्यासी बह्वो दिनान्येकस्थाने नावसेत् ।
३—यद्रामादन्तरेणायोध्या शून्या दृश्यते तत्कैकेयीवचनस्य परिणामः ।
४—अस्य गिरेरभितो बह्वोऽश्मानः सन्ति ।
५—अस्य वर्त्मनः परितः पलाशवृक्षा दृश्यन्ते ।
६—हा धिङ्, मेऽन्यायाचरणं कुर्वते ।
७—स एवं विचारयन् सकला रात्रिर्व्यंतीयाय ।
८—दुर्योधनः पांडवान्नास्निहृयत् ।
९—शत्रवे बाणानहं क्षिपामि स तु मह्यं दृशदो मुंचति ।
१०—मम वचने स न विश्वसिति ।
११—सर्वेभ्यः पुत्रेभ्यो गोपालः पितुः श्रेष्ठः ।
१२—सर्वाभ्यो नदीभ्यो भागीरथी द्राघिष्ठा ।
१३—स भोजनादनु बहिरगच्छत् ।
१४—संसारसुखानि केवलं दुःखस्थानमस्तीति साधोरन्तरेण को जानाति ।
१५—इयं नगरी त्रयः क्रोशा आयता ।
१६—धनिनं द्रव्यं याचितं भिक्षुकैः ।
१७—अंभोनिधिं सुधा ममन्थे देवैः
१८—तेषां मे च सख्यमस्ति ।
१९—अयं वित्तसंचयस्त एव ।
२०—तां वात्रानय मां वा तत्र नय ।
२१—हे जगन्नाथ, मे सर्वाणि पापानि क्षमस्व ।

२२—ताः स्त्रिय आत्मनो निंदन्ति ।
२३—सा युवतिरात्मानं हतप्रायाममन्यत ।
२४—क्रुद्धः पुरुषः शिलायामप्यधिशेते ।
२५—गोपालो वा रामोऽहं वाऽत्वं तत्कार्यं करिष्यथेति मां भाति ।
२६—पथिक उत्थिते सति तस्य सार्धमहमगच्छम् ।
२७—समागतेषु बालेषु तान्फलानि दातुमारभस्व ।
२८—तस्मिन् राजनि वसुधामीशाने न कोऽपि सामंतस्तमभिभवितुं येते ।
२९—अजासु क्षेत्रं नीयमानासु ताः शस्यमखादयत् ।
३०—भार्याया आक्रोशंत्याः सा भर्त्रा प्रतिषिद्धा ।
३१—दंभश्च पैशुन्यं च सदा गर्हणीयौ ।
३२—रूपवती भार्या सदा प्रीतिपात्रा भवति ।
३३—पिता च माता च वार्द्धक्ये परिपालनीयः ।
३४—यत्स एवमुवाच तत्तस्य दोष एव ।
३५—यत्क्रौर्यमित्याचक्षते तत्प्रकृतिरेव खलानाम् ।
३६—अन्येषां पुत्राणां राम एव पितुः प्रेयानासीत् ।
३७—त्वं मम प्राणानामपि प्रियतरा अतस्त्वां सर्वं कथयामि ।
३८—अहं तत्र गंतुं न शक्नोमि हि मध्ये नद्यायातवती ।
३९—वरं भिक्षां याचितुं न तु परसेवाविधिम् ।
४०—अहं वा त्वं वा तच्चकार ।
४१—स गृहं प्रत्यागतो वा नेति मां सत्वरं निवेदय ।
४२—राज्ञापराधिनं शता रूपका दंड्याः ।
४३—इन्द्रः स्वयशः किन्नरमिथुनैर्गोपयामास ।
४४—प्रासादस्य परितोऽमात्यं भिक्षुकान् स्थापयति राजा ।
४५—क्षुधितेन वत्सेन पयः पायय तमन्नं वा खादय ।
४६—राज्ञी वनात्पुष्पाणि दासीरानाययत् ।
४७—अहं मम मित्रं मा पारितोषिकमदापयम् ।

४८—गुणिषु पूजास्थानं गुणा एवास्ति न लिंगं वा न वयः।
४९—तस्या नार्यां अवलोकनस्य पात्रं ते नरा बभूव।
५०—अत्र विषये ईश्वरो न दोषास्पदः।
५१—सा तपस्विनी मत्कृपापात्रं जातम्।
५२—गोविंदस्तस्य भार्या च स्तुत्यचरिते स्तः।
५३—तपो दमो निःस्पृहता च सर्वे अमी यतिषु प्रशस्याः।
५४—ऋते रामं जनकः कमपि नृपं शिवधनुर्भंजयितुं न शशाक।
५५—अयं पर्वतोऽस्य ग्रामस्योत्तरः।
५६—रामस्य पूर्वं गोविंद आगच्छतु।
५७—तं दिवसमारभ्य मम मनः पर्याकुलं जातम्।
५८—पुत्रविवाहस्यानन्तरं पिता ग्रामस्य बहिरावसथेऽध्युवास।
५९—स शिष्येणोपनिषदं वेदयामास।
६०—स्वामिना भृत्येन धेनुं पयो दोह्यते।
६१—भिक्षुकं श्रेष्ठिनं धनं याचयति।
६२—स नरः पादस्य खंजः अयं तु नयनस्य काणः।
६३—स जंबुद्वीपं नावि गतः शकटे च प्रत्यागतः।
६४—यज्ञदत्तः कुंडिनपुराय प्रेषितः स मासद्वये प्रत्यागमिष्यति।
६५—रथस्य एव बहु शोभसे तत्कृतमत्यादरस्य।
६६—हिरण्यकश्चित्रग्रीवस्य प्राणा आसन्।
६७—गोविंदो यूयं चैतदकुरुताम्।
६८—अहं ते वीराश्च शत्रून् पराजयन्।
६९—त्वमहं गोपालसूनवश्च तत्कृत्यं कुर्युः।
७०—अयं बटुस्ते ब्राह्मणा वा ग्रामं गच्छतु।
७१—यूयं वयं वा नदीं गमिष्यथ।
७२—अतस्त्वां दूरादेव नमः।
७३—इमां वार्तामहं वयस्यं कथयामि।

७४—यदि स त्वया पाठं नाध्यापयति तर्हि मा तन्निवेदय ।
७५—देवाः स्वभयकारणं ब्रह्माणमाचख्युः ।
७६—तस्मै अहं दूतं प्रहितवान्, किंतु पाटलिपुत्राय न कोप्यद्यापि विसृष्टः ।
७७—अयं नरश्चौराणामतीव बिभेति ।
७८—ममागमनस्य प्रागेव स गतः ।
७९—अलं तं बहु ताडयितुं सोऽत्यशक्तः ।
८०—अस्य पुस्तकस्य रामाय प्रयोजनं नास्ति ।
८१—ये यतयोऽरण्येऽधिवसंति तेभ्यो नृपानुग्रहस्य क उपयोगः ।
८२—भक्तिं देवो रोचते ।
८३—अहं देवदत्तस्य शता रूपका धारयामि ।
८४—स मयि द्रुह्यति नाहं तस्मा अभिद्रुह्यामि ।
८५—न किमपि त्वामधुना प्रत्याशृणोमि ।
८६—राजस्योपरि चण्डवर्मा शास्ति ।
८७—अहं शत्रुं हत्वा स प्रत्याजगाम ।
८८—रामो रावणं हत्वा विभीषणो लंकाराज्ये स्थापितः ।
८९—त्वया प्रातरेव गां पयो दोग्धव्यमिति तमादिशन् रामोऽत्रागतवान् ।
९०—गौतमीवर्जं सर्वे निष्क्राताः ।
९१—अश्मभिर्घातं स शत्रुभिर्हतः ।
९२—रामाय द्वौ पुत्रावास्ताम् ।
९३—प्रभवति निजाय कन्यका जनाय महाराजः ।
९४—वासुकिः पातालतलस्येष्टे ।
९५—मामग्रे किं तिष्ठसि ।
९६—अस्य पर्वतस्य पूर्वं महावापी वर्तते ।
९७—अस्मादुत्तरतस्तु रौद्रं श्मशानम् ।
९८—दिवसे त्रिः संध्यामुपासीत ।

९९—वर्षत्रये दशकृत्वोऽपि मम गृहे त्वं नागच्छः ।
१००—उपवनाद्दक्षिणेनार्त्तरवं श्रुत्वा दुःखितान् शरणं प्रत्यश्रृणोत् ।
१०१—अधुना सुवृष्टिर्भवति चेत्सुभिक्षं सर्वत्राजनिष्ट ।
१०२—अपि नाम स राजास्मत्समीहितं संपादयिता ।
१०३—अहं ह्यः पथि महांतं भुजगं ददर्श ।
१०४—अत्र विषये तव संदेहो माऽभूत् ।
१०५—मा चौरानभैष्ट ।
१०६—यद्यहं तत्र बभूव तदा त्वं भ्रातुः सार्धं मा कलहमकृथा इति तमख्यम् ।
१०७—स्वपुत्रं यथा अन्येषां पुत्रेभ्योऽपि प्रीतिः कर्तव्या ।
१०८—अशीतिदिवसा यावत्स भृत्यो मामसेविष्ट ।
१०९—यावद्धनमीश्वरेणास्मान् दीयते तस्मिन्संतोषो मान्यः ।
११०—ते रथे कुसुमपुराय यातवन्तः ।
१११—सा मृतवतीत्याकर्ण्याहं दुःखितो जातवान् ।
११२—शिशुना भाषितं स्मितं च पित्रोरानन्दोत्पादकम् ।
११३—अयं मम चिरंतनो वयस्यो भवितव्यः ।
११४—त्वय्यस्मान् शासति कथमस्माभिरभिभूतं भाव्यम् ।
११५—कुमंत्रिणा नृपसभा न प्रवेष्टव्यम् ।
११६—गोपालो नाम वयस्येन सहागच्छम् ।
११७—जितोऽसौ मया षोडशसहस्राणां रूपकाणाम् ।
११८—कांची नाम नगर्यां धनमित्रनाम वणिगवसत् ।
११९—सुवर्णपुरं नाम नगरे द्वौ कौलिकौ वयस्यभावेन आवसतः ।
१२०—चंदनमिव शीतले कदलीगृहेऽपि सा निर्वृतिं नालभत ।
१२१—रामेतिनामा दशरथस्य पुत्र आसीत् ।
१२२—उपला इव शत्रुष्वस्मानवस्कंदस्तु वयं किं कुर्यानेति न जज्ञिम ।
१२३—सुरगुरुमिव प्रज्ञस्यास्य ब्राह्मणस्य दक्षिणां किं न दत्से ।

१२४—तव च मे च सख्यमस्ति ।
१२५—चेत्त्वं मम कार्यं करोषि त्वामहं मुद्रिकाशतं दास्यामि ।
१२६—सा नारी रविरिव भ्राजमानं सुतमलब्धं तु इयं बहुकुरूपम् ।
१२७—अश्वमारोढुं मे रोचते ।
१२८—त्वामावस्थातुं कथमहमनुमंस्ये ।
१२९—अहं त्वामेतत्कर्तुमिच्छामि ।
१३०—इमं ग्रन्थं वाचयितुं न शक्यते ।
१३१—इममाम्रवृत्तमधः पातयितुं न सांप्रतम् ।
१३२—वरं देशमपि त्यक्तुं न तु नीचसेवां विधातुम् ।
१३३—दशरथाय त्रिभार्याभ्यः पुत्रचतुष्टयमुदपादि ।
१३४—विजयतु भवान् य एवं जनानानन्दयः ।
१३५—एनां भवतेऽनुरक्तां किं निष्कारणेन त्यजसि ।
१३६—इमं दिवसमारभ्य मासाद्विजया दशमी भवति ।

परिशिष्ट २

शब्दकोश

संस्कृत-हिन्दी

अ

अंशुमालिन्—(पुं०) सूर्य ।
अकलित—(विशे०) अगम्य, अज्ञात ।
अकिंचनत्वं—धनहीनता ।
अक्षयत्वं—नाश-हीनता ।
अगुणः—गुण हीनता ।
अगृध्नु—(विशे०) लोभरहित ।
अग्निसात्कृ—(तनादि, उभय०) जलाना ।
अग्रजन्मन्—(पुं०) ब्राह्मण ।
अग्रणीः—नेता ।
अग्र्य (वि०)—सर्वश्रेष्ठ ।
अघं—पाप ।
अंकः—कलंक, दाग ।
अंकुरः—अंकुर ।
अंगम्—भाग, अंश ।
अंगरागः (सं०)—सुगंधित लेप ।
अंगुलि (स्त्री०)—उँगली ।
अंगुलीयकः-कं—अँगूठी ।
अचिंतनीय (विशे०)—अगम्य ।
अज (वि०)—अजन्मा ।
अंजनं—आँजन ।
अतिक्रान्त (विशे०)—अतीत ।
अतिगर्हित—अत्यन्त तिरस्कृत ।
अतिप्रसंगः—अत्यन्त जंगलीपन ।
अतिभूमिः—चरम सीमा ।
अतिमात्रं—बहुत अधिक ।
अतिमुक्तलता—माधवी लता ।
अतियंत्रणा—अपारकष्ट ।
अतिलोल—दुर्बल, कृश ।
अतिलोहित—बहुत लाल ।
अतिह्रेपण—अत्यन्त लज्जास्पद ।
अत्यादरः—बहुत अधिक आदर ।
अत्रांतरे—इसी बीच में ।
अदूरवर्तिन्—सन्निकट ।

अधिक्षिप्त—तिरस्कृत ।
अधिज्य—चढ़ी प्रत्यंचा-युक्त ।
अधिराजः—चक्रवर्ती ।
अध्वरः—यज्ञ ।
अनङ्गः—कामदेव ।
अनतिपात्य—देरी न करने योग्य ।
अननुदार (विशे०)—जिसके पास उपयुक्त पत्नी न हो ।
अनन्तर—मिला हुआ ।
अनपायिन्—अनश्वर ।
अनम्र—नम्रता रहित, उद्दण्ड ।
अनर्घत्वं—अमूल्य ।
अनवगीत—अनिन्दित ।
अनातप—ठंडा, धूप रहित ।
अनातुर—अश्रान्त, स्वस्थ ।
अनात्मज्ञ—जड़ ।
अनादि—आदि रहित ।
अनायास—सरल ।
अनामय—स्वास्थ्य ।
अनिर्वृत—पीड़ित ।
अनीश—अनधिकारी ।
अनुचरः—सेवक ।
अनुजः—छोटा भाई ।
अनुत्तम—अद्वितीय ।
अनुत्सेकः—निरभिमानता ।
अनुत्सेकिन् (विशे०)—जो गर्व से फूलकर कुप्पा न हो ।
अनुबंधः—निरन्तरता, धारा ।
अनुपक्रम्य—असाध्य ।
अनुपधि (विशे०)—निष्कपट ।
अनुमित—अनुमान किया गया ।
अनुविद्ध—चतुर्दिक् व्याप्त ।
अनुवृत्ति—भूतकाल का अनुभव ।
अनृतं—मिथ्या ।
अंतरात्मन्—अन्तरात्मा ।
अंतराय—विघ्न ।
अंतरिक्ष—आकाश ।
अंतरित—लुप्त हो गया ।
अंतर्लीन—अप्रत्यक्ष ।
अन्तर्वेदिः—यमुना और गङ्गा के बीच का प्रदेश, द्वाबा ।
अपकारिन्—बुराई करने वाला ।
अपचारः—दुराचरण ।
अपदेशः—मिथ्यातर्क ।
अपयशस्—अपकीर्ति ।
अपरिसमाप्त (विशे०)—अनन्त ।
अपवादः—निन्दा ।
अपहस्तित—त्यागा हुआ ।
अपुनरुक्त—जो पुनरुक्त न हो, नित, नूतन ।
अपूर्व—जिसके बराबर पूर्व में कोई न रहा हो ।

अपोहनं—तर्क-बुद्धि ।
अप्रतिभट—अद्वितीय ।
अप्रतिविधेय—उपाय रहित ।
अप्रतिहत—अखण्ड ।
अप्रत्यय—अविश्वस्त ।
अप्रमेय—अगणित ।
अबला—स्त्री ।
अब्जभूः—ब्रह्मा ।
अभिख्या—शोभा, सौन्दर्य ।
अभिगमनं—रति, मैथुन ।
अभिजनः—उच्च कुल का ।
अभिज्ञान—पहिचान ।
अभिनव—नूतन ।
अभिनिवेशः—श्रद्धा, रुचि ।
अभियुक्तः—विद्वान् व्यक्ति ।
अभियोक्तृ—आक्रमण करने वाला ।
अभिरमणीय—बहुत अधिक सुन्दर ।
अभिलाषः—इच्छा, शक्ति ।
अभिव्यक्त—स्पष्ट, प्रकट ।
अभिषेणय—सेना से भिड़ना ।
अभि (ति०) संधानं—धोखा देना, कपट करना ।
अभ्यवहार्य—जो खाने के योग्य हो ।
अभ्यागत—अतिथि ।
अभ्युपेत—हस्तगत ।
अमंगलं—अशुभ, तुच्छ विचार ।
अमर्षित (विशे०)—क्रुद्ध, रोषपूर्ण ।
अमल—स्वच्छ, शुभ ।
अमानुष—अतिमानव ।
अमानुषी—विवेकशून्य स्त्री ।
अमोघ—अचूक, जो व्यर्थ न हो ।
अम्बुवाहः—बादल ।
अयस्—लोहा ।
अरुणः—सूर्य का सारथी ।
अरुन्धती—वसिष्ठ की स्त्री ।
अर्जनं—मिलना, कामना ।
अर्थ्—(सम् पूर्वक) चुरादि आत्मने० सोचना, कल्पना करना ।
(प्रपूर्वक) अनुसरण करना ।
अर्थ्य—सार्थक ।
अर्हत्—योग्य ।
अल्पमेधस्—कमबुद्धि ।
अवकल्प्य—विचारणीय ।
अवक्षयः—विनाश ।
अवकाशः—स्थान, अवसर, कारण ।
अवताडनं—रगड़ना ।
अवपातः—शिकार के लिए गड्ढा ।
अवद्य—निन्दनीय ।
अवधूत—घृणा के योग्य ।
अवमानिन्—तिरस्कार करने वाला ।
अवयवः—अंग, भाग ।
अवलोकिता—एक दासी का नाम ।

अवसन्न—समाप्त कर दिया गया।

अवसानं—अन्त।

अवस्थित—रुका हुआ।

अविक्षत—घाव रहित, सकुशल।

अविधवा—सधवा स्त्री।

अविनीत—उद्दण्ड, अशिष्ट।

अव्यापन्न—जीवित।

अव्याहत—अविरुद्ध।

अशनिः—वज्र।

अशनं—भोजन।

अशरण—असहाय।

अशुभं—दुर्घटना, पीड़ित।

अशेषतः—पूर्ण रूप से।

अश्वमुखः—घोड़मुहा जीव, किन्नर।

अश्वमेधः—एक प्रकार का यज्ञ जिसमें घोड़ा छोड़ा जाता है।

अस् (उत् पूर्वक)—(कर्मवाच्य) बदल जाना; (विपरि पूर्वक) परिवर्तित होना।

असंविदान—अनभिज्ञ, भोला।

असक्त—विरक्त।

असदृश—असमान, अनुपयुक्त।

असार—शक्तिहीन, अयोग्य।

असारता—निस्तत्व, क्षणभंगुरता, अस्थिरता।

असित—काला।

असिपत्र—तलवार की धार।

अस्ताचलः—पहाड़ जिसके पीछे सूर्य अस्त होते हैं।

अहंकारः—घमंड।

अह्नाय (क्रियावि०)—तुरन्त, शीघ्रता से।

आ

आकरः—खानि।

आकार—स्वरूप।

आकुलः—भरा हुआ, परिपूर्ण, दुखी, पीड़ित।

आक्रंदितं—फूट-फूट कर रोना।

आखण्डलः—इन्द्र।

आखुः—चूहा।

आख्यात—कथित, घोषित।

आगंतुकः—अतिथि, अनजान।

आगन्तुकता—अतिथि होना।

आगमः—वेद, प्रकट होना।

आगमिन्—सिद्धान्तों में पारंगत।

आतंक—भय।

आतप—धूप।

आतप्त—दुःखी, तपाया हुआ।

आतिथ्यं—स्वागत।

आतिथ्य-क्रिया—स्वागत-सत्कार करना।
आतुर—रोगी, दुःखी।
आत्मवत्—अपने समान।
आदरः—प्रेम, सत्कार।
आदितः—प्रारम्भ से ही।
आत्मीकृ—जीतना, प्राप्त करना।
आधातृ—सूचित करने वाला।
आधिः—क्षयकारक, रोग।
आधिपत्यं—अधिकार, शासन करना।
आन्तर—भीतरी।
आनन्दनं—आनन्ददायी।
आपणः—बाजार।
आपतित—आ पड़ा।
आपन्न—दुःखी।
आप्तः—विश्वस्त व्यक्ति।
आप्यायना—मोटा होना।
आभोगः—सीमा, प्रान्त, फण।
आमंजु—सुन्दर, आकर्षक।
आमिषं—लोभ, चारा, मांस।
आय—आमदनी।
आयत—लम्बी।
आयतनं—निवासस्थान।
आयासयितृ—कष्ट पहुँचाना।
आयुष्मत्—दीर्घायु।
आयोध्यिकः—अयोध्या निवासी।
आरम्भः—एक कार्य, व्यवसाय।
आराधनं—पूजा, उत्सव।
आर्य—विनम्र, योग्य।
आर्यपुत्रः—पति के लिए प्रयुक्त शब्द।
आर्यमिश्राः—योग्य व्यक्ति, आदरणीय।
आलर्क—पागल कुत्ते से सम्बद्ध।
आली—सखी।
आलोकः—प्रकाश, दृष्टि।
आलोचित—सोचा हुआ।
आवरणं—ढकना, आच्छादन।
आवलित—कुछ मुड़ा हुआ।
आवसथः—निवास स्थान।
आविल—गन्दा।
आविलय—गन्दा करना।
आवृत—घिरा हुआ।
आवेशः—प्रभाव, अधीनता।
आशीविषः—साँप।
आशु—शीघ्र।
आश्रमः—जीवन की एक अवस्था, चार आश्रम होते हैं, निवासस्थान।
आस्—(अनु पूर्वक—अदादि—आत्मनेपद)—सेवा करना।

आसक्त—तत्पर, स्थिर किया हुआ।

आसक्तिः—अनुराग, लगाव।

आस्तरणं—बिछौना।

आस्थानं—परिषद्।

आस्थान-मण्डपः—परिषद्-भवन, श्रोताकक्ष, सभाभवन।

आहवः—युद्ध।

आहारः—भोजन।

आहितुंडिकः—मदारी, सँपेरा।

इ

इ—(प्रति पूर्वक)--प्रेरणार्थक-विश्वास करना; (व्यप पूर्वक) अलग करना, अलग होना।

इक्ष्वाकुः—एक सूर्य-वंशी राजा, रघु के पूर्वज।

इन्द्रियं—इन्द्रिय।

इंधनं—ईंधन, आग में जलाने का सामान।

इरावती—एक स्त्री का नाम है।

ई

ईक्ष् (अनुपूर्वक) भ्वादि—आत्मने० देख भाल करना, पूछताछ करना।

ईक्षणं—नेत्र, दृष्टि।

ईप्सित—मनोवांछित।

ईशः—स्वामी, अधिपति, शंकर।

ईश्वर (विशे०)—योग्य।

ईश्वरः—स्वामी, समर्थ।

ईह्—(भ्वादि० आत्मने०)—इच्छा, अभिलाषा करना।

उ

उचित—पहले जैसा, सामान्य, परंपरागत।

उच्छ्रित (विशे०)—ऊँचा, उठा हुआ।

उत्कर्षः—ऊँचाई, विशिष्टता।

उत्कुल—कुल को बदनाम करना।

उत्क्रुष्टं—चिल्लाना।

उत्खात—उखाड़ा हुआ, विनष्ट।

उत्खातिन्—गड्ढों से भरा हुआ, ऊँची-नीची भूमि से युक्त।

उत्तंसय—बाँधना, सुसज्जित करना।

उत्तर (विशे०)—बाद का, पीछे का।

उत्तरा—अभिमन्यु की स्त्री ।
उत्तरोत्तर—सदा बढ़ने वाला, आगे-आगे, दिन प्रति दिन ।
उत्तान (विशे०)—शुद्ध, निष्कपट, खुला हुआ ।
उत्तानित (विशे०)—खुला हुआ, फैला हुआ ।
उत्पलिनी—कमलिनी ।
उत्पीडः—हार, घुँघराले बाल ।
उत्सवः—जलसा, प्रसन्नता या आनन्द का समय ।
उदंतः—समाचार, इतिहास ।
उदयः—दर्शन, प्रकट होना ।
उद्दामं—(क्रियाविशे०)—अविरुद्ध शीघ्रतापूर्वक, प्रचण्ड ।
उद्यत—तैयार, कटिबद्ध, लगा हुआ, तत्पर ।
उद्यमः—विचार, संकल्प ।
उद्धत (विशे०)—गर्वोन्नत, ऊँचा ।
उद्बाष्प (विशे०)—आँसू बहाता हुआ ।
उन्नतत्व—श्रेष्ठता, अच्छाई ।
उन्नति (स्त्री०)—गौरव, श्रेष्ठता ।
उन्मुख (विशे०)—तैयार ।
उपकण्ठः—सन्निकटता, समीपता, पड़ोस ।
उपकारः—भलाई, अच्छाई ।
उपकारिन्—उपकार करने वाला ।
उपकार्या—राजकीय शिविर ।
उपघातः—विनाश, क्षति ।
उपचारः—बाह्य प्रदर्शन, लोकाचार ।
उपदेशः—शिक्षा, सम्मति, सलाह ।
उपद्रवः—हानि क्षति ।
उपनत—आया हुआ, प्राप्त हुआ ।
उपनिपातः—घटना, हो पड़ना ।
उपपन्न (विशे०)—उपयुक्त, उचित ।
उपमा—समता ।
उपरत—मरा हुआ ।
उपरागः—ग्रहण ।
उपरोधः—विघ्न, क्षति ।
उपलक्षणं—लाक्षणिक, चिह्न ।
उपलम्भः—पता लगाना, अन्वेषण करना ।
उपवासः—उपवास करना, भूखा रहना ।
उपहत—मरा हुआ, विनष्ट ।
उपस्थित—जो समीप में आ गया है, आया हुआ ।
उपहास्यता—हँसी का पात्र ।
उपाधिः—दशा, परिस्थिति ।
उपाध्यायः—आचार्य ।

उपालंभः—उलाहना, व्यंग्य।

उपांशु—(क्रियाविशे०)—एकान्त में।

उपाश्रयः—आश्रय चाहना, शरण। में आना।

उषस्—(स्त्री०) उषाकाल।

उष्मन् (पुं०)—गर्मी, उष्णता।

उष्णिमन् (पुं०)—उष्णता।

ऊ

ऊरीकृत—हस्तगत।

ऊरुः—जंघा।

ऊर्जस्वल (विशे०)—बड़ा, पराक्रमी।

ऊर्मि (स्त्री०)—लहर, तरंग।

ऊह् (अप् पूर्वक) भ्वादि—परस्मै०—हटाना, नष्ट कर देना।

ऋ

ऋजु (विशे०)—अच्छा, सीधा, सरल, स्वच्छ।

ऋषिकल्प (विशे०)—ऋषि के समान।

ऋषिकुमारः—ऋषि का पुत्र।

ऋष्यशृङ्गः—महाराजा दशरथ के दामाद।

ए

एकपदे (क्रियाविशे०)—एकाएक।

एकाग्र (विशे०) एक चीज पर चित्त लगाये हुए।

एकांत (वि०)—अधिकता से, चिर-स्थायी, क्रमशः। (विशेषण के साथ)—बहुत अधिक।

एकैकशः (क्रियाविशे०)—एक के बाद एक।

एधित—बड़ा किया गया, पोषित।

एनस्—पाप।

ऐ

ऐक्ष्वाक—इक्ष्वाकु के वंश का।

ऐरावतः—इन्द्र का हाथी।

ओ

ओजस्विन्—प्रतापी, तेजस्वी।

औ

औदरिकः (विशे०)—भुक्खड़, पेटू। **औदासीन्यं**—उदासीनता, वैराग्य।

क

ककुद्—कूबड़; (आलंकारिक प्रयोग) मुख्य, सर्वश्रेष्ठ, डील।

कचः—बाल, केश।

कज्जलं—काजल।

कंठ् (उत्पूर्वक)--भ्वादि—आत्मने—उत्सुक होना, उत्कंठित होना।

कतिपय—कुछ, थोड़ा-सा।

कथमपि—(क्रियाविशेषण)—बड़ी कठिनाई से, किसी प्रकार।

कदली—केले का वृक्ष।

कनकं—स्वर्ण।

कन्दरम्—गुफा।

कन्दलः—समूह, पुञ्ज, ढेर।

कमलयोनिः—ब्रह्मा।

कम्प् (अनुपूर्वक)—किसी पर दया करना।

कर्ण्—(आपूर्वक चुरादि-उभयपदी) सुनना।

कर्णधारः—मल्लाह।

कलकलः—शोर।

कलहंसः—हंस।

कलभः—हाथी का बच्चा।

कला—चन्द्रमा की कला, इकाई।

कलिका—कली।

कलेवरम्—शरीर।

कल्पः—रीति, क्रम।

कल्पांत—सृष्टि का अन्त या विनाश।

कल्य—(विशे०) बड़े सबेरे, प्रातःकाल।

कल्याण (विशे०)—योग्य, सभ्य, धन्य, भाग्यवान्।

कल्याणिन् (विशे०)—धन्य, भाग्यवान्।

कष्ट (विशे०)—कठोर, दुःख।

काकपक्षः-क्षकः—घुँघराले बाल।

कांचनं—स्वर्ण।

कामः—इच्छा, कामदेव।

कामगम—स्वेच्छाचारी।

कामतः (क्रियाविशे०)—वासना से युक्त।

कामसू (विशे०)—इच्छाओं को पूर्ण करने वाली।

कामिन् (पूं०)—प्रेमी, कामी।

कार्तान्तिकः—ज्योतिषी, भाग्य बताने वाला।

काषायं—गेरुआ वस्त्र।

किन्नरः—देवताओं की एक गानेवाली जाति।

किंवदन्ती—सूचना, अफवाह।

किरीटी (न्)—अर्जुन।

कुटिल—(विशे०) टेढ़ा, धूर्त।

कुट्टिमः—फर्श।

कुटुंबिन्—(पुं०) गृहस्थ।

कुतूहलं—उत्सुकता।

कुधी—मूर्ख, मन्द-बुद्धि।

कुमुदं—कमल की एक जाति जो रात्रि में खिलता है।

कुमुदिनी—कुमुद का स्त्रीलिंग।

कुशलम्—कुशल, कल्याण।

कुशलिन् (विशे०)—कुशल-पूर्वक।

कुशाग्रबुद्धि—तीव्र बुद्धि वाला।

कुसरित् (स्त्री०)—नाला।

कृ—(पुर् पूर्वक) तनादि उभयपदी—आगे करना,।

(अपा पूर्वक) अलग करना, रोकना। (उप पूर्वक) उपकार करना। (वि पूर्वक) कर्मवाच्य-बदल जाना, प्रभावित हो जाना; (विप्र पूर्वक) तंग करना, छेड़ना, हानि पहुँचाना।

विप्रकृत—जिसके साथ अन्याय किया गया हो, जिसके साथ दुर्व्यवहार किया गया हो, सताया हुआ, हानि पहुँचाया हुआ।

कृतधी (विशे०)—बुद्धि सम्पन्न, विचारवान्।

कृत्स्न (विशे०)—सम्पूर्ण, अखिल।

कृपण (विशे०)—क्षुद्र हृदय वाला।

कृश—(विशे०)-दुबला-पतला।

कृष्—भ्वादि-परस्मै-(वि पूर्वक) झुकाना।

कृषि (स्त्री)—खेती, किसानी।

क्लृप्-(परि पूर्वक प्रेरणार्थक) लगाना, बनाना, (सम् पूर्वक प्रेरणार्थक) संकल्प करना, निश्चय करना, उद्देश्य बनाना।

कृष्णवर्त्मन्—(पुं०)—अग्नि।

केतनं—गृह, निवास-स्थान।

केशिन् (पुं०)—एक राक्षस का नाम।

केसरिन् (पुं०)—सिंह।

कोटरः-रं—खोखला, छेद।

कोटि (स्त्री०)—शिखर, अन्त, चोटी, अग्रभाग।

—**पराकोटिः**—सर्वोच्च शिखर।

कोशः-षः—कली।

कौतूहलं—उत्सुकता, उत्कण्ठा।

कौपीनं—लंगोटी।

कौबेरी—उत्तर की ओर, कुबेर की।

कौरव्यः—कुरु वंश का ।
कौलीनं—बदनामी, अपकीर्ति ।
कौर्म (विशे०)—कच्छप-सम्बन्धी ।
कौशिकः—विश्वामित्र (कुशिक के पुत्र), उल्लू ।
कौशिकी—एक स्त्री का नाम ।
क्रकचः—आरा ।
क्रम्—(आपूर्वक)—आक्रमण करना ।
क्रिया—कार्य, विधान ।
क्रीडनीयं—खिलौना ।
क्लैव्यं— निर्बलता, नपुंसकता, कायरता ।
क्षणिक—क्षण भर रहने वाला, परिवर्तनशील ।
क्षत्रं—क्षत्रिय, युद्धव्यवसायी ।
क्षपित—विनष्ट ।
क्षपा—रात्रि ।
क्षम (विशे०)—योग्य, समर्थ, उचित ।
क्षयः—क्षीण होना, नाश, कम होना।
क्षात्र (विशे०)—क्षत्रिय जाति से सम्बद्ध ।
क्षारांबुधिः—समुद्र ।
क्षितिपः, **क्षितीश्वरः**—राजा, पृथ्वी का स्वामी ।
क्षिप्—(आपूर्वक) तुदादि-परस्मै—पटकना, भड़काना, लुभाना, (निपूर्वक) समर्पित करना, लगाना ।
क्षुद्र (विशे०)—तुच्छ विचार वाला, अधम, अयोग्य ।
क्षेत्रं—खेत ।
क्षोभः—बड़े जोर का धक्का, झटका ।

ख

खम्—आकाश ।
खंडः—टुकड़ा, तोड़ना, अंश ।
खल्वाटः—गंजा ।
खिन्न—(विशे०)-थका हुआ, श्रान्त, दुःखी ।

ग

गणकः—ज्योतिषी ।
गणिका—वेश्या ।
गति (स्त्री)-आश्रय, चारा, सहारा ।
गद्गदं—(क्रिया-वि०)—गला रुँधा हुआ, प्रसन्न ।
गंधः—किसी प्रकार की महक ।

गंधद्विपः—उत्तम जाति का हाथी, जिसके गण्डस्थल से मद नीर झरता है ।

गभस्तिः—किरण ।

गम् (प्रत्युद् पूर्वक)—स्वागत के लिए जाना ।

गर्भेश्वरत्वं—गर्भ से ही धनी पैदा होना, उत्तराधिकार में सम्पत्ति प्राप्त करना ।

गांभीर्यं—गहराई, गम्भीरता ।

गाह्—(भ्वादि आत्मने०) प्रवेश-करना ।

गिरीशः—शिवजी ।

गुणः—उत्तम प्रभाव, सुपरिणाम ।

गुरु (विशे०)—प्रधान, सर्वश्रेष्ठ । (बहुवचन) पिता; (एकवचन)—बड़े लोग ।

गृहमेधिन् (पुं०)—गृहस्थ ।

गृहिणी—स्त्री, गृह-पत्नी ।

गोत्रं—कुल, वंश ।

गोमायुः—सियार ।

गौरवं—महत्व ।

ग्रहः—पकड़, अचानक आक्रमण ।

ग्राम्य (विशे०)—देहाती, उद्दण्ड, गँवार ।

घ

घट् (सम् पूर्वक, प्रेरणार्थक)—जोड़ना, मिलाना ।

घर्मांशुः—प्रचण्ड सूर्य ।

घातकः—मारने वाला, जल्लाद ।

च

चक्रवर्तिन् (पु०)—चक्रवर्ती राजा ।

चक्रवालं—क्षितिज ।

चक्ष् (प्रत्या पूर्वक) अदादि आत्मने०-त्याग देना, अस्वीकार कर देना ।

चंचत् (विशे०)—चारों ओर घूमता हुआ ।

चंचूः—चोंच ।

चंद्रकांतः—चन्द्रकान्तमणि ।

चपल (विशे०)—विवेकशून्य, चंचल, अस्थिर ।

चमूः (स्त्री)—सेना ।

चयः—समूह, पुञ्ज ।

चर्—भ्वादि-परस्मै०-(वि पूर्वक)—घूमना-फिरना, विचरण करना ।

चरः—भेदिया ।

चल—(विशे०)—चंचल, अस्थिर ।
चलचित्तता—मन की चंचलता ।
चलितं—एक प्रकार का नृत्य ।
चातकः—चातक पक्षी, पपीहा ।
चापलम्—चञ्चलता ।
चामरं—चँवरी ।
चारित्र्यं—चरित्र की शुद्धता, सदाचार ।
चारुता—सौन्दर्य ।
चि—(प्र पूर्वक)-कर्मवाच्य-बढ़ना, उत्तरोत्तर उन्नति करना (परि-पूर्वक)-पाना ।
चिकीर्षा—कार्य करने की अभिलाषा ।
चित्रं—(विशे०) आश्चर्ययुक्त, विचित्र ।
चित्रार्पित—चित्र में अंकित ।
चूडा—शिखर, चोटी ।
चूडामणि—सिर के केश का मणि ।
चूतः—आम का पेड़ ।
चेष्टा—क्रिया ।
चेष्टितं—आचरण ।
च्युतात्मन्—पतित ।

छ

छद्मन्—(सं०)—कपट, बहाना ।

ज

जड—(विशे०)-मूर्ख ।
जनता—जन-समूह ।
जंतु—जीवधारी, प्राणी ।
जन्मभूमि—(स्त्री०)—जहाँ जन्म हो वह देश, मातृभूमि ।
जयन्तः—इन्द्र का पुत्र ।
जलचरः—जल जन्तु ।
जलदः, जलमुच्—बादल ।
जलयंत्रं—पानी का यंत्र, कृत्रिम जलाशय ।
जलाशयः—जल का स्थान, तालाब ।
जातं—शावक, समूह, पशु या पक्षियों के बच्चों का समूह ।
जाति (स्त्री०)—जाति ।
जाल्मः—कपटी, धूर्त ।
जीव्—(अनुपूर्वक) भ्वादि परस्मै-जीवित रहना ।
जीवनं—जीवन, जल ।
जीवलोकः—संसार, विश्व ।

जृंभ्—(समुत् पूर्वक) भ्वादि-आत्मने—उपाय या चेष्टा करना। (वि पूर्वक)—प्रकट होना।

ज्या—धनुष की डोरी, प्रत्यंचा।

ज्ञातिः—कुटुम्ब।

ज्ञापय—(ज्ञा का प्रेरणार्थक) वि पूर्वक—आदर पूर्वक कहना, प्रार्थना करना। (आ—पूर्वक) आज्ञा देना।

ज्योतिःशास्त्रं—ज्योतिष।

ज्योतिष्मत्—(विशे०)—चमकता हुआ, प्रकाशमान।

ट

टिट्टिभी—टिटिहरी।

ढ

ढौक्—(भ्वादि-आत्मने) सन्निकट में आना।

त

तटिनी—नदी।

तनु (विशे०)—दुबला-पतला, सूक्ष्म।

तपनः—सूर्य।

तप्त—धूप से पीड़ित।

तदानींतन—समकालीन, उसी समय में रहने वाला।

तमसा—एक नदी का नाम।

तमिस्रा—अन्धकार।

तरंगः—लहर।

तरलता—चंचलता, आन्दोलन, इन्द्रियों का विकृत होना।

तातः—पिता, प्रेम-सूचक शब्द, प्रिय।

तापसः—तपस्या करने वाला।

तालः—ताड़ का पेड़।

तितिक्ष्—(भ्वादि-आत्मने०)-(तिज् धातु का सन्नन्त रूप)-क्षमा करना।

तिमिरः-रं—अन्धकार।

तीक्ष्ण (विशे०)—तेज, कठिन, बहुत कठोर।

तीर्थ—तीर्थ स्थान, पवित्र स्थान, योग्य-व्यक्ति, उचित पदार्थ।

तीर्थोदकं—तीर्थ का जल, पवित्र जल।

तुषार (विशे०)—शीतल, शीतलता।

तुषारः—वर्षा की झड़ी।

तूर्यः-र्यं—संगीत वाद्य-यन्त्र, दुन्दुभी, तुरही।
तूलः—रुई।
तूष्णीम्—(क्रिया वि०)—शान्त।
तृ—भ्वादि-परस्मै (अव् पूर्वक) किसी कार्य को समाप्त कर देना, भूमिका का अवतरण देना। (प्र पूर्वक-प्रेरणार्थक)—धोखा देना, (वि पूर्वक) देना बाँटना।
तेजस्विन्—(विशे०)—शूर वीरों की-सी कान्ति से युक्त, (सं०) योद्धा।
त्वच्—(स्त्री०)-चमड़ा, छाल।
त्रय—तीन।
त्रिपुरहरः—तीनों पुरो को नष्ट करने वाले (शिवजी)।
त्रिमूर्ति—(विशे०)—तीन स्वरूप में स्थित।

द्

दक्ष (विशे०)—पटु, कुशल।
दक्षिण (विशे०)—सभ्य, विनम्र।
दंडः—कमल का नाल-दण्ड।
दम—(प्रपूर्वक प्रेरणार्थक)—दबाना, अवरोध करना।
दमनं—नियंत्रण, दबाना।
दम्यः—न जोता हुआ जवान बैल।
दयित—(विशे०अथवा सं०)—प्रिय, स्वामी।
दरी—घाटी, गुफा।
दर्पः—गर्व।
दर्पणः—शीशा।
दर्भः—कुश।
दलं—अंश, टुकड़ा, लघु अंकुर, पत्ता।
दवाग्निः—जंगल की आग।
दशनं—दाँत।
दार—(पुं०-नित्य बहुवचन)—स्त्री, भार्या।
दारुण—(विशे०)—कष्टप्रद।
दिवसेश्वरः—दिन के स्वामी, सूर्य।
दिव्य—(विशे०)—स्वर्गीय, अलौकिक।
दीक्षित—दीक्षा प्राप्त।
दीन—(विशे०)-दयापात्र, भाग्यहीन, दुःखी।
दीप्—(दिवादि-आत्मने)—चमकना, प्रज्वलित होना।

दीपकः—दिया, प्रकाश।

दीप्तिमत्—(विशे०)—कान्तिमान्।

दुःस्मर—(विशे०)—स्मरण में दुःखदायी।

दुराराध्य—(विशे०)—जो कठिनाई से संतुष्ट किया जा सके।

दुरितं—पाप।

दुर्ग—(विशे०)-जहाँ तक पहुँच कठिन हो (सं०), कठिनाई।

दुर्जनत्वम्—दुष्टता।

दुर्जय (विशे०)—जिसका जीतना कठिन हो।

दुर्धर्ष—(विशे०) भयानक, जो कठिनाई से दबाया जा सके।

दुर्निवार—(विशे०)—जिसको मना करना कठिन हो।

दुर्भिक्ष—अकाल, अन्नाभाव।

दुर्लंघ्य—(विशे०)-जिसका लाँघना कठिन हो।

दुर्ललित—(विशे०) प्यार से बिगड़ा हुआ, दुलारा।

दुश्चर—(विशे०)-कठिन, कर्कश, जिसका आचरण करना कष्टप्रद हो।

दुष्कर—(विशे०)—जिसका करना कष्टप्रद हो।

दुष्कृत्–(पुं०)-दुष्ट व्यक्ति, दुराचारी।

दुष्कृतं—दुष्कर्म।

दुष्टाशय, दुरात्मन् } (विशे०)-बुरे विचारवाला।

दूरीकृ—(तनादि उभयपदी)-अतिक्रमण करना।

दूषणं—दोष, अवगुण, त्रुटि।

देवरातः—(व्यक्ति का नाम)-माधव का पिता।

देवी—रानी।

देहभृत्, देहिन् } (पुं०) शरीरधारी।

दैवदुर्विपाकः–दुर्भाग्य, दुर्भाग्य चक्र।

द्युति—(स्त्री०)-कान्ति, शोभा, छवि।

द्रढय—दृढ़ करना।

द्रव्यं—सांसारिक पदार्थ।

द्रु—(भ्वादि-परस्मै)-द्रवीभूत होना, भाग जाना।

द्रुमः—वृक्ष।

द्विगुणितः—(विशे०)—दुगुना।

द्विजः—पक्षी, ब्राह्मण।

द्विजातिः—ब्राह्मण।

द्विपः—हाथी।

द्विरद—हाथी।

द्विरेफः—भौंरा।

द्वीपः—संसार का विभाजन (महाद्वीप)।

ध

धनंजयः—अर्जुन का एक नाम ।

धनेशः—धन के अधिपति, कुबेर ।

धन्य (विशे०)—भाग्यवान्, प्रसन्न ।

धन्विन् (पु०)—धनुर्धारी ।

धर्मः—कर्त्तव्य, धार्मिक कृत्य, आचरण का औचित्य ।

धर्मक्रिया—धार्मिक कर्म ।

धर्मपत्नी, धर्मदाराः—धर्म-पूर्वक विवाहिता स्त्री ।

धर्मारण्य—तपोवन ।

धर्मासनं—न्यायासन ।

धा—जुहोत्यादि-उभयपदी (अतिसम् पूर्वक)—धोखा देना । (अन्तर् पूर्वक) अपने को किसी से छिपाना । (अभिपूर्वक) कहना, व्यक्त करना । (सम् पूर्वक) सन्धि करना, व्यवहार करना, ठीक करना, जैसे बाण ठीक करना ।

धातृ—(पुं०)—विधाता ।

धामन्—(नपुं०)—कान्ति, आभा ।

धारणा—मन की दृढ़ एकाग्रता, स्मरण शक्ति ।

धारावाहिन्—सतत, लगातार ।

धारिणी—एक रानी का नाम ।

धीर—स्थिर चित्त वाला, धैर्यशाली, अध्यवसायी ।

धीरता—धैर्य, मन की दृढ़ता ।

धुर्यः—नेता, अग्रणी ।

धुक्ष्—(सम् पूर्वक) भ्वादि-आत्मने—प्रज्वलित करना ।

धू—(उत् पूर्वक) क्र्यादि-उभयपदी—हिलना, निष्कम्प होना ।

धूर्तः—दुष्ट ।

धृ—भ्वादि तथा चुरादि-परस्मै—धारण करना, संभालना, (उत् पूर्वक अथवा समुत् पूर्वक) बचाना, रक्षा करना, उखाड़ फेंकना, उठाना, निकाल लेना ।

ध्याम—(विशे०)—गन्दा, अस्वच्छ ।

ध्वनत्—गर्जता हुआ, कड़कता हुआ ।

न

नकुलः—नेवला ।

नक्षत्रं—तारा ।

नगः—पहाड़, शैल ।

नंद्—(भ्वादि-परस्मै)—प्रसन्न होना, आनंद मनाना, (अभिपूर्वक)—स्वागत करना, अभिनन्दन करना ।

नंदनं—इन्द्र का वन (उद्यान)।

नलिनिका—एक दासी का नाम।

नलिनी—कमलिनी।

नवीकृ—(तनादि-उभयपदी)—नया कर देना, फिर से जीवित करना।

नह् (सम् पूर्वक)—दिवादि-आत्मने—कटिबद्ध हो जाना।

नाट्य—नृत्य, नाटक।

नामग्रहणं—नाम से पुकारना।

निःश्रेयसं—परमानन्द।

निःसत्यता—असत्य।

निःस्नेह—स्नेह रहित, दया रहित।

निकाम-(विशे०) प्रचुर, बहुत अधिक।

निकषः (ग्रावन्)—कसौटी, परीक्षा, पाउडर मिलाना।

निखिल (विशे०)—सम्पूर्ण।

निगाद्य—चर्चा किए जाने योग्य, कथनीय।

निग्रहः—दण्ड।

निचुलः—समुद्र-फल।

निज—अपना, स्व।

नितरां—(क्रियाविशे०)—अत्यधिक।

नितांत—अत्यन्त।

निदाघः—ग्रीष्म ऋतु।

निदान—मूल कारण।

निधनं—अन्तकाल।

निबंधनं—संयोजकसाधन।

निमित्तं—शुभशकुन, कारण, शकुन।

निमिषः—पलकों का गिरना।

नियमः—धार्मिक कर्म।

नियमेन—(क्रियाविशे०) नियमतः।

नियोगः—आज्ञा, कर्त्तव्य।

निरतिशय—सर्वोपरि।

निरत—संलग्न।

निरपेक्ष } (विशे०) तटस्थ,
निरभिलाष } इच्छा रहित।

निरस्त—निष्कासित, रहित।

निराकरणं—परित्याग कर देना।

निर्गमः—निकास, निकलने का दरवाजा।

निर्गुण—(विशे०)—गुण रहित, किसी काम का नहीं।

निर्झरः—झरना, स्रोत।

निर्बंधः—आग्रह।

निर्वाणं—पूर्ण सन्तोष, मोक्ष, बुझ जाना।

निर्वातः—जहाँ हवा न हो, वायु शून्य।

निर्वादः—अपयश, अशुभ सूचना।

निर्वापण—शान्तिहीनता, अभाव।

निर्वृत्ति—(स्त्री०)—सन्तोष, सुख।

निर्वृत्त—सम्पन्न, पूर्ण।

निशाचरः—राक्षस ।

निषेवित—निवसित, जहाँ निवास किया गया ।

निष्कंप (विशे०)—अचल, कंपविहीन ।

निष्पीडित (विशे०)—निचोड़ा हुआ, दबाया हुआ ।

निष्प्रतीकार—(विशे०)—जिसका कोई प्रतिकार न हो ।

निसर्गः—प्रकृति ।

निसृष्ट—प्रदत्त, दिया हुआ ।

निस्वनः—ध्वनि, सफल ।

निस्त्रिंश—निष्ठुर, तीक्ष्ण ।

निष्पन्द—निश्चल ।

नी—भ्वादि-परस्मै-(अनु पूर्वक) स्नेह करना; (उप् पूर्वक) यज्ञोपवीत संस्कार करना; (समा पूर्वक) एकत्र करना, संचय करना ।

नीरन्ध्र—घना, मोटा ।

नील—नीला ।

नुद्—(वि पूर्वक-प्रेरणार्थक) आमोद-प्रमोद, मनोरंजन करना ।

नूपुरं—घुँघरू ।

नैमित्तिकं—सिद्धि, परिणाम ।

नैषधः—निषधदेश के राजा नल ।

नैष्ठुर्यं—निष्ठुरता, उग्रस्वभाव ।

नैसर्गिक—प्राकृतिक, जन्मतः ।

प

पक्कणं—चाण्डाल की कुटिया ।

पक्षः—पक्ष, एक ओर ।

पंकच्छिद्—गन्दगी को दूर करने वाला ।

पंचालः—पंचाल देश का राजा ।

पंजरः—पिंजड़ा ।

पटु—चतुर, कुशल ।

पठ्—(परि पूर्वक प्रेरणार्थक)-सिखाना ।

पत्—(भ्वादि-परस्मै०-परि पूर्वक)-मँडराना, चारों ओर घूमना । (प्रणिपूर्वक) नमस्कार करना ।

पतंगः—पतिंगा, सूर्य ।

पतिंवरा—पति को चुनने वाली ।

पत्रपुटं—दोना ।

पत्रलेखा—किसी स्त्री का नाम ।

पत्रोर्णं—रेशमी वस्त्र ।

पथ्यं—शुभ, लाभकर भोजन ।

पद्—(व्या पूर्वक-प्रेरणार्थक) मार डालना । (प्रति पूर्वक) स्वीकार

करना, दिखाना, पराजय मानना, पाना । (उपपूर्वक-प्रेरणार्थक) होना, करना ।

पन्नगः—सर्प ।

पयस्विनी—दूध देने वाली गाय ।

पयोदः—बादल, जलद ।

परभृतः—दूसरे द्वारा पालित, कोयल ।

परमप्रख्य—लब्धप्रतिष्ठ ।

परमार्थः—सत्य रूप ।

परमार्थतः—ठीक रूप में, वास्तव में ।

परंतप—शत्रुओं को परितप्त करने वाला ।

परंपरा—पद्धति ।

पराक्रमः—बल, शौर्य ।

परागत—लौटा हुआ ।

परावृत्त (विशे०)—पीछे की ओर लौटा हुआ ।

परिगृहीत—जिसके ऊपर कृपा की जाय, जिसका पक्ष लिया जाय ।

परिग्रहः—विवाह, दान लेना ।

परितर्पण—सन्तुष्ट करना ।

परिदेवना—विलाप करना ।

परिपंथिन्—विघ्न डालने वाला, बाधक ।

परिभवः—अनादर ।

परिभाविन्—अनादर करने वाला, घमंड तोड़ने वाला ।

परिवारः } भृत्यगण
परिजनः } परिचारकगण

परि (री) वाहः—पानी का निकास, नाली, पानी के बहने का मार्ग ।

परिव्राजिका—संन्यासिनी ।

परिषद्—गोष्ठी ।

परीक्षित्—अभिमन्यु के पुत्र का नाम ।

परीत—पराजित ।

परोक्षे—आँख से ओझल ।

पर्यटनं—भ्रमण करना ।

पर्याप्त—उपयुक्त, समर्थ ।

पर्यायाः—क्रम से ।

पल्लवः—पत्ता, कोंपल ।

पल्लविका—एक दासी का नाम ।

पल्लवित—पत्तों से युक्त ।

पवनः—वायु ।

पांसुल—कलंक लगाने वाला ।

कुलपांसुल—कुल-कलंक ।

पांडु—पीला-सफेदी लिए हुए ।

पाणिग्रहः—विवाह ।

पातालः-लं—पाताल ।

पात्रं—पात्र, योग्य ।

पानीयं—पानी, जल ।

पापभाज्—पापी ।

पारक्य—विरुद्ध, शत्रु ।

पारग्रामिक—शत्रु, पक्षीय, विरोधी ।

पारसीका—फ़ारस देश के रहने वाले ।

पार्श्वः—निकट, बगल ।

पावकः—अग्नि ।

पावन—पवित्र

पिंगल—पीला, अरुणाभपीत ।

पिटः—टोकरी ।

पिठरं—बर्तन, तसला ।

पिपासु—प्यासा ।

पिशुन—चुगली करने वाला ।

पिशुनता—छल, चुगली करना ।

पीठं—आसन, पीढ़ा ।

पीडित—दुखी ।

पीवर—मोटा ।

पुङ्गवः—बैल, समस्तपदों के अन्त में आने पर इसका अर्थ होता है "सर्वोपरि" ।

पुण्य—पवित्र, शुद्ध ।

पुण्यभाज्—पुण्यात्मा, गुण सम्पन्न ।

पुरन्दरः—इन्द्र ।

पुरस्कृत—आगे-आगे चलने वाला ।

पुराण—प्राचीन ।

पुष्—(दिवादि-परस्मै)—प्रदर्शन करना ।

पुष्पित—फूल लगा हुआ ।

पुष्पेषुः—कामदेव ।

पूरोत्पीडः—जल की अधिकता, बाढ़ ।

पूर्ववत्—पहिले की भाँति ।

पृथग्जनः—तुच्छ व्यक्ति, अन्यजन, अशिक्षित ।

पृष्ठ—सतह, पीछा ।

पेशल—कुशल, निपुण ।

पोतः—जहाज, बच्चा ।

वीरपोतः—युवक, योद्धा ।

पौरव—पुरु वंश का ।

पौरुषं—पराक्रम, शक्ति, बल ।

पौरुहूत—इन्द्र से सम्बद्ध ।

प्रकीर्ति—नाम की ख्याति ।

प्रकीर्तित—कथित ।

प्रकृति—मन्त्रि-परिषद् ।

प्रकोपः—क्रोध, उत्साह ।

प्रकोष्ठः—आँगन ।

प्रकांतं—वीरतापूर्ण कार्य ।

प्रक्षीण—विनष्ट ।

प्रगल्भ—ढीठ, साहसी ।

प्रजागरः—रात्रि जागरण ।

प्रजापतिः—विधाता, ब्रह्मा ।

प्रणयः—प्रेम-प्रार्थना ।

प्रणयिता—प्रेम ।

प्रणयिनी—प्रियसखी, प्रेमिका ।

प्रणिधिः—भेद लेने वाला ।

प्रतनु—बहुत छोटा, सूक्ष्म ।

प्रतापः—शक्ति, पराक्रम, उष्णता, तेज ।

प्रतिनिविष्ट—हठी, दुःसाध्य ।

प्रतिपादित—दिया हुआ, किया हुआ ।

प्रतिबंधवत्—कठिनाइयों अथवा विघ्नों से युक्त ।

प्रतिबुद्ध—सजग, सचेत ।

प्रतिबोधवत्—बुद्धिमान् ।

प्रतिम—समान ।

प्रतिवाच—प्रत्युत्तर ।

प्रतिष्ठा—स्थायित्य, स्थिति की निश्चितता ।

प्रतिसक्त—लगा हुआ, चिपका हुआ ।

प्रतीकार / **प्रतिक्रिया** } उपाय, उपचार ।

प्रतीत—विश्वस्त, ज्ञात ।

प्रतीप—विरुद्ध, उल्टा ।

प्रत्यग्र—नया, नया बना हुआ ।

प्रत्यर्थिन्—विरुद्ध, रुकावट डालने वाला ।

प्रत्यादेशः—आक्रान्त कर लेने वाला प्रतिद्वंद्वी, आच्छादित कर लेने वाला ।

प्रथित—अपार, प्रसिद्ध ।

प्रत्यक्—पश्चिम की ओर ।

प्रत्युत्पन्नमति—तुरन्तबुद्धि ।

प्रदान—दान देना ।

प्रदोषः—सायंकाल ।

प्रद्रुत—भागा हुआ ।

प्रबन्धः—निबन्ध, कार्य ।

प्रभवः—उत्पत्ति स्थान, कारण ।

प्रभावः—शक्ति, बल ।

प्रभुत्वं—प्रभुता, अधिकार ।

प्रमदवनं—आमोद-प्रमोद का उद्यान ।

प्रमाणं—नाप, तुलादण्ड, अधिकार युक्त ।

प्रमाणीकृ (तनादि उभय०)—अधिकारी के रूप में मानना, प्रमाण मानना ।

प्रमाथिन्—कष्टकारक ।

प्रयत—पवित्र, तपस्या से शुद्ध ।

प्रयाण—आगे चलना, प्रस्थान ।

प्रयुक्त—लगाया हुआ, काम में लाया हुआ ।

प्रयोगः—प्रयोग, व्यवहार ।

प्रलापः—बकना ।

प्रवणीकृ—नम्र, उन्मुख ।

प्रवयस्—अधिक अवस्था वाला ।

प्रवातं—हवा का झोंका, झंझावात, आँधी-तूफान का समय ।

प्रवातशयनम्—जो बिछौना आँधी तूफान में लगाया गया हो।
प्रवृत्ति—प्रारम्भ, रुचि।
प्रव्रज्या—संन्यास।
प्रशमित—शान्त किया हुआ।
प्रश्चोतनं—छिड़काव।
प्रसंगतः—प्रसंग से।
प्रसह्य—हठात्।
प्रस्तावः—चर्चा, संकेत।
प्रस्तुतं—उपस्थित विषय।
प्रसूति (स्त्री०)—सन्तान।
प्रसूनं—पुष्प।
प्रस्थः—एक तौल-विशेष।
प्रहरण—अस्त्र-प्रहार।
प्रहसनं—हँसी-दिल्लगी।
प्राक्—पूर्व की ओर।
प्राकार—चहारदीवारी।
प्राग्रसर—सर्वप्रथम।
प्राङ्मुख—पूर्वाभिमुख।
प्राणायामः—पूरक, कुम्भक, रेचक आदि श्वास-क्रिया।
प्रातराशः—कलेवा, सबेरे का भोजन।
प्रांतः—अन्त, किनारा।
प्राप्तप्रसवा—जिसको बच्चा हो चुका है।
प्रार्थना—इच्छा, प्रेम की भिक्षा।
प्रावृष्—वर्षा-ऋतु।
प्राश्निकः—निर्णय करने वाला, मध्यस्थ।
प्रिय—प्यारा।
प्रेषित—भेजा हुआ, समाप्त किया हुआ।
प्रोद्दीप्त—प्रज्वलित, जलता हुआ।
प्लवंगः—मर्कट, वानर।

फ

फणः-णा—सर्प का फन।
फलं—फल, परिणाम।
फलेग्रहि—सफल, ऋतुकाल में फल धारण करने वाला।

ब

बकः—बगुला।
बटुः—ब्रह्मचारी बालक।
बंदी—जेल में बन्द रहने वाला।
बंधुलः—जारज, विजन्मा, जार-पुत्र।
बलं—सैन्यदल।
बलिः—पूजा।

बलीवर्दः—बैल ।
बांधवः—भाई-बिरादरी, कुटुम्बी, वस्जन ।
बालिशः—मूर्ख ।
बिंब—परछाईं ।
बीभत्समान—भयभीत, दुखी होता हुआ ।
बुद्धिजीविन्—बुद्धि से जीविका चलाने वाला ।
ब्रह्मर्षिः—ब्राह्मण ऋषि ।

भ

भग्नोद्यम—विफल-प्रयत्न ।
भज्—(भ्वादि उभयपदी) मन बहलाव करना, अभ्यास करना ।
भक्तिमत्—भक्त, सेवा में तत्पर ।
भद्रः—सम्बोधन का प्रकार, महोदय जी, श्रीमान् जी ।
भद्रा—सौम्य स्त्री, शुभ कारक ।
भरणं—पालन करना ।
भरतर्षभ—भरतकुल में श्रेष्ठ ।
भर्तृदारिका—राजकुमारी ।
भवः—उत्पत्ति, शिव जी ।
भवनं—गृह ।
भवितव्यता—होनहार, भाग्य ।
भागधेयं—भाग्य ।
भाग्यं—वैभव, अच्छे दिन ।
भाजनं—पात्र ।
भाष्—(अपपूर्वक-भ्वादि-आत्मने०) निन्दा करना, गाली देना ।
भाव—भावना, प्रेम प्रकट होना, विद्वान् व्यक्ति, आदरणीय, महानुभाव ।
भासुर—देदीप्यमान, चमकीला ।
भास्वत् (विशे०,)—चमकता हुआ, (सं०) सूर्य ।
भिक्षाशित्व—भिखारी ।
भीम—भयंकर, भयानक ।
भुजगः—सर्प ।
भुवनं—जगत ।
भू—(विपूर्वक-प्रेरणार्थक) सोचना, सिद्ध करना, निश्चय करना, अवलोकन करना, जानकार होना, जानना (सम्पूर्वक) उत्पन्न होना ।
भूतं—जीव ।
भूतधारिणी—पृथ्वी ।
भूमिका—नाटक का पात्र, भाग ।
भूमिदेवः—ब्राह्मण ।

भूयः—पुनः ।

भूयिष्ठं—बहुत, अधिक ।

भूरिवसुः—व्यक्ति का नाम, मालती का पिता ।

भैक्ष्यं—भीख माँगना ।

भोगः—भोग-विलास ।

भ्रंशः—क्षय ।

भ्रांतिमत्—भ्रमित, चक्कर काटता हुआ ।

म

मंगलं—शुभ, शुभ कार्य; (समस्तपदों में) शुभ; जैसे—**मंगलतूर्यः**—शुभ वाद्य; **मंगलस्नानम्**—शुभ-स्नान ।

मंजु—मधुर, सुन्दर ।

मंजुलः—एक लता ।

मंडन—भूषण, सजावट ।

मद्—(उद् पूर्वक-प्रेरणार्थक) उन्मत्त कर देना, मदान्ध कर देना ।

मदः—नशा, उत्कट अभिलाषा, टपकता हुआ रस ।

मदमुच्—मद नीर टपकाने वाला ।

मधु—मदिरा ।

मधुर—प्रिय, मीठा ।

मधुमासः—वसन्त ऋतु ।

मधुसूदनः—मधुनामक दैत्य को मारने वाले, विष्णु ।

मध्यस्थ—निर्णय करने वाला ।

मनस्विन्—मेधावी, स्वाभिमानी ।

मनस्विनी—बुद्धिमती स्त्री, स्वाभिमानिनी ।

मनीषिन्—मेधावी पुरुष, साधु ।

मनोभूः, **मनसिजः**—कामदेव, अनङ्ग ।

मंत्र्—(आ पूर्वक-चुरादि-आत्मने०) विदा होना, छुटकारा पाना ।

मंत्रकृत्—मंत्र-निर्माता ।

मंत्रवत्—मंत्रों के सहित, मंत्र वाला ।

मंथर—मन्दगति ।

मंद—जड़, मूर्ख ।

मंदभाग्य—दुर्भाग्यपूर्ण, अभागा ।

मंदायमान—विलम्ब करने वाला ।

मंदीकृत—विलम्बित ।

मंदौत्सुक्य—दुःखी, निकाला हुआ, उत्सुकतारहित ।

मन्मथः—कामदेव ।

मन्यु—रोष, कष्ट, क्रोध ।

मरिचः—मिर्च का पौधा ।

मरीचिः—किरण ।

मर्त्यः—मृत्यु लोक का, मरणधर्मा।
मलयजं—चन्दन का लेप।
महाजनः—भीड़, समुदाय।
महाभागः—भाग्यशाली व्यक्ति।
महातेजस्—अत्यन्त प्रतापी।
महार्ह—महँगा, बहुमूल्य।
महीपालः—पृथ्वीपति।
महेंद्र—देवराज इन्द्र।
महेश्वरः—बड़ा ईश्वर, शंकर।
महोक्षः—बैल।
महौषधि—प्रसिद्ध दवा।
मागधी—सुदक्षिणा, मगधदेश की।
मातः—प्यार सूचक शब्द।
मानः—गर्व।
मानिनी—मानवती स्त्री।
मानुष्यकं—मानव-प्रकृति।
मारुतः—वायु।
मालाकार—माला बनाने वाला।
माल्यम्—माला।
मिश्र—सम्मान-सूचक पद जिसका भाव है "सम्माननीय, आदरणीय"।
मुक्ताफलं—मोती।
मुग्ध—निष्कपट, निर्दोष, अबोध।
मुद्—(अनुपूर्वक-भ्वादि आत्मने०) अनुमोदन करना, मानना।
मुद्रा—सील करने की मुहर।
मुरारिः—विष्णु।
मूर्छ्—(भ्वादि परस्मै०) प्रभाव डालना, शक्ति प्रदर्शन करना, शक्ति अर्जित करना, स्थूल होना, घना पड़ना।
मुसलं—मूसल।
मुहुः (क्रियावि०)—बार-बार।
मूर्तिमत् (विशे०)—मूर्तिमान्।
मूर्धजः—बाल।
मृगतृष्णिका—मृगतृष्णा, मिथ्या आशा।
मृणालं—कमल की नाल, दण्डी।
मृणालिनी—कमलिनी।
मृद्—मिट्टी।
मृदु—कोमल प्रकृति, निर्बल।
मृष्—(चुरादि-परस्मै०) भोगना।
मृषा (क्रियावि०)—व्यर्थ में, मिथ्या।
मृषोद्यं—असत्य।
मेखला—करधनी।
मेघनादः—व्यक्ति का नाम, रावण का पुत्र।
मेधा—धारणा-शक्ति।
मेध्य—पवित्र, शुद्ध।
मैथिलेयः—मैथिली सीता के पुत्र, कुश-लव।

मोक्षः—मुक्ति ।

मौल—प्राचीन सेवक, कई पीढ़ी से चला आता हुआ सेवक ।

म्लेच्छः—बहिष्कृत जाति का व्यक्ति, बर्बर ।

य

यजनं—यज्ञ ।

यत्किंचनकारिता—अशोभनीय कार्य करना ।

यथार्थ (विशे०)—उपयुक्त, ठीक-ठीक ।

यथावत्—(क्रिया-वि०) समुचित, नियमानुसार, उचित ढंग से ।

यदृच्छया—(क्रिया-वि०) अपनी इच्छा के अनुसार, अकस्मात् ।

यम् (निपूर्वक—भ्वादि-परस्मै)—अलग करना, (प्रेरणार्थक) नियन्त्रण करना ।

यम—जुड़वाँ ।

यष्टि (स्त्री०)—माला, गले का हार छड़ी ।

यस् (आ पूर्वक-प्रेरणार्थक)—कष्ट देना, पीड़ित करना ।

या (प्रपूर्वक) अदादि-परस्मै—प्रस्थान करना, चल पड़ना ।

याच्ञा—भीख माँगना ।

यातुधानः—राक्षस ।

यादृच्छिक—(विशे०) आकस्मिक ।

यावदर्थं—(क्रियाविशे०) प्रत्येक परिस्थिति में ।

युज्—(रुधादि-उभयपदी) विचार करना, भाग्य में बदा होना । (निपूर्वक प्रेरणार्थक) काम में लगाना, जोतना, नियुक्त करना (प्रपूर्वक आत्मने०) काम करना, मंच पर दिखाना ।

युध्—लड़ाई ।

युवराजः—युवराज ।

योगः—योगशास्त्र ।

योजनं—चार कोस की दूरी ।

योनिः—उत्पत्ति-स्थान, मूल कारण ।

र

रंहस्—(नपुं०) वेग, गति ।

रजनिचर—राक्षस ।

रणरणकं—चिन्ता, आकुलता ।

रंज्—(अप् पूर्वक-कर्मवाच्य) असंतोष ।

रणधुरा—युद्ध का अग्र भाग ।

रणशिक्षा—युद्ध-कौशल, रणविद्या

रत्नाकरः—सागर ।

रंध्रं—विवर, गड्ढा, छिद्र ।

रभ् (परि पूर्वक)—भ्वादि आत्मने —भेंटना, आलिंगन करना ।

रयः—धारा, वेग ।

रश्मिः—लगाम, किरण

रस्—(भ्वादि-परस्मै०)—गर्जन करना ।

रसः—रस, नवरस ।

रसवत्तर—अधिक स्वाद युक्त ।

रसातलं—पाताल ।

रसालः—आम का पेड़ ।

रसिक (विशे०) सुन्दर, आकर्षक, रसज्ञ ।

रहस्यं—भेद, मर्म वाणी ।

रहस्यभेद—गोपनीय वस्तु का खुल जाना ।

राक्षसः—नन्द-वंश का मंत्री "राक्षस" ।

रागः—लालसा, उत्कट अभिलाषा ।

राजन्वत्—(विशे०)—न्यायप्रिय अथवा सज्जन शासक द्वारा शासित ।

राजर्षि—क्षत्रिय ऋषि ।

राजतंत्र—शासन-विद्या, शासन-सिद्धान्त ।

रात्रिचरी—राक्षसी ।

राध्—(आ पूर्वक-प्रेरणार्थक) आराधना करना, किसी के अनुकूल आचरण करना ।

रामगिरिः—चित्रकूट पर्वत ।

रुजा-ज्—(स्त्री०) रोग, मनोव्यथा ।

रुधिरं—खून ।

रोगिन्—(विशे०)—रोगी, अस्वस्थ ।

रोषण—(विशे०) क्रोधी ।

रोषणता—क्रोधी प्रकृति ।

रौरव—(विशे०)—रुरु नामक हिरण के चमड़े से बना हुआ ।

ल

लक्ष्मन्—(नपुं०)—चिह्न, दाग ।

लक्ष्मीः—सुषमा, कान्ति ।

लघय्—न्यून करना, घटाना ।

लप्—(प्रपूर्वक-भ्वादि परस्मैपदी) व्यर्थ बकवास करना ।

लभ्—(उपा पूर्वक) भ्वादि-आत्मने-उलाहना देना, व्यंग्य कसना ।

ललामन् (नपुं०)—एक गहना ।

ललामम्—एक आभूषण ।
लवंगिका—मालती की सौतेली बहिन ।
लवणाम्भस्—(पुं०)-सागर ।
लाघवं— निराशा, हीनता, लघुता ।
लांछनं—चिह्न, श्री कण्ठपद लांछन-"श्रीकंठ" पद से प्रसिद्ध ।
लिख्—(वि पूर्वक) तुदादि-परस्मै—लगा देना, खोंस देना ।
लिखित—लेख, प्रमाण पत्र ।
लुभ्—(प्रपूर्वक-प्रेरणार्थक) लुभाना, उसकाना (वि० पूर्वक) लुभाना । उभाड़ना या प्रलोभित करना ।
लोध्र-लोध्रम्—इसी नाम का पेड़, अथवा लोध्र वृक्ष का फूल ।
लोल—(विशे०) उत्सुक, इच्छुक ।

व

वंश्यः—वंश का ।
वध्यस्थानं—वध का स्थान
वत्सः—बछवा ।
वत्सतरी—बछिया ।
वनज्योत्स्ना—माधवी नाम की लता ।
वनदेवता—वन की देवी ।
वनस्पतिः—पेड़ ।
वन्य—जंगली ।
वप्—(निर् पूर्वक-भ्वादि-परस्मै)-देना, भेंट देना ।
वप्तृ—(पुं०) बोने वाला ।
वम्—(उत् पूर्वक-भ्वादि-परस्मै)-उल्टी करना, निकालना ।
वयस्—कौआ, चिड़िया ।
वर—(विशे०)-श्रेष्ठ, पहिला ।
वरः—दुलहा ।
वराक—(विशे०) बेचारा, हीन दशा का ।
वरीयस्—(विशे०) किसी की अपेक्षा श्रेष्ठ ।
वर्णः—जाति ।
वर्ग्यः—किसी समुदाय का ।
वर्ग्याः—अभिनेताओं का समूह ।
वर्णिन्—ब्रह्मचारी ।
वल्कलं—पेड़ की छाल का वस्त्र ।
वल्गितं—ऊँची कुदान ।
वल्मीकः कं—बिबौंटा, बेमौर ।
वल्लभ—प्रिय, अभीष्ट; **वल्लभा**-स्त्री ।
वशः—वश्यता ।
वशिन्—(विशे०) इन्द्रियों को जीतने वाला, साधु ।
वश्या—आज्ञा पालन करने वाली स्त्री।

वस्—(अध्यापूर्वक-भ्वादि-परस्मै०)। निवास करना, घुसना।
वसति(स्त्री०)—निवास-स्थान।
वसंतोत्सवः—वसन्त का महोत्सव।
वह्—(प्रेरणार्थक) जाना, घूमना, (निर् पूर्वक प्रेरणार्थक) प्रबन्ध करना।
वाच्यं—दोष।
वाजिन्—अश्व।
वादः—सूचना, बातचीत।
वाम—विरुद्ध चरित्र वाला।
वायसः—कौआ।
वारणः—गज।
वारयोषित्—वेश्या।
वाराणसी—काशी।
वारिधरः—बादल।
वारियंत्रं—पानी को ऊपर उछाल कर घूमता हुआ चक्र।
वार्त—हित, क्षेम।
वार्धकं—बुढ़ाई।
वासगृहं—घर का भीतरी भाग, सोने का कमरा।
विकसित—विस्तृत, खिला हुआ।
विकारः—व्याधि, बीमारी।
विकारहेतुः—लालच, फुसलाना।
विक्रमः—शौर्य, वीरता।
विक्लव—भयभीत, पीड़ित, चकित।
विगुण—गुण रहित।
विग्रहः—रूप, शरीर, वैरभाव।
विघातः—बाधा, रोक।
विचक्षण—विद्वान्, निपुण, चालाक।
विजया—(और जया)—एक प्रकार का मन्त्र जिससे भूख-प्यास नहीं लगती और अद्भुत शक्ति प्राप्त होती है।
विजिह्म—टेढ़ा, कुटिल।
विज्ञापना—प्रार्थना, सूचना।
विटपः—शाखा, पेड़।
विडम्ब्—(चुरादि-परस्मै) अनुकरण करना।
वितथ—असत्य।
वितीर्ण—प्रदत्त।
विदग्धता—रसिकता।
विदेशः—विदेश, दूसरा देश।
विद्युत्वत्—बादल।
विद्विष्—विरोधी।
विधातृ—विधाता।
विधृत—सुरक्षित।
विधेयः—सेवक।
विधेयज्ञ—अपने कर्त्तव्य को जानने वाला, आज्ञा पालक।
विनशनः—दिल्ली के उत्तर-पश्चिम

का एक देश ।

विनिमयः—आदान-प्रदान ।

विपक्षः—विरोधी ।

विपश्चित्—बुद्धिमान्, विद्वान् व्यक्ति ।

विपिनं—वन ।

विप्रलब्ध—धोखा में पड़ा हुआ, ठगा हुआ ।

विप्लवः—उपद्रव ।

विभवः—सम्पत्ति, ऐश्वर्य, ।

विभावरी—रात ।

विभुः—समर्थ, अधिपति ।

विभ्रमः—व्याकुलता, हानि ।

विमनस्—दुखी, खिन्न, अन्य-मनस्क ।

विमानित—तिरस्कृत ।

विमार्गः—कुपथ, अनुचित मार्ग ।

वियुक्त—वियोग में पड़ा हुआ ।

विरत—अन्त, बन्द, अलग ।

विरागः—असन्तोष, उदासीनता ।

विरामः—रुकावट, समाप्ति, रुक जाना ।

विरोध—शत्रुता ।

शाश्वत-विरोध—स्वाभाविक शत्रुता ।

विलासः—मनोरंजन, विलासितामय ।

विवृत—फैला हुआ ।

विवेक—विचार, सत्यासत्य निर्णय की शक्ति ।

विश्—(अभिनि पूर्वक) तुदादि आत्मने—प्रवेश करना । (सम् पूर्वक)—सोना ।

विशुद्धि—स्वच्छता, पवित्रता ।

विशेषः—अन्तर, भिन्न ।

विश्रब्धं—(क्रियावि०) विश्वास-पूर्वक ।

विश्रंभः—विश्वास ।

विश्रम्भस्थानम्—विश्वास योग्य ।

विश्रामः—आराम ।

विश्वंभरा—पृथ्वी ।

विश्वसनीयता—विश्वास उत्पन्न करने की शक्ति ।

विषण्ण—दुखी ।

विषम—उलटा, कठिन ।

विषयः—क्षेत्र, देश का एक भाग, इन्द्रियों के विषय, इन्द्रिय-सुख ।

विषाण-णं—सींग ।

विषादः—शोक, डर, पीड़ा ।

विष्टरः—बिछौना ।

विसरः—समूह ।

विसृष्ट—त्यक्त, अलग कर दिया गया ।

विस्तीर्ण—विस्तृत ।

विस्फारित—विस्तृत ।

विहित—डिगरी, आज्ञा ।

विह्वल—व्याकुल, शोक संतप्त।
विह्वलता—व्याकुलता।
वीरसू—वीर पुत्र उत्पन्न करने वाली।
वृ—(चुरादि—परस्मै)—वरण करना, चुनना।
वृकोदरः—भीम।
वृज्—(चुरादि-परस्मै) अलग करना, (आपूर्वक), झुकाना, (वि पूर्वक)-खाली होना।
वृत—(निर् पूर्वक प्रेरणार्थक) समाप्त करना। (परि पूर्वक) चक्कर काटना, (प्र पूर्वक) पैदा होना उठना, शुरू होना; (व्यपपूर्वक) पीछे लौटना।
वृत्ति—(स्त्री०) जीविका, व्यवहार, आचरण।
वृध्—(प्रेरणार्थक)—उन्नति करना।
वृद्धि—(स्त्री०) उन्नति।
वृषलः—शूद्र, चन्द्रगुप्त की उपाधि।
वृषांकः—शिवजी (जिनकी ध्वजा पर बैल का चिह्न है)।
वृष्टि—वर्षा।
वेगः—तीव्रता।
वेगानिलः—आँधी।
वेणुलता—बाँस की लता।
वेतसः—बेंत।

वेदि-दी—वेदी, यज्ञ की वेदी, हवन करने की वेदी।
वेधस—विधाता।
वेशवनिता—वेश्या।
वेश्मन्—गृह।
वेष्टनं—पगड़ी।
वैकृतं—अशुभ शकुन।
वैतान—यज्ञ से सम्बद्ध, पावन।
वैतानिक—पवित्र, यज्ञ में अर्पित।
वैतालिकाः—चारण।
वैदेही—सीता।
वैद्युतानलः—बिजली की आग।
वैरिन्—विरोधी।
वैहायसं—आकाश में स्थित, हवाई।
व्रतं—आचरण-मार्ग।
व्रीडित—लज्जा-युक्त।
व्यक्ति—(स्त्री०)—प्रकाशन, आविर्भाव।
व्यक्तं—(क्रियाविशे०) स्पष्ट।
व्यग्रत्वं—किसी में संलग्न।
व्यजनं—पंखा।
व्यतिकरः—घटना।
व्यपदेशः—वंश, नाम, जाति।
व्ययः—व्यय, विघ्न, हानि।
व्यलीकं—तीव्र वेदना, शोक।
व्यवहारः—न्यायालय में किसी वाद को सुनना।

व्यवहारासनं— न्यायालय ।

व्यवहित—बिना, रहित, वियुक्त ।

व्यसनं— कष्ट, आवश्यकता, कठिनाई, हार्दिक लगाव ।

व्याकुल—अच्छी प्रकार से संलग्न ।

व्यालः—सर्प ।

व्याधः—बधिक, शिकारी ।

व्याहारः— / **व्याहृति** — शब्द, उपदेश, व्याख्यान ।

श

शकल—खण्ड ।

शक्ति—(स्त्री०) शत्रु पर घात करने का एक अद्भुत अस्त्र ।

शक्रः—इन्द्र ।

शची—इन्द्र की स्त्री ।

शंकुः—काँटा, शल्य ।

शप्—(भ्वादि-उभयपदी)-निन्दा करना, गाली देना ।

शबरः—जंगली जाति का व्यक्ति ।

शब्दः—उपाधि ।

शम्—(नि पूर्वक) दिवादि-परस्मै—सुनना । (प्रेरणार्थक) अलग करना, दबाना, दमन करना) (प्र पूर्वक-प्रेरणार्थक) निर्णय करना, ठीक करना ।

शमयितृ (पुं०)—विध्वंशक ।

शरजन्मन्—स्वामि कार्तिकेय, शंकर के पुत्र ।

शरणं—निवास-गृह ।

शरणागत—शरण में आया हुआ ।

शरद्—(स्त्री०) वर्ष ।

शरव्यं—लक्ष्य ।

शर्मन्—कल्याण ।

शर्वरी—रात ।

शरासनं—धनुष ।

शरीरिन्—शरीरधारी, जीवधारी ।

शल्यं—वाण ।

शशः—खरगोश ।

शश्वत्—(क्रियाविशे०) सदा के लिए, निरन्तर ।

शस्त्रभृत्—शस्त्रधारी, वीर ।

शाखामृगः—बन्दर ।

शांत—स्वस्थ, कम हुआ, अलग हुआ ।

शांति—(स्त्री०) विनाश, हटना, अलग होना ।

शान्ति-उदकं—शान्त जल ।

शालिः—एक प्रकार का धान ।

शालिन्—सहित।

शावः शावकः—बच्चा।

शास्—(अनुपूर्वक) अदादि-परस्मै—सम्मति देना।

शाश्वत—सदा रहने वाला, नित्य।

शासनं—आज्ञा।

शिक्षा—उपदेश।

शिखा—आग की लपक, ज्वाला।

शिखिन्—मयूर, पक्षी।

शिथिलय—शान्त कर देना, शिथिल कर देना, ढीला कर देना, निर्बल कर देना।

शिरोधरः—गर्दन।

शिल्पं—कला, चातुर्य।

शिलापट्टः—पत्थर की शिला।

शिलोच्चयः—पर्वत, पत्थरों का ढेर।

शिवं—शुभ, अच्छाई।

शिष्—(वि पूर्वक-प्रेरणार्थक) हीन कर देना, बढ़ा देना।

शुक्तिः—सीप।

शुच्—(स्त्री०) शोक, पीड़ा।

शुद्धांतः—रनिवास, रनिवास में रहने वाली अर्थात् रानी अथवा रानियाँ।

शुश्रूष (श्रूधातु)—सेवा करना।

शुभशंसिन्—शुभ-सूचक।

शूलिन्—(पुं०)--शंकर जी।

शृणि—(स्त्री०)--कोड़ा, अंकुश।

शैलः—पर्वत।

शैवलं—सेवार।

शोण—(विशे०)—रक्तवर्ण।

शोणितं—रुधिर।

शोभा—छवि, सौन्दर्य।

श्रीशः—विष्णु, भगवान।

श्रुत—प्रसिद्ध, ख्यातनामा।

श्रुति—कान, वेद।

श्रेयस्—सुख, अच्छा भाग्य, कल्याण, (विशे०) अच्छा, बहुत, प्रशंसनीय।

श्रेष्ठिन्—(पुं०)--सेठ, व्यापारी।

श्रोत्रियः—वेदज्ञ ब्राह्मण।

श्वापदः—फाड़ खाने वाले, जङ्गली जानवर।

श्वेतमान—(विशे०) धवल, श्वेत।

ष

षंडः -- समूह, ढेर।

स

संयमनं—रुकावट, खिंचाव ।

संयोगः—संगठन, योग ।

संरंभः—क्रोधी, उग्र-स्वभाव ।

संवादः—पहिचान ।

संव्यवहारः—आवागमन, व्यापार ।

संविभक्त—अलग-अलग बँटा हुआ ।

संश्रयः—आश्रय, सहारा ।

संसर्ग—सम्पर्क, सम्बन्ध ।

संसारः—संसार ।

संस्तीर्ण—विस्तृत ।

संस्थापनं—नींव डालना ।

संस्थित—मृत, समाप्त ।

संहारः—विश्व का विनाश, प्रलय ।

सकल—पूरा पूरा, अक्षत ।

सकाम—परिपूर्ण इच्छा वाला, संतुष्ट ।

सक्त—चालू, प्रारम्भ किया हुआ ।

संकर—मिलावट, जातियों का मिश्रण ।

संकल्प— निश्चय ।

संकल्पयोनिः—कामदेव ।

संकुल—भरा हुआ, परिपूर्ण ।

संकोचः—अंगों को समेट लेना ।

संगः—प्रेम, सम्बन्ध, आसक्ति ।

संघः—समुदाय ।

सचकित—(विशे०) चौकन्ना ।

सज्ज—(विशे०) उद्यत ।

संज्—(प्र पूर्वक)-भ्वादि-परस्मै—लवलीन होना । (व्यति पूर्वक) जोड़ना ।

संजीवनौषधि—(स्त्री०) फिर से जिलाने वाली बूटी ।

सत्केतुः—अच्छी पताका ।

सत्क्रिया—सत्कार, अच्छे कृत्य, अच्छाई ।

सत्त्वं—प्राणी ।

सद्—भ्वादि-परस्मै—डूबना, गिरना; (वि पूर्वक) दुखी होना, उदास होना, (उत् पूर्वक) डूबना, संकट में पड़ जाना ।

सदस्य—यज्ञ में सहायता देने वाला ।

संतति-(स्त्री०) **सन्तानं**—सन्तान, बाल-बच्चे ।

संदिष्ट—आज्ञा पाया हुआ ।

सन्धानम्—ठीक करना, लक्ष्य वेध करना ।

संधिः—योग ।

सन्निकर्षः—सम्बन्ध, समीपता ।

सन्निपातः—समूह ।

सपत्नः—विरोधी ।

सपत्नी—सौत ।

सफल—(विशे०) फल-सहित।
सभ्राज—(चुरादि-परस्मै) सम्मान करना।
सम्राज्—चक्रवर्ती राजा।
समक्षं—(क्रियाविशे०) सम्मुख।
समरं—युद्ध।
समवस्था—परिस्थिति।
समवायः—समूह।
समाधिः—चित्त की एकाग्रता।
समापत्ति—घटना, आकस्मिक अवसर।
समाश्रयः—आश्रय, अवलम्ब।
समिति—(स्त्री०) युद्ध।
समिद्वत्—(विशे०)- यज्ञ का ईंधन, हवन किया हुआ।
समीपं—(क्रियावि०) सन्निकट।
समुन्नति—(स्त्री०) ऊँचाई।
समुच्चयः—समुदाय।
समुत्सुक—(विशे०) अत्यन्त उत्सुक, व्यग्र।
समृद्ध—समुन्नत।
समृद्धि—(स्त्री०) बढ़ती, अभिवृद्धि।
संपत्ति— स्त्री०) गुणों का उत्कर्ष।
संपन्न—सहित, उपस्थित, बना हुआ, पूर्ण किया हुआ।
संप्रतिपत्ति—(स्त्री०) स्वीकार करना, मानना।
संबंधः—सम्बन्ध।
सम्बन्धिन्—सम्बन्धी।
संभृत—एकत्र किया गया।
संभोगः—आमोद-प्रमोद करना।
संभ्रमः—भय, व्याकुलता।
संमोहः—ज्ञान हीनता।
सरणि—विधान, ढंग, पद्धति।
सरसिजं—कमल।
सरोषम्—(क्रियाविशे०) रोष-पूर्वक।
सर्गः—सृष्टि।
सर्वथा—(क्रियावि०) सब प्रकार से।
सर्वदमनः—सब को दबाने वाला।
सर्वांगीण—(विशे०) सम्पूर्ण शरीर पर लिप्त।
सलिलं—जल।
सशब्दं—(क्रियाविशे०)—शब्द करता हुआ।
सस्यं—हरे भरे अनाज की खेती।
सह्—(उत् पूर्वक) भ्वादि-आत्मने—साहस करना।
सहकारः—आम का पेड़।
सहज (विशे०)—स्वाभाविक।

सहस्रकिरणः } सहस्रकिरण
सहस्रधामन् } धारी, सूर्य ।

सहायः—सहायक, मित्र ।

सहोदरः—सगा भाई ।

साक्ष्यम्—गवाही ।

सादः—क्षीणता, पतलापन ।

सादृश्य—समता, बराबरी, उपमा ।

साध्—(प्रपूर्वक-प्रेरणार्थक) अग्रसर करना ।

साधनं—सैन्यदल ।

साध्वसं—डर, भय ।

सानु—(नपुं०)—पर्वत-शिखर, चोटी ।

सानुमत्—(पुं०) पर्वत ।

सानुराग—(विशे०)--अनुराग पूर्वक, भक्तियुक्त ।

सांप्रतिक (विशे०)—उपयुक्त ।

सारः—तत्व, शक्ति ।

सारिका—मैना ।

सार्थः—झुण्ड ।

सार्थवाहः—समुदाय का अग्रणी ।

सावधान (विशे०) सजग ।

साहसकारिन् (विशे०)—उत्साही ।

साहित्यं—साहित्यिक निबन्ध ।

सित (विशे०)—धवल, श्वेत ।

सिध् (निपूर्वक—भ्वादि-परस्मै)-मना-करना, रोकना ।

सिद्धः—देवताओं की एक जाति ।

सिंधुः—सागर ।

सीरध्वजः—जनक जी का नाम ।

सुख (विशे०)—सुख देने वाला ।

सुतीक्ष्णः—एक ऋषि का नाम ।

सुधा—अमृत । **सुधास्यन्दिन्** (विशे०)—जिससे अमृत टपकता हो ।

सुभगम्—(क्रियाविशे०) सुन्दर ढंग से ।

सुश्लिष्टम्—(विशे०) सुव्यवस्थित ।

सुयोधनः—दुर्योधन का नाम ।

सुरद्विष्—(पुं०) देवताओं का विरोधी, दैत्य ।

सुहृद्भेदः—मित्रों में भेद होना, 'हितोपदेश' नामक ग्रन्थ का द्वितीय भाग ।

सूक्तं—अच्छी वाणी, मधुर शब्द

सूत्रधारः—बढ़ई ।

सृ—(भ्वादि-परस्मै-उप पूर्वक) समीप में जाना ।

सृज्—(वि० पूर्वक प्रेरणार्थक) भेजना, अलग करना ।

सेतुः—पुल ।

सैंह (विशे०)—सिंह सम्बन्धी ।
सो—(व्यव पूर्वक) दिवादि-परस्मै—उपाय करना, विचारना ।
सोदर्यः—सगा भाई ।
सौजन्य—अच्छा स्वभाव या प्रकृति ।
सौदामिनी—बिजली ।
सौभाग्यविलोपिन्—(विशे०) शोभा का लोप करने वाला ।
सौहार्द—मित्रता ।
स्कंधावार—सेना का एक अंग ।
स्तंबकारिता—गट्ठर या ढेर बनाना ।
स्तनितं—बादलों की गड़गड़ाहट, बिजली की कड़क ।
स्त्रैणं—स्त्री जाति ।
स्थलवर्त्मन् (नपुं०)—स्थल-मार्ग ।
स्थली—प्रदेश, स्थान ।
स्था (आ पूर्वक)—आश्रय ग्रहण करना ।
स्थाणुः—शंकर जी ।
स्थायिन् (विशे०)—स्थिर, सदा रहने वाला ।
स्थिति (स्त्री०)—स्थिरता, स्थायित्व, उपयुक्तता ।
स्थिर (विशे०)—दृढ़ ।
स्थिरीकृ (तनादि-उभयपदी)—धीरता धारण करना ।
स्थास्नु (विशे०)—स्थिर, स्थायी ।
स्थैर्य—दृढ़ता ।
स्नातकः—दीक्षाप्राप्त ब्राह्मण, गृहस्थ ।
स्नानीयं वस्त्रं—स्नान के अवसर पर पहिना जाने योग्य वस्त्र ।
स्निग्ध—प्रिय, स्नेही, स्वपक्ष का ।
स्निग्धदृष्टि—(विशे०)—प्रेम पूर्ण दृष्टि से देखने वाला ।
स्फटिकमणि—एक विशेष प्रकार का मणि ।
स्फुट (विशे०)—साफसाफ, स्पष्ट ।
स्मय—गर्व, उद्दण्डता ।
स्यंद्—(अभि पूर्वक भ्वादि-उभयपदी) बहना, चूना, टपकना, द्रवित हो जाना ।
स्रोतोवहा—नदी ।
स्वच्छंदम्—(क्रियाविशे०) स्वतंत्रता पूर्वक , मनमानी ।
स्वद्—(भ्वादि-आत्मने)—स्वीकार करना ।
स्वभावज (विशे०)—प्राकृतिक ।
स्वस्थ (विशे०)—रोग रहित,
स्वाधीन (विशे०)—स्वतंत्र ।
स्वास्थ्य—नीरोग रहना, सुख-सम्पन्न,

आराम ।

स्वेच्छया (क्रियाविशे०)—अपनी इच्छा के अनुसार, भर पेट ।

ह

हतक (विशे०)—दुर्भाग्य पूर्ण ।

हन् (अदादि परस्मै, अपपूर्वक)—नष्ट करना । (प्रति पूर्वक) अलग कर देना, बदले में मारना ।

हरिः—इन्द्र ।

हरिचंदनं—मलय चन्दन ।

हरिणीदृश् (विशे०)—मृगनयनी ।

हव्यं—हवनीय पदार्थ ।

हस् (भ्वादि परस्मै)—स्वच्छ कर-देना, साफ कर देना ।

हारीतः—एक प्रकार का पक्षी ।

हार्दिक्यः—एक योद्धा का नाम ।

हितः—भलाई चाहने वाला ।

हितवादिन्—हित की बात कहने वाला ।

हिम—बर्फ ।

हिमवत्(पुं०)—हिमालय पर्वत ।

हिमरश्मिः } —चन्द्रमा ।
हिमांशुः— }

हुंकारः—"हुँ" की ध्वनि ।

हृ—(अभ्यव पूर्वक) भ्वादि-परस्मै—भोजन करना; (उत् पूर्वक) जड़ से उखाड़ फेंकना, उन्मूलन करना, (निर् पूर्वक) निकालना, खींचना, (सम् पूर्वक) गिराना, छाँट देना, कम कर देना, ह्रस्व कर देना, रोक देना, दबा देना, नियंत्रित करना, (व्या पूर्वक) बातचीत करना, कहना ।

हृषीकेशः—कृष्ण का नाम ।

हेमंत—शीतल ।

हैम—बर्फ से उत्पन्न ।

ह्रदः—जलकुण्ड ।

मुद्रक—सरयू प्रसाद पाण्डेय, नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग ।